प्रकाशक
मंत्री-श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ
रांगड़ी मोहल्ला, बीकानेर (राज)

प्रथम-संस्करण : १९७०

प्रकाशनतिथि
सं० २०२७, मिती आसौज शुक्ला २
दि० २ अक्टूबर, १९७०

मूल्य : पांच रुपये (अर्धमूल्य)

मुद्रक
जैन आर्ट प्रेस,
(श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ द्वारा संचालित
रांगड़ी मोहल्ला, बीकानेर (राज.)

प्रकाशकीय

परमश्रद्धेय पूज्य गणेशाचार्य का जीवनचरित्र प्रस्तुत है।

यद्यपि जीवनचरित्र को यथाशीघ्र प्रकाशित करने के लिये पाठकों का आग्रह रहा। यह आग्रह रहना भी चाहिये और यथार्थ भी है। लेकिन महापुरुषों के सर्वांगीण जीवन की विशेषताओं को क्रमबद्ध रूप से एक सूत्र में पिरोना सहज नहीं होता है और साथ ही उन विशेषताओं के यत्रतत्र बिखरे हुए कणों को संकलित करने के लिये भी समय की विशेष आवश्यकता होती है। इस प्रयास में काफी समय लगता है। अतः शीघ्रता की आकांक्षा रखने पर भी विलंब होता रहा। फिर भी हमारी ओर से एतदर्थ शक्य प्रयत्न किये गये और उन्हीं का परिणाम है कि आज हम यह ' पूज्य गणेशाचार्य जीवन-चरित्र' प्रस्तुत करने में सक्षम हुए हैं। पाठकों के बार-बार के आग्रह से हमारे प्रयत्नों को वेग मिला, एतदर्थ हम उनका सधन्यवाद हार्दिक आभार मानते हैं।

परमश्रद्धेय चारित्रचूड़ामणि पूज्य गणेशाचार्य के जीवन की विशेषतायें प्रत्येक सद्धर्म, सदाचार एवं संयम प्रेमी मानव-हृदय में अंकित हैं। यह विशेषतायें जन्मजात संस्कारों से अंकुरित हुईं और सुयोग्य गुरुओं के निर्देशन में पल्लवित, पुष्पित होकर रमणीय होती गईं।

पूज्य आचार्य श्री जी ने मानव से महामानव, नर से नारायण होने के मार्ग का अनुसरण किया और अपने प्रयास से नितनूतन सफलताओं को समार्जित कर गंतव्य की ओर गतिशील रहे। यही कारण है कि वे मानव को मानवता का बोध कराने में ध्रुव तारे की तरह सदैव अटल रहेंगे।

मानवजीवन की प्राप्ति सत्यान्वेषण की प्रक्रिया का सूत्रपात है और समग्र सत्य की उपलब्धि चरम लक्ष्य। इस लक्ष्यप्राप्ति के लिये आत्मिक शक्तियों के विकास का क्रम-क्रम से ऊर्ध्वीकरण करना पड़ता है। यह ऊर्ध्वीकरण भी तभी संभव है जब संयम, तप, त्याग साधना के माध्यम से प्रमादजन्य त्रुटियों का उन्मूलन होकर स्वानुभूति प्रकाशित होने लगती है। इस स्थिति में रमण करने वाले मानव श्रमणपद के अधिकारी होते हैं।

उक्त संकेत के परिप्रेक्ष्य में जब हम पूज्य गणेशाचार्य के जीवन पर दृष्टिपात करते हैं तो श्रमणधर्म का समग्र रूप परिलक्षित होता है। श्रम, शम और सम की त्रिवेणी के संगम से आचार्य श्री जी भव्य जीवों के लिये तीर्थ के विरुद से विभूषित हैं। उनके जीवन की विविध विशेषताओं एवं साधनाओं में से किसी एक को स्व-विकास का आधार बनाकर हेयोपादेय के विवेक से कल्याण कर सकते हैं।

आचार्य श्री जी ने आध्यात्मिक–साधना की अनुभूतियों का विवेचन किया है । उन्होंने जो अनुभव किया, जनसाधारण के लिये उपयोगी मान वितरित कर दिया । इस कथन में व्यक्ति और व्यक्ति के माध्यम से समाज-जीवन में आगत दुर्बलताओं, रूढ़ियों आदि की निवृत्ति के लिये भी संकेत है ।

पूज्य गणेशाचार्य के जीवनचरित्र के आचार और विचार, चिन्तन और मनन, संयम और तप, करुणा और मैत्री, अनुशासन और विनयशीलता आदि विविध आयाम हैं। उनमें से प्रत्येक आयाम के बारे में समग्ररूपेण प्रकाश डालना सहज नहीं है । अतः प्रस्तुत ग्रन्थ में यथाप्रसंग विविध विशेपताओं का आंशिक दिग्दर्शन कराने का प्रयास किया है और प्रयास की सफलता पाठकों के निर्णय पर आधारित है ।

गुणपूजक और संयम के साधक पूज्य आचार्य प्रवर का जीवन जाज्वल्यमान प्रकाशपुंज की तरह हमें सदसद्-विवेक की प्रेरणा देकर जीवन के उच्च आदर्शों को दैनंदिनी व्यवहार में उतारने की बुद्धि दे तो इसी में ही जीवन–चरित्र के पठन–पाठन की सफलता है ।

पूज्य आचार्य श्री जी की विशेपताओं को क्रमबद्ध रूप में अंकित करने के लिये लेखक का प्रयास धन्यवादार्ह है । साथ ही इस कार्य में प्रत्यक्ष एवं परोक्षरूपेण सहयोग देनेवालों का अभिनंदन करते हुए आभार मानते हैं ।

श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन सभा कलकत्ता ने जीवनचरित्र-प्रकाशन के लिये ५०००.०० रु. सहायतार्थ प्रदान किये थे और इस सहायता के फलस्वरूप पूरे मूल्य के बजाय अर्धमूल्य यानी १०.०० के बदले ५.०० में पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर रहे हैं । एतदर्थ हम सभा के पदाधिकारियों सहित समस्त सदस्यों का सधन्यवाद आभार मानते हैं । यह सहयोग सत्साहित्य प्रेमियों के लिये प्रेरणादीप बने, यही आकांक्षा है ।

संघसेवक

जुगराज सेठिया

मन्त्री

सुन्दरलाल तातेड़, मोतीलाल मालू

उगमराज मूथा, पीरदान पारख

सहमन्त्री

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ

श्री गणेशाय नमः

विश्व के सचेतन प्राणधारियों में मानव एक श्रेष्ठ प्राणी है और श्रेष्ठता का कारण है उसकी विचारशीलता । वह विचारों से प्रेरणा लेता है और उन्हें प्रेरित भी करता है । उसके विचारों की उत्तेजना जगत में प्रतिशोध और विनाश का दृश्य भी उपस्थित कर सकती है और विचारों के बदलते ही समूचा जगत बदल सकता है । अतः जब मानव विचारों की इस विलक्षण शक्ति के प्रवाह को अंतर् की ओर मोड़ देता है तो उसमें अदम्य उत्साह, अनुपम शांति, धैर्य एवं विश्वास का विकास होता है और उनसे ऐसी परिस्थितियों का निर्माण करता है कि वह स्वयं अपने लिये ही नहीं, अपितु प्राणिमात्र के लिये आदर्श बन जाता है ।

जीवन के इतिहास में मानव एक सर्वोच्च पद है । इसमें अपने आपको परिस्थिति के अनुकूल ढाल लेने की एक विशिष्ट क्षमता है । जिससे वह अपने अनुभवों और स्मृति से जीवन के नये-नये पाठ सीखता है, जबकि अन्य–देव, पशु आदि जो भी जीवन बिताते हैं, उसे भूलते जाते हैं । उनके जीवन में प्राप्त को भोगना ही समाया हुआ है । अकर्मण्यता या लाचारी से जब जैसा कुछ भी प्राप्त हो गया, उसमें ही संतोष कर लिया । उनमें न तो अच्छे अवसर प्राप्त करने की आकांक्षा है और न प्रयत्न करने की इच्छा है । उनका जीवन गाड़ी के पहिये के समान घूमते हुए समाप्त हो जाता है ।

अतएव–मानव जीवन ही एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा प्राणिमात्र के शाश्वत ध्येय की प्राप्ति होती है। उसमें सारासार, धर्माधर्म और आत्म-अनात्म आदि तत्वों के निर्णय करने की बुद्धि है, जिसके द्वारा समस्त बंधनों से मुक्त होकर सच्ची और सर्वकालव्यापी स्वतंत्रता एवं सर्व दुःखों से मुक्त होकर चिर शांति प्राप्त की जा सकती है, जो प्राणिमात्र का चरम ध्येय है । इसी को परम पद, परमात्मापद या मोक्ष कहते हैं । इस पद को प्राप्त करने की सामर्थ्य मानव के सिवाय अन्य प्राणियों में नहीं है ।

अतः मानव-जीवन अपने आप में महत्वपूर्ण है और चराचर विश्व के समस्त प्राणियों को प्राप्त करने योग्य है । इसकी अपनी कुछ ऐसी विशेषतायें

हैं जो अन्य प्राणियों में प्राप्त नहीं होती हैं। विश्व की संस्कृतियों का जन्म-दाता मानव ही होता है। इसमें देवत्व भी है और दानवता भी है, योग भी है और भोग भी है। यदि सभी प्रकार की अच्छाईयों और बुराईयों को एक स्थान पर ही देखना हो तो मानव-जीवन में देख सकते हैं।

परन्तु जब तक मानव-जीवन का उद्देश्य न समझा जाये, स्वरूप का भान न हो सके, जगत जिस रूप में है, उस रूप में परख न सके और शाश्वत लक्ष्य—मोक्ष - का यथार्थ मार्ग ज्ञात न कर सके, तब तक उसकी सार्थकता नहीं है। इसलिये प्रत्येक मानव का कर्तव्य है कि वह अपने जीवन की उपयोगिता का सदैव विचार करता रहे।

विचार के केन्द्रबिन्दु दो हैं—एक अंतजीवन और दूसरा बाह्यजीवन। अंतर्जीवन में वह धर्म का प्रकाश लेकर प्रवेश करता है। मानव अपने जीवन के प्रति जितनी भी धारणायें और विश्वास बनाता है, वे सब उसके हैं और उनके सहारे ही बाह्य जगत में पदार्थों को देखने, पाने की इच्छा करता है। उन्हीं के सहारे समाजों का निर्माण होता है, राष्ट्र और विश्व की व्यवस्था बनती है एवं महाविनाश व महाप्रलय की ओर न जाकर अंधकार से प्रकाश की ओर बढ़ता है। लेकिन जब कभी भी मानव-जीवन के साथ विश्वासघात किया गया, तब-तब जीवन की उपलब्धियां नष्टभ्रष्ट होती रही हैं।

इसलिये यह सिद्ध है कि उसी मानव को महत्व दिया जाता है जो अपने शाश्वत लक्ष्य की ओर बढ़ता है, जो सचाई और भलाई के अन्वेषण में प्रगति करता रहता है। इस अन्वेषण में जो प्रयत्नशील रहते हैं, वे मानवीय सभ्यता के इतिहास में स्थायी स्थान प्राप्त करते हैं। ऐसे मानव महापुरुष या महामानव के रूप में जन-साधारण के मानस में सदा के लिये अपना स्थान बना लेते हैं। उनकी अनुभूति मानवमात्र के हृदयपटल पर एक विशेष छाप लगा देती है।

महापुरुषों का जीवन पवित्रता और निःस्वार्थ आस्तिक्य का एक सुस्पष्ट अध्याय होता है। वे आध्यात्मिक सिद्धांतों और उनकी जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उपयोगिता का उपदेश देकर, अपने आचार-विचार द्वारा जीवन में प्रयोग कर मानवता को उत्कर्षोन्मुखी बनाने के लिये जीवत रहते हैं। उनका जीवन जन-साधारण के लिये देन है। उनके जीवन से हमें संसार रूपी सागर से तिरने की प्रेरणा मिलती है। अतएव इसी आशय को लेकर किसी कवि ने कहा है—

परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते ।
स जातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम् ।।

विश्व में उन मानवों का महत्व नहीं है जिन्होंने भौतिक सफलतायें प्राप्त कर बड़े-बड़े साम्राज्यों का निर्माण किया अथवा भौतिक स्मारकों द्वारा अपने आपको बनाये रखने का प्रयत्न किया । उन्होंने अपने नाम को अमर बनाये रखने के लिये नगर बसाये, दुर्ग बनाये, लेकिन काल के प्रवाह और प्राकृतिक कारणों से उनका नाम शेष न रह सका । जो भौतिक सफलताओं के लिये अपनी इच्छापूर्ति में बाधक बनने वालों का संहार करते हैं, जो सभ्यता और संस्कृति का विनाश कर अट्टहास करते हैं, जो दूसरों का ध्वंस कर हर्षित होते हैं और विश्व की सुखशांति को मिटा देना अपना कर्तव्य समझते हैं, वे महापुरुष नहीं हैं । ऐसे व्यक्तियों का अस्तित्व शरीर में क्षय के कीटाणुओं के समान विश्व के लिये महा भयंकर होता है ।

लेकिन जो आत्म-विजेता महापुरुष होते हैं वे आत्मान्वेषण के प्रशस्त पथ पर अबाध गति से चलते रहते हैं । उन्हें भौतिक सफलतायें अपने लक्ष्य-ध्येय से विचलित नहीं कर पातीं और वे आध्यात्मिक जगत का साम्राज्य प्राप्त कर आत्मानुभूति का आदर्श विश्व के समक्ष प्रस्तुत करते हैं । काल उनका दास बन जाता है और उन कालविजेता मृत्यंजयी महापुरुषों का जीवनादर्श युग-युग तक मानव-समाज को प्रेरणा देता रहता है ।

उन महापुरुषों का युग-युगान्त में भी मानव मात्र ऋणी रहा है और रहेगा । उन्होंने अपने गहन आध्यात्मिक ज्ञान और तप, त्याग और संयम से अनेक परिषहों एवं परेशानियों का दृढ़तापूर्वक सामना करते हुए हिमालय की भांति अटल और अचल रहकर, विश्व को सही, सत्य एवं शाश्वत विचार प्रदान कर इस उक्ति को चरितार्थ किया— अध्यात्म तर्क का विषय नहीं, लेकिन हृदय की ध्वनि है ।

महापुरुष सेना, शस्त्र, धन, शरीर और ऐन्द्रिक विषयों पर निर्भर न रहकर मानव की मानवता और सर्वोच्च शक्ति को जगाना अपना कर्तव्य समझते हैं । अपना कार्य प्रारम्भ करने के पूर्व संयम और तप द्वारा अपनी आत्मा को निर्दोष बना लेते हैं और जब कसौटी पर खरेपन की परीक्षा हो जाती है तो ससीम से असीम होकर जन-कल्याण के लिये निकल पड़ते हैं । उनकी यह अनुभूति आध्यात्मिक जीवन की पवित्रता और सर्वोच्चता, प्राणीमात्र के प्रति भ्रातृभाव और शांति, प्रेम की भावना के आदर्शों का शिक्षण देती है ।

ऐसे महापुरुष ही संसार के सच्चे हितचिन्तक हैं। वे किसी निर्धन को हीरा, पन्ना, मोतियों का दान नहीं करते हैं किन्तु उसकी आत्मा में ऐसी शक्ति भर देते हैं जिससे वह बड़े-बड़े श्रीमानों की निधियों को ठुकरा सके। उनकी वाणी और उपदेश युग-युग तक जनता को मार्गदर्शन कराते रहते हैं। जब तक भव्य पुरुष आत्मविकास के लिये प्रयत्नशील रहेंगे, तब तक उन-उन महापुरुषों की सदैव स्मृति बनी रहेगी।

ऐसे महापुरुष अज्ञानान्धकार का भेदन करते हुए अध्यात्म—गगन में सूर्य के समान चमकते हैं। उनके उपदेश अन्तरात्मा को प्रकाशित कर देते हैं, जिससे पाशविकता के अंधकार में दबी हुई मानवता पुनः चमकने लगती है। ऐसे महापुरुषों का जीवन ही संसार में आदर्श की स्थापना करता है। उनके उपदेश नये संसार को घड़ते हैं और कार्य नव-निर्माण करते हैं।

यदि विश्व की प्रगति का इतिहास उठाकर देखें तो उसके पन्ने-पन्ने से मालूम होगा कि उसमें कुछ ऐसी थोड़ी-सी विभूतियों का लेखा है जिनकी विचारधारा बाह्यरूप धारण करके विश्व की प्रगति का इतिहास बन गई है।

यहां विश्व की एक ऐसी ही विरल विभूति का जीवन-इतिहास अंकित कर रहे हैं, जो आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. के नाम से विख्यात हैं। वे जन-जन के श्रद्धेय और मार्गदर्शक हैं। वे एक संत हैं। उन्होंने संसार त्याग दिया था, अंगलियों पर गिने जाने वाले कुछ एक पारिवारिकजनों को त्याग दिया था, लोकेषणा को त्याग दिया था, गृहस्थी के प्रपंचों को त्याग दिया था, अड़ौस-पड़ौस में बसने वाले पुरजनों का त्याग कर दिया था, कतिपय व्यक्ति विशेषों से नेह—नाता तोड़ दिया था। परन्तु कुछ व्यक्तियों के बदले उन्होंने विश्व के प्राणिमात्र से संबन्ध जोड़ लिया था। 'सत्वेषु मैत्री' 'सर्वभूतात्मभूत' की भावना सजीव हो गई थी। ईंट—चूने से बने घर की चार दीवारियों का परित्याग कर लाखों मानवों के मन मंदिर में अपना डेरा जमा लिया था। उन्होंने संसार का त्याग कर दिया था लेकिन अपने कर्तव्य से मुख नहीं मोड़ा था। उनकी निवृत्ति में भी प्रवृत्ति का उदार घोष था। उनकी ममता में समता का समावेश हो गया था, स्नेह में रूपान्तरित हो गई थी। परिणामतः उन्होंने संसार का बड़े से बड़ा उपकार किया। उनका जीवन—इतिहास मानवीय—जीवन का इतिहास है। उनका आत्म-विकास जन-कल्याण का राजमार्ग है। उनका विचाप सांस्कृतिक सुरक्षा का प्रयत्न करने वालों को प्रेरणा सूत्र है। उनका आचार साधकों के लिये प्रोत्साहन है और उनका उपदेश प्रगति का शंखनाद है।

अतः परमश्रद्धेय आचार्यश्री श्री १००८ श्री गणेशलालजी म. सा. का पुण्यस्मरण करते हुए उनके जीवन-इतिहास का श्रीगणेश कर रहा हूं। इसमें जो कुछ भी श्रेष्ठ और उत्तम है, वही ग्रहण कर अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होते रहें। प्रमादजन्य त्रुटियां सदैव उपेक्षणीय हैं और विद्वद्वर्ग से इसकी अपेक्षा है। विज्ञेषु किमधिकम्।

सं. २०२७, आसोज शुक्ला २. चरणचंचरीक
२ अक्टूबर, १९७०. देवकुमार जैन

श्रद्धा के दो प्रारंभिक शब्द

मुनि श्री सुशीलकुमारजी म.

श्रद्धेय आचार्यश्री गणेशलालजी म. की जीवन–गाथा के प्रकाशन का विचार बहुत ही स्तुत्य है । मेरा स्वयं का विचार था कि मैं उनके मानवीय दृष्टिकोण, साधनापरक जीवन एवं उनके विश्व–मंगलमय संस्मरणों को रेखांकित करूं और किसी समय संक्षिप्त रूप में उनके दिव्य जीवन की झाँकी का अभिलेखन भी कर पाया था । किन्तु इस समय मेरी अपनी ही कार्य-व्यस्ततायें लिखने मे असमर्थ करती रहीं । मुझे यह जानकर सन्तोष हुआ कि अब श्रद्धेय आचार्य श्री का जीवन प्रकाशित होने जा रहा है । मैं लेखक महोदय का आभारी हूं, जिन्होंने ऐसे पवित्र विचार और एक महात्मा की जीवन–गाथा को सम्पादित एवं प्रकाशित करने का भार अपने ऊपर लिया ।

मैं मानता हूं कि संसार में सबसे कठिन काम संस्कृति एवं सभ्यता के क्षेत्र में बिखरे हुए आध्यात्मिक बीजों को वपित एवं पोषित करने का है । विशेषकर जैन-संस्कृति की साधना ही सबसे अधिक सहज और दुष्कर है । क्योंकि जिस शून्यता में जाकर आत्मा के प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा इस जगत एवं आत्मतत्त्व का साक्षात्कार करना चाहते हैं, वही सबसे कठिन काम है । वास्तव में जिसे हम सहज कहते हैं वही सबसे कठिन होता है ।

आत्मा ही हमारा मुख्य तत्व है किन्तु उसे ही जानना सबसे अधिक दुःसाध्य है । निर्विकार मन और विचार रहित अवस्था की प्राप्ति जितनी साहजिक है, उतनी ही अलभ्य है । अहिंसा, संयम और तप की त्रिवेणी में गोता लगाये बिना उस परम शून्य अवस्था को नहीं पा सकते और न ही आत्मा के अपने निज गुणों जो स्वतः प्राप्त हैं, उनको उपलब्ध कर सकते हैं ।

सन्तों का जीवन साहजिक जीवन होता है । मन की चंचलता में तो सारा संसार ही डांवाडोल हो रहा है । किन्तु सन्त पुरुष निर्विकार, निश्चेष्ट और निश्चिन्तता से उस आत्मगुण को प्राप्त कर लेते हैं ।

भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के इस सारे प्रवाह को सन्त पुरुषों ने विवेक की मर्यादा में इस तरह प्रवाहित किया है कि वह मनुष्य के जीवन-विकास के लिए बहुत ही लाभकारी सिद्ध हो सका है । इसीलिए सन्तों की जीवन–गाथायें लिपिबद्ध करने की आवश्यकता पड़ती है । जिससे सन्तों के देहातीत होने पर भी उनके बताए सिद्धान्त, उनके जीवन की अनमोल अनुभूतियां, मार्मिक प्रसंग और आत्मा को उद्बोधन देने वाले सस्मरण स्थायी रूप से रह सकें ।

मेवाड़ की वीर वसुन्धरा पर जन्म लेकर इस महापुरुष ने धर्म-दीप को जिस तेजस्विता के साथ प्रज्ज्वलित किया एवं डांवाडोल होती हुई भारतीय अन्तरात्मा को अहिंसा एवं संयम का सबल प्रदान किया, वह युग–युग तक अविस्मरणीय रहेगा । साक्षात् आचार्यदेव के सानिध्य में आने का शुभ अवसर जिन्हें प्राप्त हुआ है, वह उनके गहरे प्रभाव और मार्मिक वचन को कभी भूला नहीं सके हैं । उनकी ताम्रवर्णी काया, उद्दीप्त तेजस्वी ललाट, मुस्कान भरा चेहरा किसी को भी अपनी ओर आकर्षित कर सकता था ।

मुझे भी उनके सान्निध्य में रहने का अवसर प्राप्त हुआ है । मैं उनके बाल-सुलभ, निष्कपट जीवन, सादगी और प्रेम से भरे हुये वचन कभी भूला नहीं सका । पहले ही साक्षात्कार का मेरे मन पर जो असर हुआ उसको मैं विद्युत के ए. सी करंट की उपमा दे सकता हूं । मैं जैसे-जैसे निकट होता चला गया, उनकी आत्मीयता और उनके प्रेम ने मुझे सदा के लिए अपना बना लिया । बहुत–सी बातें ऐसी थीं जिनके सम्बन्ध में मेरे और उनके विचार मेल नहीं खाते थे । वे पुराने विचारों के प्रतिनिधि माने जाते थे और मैं प्रगतिशील नये विचारों का सदा पक्षपाती । दोनों में कितना वैषम्य, किन्तु मैंने यह देखा कि उनका सरल एवं सच्चा प्रेम इतना शक्तिशाली था कि विचारभेद मनभेद का कभी कारण नहीं बनते थे । मैं उनकी बात को कभी टाल नहीं सकता था ।

एक बार एक तेरापन्थी सन्त ने मेरे से पूछा कि उपाचार्य श्री गणेशलालजी म. और आपके विचारों में पूर्ण समानता है या कुछ अन्तर है । मैंने कहा कि बहुत-से विचारों में बिलकुल भी मेल नहीं खाता तो तपाक से वे सन्त बोल उठे " तो ये आपके उपाचार्य कैसे और आपका संगठन कैसे चलता है ? " मैंने कहा बुद्धि बेचकर अनुशासन का नियम भारतीय–संस्कृति ने कभी पनपने नहीं दिया । वैचारिक स्वतन्त्रता और आचार की मर्यादा ही हमारे

संयम साधना की शर्त रही है । हम अपने विचार प्रकट कर सकते हैं और नितान्त स्वतंत्र रूप से सोच सकते हैं, किन्तु हम करते वह हैं जो हमारे अनुशास्ता का आदेश होता है। अनुशास्ता हमारे उपाचार्य हैं। उनके आदेश में और आज्ञा में सारा संगठन चलता है, किन्तु प्रजातंत्र की तरह विचार-स्वतंत्रता का अपहरण नहीं किया जाता है। मुझे ख्याल है वे साधु सकपका-से गए, किन्तु उन्हें अन्तरात्मा में प्रसन्नता हुई । मैंने कहा कि महात्माओं के जीवन में सच्चरित्रता और निर्भयता ही सब से दिव्य गुण होते हैं और आप यह मानते ही हैं कि भयग्रस्त जीवन कभी सच्चरित्र नहीं होता और कोई दुश्चरित्र निर्भय नहीं होता। इसका एक मात्र कारण आसक्ति है । आसक्ति से भय पैदा होता है और भय से मानवीय सद्गुणों का नाश हो जाता है। वैराग्य से निर्भयता का सूत्र-पात होता है और वही सच्चरित्रता एवं वैचारिक स्वतंत्रता में कारणभूत होता है।

मैं उपाचार्य श्री में देख रहा हूं कि उन्होंने कभी भी वैचारिक स्वतंत्रता का विरोध नहीं किया, क्योंकि वे सच्चे वैराग्यवान संत पुरुष हैं। मुझे उनके सात्विक सान्निध्य से जो अनुभूति प्राप्त हुई है और मेरे मानस पर जो उनका उज्ज्वल चित्र खिंचा है वह संगठन को बनाए रखने में काफी सहायक है ।

मुझ से उस संत ने उपाचार्य श्री जी म. की विशेषताओं की जान-कारी चाही तो मैंने कहा कि उनके तपःपूत जीवन में ब्रह्मचर्य की ऊर्जस्विता एवं सत्य की अगाध श्रद्धा का अलौकिक संमिश्रण हुआ है । उनके व्यक्तित्व की स्निग्ध शालीनता और संयम-साधना के प्रति अडिग निष्ठा प्रत्येक आगन्तुक पर प्रभाव डाले बिना नहीं रह सकती । राष्ट्र-प्रेम एवं राष्ट्र-कल्याण की मंगल-भावना उन्हें परम पूज्य जवाहराचार्य से प्राप्त हुई एव विश्वप्रेम तथा मानवोत्थान की सतत जिज्ञासा वीतरागता के निरंतर चिंतन से उद्भूत हुई है। उनमें वैराग्य की जो अटूट भावगंगा बह रही है, उसी ने उन्हें गम्भीर होते हुये भी, सरल, कठोर संयमी होते हुये भी, सहिष्णु, परम-विरक्त होते हुये भी अनुशासनप्रेमी और आत्मतत्ववेत्ता होते हुये भी समाजहितैषी बना दिया है ।

संत कहने लगे कि अनुशासन और संगठन कैसे चलता है, क्या उसमें विघटनकारी लोग नये-नये प्रपंच नहीं करते; जब कभी गुटबंदियां संग-ठन के सामने खड़ी हो जाती हैं तब उपाचार्यश्री क्या करते हैं ? मैंने कहा कि हमारे उपाचार्यश्री संगठन के बहुत हामी हैं किन्तु संगठन का रथ

अनुशासन के पहियों पर चलता है और कभी-कभी संगठन के हित में कड़े अनुशासन की बात की जाती है या व्यवस्था से अनुशासनार्थ कोई कार्रवाई करनी पड़ती है तो मैं देखता हूं कि उनके चारों ओर भी दुर्भिसंधियां होने लग जाती हैं। ऐसे अनेकों प्रसंग उनके जीवन के साथ लिपटे पड़े हैं। कितने ही संतजन एवं श्रावक समुदायों का उन्हें कोपभाजन बनना पड़ा है। किन्तु वे मानते हैं जबतक संगठन में पक्षपात नहीं आता है और व्यक्तिगत स्खलनाओं को छिछालेदर न कर आत्मशुद्धि की बात ही की जाती है तब तक संयम-साधक और संगठन दोनों ही सुचारु रूप से चलते रहते हैं। किन्तु जब किसी संगठन में पक्षपात घुसता है, बुराईयों को शुद्ध करने की जगह छिपाने की बात की जाती है, तब मानसिक सद्भाव विकृत होने लगता है।

ये बात १९५६ के प्रारम्भ की है। उसी समय थली प्रदेश में मुझे वे संत मिले थे और उनसे गम्भीर विचारणा हुई थी। किन्तु उसके बाद तो कितने ऐसे प्रसंग आये हैं जिन्होंने सारे संगठन को झकझोर दिया, जिसका कुछ स्वरूप आपको इस जीवन-गाथा में पढ़ने को मिलेगा। किन्तु मैं इस बात त नहीं हूं कि महात्माओं की जीवन-गाथा में ऐसे प्रसंग जिनमें किसी साधक की स्खलना का संकेत किया गया हो, वे प्रसंग इसमें नहीं आने चाहिये थे। भूल हो जाना सम्भव है। समय-प्रवाह अथवा कर्मोदय से कई प्रकार के दोष-प्रसंग उत्पन्न हो सकते हैं, किन्तु उन्हें ऐसी पवित्र जीवन-गाथा में स्थायी होने का अवसर देकर शुद्ध एवं विकसित जीवन की संभावना से अछूता रखना मैं हितकर नहीं मानता।

मैं मानता हूं कि आचार्य श्री गणेशलालजी म. आध्यात्मिक महल के खम्भे की तरह थे। उनके स्वल्पकालिक जीवन ने समग्र मानवजाति के सामने जिन अनावृत सत्य के द्वारों को उद्घाटित किया है और अनेकांतात्मक समन्वय पद्धति का मार्ग प्रशस्त किया है, यह उनकी अमर देन है। खादी-प्रेम और वीतरागता की साधना दोनों का समन्वय ही उनका राष्ट्रोपहार है। वैराग्य की उत्कट भावना एवं संगठन प्रेम ही साधु समाज के लिए उनका प्रेरक संदेश है। अनुशासन और सच्चरित्रता ही साधु-संगठन के प्राण हैं। अगर विषय-विरक्ति और आत्महित साधु जीवन से निकल जाता है तो वह संसार पर कलंकरूप है। जितना जल्दी उसे धो दिया जायेगा उतना ही लाभ है। आचार्य श्री गणेशलालजी म. दृढ़ अध्यवसाय के महाप्राण व्यक्ति थे। जो भी कार्य उन पर डाला गया और जिस कार्य को उन्होंने हाथ में लिया उसे

सत्संकल्प की तरह पूरा करने में जुटे रहे । दिवंगत आचार्य श्री गणेशलालजी म. की प्रतिछवि, प्रतिच्छाया एवं प्रतिकृति वर्तमान आचार्य श्री नानालालजी म. में आभान्वित पाकर मन गद्‌गद हो जाता है । आशा है दिवंगत आचार्यदेव की श्रमण-संगठन के निमित्त ठोस योजनायें एवं विश्वकल्याण की भावनायें साकार रूप लेंगी और मानव-जाति उनके पथचिन्हों पर चलकर आत्म-लाभ का मार्ग प्राप्त करेगी । इसी मंगल कामना के साथ —

— मुनि सुशीलकुमार

गणाचार्य : गणेशाचार्य

श्रेष्ठतम परम विज्ञाता-स्वरूप की वास्तविक शुद्ध चरमसीमा की उपलब्धि मानव-तन से ही हो सकती है। मानव-तन अनेकानेक प्राणियों को प्राप्त है पर इसको सार्थक करने वाली विरल ही विभूतियां मिलती हैं। वे विभूतियां प्रारम्भ में साधारण मानव के रूप में होते हुए भी सही ज्ञान के साथ ऐसा पुरुषार्थ करती हैं कि जिससे साधारण जन की पंक्ति से सर्वथा ऊपर उठ जाती हैं। जिसके सहारे वे असाधारण रूप में परिलक्षित होती हैं, वह सहारा रत्नत्रय का होता है।

पंचम काल में जो कि ह्रासता की स्थिति के उन्मुख है, अधिकांश दुःख, दौर्मनस्य, स्वार्थान्धता, पदलिप्सा, सत्ता और सम्पत्ति के कुहरे की प्रबलता में मानव की वृत्ति दानवता की ओर शीघ्र-गति से ताण्डव नृत्य कर रही है। महातृष्णा की ज्वाला में नैतिकता एवं धार्मिकता मानो भस्मसात की स्थिति को प्राप्त हो रही है। व्यक्ति, परिवार, समाज तथा राष्ट्र आदि समग्र विश्व में प्रायः कामुकता की काली छाया परिव्याप्त हो रही हो, वहां पर वीतराग-वाणी ही एकमात्र जीवनदायिनी बन सकती है। वह वीतराग-वाणी निर्ग्रन्थ-श्रमणसंस्कृति की परम्परा में जिनको सहज ही उपलब्ध हो पाई है, अपने इस मानव तन को सार्थक क्यों नहीं बनायेगा ? क्यों नहीं अपनी आत्मज्योति को परिस्फुटित कर संसार के अज्ञानान्धकार को नष्ट करने की चेष्टा करेगा ? अर्थात् अवश्य वह वैसा करेगा और जन-साधारण की स्थिति में वह एक आराध्य देव के रूप में उपस्थित होगा।

ऐसे महामानवों के सत्पुरुषार्थों से ही संसार चमका है और भविष्य में भी चमकता रहेगा। ऐसे पुरुष ही संसार में शान्त क्रान्ति को जन्म देकर विश्वशान्ति की अमोघ साधिका निर्ग्रन्थ-श्रमणसंस्कृति के गौरव को अक्षुण्ण रखेंगे। भूतकाल में भी समय-समय पर किसी

भी क्षेत्र में शैथिल्य परिव्याप्त हुआ तो महान् विभूतियों ने अपने मानापमान की परवाह न करते हुए उत्क्रान्ति का बिगुल बजाया। जिनकी गुणगाथाओं से इतिहास के पृष्ठ स्वर्णाक्षरों में अंकित हैं और उससे इतिहास के अभ्यासी भलीभांति परिचित हैं। लेकिन जिन पुरुषों का कृतित्व आधुनिक इतिहासकारों की लेखनी में लिपिबद्ध नहीं हुआ है, उनका आगम-वाणी आदि अपुट्ठवागरणा में उपलब्ध हो पाया है। ऐसे तो अनेक महापुरुषों की जीवन घटना का यथास्थान उल्लेख है ही, उन सबका यहां उद्धरण रूप में लेने से विस्तार की स्थिति बढ़ सकती है। अतः जिज्ञासुओं को यथास्थान ही अवलोकन करने की आवश्यकता है। पर हमारे चरितनायक के जीवन की उत्क्रान्ति का सामंजस्य जिन महापुरुष के साथ किया जा सकता है उन महापुरुष का यहां उल्लेख आवश्यक होने से किया जा रहा है। वह हैं गर्ग नाम के आचार्य।

यह गर्गाचार्य बड़े ही क्रान्तिकारी थे। निर्ग्रन्थ-श्रमणसंस्कृति के सजग प्रहरी थे। इनको शिष्यों का लालच भी नहीं हो पाया था। शिथिलता को बर्दाश्त नहीं करते थे। जब कभी भी शिष्यों में शिथिलता का प्रवेश आता हुआ देखते तो उनको सुधारने की कोशिश करते थे। लेकिन जब उन्होंने अनुभव किया कि ये शिष्य गलियार बैल की तरह शिथिल हो चुके हैं, इनके साथ रहने से मेरी संयमयात्रा समाधियुक्त नहीं रह सकेगी। संख्या की विपुलता से शासन की शोभा नहीं। शासन की शोभा सम्यक् ज्ञान-दर्शन-चारित्र की आराधना में सन्निहित है। वह आराधना सुचारित्री अल्पसंख्या में भी की जा सकती है। उसी में समाधिभाव व निर्ग्रन्थसंस्कृति की रक्षा है आदि कई दृष्टिकोणों को सन्मुख रख कर दुष्ट शिष्यों का संग छोड़ दिया। इस आशय के भाव उत्तराध्ययन सूत्र के २७वें अध्ययन में परिलक्षित होते हैं।

उत्तराध्ययन सूत्र अपुट्ठवागरणा के रूप में माना जाता है, जो कि भगवान महावीर ने अपने निर्वाण के पहले अर्थरूप में फरमाया। गर्गाचार्य का समय क्या है, इसका उल्लेख तो नहीं हो पाया है लेकिन इतना अवश्य सोचा जा सकता है कि भगवान महावीर के पहले के तीर्थंकरों के समय में होना चाहिए, क्योंकि भगवान महावीर का शासन तो भगवान महावीर के निर्वाण के पश्चात् आचार्य की परम्परा के रूप में सुधर्मास्वामी का उल्लेख है। अतः यह अन्य तीर्थंकरों के समय

के कहे जा सकते हैं और उनका उल्लेख अन्तिम तीर्थंकर के अन्तिम समय में बिन पूछे होना तीर्थंकरों के आशय की अभिव्यक्ति भलीभांति स्पष्ट हो जाती है—वह यह है कि निर्ग्रन्थश्रमणसंस्कृति में शुद्ध आचार-विचार को महत्त्व दिया गया है, न कि संख्या को और न आचार-विचार-शून्य संगठन को। मानो इसी बात का द्योतन करने के लिए गर्ग नाम के आचार्य का वर्णन बिना किसी के प्रश्न पर उल्लेख किया गया है।

ऐसे तो यह बात मंगलपाठ के शब्दों से भी भलीभांति व्यक्त हो जाती है। जैसे कि अरिहंत सरणं पवज्जामि, सिद्धे सरणं पवज्जामि, साहू सरणं पवज्जामि, केवली पन्नतं धम्मं सरणं पवज्जामि अर्थात् अरिहंत सिद्ध, साधु और धर्म की शरण बताई गई है, न कि संगठन की शरण।

यदि निर्ग्रन्थ-श्रमणसंस्कृति में आचार-विचार-शून्य संगठन को ही महत्त्व दिया होता तो "संघं शरणं गच्छामि' इस तरह का पाठ जैसा बौद्ध ग्रन्थों में है, वैसा इस मंगलपाठ में भी प्रयोग होता। लेकिन वीतराग परम्परा में आचार-विचार-सम्पन्न संघ, संगठन एवं साधु-संस्था को महत्त्व दिया गया है। यह बात गर्गाचार्य के चरितानुवाद वर्णन से सुस्पष्ट है।

उक्त संकेत से पाठकगण सहज ही यह समझ पायेंगे कि गर्गाचार्य के चरित्र के साथ आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. का चरित्र कितना साम्य रखता है। एक दृष्टि से देखा जाये तो कई बातें अधिक विशिष्टता रखती हैं। अनुमानतः गर्गाचार्यजी ने जितने मुनियों का त्याग किया उससे भी अधिक संख्या को छोड़ने का प्रसंग चरित्रनायक को आया है। उन्होंने शायद सशक्त अवस्था में यह कार्य किया होगा लेकिन चरित्रनायक ने तो रोगाक्रांत अवस्था में भी इस प्रकार की शांत क्रान्ति का गंभीर समाधि भावना के साथ कदम उठाया। जहां रोगाक्रान्त स्थिति में मानव अपने संयम का भी ध्यान नहीं रख पाता वहां आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. ने वृद्धावस्था और डाक्टरों को भी आश्चर्य में डालने वाले भयंकर रोग का प्रादुर्भाव रूप असातावेदनीय में भी शरीर के ध्यान को छोड़ कर संयम का पूरा ध्यान रखते हुए सारे समाज के सम्मान को पीठ पीछे रखकर अपमान के कंटीले मार्ग को सामने रखते हुए अनंत तीर्थंकरों की परम्परा को सुरक्षित रखने वाली निर्ग्रन्थ श्रमणसंस्कृति के संरक्ष-

णार्थ शान्त क्रान्ति का कदम उठाया। इससे सहज ही उस महानुभाव के अन्तस्तल की प्रगाढ़ साधना की स्थिति का अनुमान लगाया जा सकता है।

हमारे चरित्रनायक आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. सुसंगठन के हिमायती थे और सुसंगठन का आधार मानते थे सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्र की आराधना। इसके लिये उन्होंने जो प्रयास किया, वह सर्वविदित ही है।

सादड़ी बृहत्साधुसम्मेलन में आचार्यपद की नियुक्ति के लिए सर्वप्रथम आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. का नाम आया और प्रतिनिधि मुनिवर आपश्री को आचार्यपद के स्थान पर प्रतिष्ठित करने के लिए एक स्वर से समर्थन कर रहे थे तब आपश्री ने उन प्रतिनिधि मुनियों से कहा कि आप लोगों ने मेरी अनुमति लिए बिना ही जो समर्थन किया है, इसके लिए मैं आप लोगों के धर्मस्नेह का आभारी हूं। लेकिन मैं इस पद को मेरे लिए पसन्द नहीं करता। क्योंकि अब मेरी अवस्था ढल रही है और मैं अपने जीवन को अधिक आत्म-साधना में लगाना चाहता हूं। इसी भावना को ध्यान में रख कर मैं इस स्थल पर आया हूं और चाहता हूं कि निर्ग्रन्थ-श्रमणसंस्कृति की रक्षा करते हुए संगठन बनाया जाये और मैं उस संगठन के लिए सबसे पहले अग्रसर होना चाहता हूं, जिसका संकेत मैंने पहले ही कर दिया है। यदि यह संघऐक्य-योजना अखंड रहे और निर्ग्रन्थ श्रमणसंस्कृति की रक्षा होती हो तो मैं अपना सर्वस्व त्याग करके वीतराग परम्परा को सुरक्षित रखने के लिए संगठन में तत्पर हूं। बिना पद लिए ही मैं अपने ज्ञान-दर्शन-चारित्र की वृद्धि के साथ संघ का सदस्य रहकर यथाशक्ति कार्य कर सकता हूं। इस पद पर किसी योग्य लघुवयस्क मुनि को भी शासन-सत्ता से सम्पन्न प्रतिष्ठित कर दिया जाये तो मैं अनुशासन के नाते तीर्थंकरों की आज्ञा की तरह उनकी आज्ञा में रहता हुआ विचरण करने को तत्पर हूं, आदि आशय को स्पष्ट करते हुए आचार्यश्री ने ज्ञान-दर्शन-चारित्र की अभिवृद्धि के साथ संगठन का आदर्श उपस्थित किया।

प्रतिनिधि मुनिवर आचार्यश्री के तलस्पर्शी संगठन सम्बन्धी हार्दिक उद्गारों को सुनकर गद्गद हो गये और कहा कि भगवन् इस चुनाव में आपकी अनुमति हम क्या लें, हम तो सर्वसम्मति से

आपको चयन कर चुके हैं। किसी का कहने पर चयन नहीं होता, वह तो चयन करने वाले के हृदय से चयन होता है आदि विषयक कार्रवाई चलते हुए रात्रि का काफी समय चला गया और आचार्यश्री अपनी ही बात दोहराते हुए उठ गये तो सभा भी विसर्जित हो गई।

इसके पश्चात् पिछली रात्रि के लगभग तीन बजे से प्रमुख मुनिवरों का एक के बाद एक आचार्य श्रीजी के पास आवागमन हुआ और प्रार्थना की गई कि यदि आप भी इस पद को स्वीकार नहीं करेंगे तो यह संगठन भी नहीं बनेगा और सारे देश के स्थानकवासी संघ की हंसी होगी कि संघ का नेतृत्व सम्हालने वाला कोई योग्य व्यक्ति ही नहीं है। अत: आपको हर हालत में यह पद स्वीकार करके हमें अनुगृहीत करना चाहिये आदि बातें हुई, जो यथाप्रसंग पाठकों को पढ़ने को मिलेंगी।

तदनन्तर आचार्यश्री ने सशत श्रमणसंघ में प्रवेश किया। शर्त यह थी "संघ-ऐक्य योजना अखंड रहे तब तक के लिये मैं बाध्य हूं।" इसका तात्पर्य यह है कि संघऐक्य की स्थिति खंडित हो जाये तो मैं इस श्रमणसंघ के अन्दर बंधा हुआ नहीं हूं। यह शर्त आचार्यश्री की दीर्घदृष्टि की सूचक है। सादड़ी में जैसा श्रमणसंघ बना, उसका विभेद (विघटन) मूर्धन्य मुनिराजों द्वारा हो जाने पर आचार्य श्री गणेशलालजी म. अपनी उस शर्त के अनुसार उससे पृथक् हो सकते थे। जिसका उल्लेख आचार्य श्रीजी ने श्रमण संघ से पृथक् हो जाने के बाद अपनी २२, सितम्बर '६२ की घोषणा में किया है।

स्वतन्त्र बनने पर भी ज्ञान-दर्शन-चारित्र की अभिवृद्धि पूर्वक सुसंगठन की भावना आचार्य श्रीजी ने पृथक् नहीं की। यही कारण है कि आचार्य श्रीजी ने निग्रन्थ श्रमण वर्ग का आह्वान किया कि—

मैं सुसंगठन का किसी से कम हिमायती नहीं हूं। मैं अब भी यह चाहता हूं कि मेरा संतोषजनक समाधान होकर मेरी कल्पना और उद्देश्य के अनुसार जैसा कि मैं पूर्व में व्यक्त कर चुका हूं (जिसको श्रमण संघ ने सादड़ी में स्वीकार किया था) एक के नेतृत्व में श्रमण-संगठन साकार रूप होकर सुदृढ़ बने अथवा मेरा संतोषजनक समाधान पूर्वक समस्त मुनिमंडल या यथासंभव जितने भी मुनिवृन्द शास्त्रसम्मत एक समाचारी में आबद्ध होकर अपने में से किसी एक शास्त्रज्ञ श्रद्धावान एवं चारित्रनिष्ठ मुनिवर को आचार्य मानें

और शिक्षा, दीक्षा, चातुर्मास, विहार व शिष्यपरंपरा आदि सब उन्हीं आचार्य के अधीन रहे। ऐसी स्थिति बनती हो तो मैं सदैव तैयार हूं और अन्य संत, सतियों से भी मैं यही अपेक्षा करता हूं कि जब भी ऐसी स्थिति का निर्माण हो, उसमें अपना विलीनीकरण करने को तैयार रहें।

इस प्रकार आचार्यश्री ने ज्ञान-दर्शन-चारित्र को सुरक्षा के साथ संगठन को महत्त्व दिया और उसके लिये सब कुछ त्याग करने की भावना स्पष्ट कर दी। पर ज्ञान-दर्शन-चारित्र की सुरक्षा के साथ संगठन के लिये जब तैयारी दृष्टिगत नहीं हुई तो सादड़ी सम्मेलन के अन्दर स्वीकृत उद्देश्य को अमली रूप देते हुए निर्ग्रन्थ-श्रमणसंस्कृति के सुरक्षार्थ समाचारी के साथ सुसंगठन को साकार रूप दे दिया और दरवाजा सबके लिये खुला रख छोड़ा।

आचार्यपद का चयन प्राय: होता है और उनके चरणों में नेतृत्व के अधिकार भी अर्पण किये जाते हैं। लेकिन इनको जिस ढंग से नेतृत्व प्राप्त हुआ, यह एक अद्भुत घटना-सी है।

पहले जलगांव में आचार्य श्री जवाहरलालजी म. की सम्प्रदाय का नेतृत्व सम्हालने का प्रसंग आया तो चतुर्विध संघ ने आपको ही अपना नेता चुना। इसके पश्चात् भी बृहत्साधुसम्मेलन अजमेर में देश के मूर्धन्य सन्तों में से पांच पंच नियुक्त किये गये थे, उन्होंने भी आचार्यश्री जवाहरलालजी म. और आचार्य श्री मन्नालालजी म. के पाट पर आपको युवाचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया।

इसके पश्चात् समग्र संप्रदायों के एकीकरण का वायुमंडल चालू हुआ और उसमें बृहत् सम्मेलन की योजना चल रही थी। उसी के बीच कान्फरेन्स का एक शिष्टमण्डल आचार्यश्री गणेशलालजी म. की सेवा में पहुंचा और उसने निवेदन किया कि बृहत्सम्मेलन के पहले जितनी भी सम्प्रदायों का एकीकरण हो सके, कर लेना चाहिये। उसमें आपश्री के नेतृत्व की आवश्यकता है। तदनुसार पांच सम्प्रदायों का एकीकरण हुआ और आचार्यश्री को नेतृत्व सम्हालने की अर्ज की। उसके पश्चात् सादड़ी (मारवाड़) में बृहत्साधु-सम्मेलन का आयोजन हुआ और उसमें समग्र प्रतिनिधियों ने एक स्वर से आपके चरणों में संघ-संचालन का नेतृत्व सौंपकर आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया। इस पद को स्वीकार कराने के लिये सर्व प्रतिनिधि मुनिवरों की ओर से उपाध्याय कविश्री

अमरचन्दजी म. सा. ने जो भाषण दिया वह यथास्थान पाठकों को अवलोकन करने को मिलेगा।

इस प्रकार अखिल भारतवर्ष के लिये आपश्री का चयन हुआ। इसके पश्चात् जब आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा., ने निर्ग्रन्थ श्रमण-संस्कृति के सुरक्षार्थ शांति क्रांति का कदम उठाया तो मारवाड़ में विचरण करने वाले बहुश्रुत पं० र० श्री समर्थमलजी म. भी प्रसन्नता पूर्वक आचार्य श्री गणेशलालजी म. का नेतृत्व स्वीकार कर नेतृत्व में चलने को तत्पर हो गये। यह विवरण यथास्थान दिया गया है।

संयमनिष्ठा की दृष्टि से आचार्यश्री का जीवन अत्यधिक उज्ज्वलतम था। वीतरागवाणी को आचार्यश्री ने अपने जीवन में उतारने का प्रयत्न किया। शास्त्रों में उल्लेख आया है कि "विनय मूलो धम्मो" अर्थात् धर्म का विनय मूल बताया गया है। आप उस धर्म के साथ स्वर्गीय आचार्य श्री जवाहरलालजी म. के चरणों में लगभग २४ वर्ष तक रहे। उस समय किस तरह स्वर्गीय आचार्यदेव के चित्त की आराधना की वह तो अनुभवगम्य होने से उसका प्रत्यक्षदर्शी ही विशेष अनुमान कर सकते हैं। संकेत के रूप में एकाध घटना का यहां उल्लेख कर रहे हैं, जिससे समग्र जीवन की विनयशीलता का भली-भांति पता लग सकता है।

स्वर्गीय आचार्य श्री जवाहरलालजी म. कभी-कभी भरे व्याख्यान में साधारण-सी बात के लिये भी जोर से बोल देते तो उस समय भी आप शांत और विनयशीलता के साथ गुरुदेव की वाणी को स्वीकार करते, जबकि आजकल के संतों को बड़ी गलती भी एकांत में समझाई जाये तब भी सरलता से स्वीकृत नहीं होती। आपश्री स्वर्गीय आचार्य श्रीजी का ही विनय नहीं रखते थे बल्कि आप से दीक्षा में जितने भी बड़े संत थे, वे चाहे पढ़ाई की दृष्टि से और समझ की दृष्टि से कम ही होते, तो भी उनका पूरा आदर सत्कार करते। इसी विनयशीलता को आपने अपने सम्प्रदाय के सन्तों के साथ ही नहीं रखा बल्कि मारवाड़ सादड़ी में वृहत्साधु-सम्मेलन में उपस्थित विभिन्न सम्प्रदायों के बड़े सन्तों का आपने विनय किया। उसको देख करके एक बड़े विचारवान गंभीर चिंतक सन्त के मुंह से सहसा निकल पड़ा था कि सम्मेलन की सजीव आत्मा यह है। पृथक् सम्प्रदाय में रहते हुए जिनकी छाया में खड़े रहना नहीं चाहते थे उन्हीं का उसकी

भावी समुज्ज्वलता की स्थिति को सन्मुख रखकर विनय करते हुए सम्मेलन के नियमों को अंतःकरण से साकार रूप दे रहे हैं।

सेवाभावना भी उनके जीवन में कूट-कूटकर भरी हुई थी। वड़ों और बुजुर्गों की ही नहीं, जवान और छोटे सन्तों की भी प्रसंग आने पर बड़ी लगन से सेवा करते थे। विद्वत्ता, बड़प्पन का अभिमान छू तक नहीं पाया। साधारण अवस्था में तो सभी काम करते ही थे लेकिन युवाचार्य व आचार्य पद प्राप्त होने के बाद भी छोटे-से-छोटा काम करने को तत्पर रहते थे।

सरलता उनमें इतनी थी, जिसको देखकर कई सन्तों ने कहा कि आपश्री को इतने सरल नहीं होना चाहिये। कई एक आपकी सरलता का दुरुपयोग कर बैठते है। तब आचार्यश्री फरमाते थे कि मैं शुद्धभाव से सरलता पूर्वक जो कार्य करता हूं उसका भी यदि कोई दुरुपयोग करे तो उसमें मेरा कुछ नहीं बिगड़ता। आचार्यश्री का हृदय स्फटिकमणि के समान स्वच्छ था।

इतना सब होते हुए भी अनुशासन पालन करने करवाने में आपश्री मिश्री के समाम कठोर थे। जब कभी भी सन्तों की संयम वृत्ति में त्रुटि देखते, स्खलना मालूम होती तो उनको सावधानी दिलाते। सुधारने की चेष्टा करते एवं यथास्थान दण्ड व प्रायश्चित्त भी देते। उसमें इस बात का उनको जरा भी भय नहीं रहता था कि ऐसा करने पर सन्त नाराज हो जायेंगे या कम हो जायेंगे।

एक बार उदयरामसर (बीकानेर) में ऐसा ही प्रसंग आया कि सन्तमंडली के सामने आचार्यदेव ने फरमाया कि संयमी नियमों के पालन के साथ आप मेरे हृदय के हार हैं और उनके अभाव में अकेला रहना पसन्द करूंगा, लेकिन संयमी नियमों की स्खलना पसंद नहीं करूंगा।

तात्पर्य यह है कि आचार्य श्रीजी संयमी जीवन में तनिक भी ढ़िलाई देखना पसंद नहीं करते थे। आपश्री में अनेक ऐसे आध्यात्मिक गुण विद्यमान थे, जिनका वर्णन शक्य नहीं है। फिर भी पाठकों को अनुमान लगाने की दृष्टि से नमूने के रूप में कुछ कथन किया गया है।

समय से पूर्व की सोचने की क्षमता भी आपश्री में अदभुत-सी थी। उनकी अंतरात्मा में जो कुछ भी भाषित हो जाता, उसको वे दृढ़ता पूर्वक संयमी मर्यादा के साथ कहने में जरा भी नहीं हिच-

किया करते थे। तत्काल अच्छे-अच्छे समझदार व्यक्तियों को भी वह कथन अच्छा नहीं लगता था, लेकिन जब भविष्य में वह बात साकार रूप धारण करती तो वे ही समझदार लोग मुक्तकंठ से प्रशंसा करते और किसी-किसी के मुंह से तो ऐसा भी निकल पड़ता कि आचार्यश्री के पहले ही सूझ गया था।

बृहत्साधु-सम्मेलन में प्राय: जनता को यही महसूस हो रहा था कि साधु समाज का सुधार होकर के यह संगठन वृद्धि को प्राप्त होगा, लेकिन आचार्यश्री न मालूम उस समय भी भविष्य को किस रूप में देख रहे थे, यह तो विशिष्ट ज्ञानी ही बता सकते हैं। शर्तपूर्वक आचार्यश्री ने जो प्रतिज्ञापत्र पेश किया और उसके पश्चात् निर्ग्रन्थ श्रमणसंस्कृति का जो क्रान्तिकारी कदम उठाया एवं सादड़ी सम्मेलन में स्वीकृत उद्देश्य को अमली रूप देते हुए सुसंगठन का निर्माण किया, उस समय प्राय: कई व्यक्ति इस कार्य को अन्तःकरण से अच्छा नहीं मान रहे थे, लेकिन आचार्य श्रीजी म. के स्वर्गवास के पश्चात् अधिकांश वे ही व्यक्ति और यह कहा जाये कि वे प्राय: सभी व्यक्ति आचार्य श्रीजी म. के कार्य की अन्तःकरण से भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं और कईयों के मुंह से यह सहसा निकल पड़ता है कि आचार्य श्री गणेशलालजी म. ने बहुत ही अच्छा कार्य किया।

अनेक व्यक्तियों को आचार्यश्री के संपर्क से विविध प्रकार का अनुभव हुआ। वह अनुभव कभी उन लोगों के मुंह से सुनने का प्रसंग आता तो वे कहते हैं कि आचार्य श्रीजी म. को वचन-सिद्धि भी प्राप्त थी। उनके मुंह से अन्तःकरण पूर्वक स्वाभाविक जो भी शब्द निकल पड़ता, वह वैसा सिद्ध होते देखा गया है।

वीतराग श्रमण परंपरा की सुरक्षा के लिये आपश्री समय-समय पर चतुर्विध संघ को भलीभांति सचेत करते रहते थे।

जब आपवादिक स्थिति में आपके आने का प्रसंग आ रहा था, उस समय भी आचार्य श्रीजी म. ने चतुर्विध संघ को शिक्षा देते हुए जो बातें कही, वे मौलिक एवं मार्मिक थीं तथा निर्ग्रन्थ श्रमण-संस्कृति का निचोड़ मानो संक्षिप्त में परिणत हो गया हो। वे निम्न प्रकार है :—

रत्नत्रय की अभिवृद्धि के साथ आत्मोन्नति, शासनोन्नति में किंचिदपि असावधानी एवं प्रमाद न करें और निम्न अभिप्रायों पर

सदा ध्यान रखें :—

(१) शुद्ध सिद्धान्त व शुद्ध जीवन के आधार पर ही विश्वशांति संभावित है। इस आधार के बिना व्यक्ति, समाज, राष्ट्र एवं विश्व की शान्ति संभावित नहीं।

(२) गुण और कर्म के अनुसार वर्ग-विभाग शान्ति के वातावरण में सहायक सिद्ध हो सकता है।

(३) भगवान महावीर की निर्ग्रन्थ श्रमणसंस्कृति को उसके लक्ष्यानुरूप शुद्ध रखने के लिये सदा प्रयत्न करने की आवश्यकता है।

(४) वीतराग प्ररूपित सिद्धान्तों का जहां हनन हो, परिवर्तन किया जाता हो, समय के नाम से पंच महाव्रतधारी मुनि-जीवन के लक्ष्य के प्रतिकूल प्रवृत्ति की जाती हो, वहां किंचिदपि सहयोग न दिया जाये।

(५) शुद्ध चारित्रनिष्ठ मुनियों के प्रति शुद्ध श्रद्धा, भक्ति रहे। शिथिलाचार मुनिजीवन तो दूर, मानवजीवन के लिये भी कलंकस्वरूप है। अत: किसी भी प्रकार से शिथिलाचार को न छिपाना, न बचाव करना, न प्रश्रय देना और न पोषण ही करना।

(६) शुद्ध आत्मीय-समता के चरम विकास का लक्ष्यबिन्दु अन्तःकरण में सदा बना रहे एवं तदनुरूप सम्यक् ज्ञान और शुद्ध श्रद्धा के साथ समता-साधन को यथाशक्ति जीवन में उतारना यानी कार्यान्वित करना।

(७) श्रमणवर्ग अपने लक्ष्यानुरूप स्वयं की भूमिका पर सरलता पूर्वक महाव्रतों का भलीभांति पालन करे और श्रावक के लिये श्रावकोचित मार्ग का निर्भयता से प्रतिपादन करता रहे।

(८) श्रावकवर्ग भी अपने ज्ञान-दर्शन-चारित्र की आराधना में उत्तरोत्तर वृद्धि करता हुआ बाह्याडम्बरों से अपने आपको दूर रखने में तथा प्रत्येक कार्य सादगी से सम्पन्न करने में अपना व समाज का हित समझे। साथ ही अपनी भूमिका व श्रमणवर्ग की भूमिका का पूरा-पूरा ज्ञान रखे। जिससे वह श्रावक और श्रमण का अन्तर अच्छी तरह समझ सके और श्रमण को अपने श्रमणोचित कर्तव्य पालने में तथा स्वयं को अपने श्रावकोचित कर्तव्य पालन करने में भलीभांति सफल हो सके।

(९) निर्ग्रन्थ श्रमणसंस्कृति की महत्ता संख्या की विपुलता में नहीं

किन्तु चारित्र की उत्कृष्ट दिव्यता और त्याग की महानता में है। उच्च चारित्रनिष्ठ, त्यागी निर्ग्रन्थ श्रमण चाहे अल्पमात्रा में भी क्यों न हों, उन्हीं से निर्ग्रन्थ श्रमणसंस्कृति का संरक्षण हो सकता है। अतः स्वगृहीत प्रतिज्ञा को भली-भांति सुरक्षित रखता हुआ निर्ग्रन्थ श्रमणवर्ग स्वकल्याण के साथ-साथ वीतराग प्रभु की वाणी का प्रसार जनकल्याणार्थ भी करता रहे।

(१८.) जहां सच्चे श्रमण नहीं पहुंच सकते हैं और श्रावकवर्ग की स्थिति भी वैसी न हो तो वहां पर वीतराग प्रभु के प्रवचन की प्रभावना के लिये एक मध्यम श्रेणी के साधकवर्ग की आवश्यकता है। ताकि वह (साधकवर्ग) इन्द्रियजनित विषयों की आसक्ति से ऊपर उठकर पूर्णरूपेण ब्रह्मचर्य के साथ अहिंसादि मर्यादाओं का पालन करता हुआ वीतराग प्रभु की शासन सेवा में अपनी शक्ति का सदुपयोग कर सके।

उपर्युक्त बातें कोई भी सदस्य सही माने में अपना ले तो उसका जीवन व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र एवं विश्व में क्रमशः व्यापक बनता हुआ जीवन की चरम सीमा तक पहुंच जाता है। आचार्य श्रीजी म. की यह भावात्मक वाणी अक्षय रूप में संसार में विद्यमान रहेगी।

आचार्य श्रीजी म. ने चतुर्विध संघ को जो निर्देश दिया है, उसका आचार्य श्रीजी म. शक्ति भर स्वयं के जीवन में उतारने का प्रयत्न करते थे। इस निरन्तर अभ्यास का ही एक प्रकार से परिणाम कह सकते हैं जो कि आचार्यश्री को समाधिमरण के रूप में प्राप्त हुआ।

आचार्यश्री के संयम ग्रहण करने के पश्चात् आचार्य पद के पूर्व अनेक तरह के परिषह अनुकूल प्रतिकूल रूप में उपस्थित हुए। प्रतिकूल परीषह तो आचार्यश्री सहर्ष उत्साही युद्धवीर की तरह सहन करते हुए आगे बढ़े और परिषहदाताओं को अपने सहायक रूप में मानते रहे एवं फरमाते रहे हैं कि ऐसे व्यक्ति मुझे जागृति करने वाले होते हैं। यही कारण है कि उनके अन्तःकरण की ध्वनि प्रायः व्याख्यान में व ऐसे प्रसंगों के समय संस्कृत श्लोक के रूप में सहसा परिस्फुट होती रहती थी—

जीवन्तु में शत्रुगणाः सदैव, येषां प्रसादात्सुधिचक्षणोऽहम्।
ये ये मां प्रति बाधयान्ति, ते ते माम् प्रतिबोधयान्ति॥

मेरे शत्रुगण सदा जीवित रहें, जिनकी कृपा से मैं सुविचक्ष (सावधान) रहूं। जो जो व्यक्ति मेरे जीवन में बाधक बनते हैं, मानो वे मुझे बोध देते हैं यानी जागृत करते हैं।

प्रतिकूल परिषहों में खुश रहने में व समभाव से सहन करने में इतना जोर नहीं लगता जितना कि अनुकूल परिषहों के उपस्थित होने पर समभावी रहना कठिन होता है। एतद्विषयक बहुत से अवसर आये और सत्कार-सन्मान की परिस्थितियां भी बहुत-सी आई, फिर भी आचार्य श्रीजी म. उनमें आसक्त नहीं हुये।

उत्कृष्ट सत्कार-सन्मान के लिए कई व्यक्ति लालायित रहते हैं और उसकी प्राप्ति के लिए सत्य और संस्कृति को भी गौण करके उसको पाने की भरसक चेष्टा करते हैं, फिर भी पूरे नहीं मिल पाते। किन्तु आचार्यश्री ने सहज सुलभ बिना प्रयास के मिलने वाले उत्कृष्ट सत्कार-सन्मान को भी पीठ पीछे रखकर सत्य और संस्कृति को सन्मुख रखा।

वृद्धावस्था और प्रबल वेदनीयकर्मजनित भयंकर असाता का संघर्ष एवं संस्कृतिघातक व्यक्तियों के सामूहिक संघर्ष के बीच में समभाव के अमोघ शस्त्र से सन्नद्ध होकर आचार्यश्री ने निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति की रक्षा के साथ आत्मीय दृष्टि को सन्मुख रखकर—

सत्वेषु मैत्रीं, गुणिषु प्रमोदं क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वं।
माध्यस्थभावं विपरीत वृत्तौ, सदा ममात्मा विदधातु देव ॥

आदि भावों को रखते हुए इन सभी संघर्षों के बीच में अपने स्वीकृत उद्देश्य की ओर बढ़ते हुए क्रान्तिकारी समाज की सुव्यवस्था करके, फिर उन व्यवस्थाओं से भी ऊपर उठ करके स्वयं के शरीर का और तत्सम्बन्धी स्थितियों का भानपूर्वक त्याग करके शास्त्रीय विधिवत् २९ घंटे पहले ही स्वतः जागरूक अवस्था के अन्दर संथारा ग्रहण किया और उसी समाधिभाव के साथ अन्तिम अवस्था तक होशहवास के साथ अपने इस भौतिक पिंड को छोड़कर स्वर्गारोहण किया। यह अन्तिम जीवन का श्रेय-साधन उनके समग्र जीवन की स्थिति को अभिव्यक्त करता है।

आज दिन तक के इतिहास के पृष्ठों से जाना जा सकता है कि इस पंचमकाल में इस प्रकार की उत्कृष्ट साधना करने वाले और आचार्य पद पर रहते हुए २९ घंटे का संथारा करने वाले विरले ही

महापुरुष होते हैं।

ऐसे महापुरुष की कुछ जीवनी जो कि प्राप्त हो सकी है, इस जीवन चरित्र में यथास्थान पढ़ने को मिलेगी। उसमें से सब तरह की जीवन कलायें, आध्यात्मिक प्रेरणायें, सहिष्णुता आदि तथा प्राणिमात्र के कल्याणप्रद तत्त्व की सामग्री चिन्तन-मनन करने वाले विचारक वर्ग को मिल पायेगी और उस आध्यात्मिक जीवन के उज्ज्वलतर सीमा की ओर बढ़ते हुए समग्र प्राणी कल्याणप्रद स्थिति को प्राप्त करें, यही शुभकामना।

ॐ शान्ति ! शान्ति !! शान्ति !!!

श्रद्धावनत

सुन्दरलाल तातेड़

पूज्य गणेशाचार्य के चातुर्मास

संवत्	स्थान
१९६३	गंगापुर
१९६४	रतलाम
१९६५	थांदला
१९६६	जावरा
१९६७	इन्दौर
१९६८	अहमदनगर
१९६९	जुन्नर
१९७०	घोड़नदी
१९७१	जामगांव
१९७२	अहमदनगर
१९७३	घोड़नदी
१९७४	मीरी
१९७५	हिवड़ा
१९७६	चिंचवड़
१९७७	सतारा
१९७८	रतलाम
१९७९	सतारा
१९८०	घाटकोपर
१९८१	जलगांव
१९८२	जलगांव
१९८३	जलगांव
१९८४	भीनासर
१९८५	चूरू
१९८६	चूरू
१९८७	ब्यावर

संवत्	स्थान
१९८८	फलौदी
१९८९	जोधपुर
१९९०	उदयपुर
१९९१	रतलाम
१९९२	देवास
१९९३	उदयपुर
१९९४	बीकानेर
१९९५	जयपुर
१९९६	उदयपुर
१९९७	फलौदी
१९९८	सरदारशहर
१९९९	भीनासर—बीकानेर
२०००	देशनोक
२००१	सरदारशहर
२००२	ब्यावर
२००३	बगड़ी
२००४	बड़ीसादड़ी
२००५	रतलाम
२००६	जयपुर
२००७	दिल्ली
२००८	अलवर
२००९	उदयपुर
२०१०	जोधपुर
२०११	कुचेरा
२०१२	बीकानेर
२०१३	गोगोलाव
२०१४	कानोड़
२०१५	जावरा
२०१६	उदयपुर
२०१७	उदयपुर
२०१८	उदयपुर
२०१९	उदयपुर

पूज्य गणेशाचार्य के जीवन की महत्वपूर्ण तिथियाँ

जन्मस्थान	उदयपुर
जन्म	सं. १९४७, मिती श्रावण कृष्णा ३
पितृनाम	श्री साहबलाल जी
मातृनाम	श्रीमती इन्द्राबाई
जाति एवं गोत्र	ओसवाल, मारू
दीक्षातिथि	सं. १९६२, मार्गशीर्ष कृष्णा १
दीक्षास्थान	उदयपुर
दीक्षागुरु	आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा.
नेश्रायगुरु	तपस्वी मुनि श्री मोतीलाल जी म. सा.
युवाचार्यपद–प्राप्ति	सं. १९९०, फाल्गुन शुक्ला ३
युवाचार्यपद-प्राप्ति स्थान	जावद
आचार्यपदारोहण	सं. २०००, आषाढ़ शुक्ला ८
" " स्थान	भीनासर
देहावसान	सं. २०१९, माघ कृष्णा २
स्थान	उदयपुर



अनुक्रम



प्रारम्भिक-जीवन

उत्थानिका

हमारे चरितनायक जनवंद्य श्रमण-संस्कृति के संरक्षक परमश्रद्धेय पूज्य आचार्य श्री गणेशलाल जी म० सा० के नाम से प्रख्यात महापुरुष हैं। इन महापुरुष के जीवन को हम कितना अंकित कर सकेंगे—कह नहीं सकते। हम जो लिखेंगे, उससे जनता को संतोष नहीं होगा और हो भी कैसे, जब हमारे कहने की अपेक्षा उनका महिमायुक्त जीवन और जीवन की घटनाओं के संस्मरण उसकी अपनी मन-मंजूषा में सुरक्षित हैं। महापुरुषों का जीवन महानता का महासागर है और उसका विशद विवरण लेखनी से लिखे जाने का विषय नहीं होता है। लिखते-लिखते जब अनेक जीवन एक जीवन का संपूर्ण अंकन नहीं कर सकते तो एक व्यक्ति समग्र जीवन के वर्णन करने का दावा भी कैसे कर सकता है ? फिर भी सैद्धान्तिक दृष्टि से यह सत्य है कि अंकित अंश समाज के वास्तविक मूल्यों का संरक्षक एवं आत्मिक-चेतना को शिक्षित करने में सहायक होता है।

महिमामयी मेवाड़

राजस्थान का अपना इतिहास है। नाम लेते ही आज भी देश-भक्ति की गौरव-गाथा से प्रत्येक भारतीय का भाल उन्नत हो जाता है, बाँहें फड़क उठती हैं। मातृभूमि के लिये हँसते-हँसते प्राणों को होम देना यहाँ के जन-साधारण के लिये खेल ही था तो राजपूतों ने अपनी आन के लिये प्राण दे दिये परन्तु पीठ नहीं दिखाई। रनवासों की सुन्द-रियों ने सतीत्व के सामने संसार के अमूल्य आभूषणों और प्रलोभनों को मिट्टी के समान समझा, किन्तु कुल को कलंकित नहीं किया।

उसमें भी अरावली की उपत्यका में विस्तृत महाराणा का मेवाड़ तो प्रत्येक राष्ट्रप्रेमी को अपनी आन, बान और शान के लिये कुरबान हो

जाने वाले सपूतों को श्रद्धांजलि समर्पित करने के लिये लालायित कर देता है। यह वही मेवाड़ है जिसके वीरशिरोमणि महाराणा लक्ष्मणसिंह ने देश की स्वाधीनता के लिये अपने ग्यारह पुत्रों का बलिदान दिया और वीर माता ने प्रसन्नमुख से उन पुत्रों की आरती उतारी थी। यह वही मेवाड़ है जिसमें रूप-लावण्य की खान महारानी पद्मनी ने अपने पति-प्रेम के सामने बादशाही सुख-ऐश्वर्य पर थूक दिया और कुल-गौरव के लिये चिता पर चढ़ गई थी। यह वही मेवाड़ है जहाँ दुर्भिक्ष-पीड़ित प्यारी प्रजा के समान ही महाराणा संग्रामसिंह ने भी पेड़ों की छाल खाकर दिन काटे थे। यह वही मेवाड़ है जिसकी रक्षा के लिये वीरवर जयमल और फत्ता ने प्राणों का कुछ भी मोह नहीं किया था। यही वही मेवाड़ है जिसके भामाशाह जैसे नगरसेठों ने अपने अटूट धन की कुछ भी परवाह न कर अपने स्वामी और जाति के लिये प्राण तक दे दिये थे। यह वही मेवाड़ है जिसका शासक देश की स्वाधीनता और वंश-गौरव के लिये वर्षों पहाड़ी स्थानों और दुर्गम जंगलों में रहा और सपरिवार घास खाकर दिन निकाले किन्तु प्रण से च्युत नहीं हुआ था।

मेवाड़ का चप्पा-चप्पा 'प्राण जाहि पर वचन न जाहि' के प्रण से मुखरित है। मेवाड़ में जन्मा विपन्नावस्था में भी पराजय स्वीकार नहीं करता है। वह किसी के समक्ष अपेक्षा और आकांक्षा के लिये हाथ पसार कर दीनता नहीं दिखाता है। श्रम के कण ही मेवाड़ के मोती हैं।

मेवाड़ की भूमि जहाँ स्वाधीनता के संरक्षक सेनानियों की जन्मदात्री रही है, वहीं इसने आध्यात्मिक जीवन की पवित्रता और सर्वोच्चता, प्राणिमात्र के प्रति प्रेम और अनुकंपा भावना के प्रसारक संत महापुरुषों की जन्मभूमि होने का भी सौभाग्य प्राप्त किया है।

यही मेवाड़ हमारे चरितनायक के आदि, मध्य और अंत का रंगमंच है। एक दिन इसकी मिट्टी में आंखें खोलीं—जीवन का प्रारम्भ हुआ। इसी की मिट्टी में लोट-पोट कर बड़े हुए, इसी की मिट्टी में

कर्तव्य-पथ पर अग्रसर हुए और किसी एक दिन इसी मिट्टी में देखना वन्द कर दिया—जीवन का अंत हुआ।

वंश-परिचय और जन्म

महाराणा उदयसिंह के समय से ही उदयपुर मेवाड़ की राजकीय गतिविधियों का केन्द्र बन चुका था। अपनी प्रतिभा, कुशलता और स्वामीभक्ति के फलस्वरूप अनेक ओसवाल जातीय जैन बंधुओं को राज्याश्रय प्राप्त था और राज्य-संचालन में उच्च पदों पर प्रतिष्ठित थे।

इन्हीं राज्याधिकारियों में देवस्थान विभाग के खजांची श्री साहबलाल जी मारू नाम के सद्गृहस्थ भी एक थे। आप स्वभावतः धार्मिकवृत्ति के थे और अधिकारी भी ऐसे विभाग के थे, जिसका कार्य प्रजा की धर्म-प्रवृत्तियों की देखभाल करने से सम्बन्धित था।

आपके दैनंदिनी जीवन के सामायिक, स्वाध्याय, प्रतिक्रमण, उपवास, पौषध आदि व्रताचार का पालन, साधु-संतों के प्रवचन-श्रवण, उनकी सेवा वैयावच्च करना आवश्यक अंग थे। आपका व्यक्तित्व सर्वत्र मान पाता था। हृदय की सरलता इतनी थी कि सभी को हित-मित और सत्य बात कहते एवं दूसरों की भलाई के लिये सदैव तत्पर रहते थे।

आपका न्याय-नीतिपूर्वक अर्थोपार्जन में विश्वास था। पितृ-परंपरागत व्यवसाय लेन-देन, साहूकारी था और उसका माध्यम वस्तु का विनिमय वस्तु से एवं रुपयों का लेन-देन गिनती करके लेना-देना नहीं होकर नाप-तौल माना जाता था।

राजकीय संमान तो आपको प्राप्त था ही और उसके साथ न्यायनीतिपूर्ण व्यवहार एवं प्रामाणिकता के कारण जन-साधारण में भी आपको अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त थी। गृहस्थ जीवन के लिये तीन चीजों की अनिवार्य रूपेण आवश्यकता होती है—आजीविका, सुयोग्य परिवार एवं सामाजिक प्रतिष्ठा, और यह तीनों चीजें श्री साहबलाल जी को सहजरूपेण ही प्राप्त थीं।

आपकी धर्मपत्नी का नाम इन्द्राबाई था। आप कुलीन और

सुसंस्कारी महिलारत्न थीं । दीन-दुखींजनों की सेवा-सहायता करने में उदार थीं । कोई भी याचक द्वार से निराश होकर नहीं लौटता था । स्नेह की अमीधारा से सभी को आप्लावित करना आपके जीवन की अनेक विशेषताओं में से एक थी और पति-पत्नी प्रत्येक धर्म-कार्य में एक दूसरे के पूरक बन सात्विक जीवन व्यतीत करते थे । वात्सल्य की वीणा पर सदैव त्याग और सेवा का नाद गूंजा करता था ।

यही सौभाग्यशाली दम्पति हमारे चरित्रनायक के जनक-जननी थे ।

श्रावण कृष्णा ३ सं० १९४७, शनिवार को श्रीमती इन्द्रावाई की कुक्षि से एक तेजस्वी पुत्र का जन्म हुआ ।

जैसे मनभावन सावन प्राकृतिक समृद्धि का प्रतीक है, हरे-भरे खेतों और रिमझिम वरसते कजरारे मेघों की छटा को निहार कर मानवीय मन छन्दों में छलक पड़ता है और यह छन्दों का सरगम नये-नये तीज, त्यौहारों का सर्जन कर अणु-अणु में मोदमयी ममता विखेर देता है, वैसे ही इस पुत्र के जन्म से पितृहृदय का हुलास उमड़ पड़ा । माता वात्सल्य में भीग गईं और सलौने शिशु को ममता से आच्छादित कर पुलक उठीं । पारिवारिकजन हर्ष और उल्लास से परिव्याप्त हो गये ।

सामान्यतया पुत्र की प्राप्ति माता-पिता के लिये हर्ष की बात होती है और फिर ऐसे पुत्ररत्न को पाकर कौन निहाल न हो जाता जो आगे चलकर अपनी ज्ञान और संयम-साधना के द्वारा अगणित नर-नारियों के अज्ञानान्धकार को दूर करने में समर्थ हुआ ।

नामकरण

वालक का नाम सुन्दर और प्रिय हो, यह प्रत्येक माता-पिता की साहजिक आकांक्षा होती है । इसीलिये नाम एवं गुणों का सामजस्य करने के लिये राशि और नक्षत्रों की गणना कराते हैं । फिर भी नाम के अनुसार गुण और गुण के अनुसार नाम का ताल-मेल क्वचित्-कदाचित ही दृष्टिगोचर होता है ।

परन्तु कौन जाने कि यह अकस्मात था या विद्वान ज्योतिषी की

दीर्घदृष्टि का परिणाम, जिससे नवजात शिशु का नामांकन 'गणेशलाल' किया गया। उस समय शायद ही किसी ने कल्पना की हो कि जिस बालक का नामकरण गणेशलाल किया जा रहा है वह भविष्य में नाम-निक्षेप से ही नहीं प्रत्युत साधुओं के गण का ईश बनकर भावनिक्षेप से भी 'गणेश' नाम सार्थक करेगा। कौन जानता था कि अज्ञानता की घोर निशा में एक ज्योति प्रदीप्त करके प्रकाशपुंज सिद्ध होगा। संयम-साधना से चतुर्विध संघ—साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका—का सिरमौर बनेगा और पथ-भूलों को सदैव ध्रुवतारे की तरह मार्ग-दर्शन कराता रहेगा।

शैशवकाल

'होनहार विरवान के होत चीकने पात' उक्ति के अनुसार शिशु गणेश ममतामयी माँ की गोद और दुलार के हिंडोले में झूलते हुए बड़ा होने लगा। पितृ-स्नेह पुत्र पर केन्द्रित होने लगा। मस्तिष्क में पुत्र को सुखी, शिक्षित करने के चित्र उभरने लगे।

माता इन्द्रा इस ममता के मेरु को जब हँसते-खेलते, भागते-गिरते, रोते और मीठी नींद में सोते देखतीं तो उल्लास से भर जाती थीं। कलोल और किलकारियों से तिमंजिली हवेली का कोना-कोना गूंज उठता था और जब इस अनूठे दुलारे को देख-देखकर भी मन नहीं भरता तो गोदी में ले मीठी-मीठी लोरियां सुनाने में अपने आप को तल्लीन कर लेती थीं।

पुण्यमयी माता की गोद और पितृत्व के स्नेह से पगे हुए हमारे चरितनायक का शरीर के साथ-साथ मानसिक विकास होने लगा। वाणी की मृदुता और स्वभावजन्य चपलता स्वतः ही जनमानस को आकर्षित कर लेती थी। चार वर्ष के होते-होते तो पाठशाला में विद्याध्ययन का श्रीगणेश करा दिया गया था। शैशव की पगडंडियों को पार करने के साथ-साथ बौद्धिक विकास प्रथम स्थान प्राप्त करने के लिये उत्तरोत्तर विकास-मान होने लगा।

अर्थोपार्जन के पितृ-परंपरागत व्यवसाय में निपुणता-प्राप्ति हेतु

तत्कालीन प्राप्त शैक्षणिक सुविधाओं के अनुसार हिन्दी, उर्दू, फारसी भाषा और महाजनी का अध्ययन करने लगे और १२-१३ वर्ष के होते-होते तो स्वतंत्र रूप में शासन से संबंधित पत्रादि लिखना और पिताश्री के कार्यों में हाथ बटाने के लिये कचहरी का कामकाज सीखना भी प्रारंभ कर दिया था।

विनीत पुत्र के विकास को देख श्री साहबलाल जी को जितना संतोष था, उससे बढ़कर आत्म-गौरव से विभोर हो उठते थे। सुयोग्य पुत्र को पाकर वे तृप्त थे।

महापुरुषों के जीवन में सुसंस्कारों की प्रबलता साहजिक होती है, जो समय के साथ पल्लवित होकर विशाल रूप धारण कर लेते हैं एवं अन्यान्य अवसरों को भी अपने निर्दिष्ट पथ में सहायक बना लेते हैं। यही कारण है कि हमारे चरितनायक जिस ओर झुके, सफलता उनकी चेरी बनती गई और यही उनकी सम्पूर्ण सफलता का मूलमंत्र है।

धार्मिक-संस्कारों का अर्जन

चरितनायक के पिताश्री श्री साहबलाल जी धार्मिक आचार-विचार के व्यक्ति थे। वे जानते थे कि धर्म का निवास मनुष्य की आत्मा में है, धर्म मानव-स्वभाव का अंग है। धर्म का अस्तित्व सृष्टि के अस्तित्व की तरह सनातन है और अपनी वास्तविकता से मानवीय आत्मा को प्रभावित करता रहता है। उस वास्तविकता का परीक्षणात्मक ताल-मेल एवं निष्पक्षता की भावना का विकास तदनुकूल आचार-विचार के माध्यम से होता है।

इन्हीं विचारों को अपने पुत्र में देखने के लिए वे उत्सुक थे और हमारे चरितनायक भी शिशु-अवस्था से पिताश्री के साथ-साथ धर्म-स्थानों में जा पहुँचते और कभी-कभी सामायिक, दया आदि धार्मिक क्रियायें भी करते थे। कुछ धार्मिक भजन भी सीख लिये थे। कंठ सुरीला था और जब आप भजन बोलना प्रारम्भ करते तो श्रोताओं के मन मुग्ध हो जाते थे।

श्री साहबलाल जी यह सब देखते, सुनते और एक प्रकार का आत्म-गौरव अनुभव करते थे और ऐसा होना स्वाभाविक ही था। क्योंकि प्रत्येक माता-पिता स्वयं अपने जीवन-व्यवहार में धार्मिक आचार-विचारों का आचरण कर अपनी सन्तान को भी शैशवावस्था से ही धार्मिक-संस्कारों से सुसंस्कृत करने के लिये प्रयत्नशील रहते हैं, जिससे वे भी सत्य को हृदयंगम करने की योग्यता अर्जित करने में समर्थ हों।

आपकी यह धर्मश्रद्धा तात्कालिक भावावेश का परिणाम नहीं थी, किन्तु वह निश्चय ही पूर्व-जन्म के संस्कारों का सुफल मानी जायेगी। इसका ज्वलन्त प्रमाण यही है कि वह धर्मश्रद्धा दूज के चंद्र की तरह निरंतर वृद्धिगत होती गई और उसके फलस्वरूप एक महान संत का गौरव प्राप्त हुआ, संघशिरोमणि की प्रतिष्ठा पाई और आत्म-शुद्धि के अधिकारी बने।

कुमारावस्था

शिशु गणेश क्रम-क्रम से एक के बाद दूसरी विकास की परिधि पार करते हुए बढ़ रहे थे। उदीयमान योग्यता, प्रतिभा और पारिवारिक कुलीनता को देखकर कई कन्याओं के पिताओं का अपनी-अपनी कन्या से सगाई-सम्बन्ध करने के लिये श्री साहबलाल जी से आग्रह रहा। परिणामतः चार वर्ष के बालक गणेशलाल की मेहता परिवार की समवयस्का कन्या के साथ सगाई हो गई।

नये-नये अनुभव, लौकिक कार्यों में चातुर्य और अर्जन के क्षेत्र में सफलता के साथ बढ़ते हुए आप चौदह वर्ष की कुमारावस्था में प्रविष्ट हुए। भारतीय आश्रम-व्यवस्था के अनुसार यह अवस्था विद्यार्थी जीवन की थी, जब भविष्य के उत्तरदायित्वों को समझने और निर्वाह करने के लिये नवीन-नवीन ज्ञान प्राप्त किया जाता है। किन्तु तत्कालीन समाज-व्यवस्था के अनुसार स्वास्थ्य व शारीरिक विकास की दृष्टि से विवाह का उचित अवसर न होने पर भी चौदह वर्ष की अविकसित अवस्था में ही धूमधाम से विवाह करके आपको गार्हस्थिक-दायित्व भी सौंप

दिये गये।

लेकिन आपके व्यक्तित्व में कुछ ऐसा अनूठापन था कि चौदह वर्ष की अवस्था में ही सामान्यतया विद्याभ्यास, अर्थोपार्जन तथा गृहस्थ-जीवन का दायित्व सफलता के साथ निबाहना प्रारम्भ कर दिया और क्रमशः विकास के सोपानों पर अग्रसर होते जाना मानो अपने दायित्वों को सफलता के साथ सम्पन्न करके नियति द्वारा निर्दिष्ट पथ पर आरूढ़ होने की तैयारी चल रही हो।

किन्तु उस समय अदृष्ट की प्रेरणा को कौन समझ सकता था। आपके जीवन में एक ऐसी उल्लेखनीय विशेषता दृष्टिगोचर होती है कि आपका जीवन परिस्थितियों की प्रेरणा से स्वयमेव ढलता गया। आकस्मिक संयोग, साहचर्य और वातावरण आपको निरन्तर उन्नति की ओर अग्रसर करने में सहायक होते गये और इन्हीं के बीच आपके लोकोत्तर विकास का रहस्य गर्भित है। आपके जीवन में प्रगति एवं नवनिर्माण का जो विहान प्रस्फुटित हुआ, उसका निष्कर्ष निकालना मानवीय बुद्धि से परे की बात है, किन्तु उसमें साहजिक व्यवस्था परिलक्षित होती है।

क्या तुम भी दीक्षा लोगे ?

पूज्य आचार्य श्री श्रीलाल जी म० सा० का उदयपुर में चातुर्मास था। पूज्यश्री श्रमण-संस्कृति के जाज्वल्यमान नक्षत्र थे। आप में तप के तेज एवं संयम के ओज का अनूठा सामंजस्य था।

जहाँ भी ऐसे पूज्य पुरुषों का पदार्पण होता है, वहाँ वे जनसाधारण को ज्ञान और चारित्र की शक्ति प्रदान कर और सद्धर्म के मर्म को शास्त्र-नीति एवं विज्ञान-नीति द्वारा युक्ति-प्रयुक्तिपूर्वक समझाकर मानव-समष्टि को धर्मनिष्ठ बनाते हैं।

पूज्यश्री के प्रवचन-प्रसाद की प्राप्ति हेतु प्रतिदिन श्री साहबलाल जी प्रवचन के समय उपस्थित होते और उपदेश-श्रवण से जीवन की महान उपलब्धि के प्रति सतत जागरूक रहने के आदर्शों से समृद्ध होकर घर लौटते थे और जो सुनते, उसे हृदयंगम करने के लिये चिन्तन-मनन की

कसौटी पर कसते थे।

चरितनायक भी कभी मातुश्री के साथ तो कभी पिताश्री के साथ पूज्यश्री के प्रवचन-श्रवण के लिये जाते थे। उस समय करीब आठ-नौ वर्ष की वय हो चुकी थी और वयोपार्जित अनुभवों से जो कुछ भी समझ सकते थे, समझ लेते और जो नहीं समझ पाते, उसको समझने के लिए जिज्ञासु हो पिताश्री से समाधान प्राप्त करते थे।

प्रवचनों के श्रवण एवं चिन्तन-मनन से श्री साहबलाल जी की भावनाओं में मंथन का सूत्रपात हुआ। जो सोचते, उससे अन्तर् की छानबीन की उत्सुकता तीव्र से तीव्रतर होने लगी। इन्हीं विचारों में डूबे हुए आप एक दिन पूज्यश्री के दर्शनार्थ पहुँचे और तात्त्विक-चर्चा का रसास्वादन करते-करते वैराग्य के भावोद्रेक से तन्मय होकर बोले—भगवन् ! मैं संसार से मुक्ति चाहता हूँ। चारों ओर उलझनें और समस्यायें बिखरी पड़ी हैं। यद्यपि मैं पारिवारिक और कौटुम्बिक दायित्वों से भयभीत होकर भागना नहीं चाहता, तथापि अन्तर् में एक नाद उठ रहा है—जीवन पानी के बुलबुले के समान है। काल का एक हलका-सा झोका उसे कभी भी समाप्त कर सकता है। फिर भी मनुष्य न जाने किन-किन आशाओं से प्रेरित होकर कल्पनाओं के किले बनाता है। अब यह परिवार, प्रतिष्ठा और उत्तरदायित्व भव-विमुक्ति में सहायक प्रतीत नहीं होते हैं। ये तन, धन, स्वजन, भवन सभी यहाँ रह जाते हैं और आत्मा—हंस निकल जाता है। न जाने आत्मा शरीर की कितनी-कितनी व्यथायें भोग रहा है, फिर भी उसी को सजाने-संवारने में संलग्न है। इस मूर्खता का अन्त होना ही चाहिये।

इन्हीं विचारों के अन्तराल श्री साहबलाल जी ने यह भी संकेत दिया कि वैराग्य के राजमार्ग पर मैं अकेला ही नहीं, साथ में पत्नी, पुत्र, पुत्री भी पथिक बनें तो मुझे प्रसन्नता होगी। लेकिन पुत्र, पुत्री अवयस्क हैं, अतः उनके वयस्क होने तक मेरी भावना में विलंब होना स्वाभाविक है।

आचार्यप्रवर ने इन विचारों की गहराई में झांका। अनुभूतियों के उच्छ्वास में विवेक-समन्वित जीवन का विलास देखा और मानवीय जीवन की विशेषताओं का विशद विवेचन करते हुए समझाया कि कर्म-रहित अवस्था प्राप्त करना अपने ही हाथ की बात है। संयम-साधना आनन्ददायक है। यदि विवेकपूर्वक संयम का पालन किया जाये तो संयम इहलोक में सुखदायक है और परलोक में भी। साध्वाचार—पांच महाव्रत, तीन गुप्ति, पांच समिति, द्वादश तप—के स्वरूप का दिग्दर्शन कराते हुए फरमाया कि साध्वाचार का पालन करना तलवार की धार पर चलना है। पग-पग पर विषमताओं, कठोरताओं एवं परिषहों का अनुभव करना पड़ता है। अतः सुदृढ़ संकल्प और सहिष्णुता के बिना इसका यथावत आचरण होना शक्य नहीं है।

तात्त्विक-चर्चा एवं ऐसे ही अन्य प्रसंगों पर कुमार गणेशलाल भी पिताश्री के साथ उपस्थित रहते और जो सुनते उसे हृदय में उतारने का प्रयत्न करते थे। आपने पिताश्री के विचारों को ध्यान से सुना और विचारों के बीच एक नई धारा का प्रादुर्भाव हुआ।

आचार्यश्री ने बालक की ओर देखा और चेहरे पर अंकित भावों को पढ़ते हुए पूछ लिया-- क्या तुम भी दीक्षा लोगे ?

बालक ने सुना और अपनी सहमति जताते हुए कहा कि क्यों नहीं, मैं भी दीक्षा लूंगा। जब महावीर संयम मार्ग की विषमताओं और परिषहों से भयभीत नहीं हुए तो हम महावीर की सन्तानें दुखों और संकटों से कैसे भयभीत हो सकती हैं। यदि वीर बनना है और महावीर के अनुयायी कहलाने में गौरव मानना है तो हमें महावीर के मार्ग का अनुगमन करना चाहिये।

आचार्यदेव बालक के इन आत्मविश्वास से परिपूर्ण शब्दों को सुना और मानसपटल पर बालक के भावी महत्त्व का एक चित्र अंकित हो गया। दो-चार शब्दों में भावी जीवन की झांकी झलक उठी।

आचार्य भगवान बालक की ओजस्वी वाणी, साहस, तर्क एवं

स्फूर्ति से इतने प्रभावित हुए कि उन्हें स्वयं अपने अनुमान ज्ञान द्वारा बालक के भविष्य के बारे में सोचना पड़ा। कुछ तथ्य और मान्यतायें ऐसी हैं जिनकी विशद व्याख्या तो नहीं की जा सकती है, परन्तु अनुमान ही लगाया जा सकता है।

इस प्रकार मनोमंथन और तर्क-वितर्क से कुछ निश्चय-सा करते हुए आचार्यदेव श्री साहबलाल जी की ओर अभिमुख होकर बोले—साहबलाल जी! आपका यह बालक किसी दिन समाज का नेतृत्व संभालेगा। मेरा मन इसका और समाज का उज्ज्वल भविष्य देख रहा है। बालक होनहार है। इसके शरीर लक्षण, हाव-भाव, बोलचाल और बौद्धिक प्रतिभा आदि व्यक्तित्व की विशेषता को व्यक्त करते हैं।

श्री साहबलाल जी ने यह सब सुना और सुपुत्र के लिये ऐसी भविष्यवाणी सुनकर अत्यन्त आनन्दित हुए। मातुश्री की प्रसन्नता का पारावार न था। किन्तु वह भविष्य वर्तमान कब बनेगा और यह सब कुछ देखने के लिये क्या उनकी जिन्दगी इजाजत देगी? क्या इतना अवकाश मिल सकेगा? कुदरत की करामात को कौन समझ सकता है? विश्व के नाटयमंच पर किस अभिनेता को कितना क्या अभिनय करना शेष है, यह किसी को ज्ञात नहीं है।

इष्टजन वियोग: दृढ़ता की परीक्षा

सामाजिक संरचना में परिवार एक आवश्यक तत्त्व है। परिवार के आधार से ही मनुष्य अपने में विद्यमान सच्चेतना की, सुकुमारता की, विचारों के आदान-प्रदान की और बौद्धिक आनन्दों में हिस्सा बटाने की लालसा की तृप्ति करता है।

केवल पति-पत्नी और बच्चों के होने से ही कोई घर, घर नहीं बन जाता। परन्तु वंशानुक्रम से प्राप्त भाई, बहिन, माता-पिता आदि से संबोधित किये जाने वाले मानवों के समूह को परिवार कहा जाता है। इनके प्रति अपने दायित्वों का पालन करने के द्वारा हम सामाजिक-कर्तव्यों का पालन करने के साथ-साथ मानवीय मन की अच्छाइयों और

नैतिक कार्यों के विधान को प्रस्तुत करते हैं ।

हमारे चरितनायक का भी इसी प्रकार का एक परिवार था । सबके अपने-अपने उत्तरदायित्व थे, कर्तव्य थे और अधिकार थे । एक दूसरे के प्रति ममता थी, मान-संमान की भावना थी और कुल-धर्म की प्रतिष्ठा रखने की कामना थी । जीवन शांति और सुख में बीत रहा था कि यकायक तूफान आया और वह तब शांत हुआ जब आपका अपना कहा जाने वाला कोई न रहा । सब उस पथ पर चल दिये जिस पर जाने वाला कभी भी वापस नहीं लौटता है ।

तूफान का प्रारंभ हुआ बहिन की मृत्यु से । आपको वह अत्यधिक प्रिय थी । भाई का बहिन के प्रति और बहिन का भाई के प्रति स्नेह साहजिक है । आपकी अवस्था चौदह वर्ष की अवश्य हो गई थी लेकिन अभी तक पारिवारिक प्रियजन की मृत्यु का अनुभव नहीं हुआ था । अतः उस समय आप भलीभांति नहीं समझ पाये कि मेरी बहिन को क्या हो गया है ? अभी तक उछल-कूद करने वाली लाड़ली बहिन को अकस्मात यह क्या हो गया है ? जिन्दगी की मुस्कुराहट में पलने वाले सुकुमार बालक को यह भान भी कैसे हो सकता था कि जीवन का अंतिम रूप मौत है । बहिन की मौत विचारधारा के बीच विराम-चिह्न-सी आ खड़ी हुई ।

पारिवारिकजनों में सभी स्वस्थ और प्रसन्न थे । अतः उस रोज प्रातः श्री साहबलाल जी दयाव्रत अंगीकार करके धर्म स्थानक में रहकर धर्माराधना में संलग्न थे । निर्दोष और निरतिचार व्रत पालन करने के लिये श्रावक दयाव्रत की मर्यादाओं को अंगीकार करके गार्हस्थिक प्रवृत्तियों से विरक्त रहता है और धर्मस्थानक में रहकर संयम, तप, त्याग-साधना के द्वारा आत्म-शुद्धि के लिये ही तत्पर रहता है ।

सूर्यास्त होने का समय था और उसी समय बच्ची की मृत्यु हुई थी । अतः साहबलाल जी तो शव-दाह करने जा नहीं सकते थे । उन्होंने विचार किया कि मृत बालिका वापस जीवित तो हो नहीं सकती है

अतः अंगीकृत व्रत में अतिचार लगाना उचित नहीं है।

हमारे चरितनायक भी दयाव्रत के विधान को जानते थे। अतः उन्होंने सोचा कि आसपास के पड़ौसियों को लेकर शव-दाह कर देना चाहिये। पिताजी के व्रत में दोष लगने से क्या लाभ है ? अतः आप पड़ौसियों के साथ शव को उठाकर श्मशान की ओर चल पड़े।

श्मशान तक पहुँचते-पहुँचते रात्रि पड़ गई थी। रात्रि में श्मशान वैसे ही काल्पनिक विचारों से भयावह प्रतीत होता है और यह तो कृष्ण पक्ष की रात्रि थी। चारों ओर सन्नाटा था, लेकिन बीच-बीच में सियारों की वीभत्स आवाजें और वृक्षों की झुरमुराहट उस सन्नाटे को और भी भयंकर बना रही थी।

शव-दाह के लिये ईंधन कुछ दूर से लाना था और साथ में गये व्यक्ति इने-गिने थे। किसी-न-किसी को शव की रखवाली के लिये बैठना भी जरूरी था। लेकिन कौन बैठे, इसका निश्चय नहीं हो पा रहा था।

यद्यपि बाल्यावस्था के कारण हमारे चरितनायक को ऐसे कार्यों और परिस्थिति का परिचय नहीं था। फिर भी साथ आने वालों की असमंजसता को समझकर बोले—आप लोग ईंधन लेने जायें, मैं यहाँ बैठकर देखभाल करता हूँ। आप लोग किसी भी प्रकार की चिन्ता न करें।

फिर भी साथ में आने वालों की दुविधा दूर नहीं हो सकी और उनकी दुविधा का कारण था—चरितनायक की कुमारावस्था, जिसे अभी तक ऐसी परिस्थिति का अनुभव नहीं हुआ था। साथियों के मनोभावों को समझकर आपने पुनः कहा कि आप लोगों को अधिक सोच-विचार करने की जरूरत नहीं है। आप लोग ईंधन लेने जायें, मैं यहाँ बैठकर देखभाल करता रहूँगा। आप मेरे लिये किसी प्रकार की चिन्ता न करें।

बार-बार का आग्रह देखकर साथ वाले ईंधन लेने तो अवश्य चले गये और आवश्यक ईंधन भी लिया। किन्तु उनके मनों में विचार उठते

रहे कि इस प्रकार बालक को अकेला नहीं छोड़ना चाहिये था और हम में से किसी एक को वहीं बैठना जरूरी था। यदि हमारे पीछे बालक भयभीत हो गया या और कोई बात हो गई तो लोग क्या कहेंगे और श्री साहबलाल जी भी अपने मन में क्या सोचेंगे ?

लेकिन इधर हमारे चरितनायक निर्भीक और निश्चल भाव से शव के निकट बैठ उसकी रखवाली करते रहे। उनके मन में उस समय क्या कैसी विचार-लहरियां उत्पन्न हुई होंगी, यह अवश्य ही जन-साधारण के लिये एक कुतूहल का विषय है। लेकिन उन्हें मालूम होना चाहिये कि मेवाड़ के वीरों के दिल इस्पात से निर्मित होते हैं और आपकी निर्भीकता उसका एक संकेतमात्र था।

ईंधन लेकर वापस आने पर साथियों को पूर्ववत आपको बैठा देखकर संतोष हुआ और आपके साहस की सराहना करने लगे। दूसरों ने भी जब इस घटना को सुना तो आश्चर्यान्वित होकर आपकी प्रशंसा करते हुए उज्ज्वल भविष्य के अनुमान लगाने लगे।

यद्यपि श्री साहबलाल जी को पुत्री की मृत्यु से दुःख तो हुआ किन्तु पुत्र के साहस की जानकारी मिलने पर खुशी की एक झलक दिखाई पड़ी। उन्होंने सोचा कि जो बालक अपने प्रारंभिक जीवन में इतना साहसी है, वह भविष्य में न जाने कितना ओजस्वी, तेजस्वी होगा। पूज्यश्री द्वारा पूर्व में कहे गये कथन का पुनः-पुनः स्मरण हो आया कि यह बालक अपने कर्तव्य में रत रहकर न केवल अपने को ही वरन अपने वंश के नाम को भी उज्ज्वल करेगा।

कसौटी का दूसरा चरण

यह घटना आपके भावी जीवन की महत्ता का बोध कराते हुए समय के साथ धूमिल पड़ गई और पूर्ववत जीवनक्रम चलने लगा। पारिवारिक प्रतिष्ठा और पारिवारिक व्यवस्था के प्रति अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह करते हुये जीवनप्रवाह बह रहा था। उसमें किसी प्रकार के द्वन्द्व-दुःख का आभास नहीं था। लेकिन अकस्मात उसमें पुनः दुःख की काली

घटायें घिर आईं । अब जो तूफान उठा वह लौकिक दृष्टि से मर्माहत करने वाला था । अच्छे-से-अच्छे धीर, वीर, गंभीर व्यक्ति भी उस स्थिति में संतुलन बनाये रखने में असमर्थ-से हो जाते हैं । परन्तु अदृश्य शक्ति महापुरुषों के निर्माण के लिये किस प्रकार का वातावरण निर्मित करती है, यह एक ऐसा रहस्य है, जो मानवीय बुद्धिगम्य नहीं है ।

न्याय-नीतिपूर्वक पारिवारिकजनों का पोषण और गृहस्थ-धर्म का पालन करते हुए हमारे चरितनायक की अवस्था करीब सोलह वर्ष की रही होगी कि समस्त देश में प्लेग का प्रकोप हुआ । देश का ऐसा कोई गांव और नगर नहीं बचा था जिसमें इस भयानक रोग ने अपना रूप न दिखाया हो । इसकी भीषणता अपने ही ढंग की थी ।

वैसे तो भारतवर्ष ने अनेक बार दुर्भिक्ष और महामारी के प्रकोप सहन किये हैं। लेकिन इस समय होने वाली प्लेग की भीषणता की स्मृति जनता को आज भी है और जो भी उस समय की स्थिति का वर्णन भुक्तभोगियों से सुनता है तो कलेजा थर्रा जाता है । कहते हैं कि तत्कालीन जयपुर राज्य में सिर्फ ७६००० मकानों की चाबियां राज्य-कोष में जमा होने आई थीं, जिनके परिवारों में से एक भी व्यक्ति शेष नहीं रहा था। देश का कोई विरला ही परिवार बचा होगा, जिस पर इस महामारी की छाया न पड़ी हो और अपने किसी-न-किसी प्रिय-जन को न सौंप दिया हो ।

उदयपुर में भी प्लेग की भयानक लहर फैली । प्रतिदिन सैकड़ों की संख्या में काल के गाल में समाते, फिर भी आंखों में आंसू नहीं आते थे । किस-किस के वियोग के लिये आंसू बहायें, यह निर्णय नहीं कर पाते थे । एक ने अपनी जीवन-लीला समाप्त नहीं कर पाई कि दूसरा उसका स्थान लेने की तैयारी में है । सभी को अपनी-अपनी रक्षा की पड़ी थी और औषधोपचार भी करते थे, लेकिन जिसकी जीवन-डोर खंडित हो गई, उसे जोड़ने का सामर्थ्य तो किसी में भी नहीं था । घर-घर और मोहल्ले-मोहल्ले में मौत का तांडव हो रहा था और जो

इसके पंजे में आ फंसा वह तो गया ही और जो बचे वे हृदय मसोस कर इस लीला को देखते रह जाते थे। आंखों के आंसू भी अब मनोवेदना को व्यक्त करने में असमर्थ हो गये थे।

इस महामारी ने श्री साहबलाल जी और श्रीमती इन्द्राबाई को भी अपना लक्ष्य बनाया। औषधोपचार भी किया गया लेकिन सब व्यर्थ रहा और मौत के मुँह में समा गये। मां की ममता और पिता के वरद हस्त से वंचित हमारे सोलह वर्षीय किशोर चरितनायक और उनकी पत्नी अकस्मात आगत जिम्मेदारियों का निर्वाह करने के लिये शेष रह गये थे। लौकिक दृष्टि से उन्होंने गृहस्थाश्रम में डग अवश्य रख दिया था, लेकिन माता-पिता की मौजूदगी से अभी तक उसके दायित्व का भार आप पर नहीं था। अतीत के प्रति उपेक्षा, वर्तमान के प्रति निरपेक्षता और भविष्य के प्रति भावुकता किशोरावस्था की विशेषतायें हैं और इन्हीं के बीच आपका दैनंदिनी जीवन व्यतीत हो रहा था।

जीवन में ऐसे अवसर अधिकांशतः आया करते हैं जब एक ओर तो हम शोक के आवेग से दबे रहते हैं और दूसरी ओर उत्तरदायित्वों का भार आ पड़ता है। उस समय शोक के आवेग को मन-ही-मन दबाकर इच्छा या अनिच्छा से कर्तव्य-मार्ग पर अग्रसर होना पड़ता है। मन मसोसकर, विवश होकर परिस्थिति को स्वीकार करने का यह अवसर बड़ा ही करुणाजनक होता है, मानव-बुद्धि को कसौटी पर कसने का समय होता है।

ऐसा ही अवसर चरितनायक के समक्ष उपस्थित था। अब किशोर पति-पत्नी ही एक दूसरे के सुख-दुःख के साथी रह गये थे। मन में घुमड़ते विचारों को एक दूसरे से कह-सुन अपने भार को हलका करने की कोशिश करते थे। लेकिन यह भी सच है कि पुरुष को व्यापार, आजीविका सम्बन्धी कार्यों को करने के लिये घर से बाहर जाना-आना पड़ता है और उन कार्यों के प्रति मन के केन्द्रित होने के समय तक दुःख-विस्मृति का अवसर भी मिल जाता है और शनैः-शनैः समय के

साथ दुःख के भार से अपने आपको विलग कर लेता है। किन्तु स्त्री का कार्यक्षेत्र उसका घर और उसके कार्यों तक सीमित है एवं उन्हीं के बीच दैनिक जीवन का समय व्यतीत होता है। अतः समय-समय पर असमय में दुःख-प्राप्ति मार्मिक होती है और उसमें ही अनुभूति के क्षण अधिक प्राप्त होते रहते हैं। नारी-हृदय की सुकुमारता, दयालुता भावुकता आदि सद्गुण स्वयं उसे ऐसे अवसरों पर और अधिक दुःखी, खेद-खिन्न बना देते हैं।

आप तो अन्यान्य कार्यों की ओर विचारों को केन्द्रित करने के फलस्वरूप धीरे-धीरे वियोगजन्य दुःख को भूलते जा रहे थे। लेकिन आपकी पत्नी इस आकस्मिक वज्राघात से घबरा-सी गई। भरे-पूरे परिवार में रहने के कारण यह घर भयावना-सा, सूना-सूना-सा लगता था। आप स्वयं धैर्य रखते और पत्नी को भी दिलासा देते हुए नये वातावरण के अनुकूल बनाने की कोशिश करते और उद्विग्नता दूर करने के लिये आसपास के पड़ोसियों के पारिवारिकजनों को अपने घर में बुलाने का ध्यान रखते थे। फिर भी इतनी बड़ी तिमंजली हवेली में एक अटपटापन-सा अनुभव होता रहता था।

जीवन में जो रिक्तता आ गई थी और अब उसकी पूर्ति संभव नहीं है। अतः जो कुछ हो गया उसे बदला नहीं जा सकता और न कोई बदलने में समर्थ है। इसलिये भविष्य के प्रति अपने दायित्व का निर्वाह करना ही चाहिये। इसलिये जब कभी कार्यवशात चरितनायक घर से बाहर जाते अथवा व्यापार के निमित्त दूसरे गांव जाना-आना होता तो पत्नी की उदासीनता एवं एकाकीपन में सांत्वना देने, दूसरी ओर ध्यान बटाये रखने के लिये पास-पड़ौस की परिचित बड़ी-बूढ़ी महिलाओं, बच्चों आदि को घर पर छोड़ जाते अथवा उसके मायके भेज देते और साहस के साथ नये जीवन में अग्रसर होने के लिये प्रयत्न करना प्रारम्भ कर दिया।

संसार में मानवीय जीवन विशेषतः आशाओं पर निर्भर है।

यदि एक क्षण के लिये भी आशा मनुष्य का साथ छोड़ दे तो संभवतः मनुष्यों की जीवन-नौका पार लगना ही कठिन हो जाये। जीवन मरुस्थल की तरह शुष्क और काल्पनिक भय, दुःखों का केन्द्र बन जाये। प्रत्येक मनुष्य अंधेरे के बाद उजाला, आपत्ति के अनन्तर संपत्ति और दुःख के पश्चात सुख की आशा करता है। यदि ऐसा न हो तो स्वयं उसे अपना जीवन भाररूप प्रतीत होने लगेगा। निराशा-ही-निराशा दिखलाई देगी। लेकिन आशावादी दुःखों के बीच निराश न होकर भविष्य को सुखमय बनाने के प्रयत्नों में लगे रहते हैं।

चरितनायक आकस्मिक प्राप्त नये वातावरण में अपने आपको ढालने के लिये प्रयत्नशील थे तो विधि का विधान कोई दूसरा ही ताना-बाना बुन रहा था। उसने ऐहिक बंधन के प्रबल कारणों को हटा देने के अनन्तर पत्नी रूपी रहा-सहा बंधन भी हटा देना उचित समझा। उसे यह बंधन भी स्वीकार्य नहीं था।

प्लेग महामारी का पूर्ववत प्रचंड प्रकोप प्रवर्तमान था और आपकी पत्नी को भी उसने उदरस्थ कर लिया।

माता, पिता और पत्नी के वियोग से आपकी जिन्दगी में रिक्तता-शून्यता ने स्थान ले लिया। मायावी प्रपंच का नग्न-रूप आपके समक्ष झलक उठा—संसार असार है, जन्म और मरण के किनारों के बीच फंसा मानव कभी इसकी तो कभी उसकी टक्कर से थपेड़े-पर-थपेड़े खा रहा है। किसी को भी यह ज्ञात नहीं है कि यह जीवन पानी के बुलबुले की तरह कब समाप्त हो जायेगा, अगला श्वास आयेगा या नहीं ? फिर भी व्यक्ति इस सत्य की उपेक्षा कर मायावी मृग-मरीचिका में भटकने को तत्पर हो रहा है।

पत्नी के वियोग से आपके समक्ष संसार का विकृत क्षणिक रूप उपस्थित हो गया। सांसारिक यथार्थता के काल्पनिक चित्र धूमिल होकर वास्तविकता को व्यक्त करने लगे। लेकिन ऐसे कारुणिक प्रसंग भी आपकी चित्त-वृत्ति को चंचल करने में असमर्थ ही रहे और 'कालाय

तस्मै नमः', काल को नमस्कार है, काल बलवान है, इस लोकोक्ति को लक्ष्य में रखते हुए कभी घबराये नहीं, किन्तु जो कुछ होता है अच्छे के लिये होता है, मानकर आप आध्यात्मिक साधना की ओर मनोवृत्ति को केन्द्रित करने के प्रयास में संलग्न रहने लगे। प्रतिदिन सामायिक-स्वाध्याय करना, चिन्तन-मनन में रत रहना, धर्मस्थानक में जाकर साधु-संतों के प्रवचन-श्रवण करना आदि अब दैनिक-चर्या के आवश्यक, अनिवार्य अंग बन गये थे।

राग और विराग का अन्तर्द्वन्द्व

लेकिन पड़ौसियों और सगे-सम्बन्धियों के विचारों में कोई दूसरी ही बात घूम रही थी। उनके विचारों में पुनः उजड़ा घर बसाने का द्वन्द्व चल रहा था। वे चाहते थे कि इस अंधेरे घर में पुनः उजाला हो, बिखरे तिनकों को इकट्ठा कर फिर से घोंसला बनाया जाये, बाजे बजाये जायें और सूने घर में कुल-वधू के नूपुरों की रुन-झुन, रुन-झुन हो और आशा व इच्छा के तूफानों की माया में पुनः विहार किया जाये।

अब आपको समझाया जाने लगा। नये-नये रूपों में पारिवारिक प्रतिष्ठा और जीवन के लुभावने दृश्य आपके समक्ष उपस्थित किये जाने लगे। कुल-परम्परा को बनाये रखने के दायित्व पर भार देते हुए आपके मन में यह धारणा बैठाई जाने लगी कि सुयोग्य कन्या से विवाह कर गृहस्थी बसाना जरूरी है। कन्या के पिताओं की ओर से भी परोक्षरूपेण इसी प्रकार का वातावरण बनाया जा रहा था।

पारिवारिक प्रियजनों की मृत्यु और शून्यता के कारण आपके मन को जो आघात लगा था, वह समय के साथ शांत होने लगा। आस-पास के वातावरण और सगे-सम्बन्धियों के बार-बार समझाने-बुझाने से आप भी कुछ ऐसा सोचने लगे कि इन लोगों का आग्रह मुझे टालना नहीं चाहिये। ये सब मेरे हितैषी ही तो हैं। मुझे सुखी देखने की ही तो इनकी आकांक्षा है। यदि गृहस्थी के साथ-साथ धर्म-साधना हो

सकती है तो मुझे इनकी आज्ञा मानने में कोई असुविधा नहीं है।

अब मन में राग-विराग का अन्तर्द्वन्द्व चलने लगा। राग संसार का मनोरम रूप बतलाते हुए प्रेरित करता कि धर्म संसार में कभी भी कायरता नहीं सिखाता। प्रियजनों का वियोग हो जाने मात्र से अपने उत्तरदायित्व से भागना कायरता होगी। गृहस्थाश्रम बहुत बड़ी जिम्मेदारी का पद है। इसमें रहकर धर्म-साधना की जा सकती है और धर्म, अर्थ, काम पुरुषार्थ का अविरोध रूप से सेवन करते हुए भी मोक्ष के लिये पुरुषार्थ किया जा सकता है।

विराग संसार की क्षणभंगुरता का यथार्थ चित्रण करते हुए बोध देने लगा कि गृहस्थी एक जंजाल है। धन-दौलत और संसार के अन्य सुख-साधन इन्द्रधनुष की मानिन्द क्षणक्षयी हैं। आयु का क्या विश्वास ? आज है, कल नहीं। माता-पिता परलोक सिधार गये, पत्नी ने भी उन्हीं का अनुगमन किया। ये सब घटनायें तुम्हारे समक्ष हैं। ऐसी स्थिति में जीवन पर क्या भरोसा किया जा सकता है। अतः पुनः संसार की ओर मुख करना उचित नहीं है। जितनी जल्दी हो सके आत्म-साधना में लग जाओ, उतना ही श्रेयस्कर होगा।

लेकिन सगे-सम्बन्धियों ने आपके भावुक मन में संसार का एक काल्पनिक चित्र अंकित कर रखा था। अतः इस विचार-द्वन्द्व में राग द्वारा निर्मित वातावरण की कुछ विजय हुई। विराग-भावना कुछ धूमिल-सी पड़ गई और दुनियादारी के चक्कर में फंसने एवं जिन्दगी के अधूरे स्वप्न पूरे करने की बात मन में बैठ गई। विराग, राग से आच्छादित हो गया, योग पर भोग की विजय हुई और सगे-सम्बन्धियों के पुनः-पुनः आग्रह-वश विवाह की स्वीकारोक्ति देने का निश्चय-सा कर लिया।

लेकिन राग की यह विजय क्षणिक थी, भावुकता का क्षणिक आवेश था और भावी की प्रेरणा तो किसी ओर ही दिशा का संकेत कर रही थी—जहाँ जीवन का स्वर्णिम प्रभात उदित होने वाला

था, आत्म-विकारों को क्षय करने की प्रबल प्रेरणा विद्यमान थी, उज्ज्वल उच्च विचारों के आदर्श विद्यमान थे। अतः विवाह की तैयारियां रुक गईं और असंयम पर संयम की विजय हुई। राग की वीणा पर विराग के स्वर झंकृत हो उठे। जीवन के दृष्टिकोण में आमूलचूल परिवर्तन आ गया।

विराग के राजमार्ग पर

दृष्टिकोण के बदलते ही एक नया उत्साह, स्फूर्ति जीवन में आ गई। ऐन्द्रियक विषय विषधर-से विषाक्त प्रतीत होने लगे। चिन्तन की धारा—मैं कौन हूँ और मेरा क्या कर्तव्य है? पर आकर केन्द्रित हो गई। मन में बार-बार विचार उठते कि हृदय के शांत और मन के स्थिर रहने पर ही मनुष्य को आनन्द प्राप्त होता है। इसकी प्राप्ति के लिये योगी योग-साधना करते हैं, एकान्त-वास करते हैं और उससे वे सांसारिक झंझटों से दूर होकर स्वात्म-रमण में सुखानुभूति करते हैं। चिन्ताओं के कारण ही मानव-मन अशांत और अस्थिर रहता है। अतः मन की स्थिरता के लिये चिन्ताओं का नाश होना आवश्यक है और उनके पूर्णतया नाश होने पर आत्मा सच्चिदानंद बन जाती है और मैं बहिर्मुखीवृत्ति कर सुखप्राप्ति की आकांक्षा कर रहा हूँ, जो पुरुष के पौरुष को कलंकित करने जैसी है। मेरा पुरुषार्थ को हेय, प्रेय, श्रेय का विवेक करके अभीप्सित-प्राप्ति की ओर प्रयत्नशील होना चाहिये। यही मेरा कर्तव्य है और इसकी पूर्ति के लिये मैं प्रयास करूँ।

अतः आप सूर्योदय से पूर्व ही शैया त्यागकर, स्वस्थ मन हो परमात्मा के ध्यान में लीन हो जाते थे और आत्म-चिन्तन करते हुए विचार करते कि—

जीवन-प्राप्ति का अलभ्य अवसर मनुष्य-जीवन है। आज मुझे यह प्राप्त हुआ है तो इसका सर्वोत्तम उपयोग कर अपने इष्ट को प्राप्त करूँ। जिसने जन्म लिया है, एक दिन उसका मरण निश्चित है। बड़े-बड़े राजा, राणा, छत्रपति भी इससे नहीं बच सके तो मेरी उनके

समक्ष क्या गिनती है ? सबको अपने-अपने समय पर मरना है। इसमें समय-मात्र का भी परिवर्तन करना शक्य नहीं है। अतः इस जन्म-मरण के चक्कर से मुक्त होने के लिये मेरे प्रयत्न हों।

यह कुटुम्ब, परिजन तो समय के साथी हैं। सभी का अपने-अपने स्वार्थों के वश एक-दूसरे से नाता-रिश्ता है। लेकिन प्रत्येक प्राणी को अपने कृत-कर्मों को स्वयं भोगना पड़ता है। उनको कम करने या सहायता देने में कोई भी सहायक नहीं हो सकता है।

अतः पूर्ण स्वतंत्रता की राह पर आगे बढ़ने के लिये यह आवश्यक है कि हम सुख-दुःख के रहस्य को समझें। यह सुनिश्चित तथ्य है कि संसार का प्रत्येक प्राणी सुख की कामना करता है और प्रत्येक प्राणी इसी कारण अपने समस्त प्रयासों को भी इसी दिशा में नियोजित करना चाहता है कि उसे सुख-ही-सुख प्राप्त हो।

जब तक मनुष्य निज की मनोवृत्तियों को नहीं समझ पाता और उनकी सही प्रगति-दिशा का निर्धारण नहीं कर सकता, दासता की काली छाया नहीं हट सकती। जहाँ इच्छा और इन्द्रियों की दासता है, वहां आत्मा का पतन है और आत्मा के गिरने पर कभी भी सुख, और पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं हो सकती है।

सुख और दुःख की काल्पनिक अनुभूतियों के परे ही आत्मानन्द का निवास है एवं जब आत्मानंद का संचार होता है, तभी पूर्ण स्वतंत्रता की मंजिल का चमकता हुआ सिरा दिखाई देता है। अतः हम अपनी प्रवृत्तियों को सीमित और वृत्तियों को संयमित रखें।

मनुष्य-जीवन की यही गौरवमयी सार्थकता है कि जब तक मानव-मानस में इस भावना का कि आत्मद्रव्य के अतिरिक्त संसार में रहा हुआ एक भी परमाणु मेरा नहीं, जन्म नहीं होगा तब तक मानव जीवन में सुख की कल्पना आकाशकुसुमवत् ही परिलक्षित होती रहेगी।

स्वेच्छापूर्वक तृष्णा का त्याग करके सादगी को अपनाने वाला ही महापराक्रमी होता है। प्राप्त साधनों का व्यापक लोक-हित के लिये

परित्याग कर देने में ही त्याग की वास्तविक महत्ता रही हुई है। जो व्यक्ति निर्भयतापूर्वक संसार की किसी भी कठोरतम शक्ति का सफलतापूर्वक प्रतिरोध कर सकता है, वही धर्म के आंतरिक रहस्य को भी प्रकाशित करने में सफलीभूत हो सकता है। अतः तृष्णा का त्याग ही वीर मानव का भोजन है, परमात्मा का प्रसाद है तथा अध्यात्मधर्म का प्रमुख आधार है।

प्रतिदिन इन्हीं विचारों और ऐसे ही अन्यान्य विचारों का चिन्तन-मनन एवं संयमसाधना पूर्वक चरितनायक का जीवनक्रम चलने लगा और आत्मलक्षी जीवन की अनुभूतियों के अन्तर्तम में प्रवेश करने के लिये प्रयास करते। विचारों को आचार में उतारते हुए साधु-सन्तों की सेवा करना, उनके प्रवचन सुनना और अधिक-से-अधिक ज्ञान-ध्यान में लीन रहना दैनिक-चर्या बन गई।

इस प्रकार से जीवन का क्रम चल रहा था कि वि० सं० १९६२ में आचार्यदेव पूज्य श्री जवाहरलाल जी म० सा० का चातुर्मास उदयपुर में हुआ।

आचार्यश्री साधु-परंपरा के एक महान क्रांतिकारी आचार्य थे। आपश्री की विचारधारा क्रांति के पंखों पर उड़ा करती थी, विचारों में जनसाधारण के जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन लाने की शक्ति थी और वाणी के ओज-माधुर्य में आकर्षण ही नहीं वरन तदनुकूल जीवन बिताने की शक्ति प्रदान करने की क्षमता थी। श्रमण-परंपरा में राष्ट्र और धर्म का क्रांतिदर्शी आचार्य इस शताब्दि में आपकी तुलना में दूसरा कोई नहीं हुआ है। आपश्री प्रखर प्रतिभा, जाज्वल्यमान तेज और प्रबल सकल्प-शक्ति के धनी थे।

आचार्यश्री के पदार्पण से नगर के वातावरण में अनोखा परिवर्तन आ गया था। मुमुक्षु भव्य-जन आपश्री के प्रवचनों को सुन अपने आपको धन्य समझने लगे। उस समय का जन-जीवन राष्ट्रीय चेतना एवं सामाजिक कुरूढ़ियों के उन्मूलन के दौर से गुजर रहा था। जनता

धर्मानुमोदित सात्विक जीवन अंगीकार करने के लिये उत्सुक थीं ।

आचार्यश्री जी अपने प्रवचनों में जन-सामान्य को उन बातों का दिग्दर्शन कराते थे जो युगानुकूल होते हुए भी शाश्वत सत्य का दर्शन कराती थीं । श्रोताओं को नित नया बोधपाठ मिलता और वे तदनुकूल जीवन बिताने की प्रेरणा लेकर आचार में उतारते थे । उन्हीं में हमारे चरितनायक श्री गणेशलाल जी का नाम उल्लेखनीय है । प्रतिदिन वे जो कुछ सुनते, उसे अपने अंतरंग में उतार लेते थे । यद्यपि उम्र सोलह वर्ष की थी किन्तु उनके धार्मिक-संस्कार जन्मजात थे और आचार्य-श्री के सान्निध्य में उनका और अधिक विकास हुआ । आप प्रतिदिन धर्मोपदेश सुनते और उसकी विमल धारा आपके हृदय में लहराने लगी ।

आचार्यश्री का यह चातुर्मास धार्मिक और सामाजिक विकास की दृष्टि से बहुत ही महत्त्वपूर्ण रहा । आपके साथ ६ संत थे । जिनमें से ६ संतों ने इस प्रकार तपस्यायें कीं—

१—मुनि श्री मोतीलाल जी म० सा० ४१ उपवास
२—मुनि श्री राधालाल जी म० सा० ३० ,,
३—मुनि श्री पन्नालाल जी म० सा० ६१ छाछ के पानी से
४—मुनि श्री धूलचंद जी म० सा० ३५ ,,
५—मुनि श्री उदयचंद जी म० सा० ३१ ,,
६—मुनि श्री मयाचंद जी म० सा० ४१ ,,

इसके अतिरिक्त श्रावकों ने भी अनेक प्रकार के त्याग, प्रत्याख्यान, तपस्यायें आदि की थीं । श्रावकों ने सामायिकों की इक्कीस रंगी की । इसमें ४४१ व्यक्ति सम्मिलित होते हैं और विधि इस प्रकार है—

इक्कीस व्यक्ति	२१—२१	सामायिक करते हैं	४४१
,, ,,	२०—२०	,, ,,	४२०
,, ,,	१९—१९	,, ,,	३९९
,, ,,	१८—१८	,, ,,	३७८
,, ,,	१७—१७	,, ,,	३५७

इक्कीस	व्यक्ति	१६—१६	सामायिक	करते हैं	३३६
,,	,,	१५—१५	,,	,,	३१५
,,	,,	१४—१४	,,	,,	२६४
,,	,,	१३—१३	,,	,,	२७३
,,	,,	१२—१२	,,	,,	२५२
,,	,,	११—११	,,	,,	२३१
,,	,,	१०—१०	,,	,,	२१०
,,	,,	९— ९	,,	,,	१८९
,,	,,	८— ८	,,	,,	१६८
,,	,,	७— ७	,,	,,	१४७
,,	,,	६— ६	,,	,,	१२६
,,	,,	५— ५	,,	,,	१०५
,,	,,	४— ४	,,	,,	८४
,,	,,	३— ३	,,	,,	६३
,,	,,	२— २	,,	,,	४२
,,	,,	१— १	,,	,,	२१

इस प्रकार ४४१ व्यक्तियों द्वारा निर्धारित समय में कुल ४८५१ सामायिक संपन्न की जाती हैं। यह सामायिक की इक्कीस रंगी है।

आत्मनिवेदन

आचार्यश्री जी का चातुर्मास सानंद संपन्न हो रहा था। प्लेग महामारी पर काबू पा लिया था और इधर आध्यात्मिक प्रवचनों, आचार-विचारों से जनसाधारण को भी आत्मिक शांति का अनुभव हुआ। चिन्ताग्रस्त मानस में पुनः आशा का संचार हुआ और भूत को भूल भावी को सुखप्रद बनाने की भावनायें जाग्रत होने लगी थीं।

आसौज महीने की बात है। व्याख्यान-समाप्ति के अनन्तर श्री गणेश लाल जी पूज्य जवाहराचार्य के वंदनार्थ गये तो उन्होंने सामान्यतः परिचय के लिये आपसे पूछ लिया कि तुम्हारा नाम क्या है? माता-

पिता, भाई आदि पारिवारिक जन कितने क्या हैं ? इस पर चरित-नायक ने अपना साधारण-सा परिचय देते हुए कहा कि मेरा नाम गणेश-लाल है। माता-पिता, पत्नी आदि का प्लेग से देहावसान हो गया है और मेरे सिवाय अन्य कोई भाई आदि नहीं हैं।

बात साधारण-सी थी और आई-गई हो गई। परिचय, परिचय के लिये था एवं अन्य कोई विशेष बात नहीं थी। किसी एक दिन आचार्यश्री जवाहरलाल जी म० सा० को किसी से यह मालूम हुआ कि माता, पिता, पत्नी के देहावसान के पश्चात यह सोलह वर्षीय कुमार गणेश-लाल जी त्यागमय जीवन व्यतीत करने के इच्छुक हैं। सतत ज्ञानाभ्यास और संयमसाधना में संलग्न रहते हैं। लेकिन कुटुम्बीजन पुनः गार्हस्थिक झंझट में उलझाने के लिये प्रयत्न कर रहे हैं।

समय मिलने पर आचार्यश्री जी ने अपने व्याख्यान में प्रसंगा-नुकूल संसार की क्षणभंगुरता का चित्र खींचा और मार्मिक एवं हृदय-ग्राही शब्दों में कामभोगों की विडबना का वर्णन करते हुए फ़रमाया कि मित्रो ! तुमने मनुष्य जन्म पाया है। स्मरण रखो, यह जन्म सर-लता से नहीं मिलता। न जाने कितने जन्म धारण करने के बाद कौन-कौन-सी भयंकर यातनायें भुगतने के पश्चात कौन-से प्रबल पुण्य के उदय से यह जन्म पाया है। अगर यह यों ही व्यतीत हो गया—विकारों में ग्रस्त रहकर इसे वृथा बरबाद कर दिया—तो कौन जाने फिर कब ठिकाना लगेगा ?

यौवन की मादकता और भोगाभिलाषी मन के रंगीन स्वप्न मनुष्य को ले उड़ते हैं। हाड़-मांस के पुतले पर निर्भर भोग किस क्षण धोखा दे जायेंगे और कब मनुष्य को पछताना पड़ जायेगा, कहा नहीं जा सकता है। सच्चे सुख की यदि कोई कुंजी है तो वह स्वात्मरमण ही कहा जा सकती है।

आचार्यश्री के इन शब्दों ने 'मन भावे और वैद बताये' की उक्ति को चरितार्थ कर दिया। श्री गणेशलाल जी स्वयमेव विरक्ति के मार्ग

पर बढ़ने का प्रयास कर ही रहे थे और इनको सुनते ही उनकी आत्मा प्रबुद्ध हो उठी। अनेक प्रकार के संकल्प-विकल्पों ने स्वयमेव शांति का मार्ग प्राप्त कर लिया। अन्तर्द्वन्द्वों से निर्द्वन्द होने पर इन्द्रियविषयों की निस्सारता और उन्हें भोगने की अभिलाषा करने वाले चित्त की क्षुद्रता आपकी दृष्टि के सन्मुख आ गई। सुषुप्त वैराग्य पुनः जाग्रत हो गया और जो भावना शांत हो गई थी वह उपदेश रूपी प्रभंजन से पुनः उद्वेलित हो उठी।

अब विचारों में एक नवीन स्फूर्ति पैदा हो गई थी। आप जितना सोचते उतने ही नये-नये विचार प्रत्यक्ष होने लगे। प्रत्येक बात को तर्क की कसौटी पर परखने की चेतना जाग्रत होने लगी और अन्तः-करण में एक नया तेज उद्भासित होने लगा। मन में एक संकल्प प्रादुर्भूत हुआ। किन्तु प्रवचन के अवसर पर तत्काल अपनी भावना व्यक्त न कर एकान्त में बैठकर अपना निश्चय बतलाना उचित समझा।

अनन्तर आप एकान्त में आचार्यश्री जी म० सा० की सेवा में उपस्थित हुए। मन में विचार चल ही रहे थे अतः अपनी स्थिति, मनोभावना एवं प्रवचन के अवसर पर उत्पन्न हुई विचारधारा को आपश्री के सन्मुख व्यक्त किया। आचार्यश्री ने आपके विचारों की यथार्थता और दृढ़ता का परीक्षण कर पुनः संक्षिप्त किन्तु सारगर्भित शब्दों में संसार की वास्तविकता से परिचित कराते हुए वैराग्य का उपदेश दिया। उक्त उपदेश का आपके मानस-पटल पर इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि संकल्प को साकार रूप देने की दिशा में कुछ नये निश्चय करके भागवती दीक्षा अंगीकार करने की भावना व्यक्त की। भागवती दीक्षा अंगीकार करने की पूर्व तैयारी के रूप में आपने उसी समय आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत की प्रतिज्ञा ली और चौविहार का खंध कर लिया।

दीक्षा के पूर्व

आचार्यश्री जी ने आपके मनोभावों की परीक्षा करके साध्वाचार और उसकी प्रारंभिक संयमात्मक क्रियाओं का निर्देशन किया और आप

निर्धारित लक्ष्य की ओर प्रवृत्ति करने के लिये उनका दैनंदिनी आचरण में अभ्यास करने लगे। वैसे तो आपने पहले ही प्रतिक्रमण पाठ, थोकड़ों आदि का अध्ययन किया था किन्तु अब आचार्यश्री जी की सेवा में रहकर प्रतिक्रमण पाठ, पच्चीस बोल का थोकड़ा, तेतीस बोल का थोकड़ा, लघुदंडक आदि का विशेष रूप से अध्ययन प्रारंभ कर दिया और वैरागी जीवन में साधुचर्या के अनुरूप ही संयम-साधना का अभ्यास करने के लिये प्रयत्नशील रहने लगे।

समय-समय पर आचार्य श्री जी आपकी भावना को परखते रहते थे और एक के अनन्तर दूसरी, तीसरी आदि कसौटियों पर परीक्षित हो जाने के उपरान्त अंतिम परख और दीक्षा के लिये कुटुम्बीजनों की अनुमति प्राप्त हो जाने के अनन्तर आचार्य श्री जी ने मार्गशीर्ष कृष्णा प्रतिपदा को उदयपुर में ही आपको भागवती दीक्षा प्रदान करने का निश्चय कर लिया।

चरितनायक ने लौकिक दृष्टि से जहाँ संपन्न परिवार, बाल्यकाल में गार्हस्थिक दायित्व, सामाजिक प्रतिष्ठा आदि की अनुभूतियां प्राप्त कीं वहीं अपने प्रियजनों के वियोग की विडंबनायें भी देखी थीं। लेकिन आप उनसे भयभीत नहीं हुए और न आपदायें आपको भयभीत करने में समर्थ हो सकीं। उनके बीच जलकमलवत् निर्लिप्त रहकर मूक-दर्शकवत् मौन बने रहे। अब तो ऐहिक भोग आपको अपनी ओर आकर्षित करने में असमर्थ-से हो गये थे। अतः आवश्यकता थी आध्यात्मिक सुख और तात्त्विक विचारों के साक्षात्कार की। उसके लिये आपको श्री जवाहराचार्य जैसे क्रांतिकारी विद्वान आचार्य के समागम का सौभाग्य प्राप्त हो गया और यह समागम 'सोने में सुगंध' की उक्ति को चरितार्थ करने वाला सिद्ध हुआ।

संकल्प का साक्षात्कार : दीक्षा

दीक्षा के माने हैं परिषहों पर विजय प्राप्त कर अध्यात्म की पाठ-शाला में जीवन का पहला पाठ पढ़ना जो ससीम से असीम की ओर गमन

करने के शुभ संकल्प, विराट विश्व को अपनी आत्मचेतना से अनुप्राणित करने और जीवन के मंगल पभात के स्वागत की तैयारी का स्वतः प्राप्त अवसर है।

दीक्षा के द्वारा व्यक्ति ऐहिक विषय-भोगों की मृगमरीचिका में झंपापात न करके, अपनी आत्मा की रक्षा करके उस परम पद की प्राप्ति के लिये सदैव प्रयत्नशील रहता है जो अनंत ज्ञान, दर्शन, चारित्र अव्याबाध सुख आदि का आस्पद है और जहाँ सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम् की पूर्ण अभिव्यक्ति होती है।

हमारे चरितनायक को इस दिशा में प्रयत्न करने और बढ़ने के लिये ही दीक्षा अंगीकार करने की स्वीकृति प्राप्त हो चुकी थी।

अतः पूर्व निश्चयानुसार मार्गशीर्ष कृष्णा प्रतिपदा, सं० १९६२ को चतुर्विध संघ की उपस्थिति में पूज्य आचार्य श्री जवाहरलाल जी म० सा० ने शास्त्रविधि-अनुसार साधु का स्वरूप, चर्या आदि समझाकर आपको साधु-दीक्षा दे दी और अपने गुरुभाई मुनि श्री मोतीलाल जी म० सा० की नेश्राय का शिष्य घोषित किया।

साधुत्व का उद्देश्य आत्मिक-अभ्युदय-प्राप्ति की साधना करना होता है। जगत के जंजालों को त्यागकर व्यक्ति साधुत्व इसलिये अंगीकार करता है कि वह सभी प्रकार के लौकिक संयोगों से विमुक्त होकर आत्मा के चरम विकास के लिये प्रयास कर सके।

दीक्षा से हमारे चरितनायक की यह अभिलाषा पूर्ण हुई। आपने अपने को धन्य समझा और आपके लिये मानव-जीवन की सफलता का द्वार खुल गया।

गुरु-परिचय

व्यक्ति का अपना व्यक्तित्व होते हुए भी उसके विकास के लिये सहकारी कारणों की अपेक्षा होती है। जैसे बालक में विकसित होने की शक्ति है, लेकिन उसके विकास के लिये सहायक चाहिये और सहायक वही हो सकता है जो अनुभवी हो। ऐसे अनुभवी ही गुरु के

सम्मानीय पद से विभूषित होते हैं ।

विकास के लिये एक अनिवार्य उपाय है—जीवन-निरीक्षण । जो अपने जीवन-व्यवहार का सावधानी से निरीक्षण कर सकता है, अपने मानसिक भावों को देखता रहता है, उसके जीवन का अल्पकाल में ही आश्चर्यजनक विकास हो जाता है । यदि विकास में प्रमादवश अवरोध पैदा हो जाये तो ऐसे अवसर पर पुनः सन्मार्ग की ओर मोड़ने का कार्य गुरु करते हैं ।

जीवन के साथ जिज्ञासा, कल्पनाशक्ति, सर्जकता, संकल्प और श्रद्धामय आशा—इन पांच बातों का सम्बन्ध है । इन शक्तियों की अनियंत्रित प्रवृत्ति सुख, शांति या सन्तोष-प्राप्ति का सही उपाय नहीं है । इसके लिये संयम की आवश्यकता है और संयम के लिये विवेक की आवश्यकता होती है और इस विवेक की प्राप्ति में गुरु सहायक होकर उस परम तत्त्व व परम गति का संकेत करते हैं जो संयम एवं विवेक का साध्य है । ऐसे गुरु वंदनीय और पूजनीय होते हैं एवं उनकी धर्मानुमोदित आज्ञाओं का पालन करने में विकास-इच्छुक का कल्याण है ।

गुरु संयम और विवेक की महिमा का संकेत करते हैं कि जीवन के निःश्रेयस-प्राप्ति का यही मार्ग है और साधना के मार्ग पर मित्र की तरह साथ रहकर अहर्निश प्रमादजन्य भयस्थानों से सावधान करते रहते हैं ।

हमारे चरितनायक को ऐसे ही गुरुओं के समागम का सौभाग्य प्राप्त हुआ था । उन महाभाग पुण्यस्मरणीयों के नाम हैं—आचार्य श्री जवाहरलाल जी म० सा० और मुनि श्री मोतीलाल जी म० सा० । यहाँ उनका संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करते हैं ।

परम श्रद्धेय श्रीमज्जैनाचार्य पूज्य श्री जवाहरलाल जी म० सा० की स्मरणीय गौरवगाथा जन-जन के हृदय में सुरक्षित है और 'आचार्य श्री जवाहरलाल जी म० सा० की जीवनी' के रूप में जीवनवृत्त पुस्त-

काकार प्रकाशित भी है। अतएव पुनरावृत्ति न करते हुए संक्षेप में कह सकते हैं कि आचार्यश्री जी ने व्यक्ति, समाज, धर्म, दर्शन, राष्ट्र और विश्व को नई देन दी एवं प्रत्येक क्षेत्र का मंथन कर अमृत निकाला है।

आचार्यश्री जी अनोखे शिल्पी थे, कलाकार थे, कलापारखी थे। अपनी साधना द्वारा सतत मौलिक निर्माण में रत रहे और जो कुछ भी निर्माण किया वह सदैव मौलिक और नित-नूतन है।

हमारे चरितनायक के साधनामय जीवन-निर्माण का समस्त श्रेय आपश्री को ही है और जो कुछ भी आपमें था, वह समग्र रूपेण चरितनायक में अवतरित हुआ था। इसी का परिणाम है कि चरितनायक निर्भय, निर्द्वन्द होकर साधना के सोपानों पर बढ़ते रहे, प्रगति करते रहे।

पूज्य जवाहराचार्य के परिचय के पश्चात अब उन महापुरुष का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करते हैं जो हमारे चरितनायक और उससे भी पहले पूज्य जवाहराचार्य के जीवन-निर्माण में निकटतम सहयोगी रहे हैं। जिनकी सेवा-भावना ने एक अनूठा आदर्श उपस्थित किया है और जिनकी सतत संयम-साधना साधकों के लिये अनुकरणीय रहेगी। उनका नाम है महाभाग मुनि श्री मोतीलाल जी म० सा०। ये महाभाग हमारे चरितनायक के नेश्राय गुरु थे और आपके शुभाशीर्वाद गणेश की जीवन-वाटिका में नित-नूतन आदर्शों का श्रीगणेश करते रहे। संक्षेप में कहें तो आप गुरुणां गुरु थे।

तपस्वी मुनि श्री मोतीलाल जी म० सा० का जन्म सिंगोली (मेवाड़) में हुआ था। आप कटारिया गोत्रिय श्री उदयचंद जी के सुपुत्र थे और मातुश्री का नाम विरदीबाई था। माता-पिता के धार्मिक, नैतिक आचार-विचारों को अपने जीवन में उतारते हुए आपने आयु के अठारहवें वर्ष में प्रवेश किया। यह अवस्था यौवन-वसंत का प्रवेशकाल है। इस काल में कामना रूपी कोकिलाओं की कुहू-कुहू मानव को

मदोन्मत्त बना देती है, रसलोलुपी भंवरे की तरह मन भोगों पर मंडराता रहता है, विषय-वासना में अनुरक्त इन्द्रियां आम्रमंजरियों की तरह बौरा उठती हैं और जीवन-उद्यान में अनुराग का साम्राज्य व्याप्त हो जाता है।

उस समय विरक्ति—भोगों के प्रति वैराग्य—होना सहज बात नहीं है। ऐसे समय में भोगों की मृगमरीचिका और अठखेलियों को पराजित किये बिना वैराग्य का बाना नहीं पहना जा सकता है। किन्तु इस युवावय में ही मुनि श्री मोतीलाल जी म० सा० ने राग की वीणा पर विराग के स्वर झंकृत कर संसार का त्याग कर दिया था और मुनि श्री राजमल जी म० सा० के सान्निध्य में प्रव्रजित होकर आध्यात्मिक-साधना के साधक बन गये थे।

उनके साधक बनने का काल भी जीवन के वसंत की तरह प्रकृति के वसन्त का था। वसन्त-पंचमी के लगभग सं० १९३२ के माघ शुक्ल पक्ष में आपने भागवती दीक्षा अंगीकार की थी।

दीक्षित होने के साथ ही आपने अपने ओज को तपस्या द्वारा तेज में रूपान्तरित कर दिया था और आपकी यह तप-साधना जीवन-पर्यन्त चलती रही। एक से अडतालीस (सैंतालीस को छोड़कर) दिन तक की तपस्या के थोक आपने किये थे और मास-खमण एवं वेला, तेला आदि की तपस्यायें तो अनेक बार कर चुके थे। आप जैसे उच्च कोटि के तपस्वी थे वैसे ही उत्कृष्ट ज्ञानी और सेवाभावी भी थे। आपकी सेवापरायणता साधुओं के सामने एक आदर्श उपस्थित करती है।

'सेवाधर्मः परम गहनो योगिनामप्यगम्यः' सेवाधर्म परम गहन है, जो योगियों के ज्ञान द्वारा भी नहीं जाना जा सकता है। लेकिन आपने अपनी साधना द्वारा सेवा के आदर्श को साक्षात कर दिखाया था। आपकी सेवा-भावना किसी व्यक्ति विशेष तक सीमित न होकर सर्वहिताय से परिपूर्ण थी। आपके करुणार्द्र जीवन के क्षण-क्षण और पल-पल में सेवा-परायणता का एक-एक प्रसंग अंकित है और उन अनगिनते

प्रसंगों से एकाध को यहाँ प्रस्तुत करते हैं—

प्रसंग आचार्य श्री जवाहरलाल जी म० सा० के मुनि-जीवन के समय का है। दीक्षित होने के कुछ दिनों बाद ही मुनि श्री जवाहरलाल जी म० सा० विक्षिप्त हो गये तो श्रावकों ने निवेदन किया कि नवदीक्षित मुनिश्री की सेवा-परिचर्या में आपको काफी कष्ट सहना पड़ता है और श्रम भी करना पड़ता है, अतः जब तक वे निरोग न हो जायें तब तक के लिये हमें सौंप दें और स्वस्थ होने पर आपकी सेवा में उपस्थित कर देंगे। लेकिन आपने उत्तर दिया कि जब तक मेरे तन में ताकत है, तब तक इनकी सेवा-संभाल करता रहूँगा। आप इसके लिये चिन्तित न हों और पूर्ण मनोयोग से सेवा-परिचर्या करके उन्हें निरोग कर लिया। इस स्थिति में भी आपने साधु-मर्यादानुसार दैनिक कृत्य करते हुए अपनी साधना में कोई व्यवधान नहीं आने दिया था।

विकट-से-विकट परिस्थितियां भी आपको अपने मार्ग से विमुख नहीं कर पाती थीं, किन्तु सफलता के लिये नया साहस और बल प्रदान करती थीं।

आपके चातुर्मास अधिकतर पूज्य जवाहराचार्य के साथ ही होते रहे हैं। आप दोनों में से किसी एक का नाम लेते ही दूसरे की स्मृति स्वयमेव हो जाती है। नाम दो अवश्य थे, किन्तु एक मन, एक वचन और एक भावना के जीवन्त प्रमाण थे।

इन्हीं कारणों से समय-समय पर पूज्य जवाहराचार्य आपके असीम उपकारों को बहुत ही प्रमुदित होकर हृदयग्राही शब्दों में व्यक्त किया करते थे और अपने जीवन की सांध्य-वेला तक मुनि श्री के प्रति कृतज्ञ रहे। आप अकसर कहा करते थे—तपस्वी मुनि श्री मोतीलाल जी महाराज के मेरे ऊपर असीम उपकार हैं।

पूज्य आचार्य श्री जवाहरलाल जी म० सा० को जब कारणवशात महाराष्ट्र से मालवा की ओर विहार करना पड़ा। तब आप काफी वृद्ध

हो गये थे और चरितनायक मुनि श्री गणेशलाल जी म० सा० के साथ जलगांव विराजते थे। वहीं आपको दस्तों की बीमारी हो गई। काफी औषधि, उपचार किये गये। लेकिन रोग बढ़ता गया और फाल्गुन कृष्णा एकादशी सं० १९८३ को आपका जलगांव में स्वर्गवास हो गया।

उक्त दोनों महापुरुषों के संरक्षण में चरितनायक का विकास हुआ था और इन दोनों की विशेषताओं को सर्वात्मना आत्मसात करने में सफलता प्राप्त की। इसी का परिणाम है कि इन महाभागों की अनूठी विशेषताओं का समन्वित रूप आपमें पूर्णरूपेण प्रतिभासमान है—जो आबाल वृद्ध जन समूह को सदा-सदा के लिये श्रद्धावनत बना देता है।



साधना के सोपानों पर

चरितनायक अब दीक्षित हो गये थे। दीक्षित होने का अर्थ है—मानव जीवन के महान और चरम लक्ष्य का साक्षात्कार करना। लेकिन जब-जब इस तथ्य को भुला देने की कोशिश की गई, मानव में शिथिलता एवं अकर्मण्यता का वातावरण फैला और जब कभी एवं जहां कहीं भी उसे गतिहीन बनाने का प्रयास किया गया तो विकास का मार्ग अवरुद्ध हो गया।

सत्, चित् और आनन्द का तादाम्य जीवन की परिभाषा है। सत् का अर्थ है तीन काल में स्थायी रहना अर्थात् भूतकाल में था, वर्तमान में है और भविष्य में रहेगा। चित् अर्थात् जो दीपक की तरह स्वयं प्रकाशमान होकर दूसरों को भी प्रकाशित करना। हम हैं और हम अनुभव करते हैं, इसके निकलने वाले परिणाम का नाम आनन्द है। आनन्द कीं चरम स्थिति तभी प्राप्त होती है जब इन्द्रियों व मन का व्यापार बंद होकर केवल आत्मा सजग रहता है। जैसे-जैसे मन और इन्द्रियों की गुलामी छूटकर जीवन का क्रम आत्मा की आंतरिक आवाज की ओर उन्मुख होता है, वैसे-वैसे निरन्तर बढ़ती हुई अनुभूति में आत्मा का पावन स्वरूप निखरता जाता है।

इसी पवित्र आकांक्षा की पूर्ति हेतु एवं विराट विश्व के कण-कण में इसी का संदेश मुखरित करने, अणु-अणु में आत्म-दर्शन करने और जन्म-जरा-मरणोर्मियों से परिव्याप्त संसार पारावार से पार होने के लिये आपने अनगार धर्म को अंगीकार किया था और साधना के श्रीगणेश के साथ ही संयम-तप-त्याग की कसौटी पर अपने आपको कसना प्रारम्भ कर दिया।

विहार का प्रथम दिवस

साधु-संतों की यह दैनंदिनी सामान्य चर्या है कि आत्म-निर्भरता

के प्रवल हिमायती होने से साधनोपयोगी उपकरणों का भार स्वयं ही उठाते हैं। ग्राम या नगर में जाकर मधुकरीवृत्ति का परिचय देते हुए गृहस्थों के घरों से निर्दोष भिक्षा तथा प्रासुक जल की स्वयं ही गवेषणा करते हैं। प्राणिसंयम के लिये वर्षा ऋतु के चार मास किसी एक स्थान पर विश्राम करने के सिवाय वर्ष के शेष आठ माह किसी भी प्रकार के यान, वाहन आदि का उपतोग न करके सतत पैदल विहार करते हैं और कांटों कंकड़ों से वचाव के लिये पैरों में जूते, चप्पल या मोजे आदि नहीं पहनते हैं और न धूप आदि से बचने के लिये सिर पर छतरी आदि ही लगाते हैं।

जीवन-निर्माण में पैदल विहार को वहुत महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। यह शिक्षा का प्रधान अंग माना गया है। इसका सबसे बड़ा लाभ आध्यात्मिक विकास है। एक स्थान से दूसरे स्थान तक पैदल भ्रमण करने से मार्ग की परिस्थितियों का अनुभव होता है। विस्तृत वनराजि के बीच कहीं पहाड़ों और उनकी उपत्यकाओं में निर्द्वन्द्व विचरण करने वाले बनैले व्याघ्रादि तो कहीं कुलाचें लगाते हुए मृग शावक दृष्टिगत होते हैं। कहीं कल-कल करते झरनों तो कहीं शतदल कमलों से सुशोभित सरोवरों के दर्शन होते हैं। कहीं हरे-भरे खेतों तो कहीं बीहड़ जंगलों और कहीं सघन वृक्षावली तो कहीं विशाल रेतीले मैदानों की झांकी देखने को मिलती है। कहीं श्रद्धा-भक्ति के भार से नम्र भद्र ग्रामजनों का स्नेहपूरित स्वागत प्राप्त होता है तो कहीं क्रूरकर्मा डाकू लुटेरे ताकते मिलते हैं। कही प्रकृति की रमणीयता, कमनीयता के दर्शन होते हैं तो कहीं उसके प्रलयंकारी प्रकोप का भी सामना करना पड़ता है। यह सब देखने से प्रकृति का ज्ञान होता है और समभाव रखने का अभ्यास बढ़ता है एवं उससे प्राप्त संस्कार जीवन-विकास में प्रेरणादायी सिद्ध होते हैं।

पैदल विहार करने वालों को ही प्रकृति के पर्यवेक्षण का अनुपम आनन्द नसीब होता है। रेल, मोटर या वायुयान द्वारा एक स्थान से

दूसरे स्थान पर जा पहुंचने वाले प्रायः इस आनन्द से वंचित-से रहते हैं। मार्ग के दृश्य उन्हें स्वप्न के समान भागते हुए-से प्रतीत होते हैं और उनके साथ हृदय का कोई संबन्ध स्थापित नहीं हो पाता है।

ज्ञानवृद्धि में भी पद-विहार से बहुत सहायता मिलती है। मानवीय प्रकृति एवं आचार-विचार-व्यवहार का परिचय प्राप्त करने और विभिन्न भाषाओं, बोलियों व सभ्यताओं को समझने के लिये भी इसकी आवश्यकता है। प्रचार की दृष्टि से तो इसका महत्त्व सर्वोपरि है। श्रमण भगवान महावीर और महात्मा बुद्ध जैसे विश्व-कल्याणक महापुरुषों ने भी पैदल भ्रमण करके ही जनता में धर्म-जागृति की, शांत-क्रांति का मंत्र फूंका और युगीन लोकरूढ़ियों के स्थान पर यथार्थ कर्तव्य का प्रतिबोध दिया।

चारित्ररक्षा की दृष्टि से भी साधु के लिये एक नियत स्थान पर न टिककर विहार करना आवश्यक है। अधिक समय तक एक स्थान पर टिके रहने से मोहोद्रेक होने का भय रहता है। इसी दृष्टि से जैनागमों में साधु के लिये विहार करना आवश्यक माना है। चातुर्मास के अतिरिक्त किसी भी स्थान पर २९ रात्रि से अधिक ठहरना साधु के लिये निषिद्ध है। भविष्य में आचार्य होने वाले के लिये तो यह और भी जरूरी है कि उसे विभिन्न प्रांतों में भ्रमण करना चाहिये।

मार्गशीर्ष कृष्णा प्रतिपदा को चरितनायक ने भागवती दीक्षा अंगीकार की थी और चातुर्मास समाप्ति के अनन्तर यही दिन संत-मुनिराजों के विहार का होता है। अतः नवदीक्षित मुनि श्री गणेशलाल जी म० सा० गुरुदेव का पदानुसरण करते हुए साथ चल पड़े। इससे पूर्व आपने पदविहार के लिये एक भी डग नहीं रखा था। देह सुकुमार थी और विहार मार्ग भी लंबा नहीं था, करीबन कोस, सवा कोस का होगा।

लेकिन इतने-से पदविहार ने भी नवदीक्षित मुनिश्री के कोमल शरीर पर अपना प्रभाव दिखलाया। तलवों में फफोले पड़ गये, पिंड-

लियों में दर्द हो गया, कंधों में गठानें पड़ गईं और हाथ भी अकड़ गये, आदि। अर्थात् थकान-सम्बंधी जितने भी बाह्य चिह्न हो सकते थे, वे प्रतीत होने लगे। लेकिन आपने उन सबको मौन भाव से सहन किया। आत्मा बलवान थी और जीवन के चरम लक्ष्य की प्राप्ति के लिये ही दीक्षित हुए थे। अतः आप घबराये नहीं, विचलित नहीं हुए और सोचने लगे—संयमी जीवन की परीक्षा का यह प्रथम अवसर है। भविष्य किसने देखा है और कौन जाने अभी कितने व कैसे-कैसे कष्ट उपस्थित होंगे ? ऐसे अवसर ही तो आत्मा को सबल बनाते हैं। मुझे तो यह सब सहर्ष सहन करना है।

लेकिन अन्य संतों से आपकी यह स्थिति छिप न सकी। उन्होंने आपके पैर दबाये, पिंडलियों को सहलाया, मालिश की, जिससे वेदना कुछ कम हुई। धीरे-धीरे आप भी अन्य मुनियों की भांति इन परिषहों को सहन करने के अभ्यस्त हो गये।

आचार्यदेव के दर्शन

गुरुदेव श्री जवाहरलाल जी म. सा. के साथ ग्रामानुग्राम विहार करते हुए चरितनायक नाथद्वारा पधारे और वहां विराजित मुनिश्री मुन्नालाल जी म. सा. आदि मुनिराजों के दर्शन किये। गुरुदेव के साथ आपको देखकर उन्होंने अपना प्रमोद भाव व्यक्त करते हुए शुभाशीर्वाद दिया।

नाथद्वारा में कुछ दिन विराजने के पश्चात अन्याय क्षेत्रों की ओर विहार होने वाला था कि आचार्यश्री श्रीलाल जी म. सा. के नाथद्वारा की ओर पधारने के समाचार ज्ञात कर विहार स्थगित कर दिया गया और आचार्यश्री जी के आगमन पर गुरुदेव के साथ सामने जाकर भक्तिभावपूर्वक दर्शन किये।

आपके बारे में आचार्यदेव की बहुत ऊंची धारणा थी। आपको देखते ही गुरुदेव श्री जवाहरलाल जी म. सा. से बोले—जवाहर ! गणेश को खूब पढ़ाओ, शास्त्र-पारंगत बनाओ। इन्हें पढ़ाना तो कल्पवृक्ष को

सींचना है !

गुरुदेव श्री जवाहरलाल जी म. सा. को आचार्यदेव का यह कथन इतना उपयुक्त प्रतीत हुआ कि अपने २३ चातुर्मासों में साथ रखकर आपको अपना अगाध ज्ञान, तार्किक प्रतिभा और चारित्रनिष्ठा विरासत में प्रदान की। इसी का सुफल है कि आपका जीवन महान से महानतम की ओर सदैव गतिमान रहा।

इस तेईस वर्ष के लम्बे काल में आपने भी दत्तचित्त होकर विभिन्न शास्त्रों का तलस्पर्शी अध्ययन किया। संस्कृत, प्राकृत भाषाओं एवं न्याय, व्याकरण, काव्य आदि साहित्य के सभी अंगों में पांडित्य प्राप्त किया। साथ ही चारित्रविधि को प्रयोगात्मक रूप से जीवन में उतारा। जिनका सुन्दर समन्वय आपके दैनंदिनी व्यवहार में स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। आपके जीवन में जो विद्या, ज्ञान, समन्वयकारी बुद्धि का आलोक और सदाचार, विनयशीलता का सौरभ व्याप्त था, वह इस महत्त्वाकांक्षी युग के लिए एक सुन्दर वरदान है।

आज के युग में सुदीर्घ काल तक गुरु के प्रति विनय, श्रद्धा-भक्ति से युक्त साहचर्य एक बड़ी चुनौती है और जिसे हरएक शिष्य स्वीकार नहीं कर पाता है। परन्तु असाधारण पुरुषों के व्यवहार में असाधारणता ही होती है। शास्त्रों में उल्लेख है कि नवदीक्षित मुनि को १२ वर्ष तक उपाध्याय और १२ वर्ष तक आचार्य के सान्निध्य में रख कर अध्ययन कराया जाये। इस शास्त्रीय कथन को आपने अक्षरशः साक्षात कर दिखाया और आचार्य जैसे महनीय पद पर प्रतिष्ठित होने के अनंतर भी आप एक विनीत शिष्य की तरह ज्ञानाभ्यास के लिए अहर्निश उत्सुक रहे। जिसके ज्वलंत प्रमाण आपके प्रवचनों में यत्रतत्र परिलक्षित होते हैं।

नाथद्वारा में आचार्यदेव पूज्यश्री श्रीलाल जी म. सा. से साधना में सफलता-प्राप्ति का शुभाशीर्वाद पाकर आपने गुरुदेव के साथ विहार कर दिया।

मार्ग में उपलब्ध अनुभवों से बोध लेते हुए, अध्ययन द्वारा विविध शास्त्रों में पांडित्य प्राप्त करते हुए और जन-जन को मानवता का पाठ पढ़ाते हुए करीबन आठ माह हो चुके थे। किन्तु यह आठ माह का सुदीर्घ समय कब बीता, कैसे बीता, पता ही नहीं पड़ा। समय की गतिशीलता का अनुमान लगाना बुद्धिगम्य नहीं है। वैसे तो संपूर्ण जगत ही गतिशील है, उसके अणु-अणु में गतिशीलता है। आज जो शिशु है, वही कल युवा और युवा से वृद्धावस्था की ओर बढ़ते हुए दिखलाई दे रहा है। क्षण-क्षण की नित-नूतनता अतीत में विलीन होकर भविष्य का आलिंगन करने के लिए गतिमान है। यह परम्परा अनाद्यनंत है। इसमें विराम के लिए अवकाश नहीं है। उसका संकेत है कि प्रगति के लिए सदैव गतिशील रहो। इसकी महत्ता के सन्मुख अनेक माहिमावन्त भी नतमस्तक हो गये हैं। लेकिन कतिपय कालविजेता मृत्युंजयी महापुरुष इस चक्र का भेदन करके सदा-सदा के लिए चिरंजीवी बन गये हैं और उनके आदर्श दूसरों को प्रगति के लिए प्रेरणा देते रहते हैं।

वैसे तो चरितनायक के चातुर्मास अधिकतर गुरुदेव श्री जवाहरलाल जी म. सा. एव श्री मोतीलाल जी म. सा. के साथ ही हुए हैं। किन्तु यहां आपसे सम्बन्धित प्रसंगों वाले कतिपय चातुर्मासों का ही विवरण प्रस्तुत है।

आपका प्रथम चातुर्मास (सं० १९६३) गंगापुर में हुआ। इस चातुर्मास में आपके नेश्राय गुरु मुनि श्री मोतीलाल जी म. सा. ने ३३ दिन की तपस्या की और अन्यान्य मुनिराजों ने भी शक्त्यनुसार तपस्यायें की थीं। तपस्याओं के पूर के अवसर पर श्रावक-श्राविकाओं में भी यथाशक्ति त्याग-प्रत्याख्यान हुए थे।

आपने भी तपस्यायें करने के साथ-साथ लगभग ४० थोकड़े, दशवैकालिक सूत्र मूल तथा सात अध्ययन के शब्दार्थ और उत्तराध्ययन सूत्र के ९ अध्ययन कंठस्थ किये।

इसी चातुर्मास काल में मुनि श्री लक्ष्मीचंद जी म. सा. के ससार

पक्ष के पुत्र श्री पन्नालाल जी, पुत्रवधू और श्री रतनलाल जी की भागवती दीक्षायें सपन्न हुईं थीं।

चातुर्मास समाप्ति के पश्चात मेवाड़ के विभिन्न ग्रामों में विहार करते हुए आप गुरुदेव के साथ-साथ बड़ी सादड़ी पधारे। वहां पुनः पूज्य आचार्य-देव श्री १००८ श्री श्रीलाल जी म. सा. के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ और आचार्यदेव ने आपके अध्ययन, तपस्याओं आदि के लिए हार्दिक संतोष व प्रसन्नता व्यक्त की।

आदर्श गुरुसेवा

सं० १९६५ का चातुर्मास थांदला था। चातुर्मास समाप्ति के अनंतर पूज्य श्री जवाहरलाल जी म० सा० आदि ठा० वहां से विहार करके रंभापुर पधारे। वहां से महाभाग मुनि श्री मोतीलाल जी म० सा० ने कोद की ओर विहार किया और पूज्य श्री जवाहरलाल जी म० सा० विहार करके करीव दो कोस पहुंचे होंगे कि उन्हें बुखार हो गया। अतः वापस रंभापुर लौट आना पड़ा।

बुख़ार तो था ही, साथ में कै और दस्त भी होने लगे और वढ़ते-वढ़ते उनकी संख्या प्रतिदिन १५०-१६० तक पहुंच गई। कोई इलाज कारगर सावित नहीं हो रहा था। नौ दिन तक यही स्थिति रही। जिससे जीवन बचने की भी आशंका होने लगी।

इस विकट स्थिति में चरितनायक मुनि श्री गणेशलाल जी म० सा० और मुनि श्री राधालाल जी म० सा० साथ थे। दोनों सत दवा लाते, मलदूषित वस्त्रों को धोते और वैयावच्च में लगे रहते थे। फिर भी स्वास्थ्य में सुधार नहीं होने से दिनोंदिन चिन्ता बढ़ती जा रही थी। आस-पास के श्री संघों को बीमारी की जानकारी मिलने से बहुत से भाई-बहिन रंभापुर आ गये थे।

उन्हीं दिनों थांदला के वैद्य श्री नाहरसिंह जी बुंदेला निजी काम से रंभापुर आये। उन्होंने यह सब स्थिति देखी और कहा कि यदि आप किसी तरह थांदला पहुंच सकें तो मैं इन्हें निरोग कर सकूंगा।

रंभापुर से थांदला करीब चार कोस था और गुरुदेवश्री का जीवन इतना बहुमूल्य था कि उसकी रक्षा करने के लिये कोई भी कष्ट झेलना बड़ी बात नहीं थी। मगर प्रश्न यह था कि थांदला किस प्रकार पहुंचा जाये? साथ में सिर्फ दो सन्त थे, मगर दोनों सेवापरायण और कर्तव्यनिष्ठ थे। उन्होंने साहस करके थांदला ले जाने का निश्चय कर लिया और धीरे-धीरे थांदला की ओर विहार करना प्रारम्भ कर दिया।

मुनि श्री गणेशलाल जी म० सा० और मुनि श्री राधालालजी म० सा० गुरुदेव को सहारा देकर चलाते। कुछ दूर चलने में ही थकावट बढ़ जाती थी। अतः विश्राम हेतु किसी वृक्ष की छाया में बिछौना बिछाकर आपको लेटा देते थे और हाथ पैर दबाने लगते। इस तरह करते-करते दिन भर में ढ़ाई मील की यात्रा हो सकी और दूसरे दिन थांदला आ गये। वहां श्री नाहरसिंह जी बुंदेला के उपचार और शिष्यों की सेवा-शुश्रुषा के फलस्वरूप पूज्य श्री जवाहरलाल जी म० सा० करीब डेढ़ माह में पूर्ण स्वस्थ हो गये और धीरे-धीरे कमजोरी भी दूर हो गई। लेकिन इस विकट परिस्थिति में आप दोनों संतों ने साधु-मर्यादा सम्बन्धी दैनिक चर्या में किसी प्रकार से व्यवधान नहीं आने दिया और जागरूक होकर साधना के मार्ग पर आगे-ही-आगे बढ़ते रहे।

दान का स्मरणीय प्रसंग

सं १९६६ का चातुर्मास जावरा हुआ। चातुर्मास समाप्ति के अनंतर मालवा के विभिन्न क्षेत्रों में धर्मप्रभावना करते हुए सं० १९६७ के चातुर्मासार्थ इन्दौर पधारे।

इन्दौर मालवा का उद्योग-प्रधान नगर तो है ही किन्तु शिक्षा और विद्वद्गोष्ठी से भी समृद्ध है। वहां पूज्य श्री जवाहरलाल जी म० सा० के दनिक प्रवचनों के अवसर पर विद्वानों के अतिरिक्त जनसाधारण की उपस्थिति हजारों की संख्या में हो जाती थी। व्याख्यानों का विषय तत्कालीन स्थिति और उसमें धर्म की उपयोगिता का संकेत

मुख्य रूप से रहता था। आप प्रत्येक समस्या के समाधान में बहुत ही गहराई तक पहुंचते, जिससे जनता को नया बोध मिलता और अपने कर्तव्य का निश्चय करती।

इस चातुर्मास काल में महाभाग मुनि श्री मोतीलाल जी म० सा० ने ३६ दिन की तपस्या की। तपस्या के पूर दिवस पर आचार्यश्री ने प्रवचन में अहिंसा धर्म का विशद विवेचन किया। उस दिन श्रोताओं में बहुत से कसाई भाई भी आये थे। जिन पर प्रवचन का बहुत ही गहरा असर हुआ और उनमें से एक ने तो चतुर्दशी को जीवहिंसा करने का त्याग कर दिया। इसके अतिरिक्त अन्य भाई-बहिनों ने भी यथाशक्ति त्याग-प्रत्याख्यान किये। इस दिवस की स्मृति-रूप में जीव-दया के कार्यों को करने के लिये तत्काल छह हजार रुपये का चन्दा एकत्रित हो गया।

एक सरल, भद्र परिणामी सज्जन भी इस अवसर पर उपस्थित थे। उन्होंने दत्तचित्त होकर यह व्याख्यान सुना और अपनी कुल १००० की पूंजी में से जिससे प्रतिदिन चने, मूंगफली आदि लाते और अपनी आजीविका चलाते थे, इस शुभ कार्य के लिये १०० दान देना चाहा। लेकिन गरीब समझकर, कुछ मार्मिक बात कहकर उनकी उपेक्षा कर दी। इससे उन्हें इतनी मनोवेदना हुई कि जो आंसुओं के रूप में बह निकली।

मुनि श्री गणेशलाल जी म० सा० की उनकी ओर दृष्टि गई और कारण पूछने पर उन्होंने अपनी भावना का मर्म बतलाया। मुनि श्री ने गुरुदेव से यह वृत्तांत निवेदन किया तो गुरुदेव ने तत्काल प्रवचन में उन सज्जन की प्रशंसा करते हुए फरमाया कि ये सज्जन अपनी पूंजी में से दसवां भाग देने को उत्सुक हैं। क्या आप लोगों में से है कोई, जो अपनी संपत्ति का दसवां भाग जीवकल्याण की शुभ प्रवृत्ति में देने को तैयार हो। इनकी भावना का सत्कार करो, इनके कार्य की प्रशंसा करो। संख्या का मूल्य न समझकर भावों का मूल्य समझना चाहिये।

श्रोताओं व चन्दा एकत्रित करने वालों को अपनी भूल ज्ञात हुई और उनके ६०००.०० पर यह १.०० कलश बन गया।

चरितनायक की करुणा भावना किस-किस रूप में प्रवाहित हुई है, यह तो उनके समग्र जीवन के दर्शन से यथास्थान दिखलाई देगी। लेकिन पूर्वोक्त घटना तो उसका संकेत-मात्र ही है। विकटतम प्रसंगों में भी आपकी जीव कल्याण की भावना सदैव सचेष्ट रही है और संघर्ष व उसकी आशंका भी आपकी करुणा भावना के मार्ग में अवरोधक नहीं बन सकी। यही आपके जीवन की सुन्दरता और भव्यता का रहस्य है और उसकी स्मृति से हमारा हृदय गद्गद हो उठता है एवं मस्तक श्रद्धा से नत हो जाता है।

विद्याध्ययन का व्यवस्थित क्रम

इन्दौर चातुर्मास समाप्ति के बाद गुरुदेव के साथ आपका विहार दक्षिण (महाराष्ट्र) की ओर हुआ।

इन दिनों भारतीय इतिहास में एक नया स्वर्णिम पृष्ठ लिखा जा रहा था। राष्ट्रीय स्वाधीनता-आन्दोलन अपने प्रबल वेग से चल रहा था। देशवासी देश को दासता से मुक्त करने के लिये कृतसंकल्प होकर प्रयत्नशील थे और उधर विदेशी शासक इस आंदोलन का दमन करने पर उतारू थे। ब्रिटिश सरकार प्रत्येक भारतीय और उसमें भी अपरिचित वेश वालों को संदेह की दृष्टि से देखती थी। अनेक स्थानों पर दक्षिण की ओर विहार करने वाले इस सन्तमण्डल को भी सन्देह का शिकार होना पड़ा। फिर भी अटल निश्चय के अनुसार अनेक कठिनाइयों की उपेक्षा करते हुए विहार निर्बाध गति से चलता रहा और सं० १९६८ का चातुर्मास अहमदनगर हुआ।

उस समय तक स्थानकवासी संप्रदाय में संस्कृत-प्राकृत भाषा का पठन-पाठन बहुत कम था। व्याकरण, साहित्य आदि का अध्ययन करके ठोस पांडित्य, प्राप्त करने की ओर समाज में वातावरण ही नहीं था। इसके बारे में जितनी साधुवर्ग में उदासीनता थी, उतनी ही श्रावक-

वर्ग में थी। कतिपय तो संस्कृत भाषा के पठन-पाठन का विरोध भी करते थे।

परन्तु गुरुवर्य श्री जवाहरलाल जी म० सा० यह स्थिति समाज के लिये श्रेयस्कर नहीं समझते थे। आप विद्याभिलाषी समाज और समर्थ विद्वान एवं चारित्रशील साधु-सन्त देखना चाहते थे। अतएव सामाजिक विरोध होते हुए भी आपने अपने शिष्यद्वय मुनि श्री घासी-लालजी म० व चरितनायक मुनि श्री गणेशलालजी म० को संस्कृत, प्राकृत आदि भाषाओं व भारतीय वांगमय के पढ़ाने का निश्चय किया।

आप मानते थे कि जो व्यक्ति पूर्णरूपेण और नियमानुसार साधु के आचार को भली-भांति नहीं जानता वह उसका समीचीन रूप से पालन करने में असमर्थ है। अपने आचार को भलीभांति समझने वाला ही उसका पालन कर सकता है। ज्ञान के अभाव में साधुता की भी शोभा नहीं है। समाज के उत्थान के लिये भी ज्ञान की आवश्यकता है। हतं ज्ञानं क्रिया हीनं हता चा ज्ञानि नां क्रिया यदि क्रियाहीन ज्ञान व्यर्थ है तो अज्ञानी के द्वारा की जाने वाली क्रिया भी अनुपयोगी है।

आपने शिष्यों को ज्ञानाभ्यास कराने का निश्चय तो कर लिया था, लेकिन निश्चय के साथ ही एक कठिनाई सामने आई कि उस समय तक समाज में ऐसा कोई साधु या श्रावक नजर नहीं आया जो इन मुनियों को नियमित रूप से पढ़ा सके एवं वेतन देकर पंडित नियुक्त करने में बहुतों को आपत्ति थी। उनका विचार था कि 'अपढ़ रह जाना अच्छा लेकिन वेतन देकर गृहस्थ विद्वान से साधुओं को पढ़ना अच्छा नहीं है।'

चातुर्मासकाल में कुछ समाज के प्रमुख अग्रणी श्रावकों ने यह प्रश्न पूज्य श्री जवाहरलालजी म० सा० की सेवा में प्रस्तुत किया। उन्होंने पूछा– त्यागियों को गृहस्थों से पढ़ना चाहिये या नहीं, और साधु के निमित्त वैतनिक पंडित रखने से मुनियों को दोष लगता है या नहीं।

व्यक्तिगत चर्चा के प्रसंग में उक्त प्रश्न का उत्तर देने की अपेक्षा गुरुदेव श्री ने सार्वजनिक रूप में प्रवचन के अवसर पर उत्तर देना उचित समझा। अतः दूसरे दिन प्रवचन में इस प्रश्न के स्पष्टीकरण एवं समाधान के लिये उदाहरण दिया कि एक समझदार गृहस्थ ने अपने अन्तिम समय में पुत्र को शिक्षा दी— तुम किसी से ऋण मत लेना और न भूखे ही रहना। इतना कहने के बाद पिता की मृत्यु हो गई। भाग्यवशात पुत्र निर्धन हो गया और ऋण लेने की भी नौबत आ गई। लेकिन उसे पिता के अन्तिम शब्द याद आ गये कि ऋण लेना मत और भूखे रहना नहीं। विचित्र संकट था कि इधर कुआ तो उधर खाई। पुत्र किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया कि क्या करें ? अन्त में अन्तर के नाद से उसे प्रकाश मिला और स्वस्थ मन से विचारा कि पिताजी कि दोनों आज्ञाओं का उद्देश्य सुखी जीवन व्यतीत करने का है। ऋण लेने से सुख नष्ट होता है और भूखों मरने से जीवन की समाप्ति। अतएव ऐसी स्थिति में थोड़ा ऋण लेकर जीवन बचाये रखना श्रेयस्कर है और बाद में कठिन परिश्रम कर ऋण उतार दूंगा। ऐसा सोचकर उसने थोड़ा सा ऋण ले लिया, जिसे बाद में अपने श्रम से चुका दिया और आत्मघात के भयंकर पाप से अपने को बचा लिया।

अब आप लोग विचारें कि पुत्र का उक्त निर्णय उचित था या नहीं ?

यही बात साधुओं के अध्ययन के बारे में भी समझना चाहिये। यह ठीक है कि साधुओं को गृहस्थ से कोई काम नहीं लेना चाहिये, लेकिन क्या धर्म गुरुओं को मूर्ख ही बना रहना चाहिये ? क्या उन्हें धर्म पर होने वाले मिथ्यारोपों का निवारण करने में समर्थ नहीं बनना चाहिये ? शास्त्रों में ज्ञान की महिमा का वर्णन निष्कारण नहीं किया गया है। दशवैकालिक सूत्र में उल्लेख है—

'अन्नाणी किं काही, किं वा नाही सेयं पावम्।'

अर्थात् अज्ञानी बेचारा क्या कर सकेगा ? वह भले-बुरे को—

कल्याण-अकल्याण को, धर्म-अधर्म को क्या समझ सकेगा ?

अध्ययन-अध्यापन कोई सावद्य कार्य नहीं है। मर्यादा में रहते हुए अगर गृहस्थ से अध्ययन किया जाये तो मूर्ख रहने की अपेक्षा बहुत कम दोष है और उसकी प्रायश्चित द्वारा शुद्धि भी की जा सकती है। भगवान ने गृहस्थ से काम लेने का निषेध किया है तो अल्पज्ञ रहने का भी निषेध किया है। आप स्मरण रखें कि युग की विशेषताओं पर ध्यान दिये बिना धर्म और समाज की रक्षा होना कठिन है। धर्म और समाज की रक्षा के लिये अज्ञान निवारण करना प्राथमिक आवश्यकता है।

इस विवेचन से श्रोताओं की धारणाओं का उन्मूलन हुआ और आपके निश्चय की सराहना की।

योग्य अधिकारी विद्वानों के सान्निध्य में चरितनायक अध्ययन करके शनैः-शनैः, क्रम-क्रम से न्याय, व्याकरण, दर्शन साहित्य आदि विषयों एवं संस्कृत, प्राकृत भाषाओं में पांडित्य प्राप्त करने लगे। साथ ही महाराष्ट्र के श्रावक संघों को भी धार्मिक प्रवृत्तियों के विकास का सुयोग प्राप्त हुआ।

गुरुदेव श्री जवाहरलाल जी म० सा० का सं० १९७४ का चातुर्मास भीही हुआ। शिष्यद्वय अध्ययन कर ही रहे थे। किसी एक दिन वार्तालाप के प्रसंग में श्री कुन्दनमल जी फिरोदिया और श्री माणिकचन्द जी मूथा वकील ने गुरुदेव से प्रार्थना की कि आपके दोनों शिष्य अध्ययन कर रहे हैं यह आनन्द की बात है। किन्तु उनका अध्ययन कैसा-क्या चल रहा है और उन्होंने उसमें कितनी प्रगति की है, यह बात हम श्रावकों को कैसे मालूम हो ?

प्रश्न उचित था और गुरुदेव श्री भी नहीं चाहते थे कि समाज की शक्ति, धन का अपव्यय हो। अध्ययन संतोषजनक है या नहीं यह जानने का उपाय परीक्षा लेना है। अतः उन्होंने अपने दोनों शिष्यों से परीक्षा देने के लिये पूछा और दोनों ने तत्काल इसके लिये स्वी-

कृति दे दी।

विचार-विमर्श के अनन्तर अहमदनगर में परीक्षा लेने का निश्चय किया गया। जिसके लिये प्रसिद्ध विद्वान पं० श्री गुणेशास्त्री एम-ए, पी एच. डी और म० म० पं० अभ्यंकरजी शास्त्री परीक्षक नियुक्त किये गये। परीक्षकों ने श्री संघ और दर्शकों की उपस्थिति में परीक्षा ली। व्याकरण, साहित्य विषयक प्रश्न पूछे गये। जिनमें मुनि श्री गणेशलाल जी म० सा० को व्याकरण में ८२ प्रतिशत एवं साहित्य में ६४ प्रतिशत प्रथम श्रेणी के अंक प्राप्त हुए। मौखिक प्रश्नों में तो सौ में से सौ अंक प्राप्त हुए।

परीक्षा के परिणाम को देखकर उपस्थिति ने अध्ययन की सराहना की और परीक्षकों ने अध्यापक एवं अध्येता की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए प्रोत्साहन दिया।

सं० १९७५ का चातुर्मास हिवड़ा हुआ। यहाँ पर श्री सूरजमलजी कोठारी ने भाद्रपद शुक्ला ७ को भागवती दीक्षा ली।

विद्वत्ता का परिचय

इन्हीं दिनों पूज्य आचार्य श्री श्रीलाल जी म० सा० का चातुर्मास उदयपुर हुआ। अकस्मात् आश्विन मास में आप श्री इन्फ्लूएंजा रोग से ग्रस्त हो गये। रोग की वेदना तीव्र थी। फिर भी आप श्री ने साध्वोचित क्रियाओं से किसी प्रकार रुकावट नहीं आने दी और नियमित रूप से साधना में सलग्न रहे।

इस रोग-वेदना के समय पूज्यश्री ने संघहित की दृष्टि से विचार किया कि जीवन क्षण भगुर है। आचार्य होने के नाते मेरे ऊपर समस्त सम्प्रदाय का भार है। अतः अब मुझे योग्य उत्तराधिकारी का चयन कर लेना चाहिये जिससे चतुर्विध संघ की धर्मसाधना निर्विघ्न रूप से व्यवस्थित रहे।

पूज्यश्री ने इस दृष्टि से अपने आज्ञानुवर्ती समस्त मुनियों पर दृष्टि डाली और उनमें चरितनायक के गुरु श्री जवाहरलाल जी म०

सा० पर ध्यान केन्द्रित हो गया। पूज्यश्री ने अपना विचार श्री संघ के समक्ष रखा। जिसका श्री संघ ने अनुमोदन करते हुए कार्तिक शुक्ला द्वितीया को श्री जवाहरलाल जी म० सा० को युवाचार्य घोषित करके उन्हे इसकी जानकारी कराने के लिये हिवड़ा श्री संघ को तार दे दिया गया। किन्तु पद उत्तरदायित्वपूर्ण था अतः स्वीकृति देने से पूर्व उन्होंने आचार्य श्री जी से मिलना उचित समझा और तत्काल कोई उत्तर नहीं दिया।

उत्तर में विलम्ब होते देख सेठ श्री बालमुकुन्द जी तथा श्री चंदनमल जी मूथा हिवड़ा आये। उन्होंने श्री संघ की स्थिति और आचार्य श्री जी की भावना को व्यक्त किया। अतएव आपने उत्तर में कहा कि मुझे पूज्यश्री की आज्ञा शिरोधार्य है। लेकिन मैं बहुत दिनों से महाराष्ट्र में हूँ। उधर की परिस्थितियों से अपरिचित हूँ। इधर दोनों शिष्यों का अध्ययन चल रहा है, जिसे बीच में स्थगित कर देना उचित नहीं है। इनका अध्ययन पूर्ण होने पर मैं पूज्यश्री की सेवा में उपस्थित होकर एतद्विषयक अपनी भावना व्यक्त करना चाहता हूँ। इसी प्रकार के भाव आपने उदयपुर से आगत शिष्टमण्डल को भी बतलाये।

शिष्टमण्डल के वापिस उदयपुर लौट जाने के अनंतर समाज के अग्रणी सेठ श्री वर्धमान जी पीतलिया रतलाम एवं सेठ श्री बहादुरमल जी बांठिया भीनासर निवासी हिवड़ा आये और समस्त स्थिति का दिग्दर्शन कराया। इसलिये अध्ययन करने वाले अपने शिष्यों को महाराष्ट्र में छोड़कर गुरुदेव श्री जवाहरलाल जी म० सा० ने मालवा की ओर विहार कर दिया और रतलाम में युवाचार्य पद समारोह सम्पन्न हुआ।

चरितनायक मुनि श्री गणेशलालजी म० सा० महाभागमुनि श्री मोतीलाल जी म० सा० के साथ वहीं महाराष्ट्र में अपना अध्ययन चालू रखने के लिये रह गये और सं० १९७६ व १९७७ के चातुर्मास

क्रमशः चिचवड़ व सतारा में किये।

इन दोनों चातुर्मासों में समाज को आपकी वाणी, विद्वत्ता और शास्त्रीय अध्ययन का परिचय मिला। सरल से सरल भाषा में आप गम्भीर शास्त्रीय विषय को समझाने में प्रवीण थे। आपकी विद्वत्ता जन-मानस को स्पर्श करती थी। श्रोतागण आपके प्रवचनों को सुनकर गद्-गद् हो उठते और गुरुदेव श्री जवाहरलालजी म० सा० की सूझबूझ का अभिनन्दन करते हुए सराहना करने लगते।

मालवा की ओर

महाराष्ट्र की जनता आपके पांडित्य से प्रभावित हो चुकी थी और महाराष्ट्र में विराजने के लिये विनती कर रही थी। लेकिन आप चाहते थे कि गुरुदेव की छत्रछाया में ज्ञान और सयम साधना के संस्कारों का सिंचन हो और आपके गुरुदेव श्री भी अभी उन्हें अपने निकट रखना चाहते थे। अतः आप गुरु-आज्ञापूर्वक दो ठाणा से महाराष्ट्र से विहार करके उदयपुर पधार गये। गुरुदेव श्री भी बीकानेर चातुर्मास समाप्ति के पश्चात उदयपुर पधारे।

आषाढ़ शुक्ला द्वितीया सं० १९७७ को पूज्य आचार्य श्री श्रीलाल जी म० सा० के जयतारण में काल धर्म को प्राप्त होने पर चतुर्विध संघ का नेतृत्व आपके गुरु श्री जवाहरलाल जी म० सा० के हाथों में आ गया था।

आचार्य पद पर प्रतिष्ठित होने के उपरांत संप्रदाय और समाचारी को व्यवस्थित रूप देने की दृष्टि से उदयपुर में संप्रदाय के समस्त सन्त-सतीवृन्द का सम्मेलन हुआ। जिसमें चालीस सन्त एकत्रित हुए और उन्होंने समाचारी आदि को व्यवस्थित रूप देकर पूज्य आचार्य श्री की आज्ञा को शिरोधार्य किया।

मार्मिक प्रसंग

सं० १९७८ का चातुर्मास रतलाम में सम्पन्न होने के पश्चात् आपने अधूरे अध्ययन को पूर्ण करने के लिये गुरुदेव के साथ दक्षिण की

ओर विहार कर दिया। खुर्रमपुरा पहुंचने पर रात्रि विश्राम योग्य स्थान न मिल सका और एक खुले मन्दिर में ठहरना हुआ। पौष मास था और उन दिनों कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी कि अकस्मात शाम को मुनिश्री हणुतमलजी म० सा० को छाती में दर्द उठा और ज्वर हो गया। रात्रि का समय था और साधु मर्यादा के अनुसार रात्रि में उपचार आदि के लिये उपाय भी नहीं किया जा सकता था। जो कुछ भी सेवा-शुश्रुषा सम्भव थी, वह सब की गई लेकिन रोग काबू में नहीं आया। अतः उसी समय उनको आलोयणा आदि करादी गई और उन्होंने शुद्ध हृदय से अपने जीवन की आलोचना की।

जैसे-तैसे प्रातःकाल होने पर मुनिश्री गणेशलालजी म० सा० दूसरे कुछ सुविधाजनक स्थान की खोज में निकले और एक कच्ची कोठरी मिली। वहां रुग्ण मुनिश्री को ले जाया गया। मगर आहार, उपचार और बीमारी की समस्या अधिकाधिक कठिन होती जा रही थी। बीमारी के कारण विहार होना भी सम्भव नहीं था। स्थिति विकट थी और उसका सामना करने के लिये आचार्य श्री आदि सभी सन्तों ने एकान्तर उपवास करना प्रारम्भ कर दिया। रुग्ण मुनिश्री को रोग-मुक्ति के लिये तीन दिन का उपवास कराया गया। इससे रोग में कुछ अन्तर तो पड़ा किन्तु निर्बलता ज्यादा बढ़ गई।

खुर्रमपुरा छोटा सा गांव था अतः वहां बीमार मुनि की चिकित्सा के साधनों का अभाव देखकर उपचार के लिये किसी दूसरे योग्य गांव में ले जाने का निश्चय किया गया। करीब चार कोस पर एक गांव था और वहां जैसे-तैसे आवास योग्य स्थान भी मिल गया। लेकिन पांच मुनियों के योग्य आहार आदि की असुविधा और रोगी की परिचर्या के साधनों का अभाव देखकर वापिस खुर्रमपुरा लौट आये।

समय की स्थिति को देखते हुए खुर्रमपुरा में रोगी मुनिश्री के उपचार के लिये जो कुछ शक्य था, किया गया। श्रावकों को खबर मिलने पर जावरा से श्री प्यारचन्दजी डफरिया और दूसरे एक दो सज्जन

भी खुर्रमपुरा पहुंच गये । किन्तु रोग का प्रकोप तीव्र था अतः रोगी मुनिश्री के जीवन की कोई आशा न देखकर उन्हें सथारा करा दिया गया और संथारे की स्थिति में उनका देहावसान हो गया ।

आघात पर आघात

इस प्रकार के कष्टमय समय को व्यतीत करके पूज्य श्री जवाहरलालजी म० सा० आदि सन्त खुर्रमपुरा से विहार कर वालसंमद पहुंचे । वहां भी स्थान आदि की कठिनाइयां आईं । एक धर्मशाला मिली किन्तु डांस मच्छरों और चूहों के कारण रात्रि व्यतीत करना असम्भव जान मुनि श्री गणेशलालजी म० सा० आदि सन्तों को किसी अन्य स्थान को देखने के लिये भेजा । उन्हें एक गृहस्थ के मकान के वाहर का चवूतरा योग्य दिखलाई दिया । मुनि श्री ने गृह स्वामी की पुत्रवधू से चवूतरे पर रात्रि विश्राम करने की आज्ञा मांगी, लेकिन उसने इसके लिये आनाकानी की । वहां के निवासियों की धारणा थी कि चोर-लुटेरे साधु के वेश में फिरते हैं और मौका पाकर हाथ साफ करके चल देते हैं ।

मुनि श्री ने उस बहिन को वहुत समझाया और अपनी सब स्थिति एवं साधुचर्या का परिचय दिया तो उसका दिल पसीज गया और वोली, महाराज हमें तो कोई एतराज नहीं किन्तु हमारे ससुर आते ही आपको हटा न दें, यह विचार आ जाता है ।

अनुमति पाकर चारों सन्त अभी अपने पात्रोपकरण रखकर वैठे ही थे कि गृहस्वामी आ गया और दूर से ही चवूतरे पर सन्तों को देखकर क्रोधाभिभूत हो अपशव्दों से स्वागत करना प्रारम्भ कर दिया । निकट आते ही उसने तत्काल हटने के लिये आदेश दिया और चेतावनी दी कि यहां से शीघ्र उठो, नहीं तो यह सब पात्र आदि फोड़ फेंकूंगा ।

सामयिक स्थिति को देख सन्तों ने पुनः धर्मशाला में आकर रात्रि विश्राम किया और प्रातः होते ही वहां से विहार कर संधवा एवं

वहां से पुनः ग्यारह कोस का उग्र विहार कर चौकी पधारे। मार्ग में आहार-पानी का संयोग तो न कुछ-सा मिला। यद्यपि उग्र विहार और अल्प आहार के कारण शरीर अवश्य कुछ निर्बल हो गया था, परन्तु मन अधिकाधिक प्रबल बनता गया और परिषहों का प्राबल्य सतत जाग्रत रहने के लिये प्रेरित करता रहता था।

साध्वाचार का पालन करना कितना कठिन है, यह उल्लिखित प्रसंग से ज्ञात होता है। संयम साधना करना कोई दूध-पताशे का कौर नहीं है, वरन तलवार की धार पर चलना है। ऐसी परिस्थिति में भी बिना किसी क्षोभ के सब कुछ सहन करना बहुत बड़ी बात है। प्रतिदिन का लगातार लम्बा विहार, सूर्योदय से सूर्यास्त तक पैदल चलना, कई दिनों तक भरपेट आहार न मिलना और उसमें भी यह कटुक व्यवहार। रात्रि विश्राम के लिये भी साधारण-सा स्थान नहीं। डांस मच्छरों को अपना शरीर समर्पित करना आदि ! हे साधना के पथिक मुनिराज ! तुम्हारा मार्ग तुम्हीं को शोभा देता है।

चौकी से विहार कर शीरपुर, वागजी होते हुए सभी सन्त मांडल पधारे और वहां पांच-छह दिन बिराजकर धूलिया पहुंचे। धूलिया में पूज्य श्री जवाहरलाल जी म० सा० को ज्वर हो जाने से एक सप्ताह रुकना पड़ा। किन्तु स्वास्थ्य ठीक होते ही पारोली की ओर विहार कर दिया।

पारोली में मुनि श्री लालचन्द जी म० सा० विराजते थे। वे बहुत दिनों से रुग्ण थे और पूज्य श्री जवाहरलाल जी म० सा० के दर्शनों के इच्छुक थे। आपने उन्हीं की भावना को जानकर इस ओर विहार किया ही था कि चारोली के निकटवर्ती ग्राम राहोरी पहुंचने पर उनके स्वर्गवास होने के समाचार मिले। अतः चारोली जाना स्थगित करके पुनः मालवा की ओर विहार करने का विचार होने लगा। किन्तु अहमदनगर संघ की विनती से अहमदनगर की ओर विहार हुआ।

विभिन्न क्षेत्रों की ओर से आगामी चातुर्मास के लिये विन-

तियां हो रहीं थी, किन्तु विशेष प्रभावना और धर्मोपकार होने की सम्भावना से सं० १९७९ का चातुर्मास सतारा हुआ। सतारा में श्री भीमराज जी व श्री सिरेमल जी की भागवती दीक्षायें सम्पन्न हुई।

चातुर्मास समाप्ति के अनन्तर पूना आदि सुदूर दक्षिण तक विहार होने से जनसाधारण को जैन धर्म के सिद्धान्तों, विशेषताओं की जानकारी मिलने के साथ-साथ मिथ्या-धारणाओं का निराकरण हुआ।

चातुर्मास का समय निकट था और दक्षिण के विभिन्न स्थानों के श्री सघ आगामी चातुर्मास के लिये उत्सुक थे। अत. समय और धार्मिक प्रभावना को लक्ष्य में रखते हुए सं० १९८० का चातुर्मास वंबई के निकट घाटकोपर में किया।

इस चातुर्मासकाल में धर्म-प्रभावना के विभिन्न कार्य होने के उपरांत सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य जीवदया के निमित्त हुआ। वबई बड़ा नगर है और वहां के बूचड़खाने में दुधारु गाय, बैलों का कतल होता था। यह वहां की अहिंसा प्रेमी जनता के लिये एक कलंक था। पूज्य श्री जवाहरलाल जी म० सा० ने इस कुकृत्य की ओर संकेत किया। अतः इन पशुओं को मौत के मुंह में जाने देने से रोकने के लिये जीव-दया खाते की स्थापना करके करीब सवा लाख रुपये का कोष एकत्रित हुआ। वर्तमान में इसके द्वारा हजारों गाय-भैंसों को कसाइयों के हाथों से बचा कर अभयदान का कार्य चल रहा है।

घाटकोपर चातुर्मास समाप्ति के पश्चात ववई के निकटस्थ उपनगरों और नाशिक आदि क्षेत्रों में विहार करके सन्तों का आषाढ़ कृष्णा नवमी, स० १९८१ को जलगांव पदार्पण हुआ।

जलगांव के प्रसिद्ध सुश्रावक सेठ श्री लक्ष्मणदासजी श्रीश्रीमाल पूज्य आचार्य श्री जी म० सा० के अन्यन्य भक्तों में से थे और आप चाहते थे कि आचार्य श्री जी जलगांव पधार कर चातुर्मास करें। इसके लिये काफी समय से विनती कर रहे थे, जिसकी पूर्ति का सुअवसर अब प्राप्त हो सका और सं० १९८१ का चातुर्मास जलगांव होना निश्चित

हुआ।

संघ-नेतृत्व के भार पर

आचार्य श्री जी आदि मुनिराजों का चातुर्मास अपने यहां निश्चित होने से जलगांव निवासी उत्साह एवं भव्य भावनाओं के वातावरण से ओतप्रोत थे। प्रतिदिन श्रोतागण अभूतपूर्व प्रवचनों का आस्वादन करते हुए आत्मशुद्धि के लिये तप-त्याग आदि संयम-साधना में संलग्न रहते थे कि अकस्मात आषाढ़ कृष्णा अमावस्या को आचार्य श्री जी की हथेली में दर्द होना शुरु हो गया। दर्द असह्य था और उसके चार दिन बाद हथेली में एक छोटी सी फुन्सी निकल आई। जिससे दर्द और बढ़ गया। दर्द को दूर करने के लिये साधारण फुन्सी समझ कर उसे फोड़ तो दिया गया, लेकिन दो-चार दिन बाद उसने ऐसा भयंकर रूप ले लिया, कि उससे आचार्य श्री जी का जीवन भी संकटापन्न-सा प्रतीत होने लगा।

आचार्य श्री जी को इस स्थिति में भी अपने शरीर की चिन्ता नहीं थी। लेकिन संघ की भावी व्यवस्था के लिये उन्हें अवश्य ही विचार आया। किसी सुयोग्य उत्तराधिकारी के हाथों संघ का उत्तरदायित्व सौंपे बिना यह चिन्ता दूर नहीं हो सकती थी। एतदर्थ आचार्य श्री जी ने अपने सम्प्रदाय के समस्त सन्तों पर दृष्टि निक्षेप किया और सुयोग्य उत्तराधिकारी की दृष्टि से उनका ध्यान चरितनायक मुनिश्री गणेशलाल जी म० सा० पर केन्द्रित हो गया। आपको संघ का शासन सौंप देने के बारे में भली-भांति विचार कर लेने के पश्चात उपस्थित समाज के अग्रणी श्रावकों और सन्तों को अपनी भावना बतलाई और विचार-विमर्श किया। सम्प्रदाय के अन्यान्य सन्त-मुनिराजों और श्रावकों से राय मंगवाई। सभी ने आचार्य श्री जी के विचारों का अनुमोदन करते हुए सुयोग्य उत्तराधिकारी के चयन की प्रशंसा की।

इतना सब कुछ हो रहा था। लेकिन जिनके बारे में यह सब कुछ था उन्हें अभी तक कुछ भी पता नहीं चला। वे थे चरितनायक

मुनिश्री गणेशलाल जी म. सा.। अकस्मात किसी एक दिन सेठ श्री वर्धमान जी पीतलिया आपके पास आये और कहा— महाराज मैं आप से एक निवेदन करने आया हूँ। यह तो आप देख ही रहे हैं कि आचार्य श्री जी म. सा. का स्वास्थ्य ठीक नहीं है। ऐसी स्थिति में आप आचार्य श्रीजी को किसी प्रकार से असमंजस में न डालें और वे आपको जो आज्ञा दें, उसे स्वीकार कर लें।

सेठजी की बात सुनकर मुनिश्री को आश्चर्य हुआ। आपने उत्तर दिया— आज आपको ऐसा कहने की क्यों आवश्यकता हुई? मैंने तो कभी भी पूज्यश्री की आज्ञा नहीं टाली, मैं तो उनका एक तुच्छ सेवक हूँ और इसी रूप में रहना चाहता हूँ।

श्री पीतलिया जी के वापिस चले जाने के पश्चात मुनिश्री पूज्यश्री की सेवा में उपस्थित हुए और आचार्य श्रीजी ने समस्त स्थिति को समझाते हुए संप्रदाय का भार स्वीकार करने के लिये कहा। यह सुनकर चरितनायक को श्री पीतलिया जी के वार्तालाप का स्मरण हो आया और इस विलक्षण आज्ञा से असमंजस में पड़ गये। अपनी सामर्थ्य और दायित्व की तुलना कर इसके लिये अपनी असमर्थता व्यक्त की तो श्री पीतलिया जी ने आपकी ओर देखा जिसका स्पष्ट संकेत था कि आज्ञाकारी और विनीत शिष्य होते हुए आचार्य श्रीजी के शरीर की इस नाजुक स्थिति में यह अस्वीकृति क्यों प्रगट कर रहे हो!

विचारों के इस त्रिकोणात्मक द्वन्द्व का परिणाम यह हुआ कि चरितनायक को विवश होकर इस उत्तरदायित्वपूर्ण भार को स्वीकार करने की स्वीकृति देनी पड़ी। स्वीकृति के अनंतर सेठ श्री वर्धमानजी पीतलिया ने व्यवस्था-पत्र का प्रारूप बनाया और मुनिश्री घासीलालजी म. सा. के द्वारा उसकी प्रतिलिपि कराकर आचार्य श्रीजी ने अपने पास रख ली।

आचार्य श्रीजी की अस्वस्थता से चतुर्विध संघ अत्यन्त चिन्तित हो उठा। उपचारार्थ बम्बई के सुप्रसिद्ध चिकित्सक डा. मूलगांवकर

को बुलाया गया और निदान से निश्चय हुआ कि फोड़े का कारण मधुमेह है। फोड़े के आप्रेशन के साथ मधुमेह की भी चिकित्सा की गई और संघ के प्रबल पुण्योदय से संवत्सरी तक आचार्य श्रीजी इतने स्वस्थ हो गये कि करीब २० मिनट प्रवचन फरमाया।

शनैः-शनैः आचार्य श्रीजी का स्वास्थ्य प्रगति कर रहा था। अतः तत्काल तो युवाचार्य पदवी प्रदान करने की शीघ्रता नहीं रही थी किन्तु भावी संघ नेतृत्व का बीज बोया जा चुका था और समग्र चतुर्विध संघ को भी आचार्य श्रीजी के विचार ज्ञात हो गये थे। अब तो सिर्फ वैधानिक रूप से घोषणा होने के समय की प्रतीक्षा करना शेष था।

चातुर्मास समाप्ति तक आचार्य श्रीजी के रोगमुक्त शरीर में इतनी शक्ति आ गई थी कि थोडा बहुत विहार हो सके। अन्नपाचन भी ठीक तरह से हो जाता था। अतः जलगांव के आस-पास के क्षेत्रों में विचरण करके पुनः सं० १९८२ का चातुर्मास जलगांव में किया। इस चातुर्मासकाल में शारीरिक स्थिति में समुचित सुधार हुआ और लम्बा विहार होने योग्य शक्ति भी प्राप्त हो चुकी थी। अतः आचार्य श्रीजी म० सा० ने मालवा की ओर विहार करने का विचार किया।

महाभाग मुनिश्री मोतीलाल जी म. सा. आचार्य श्रीजी के साथ ही रहते थे। अब वे काफी वृद्ध हो गये थे और विहार के योग्य शारीरिक शक्ति भी अत्यल्प रह गई थी। अतः उन्होंने जलगांव में ही स्थिरावास करना उचित समझा। आचार्य श्रीजी म. सा. ने मुनि श्री गणेशलाल जी म. सा. आदि चार संतों को उनकी सेवा में छोड़कर चातुर्मास समाप्ति के अनन्तर मालवा की ओर विहार कर दिया।

सेवा के साकार रूप : अभय के अग्रदूत

महाभाग मुनिश्री मोतीलालजी म. सा. की सेवा में होने से चरितनायक ने सं० १९८३ का चातुर्मास जलगांव में किया। प्रतिदिन स्थविर पद विभूषित गुरु श्री की पूर्ण मनोयोग से सेवा-शुश्रुषा करते

हुए शास्त्रीय अभ्यास में निमग्न रहते और गुरुदेव से प्राप्त ज्ञान को अपनी वाणी द्वारा प्रवचन के रूप में श्रोताओं को सुनाते। आपकी चारित्र साधना का परिचय तो चतुर्विध संघ को पहले से ही प्राप्त हो गया था और अब प्रवचनों से विद्वत्ता, शैली आदि का भी परिचय मिला।

इन्हीं दिनों मुनिश्री मोतीलाल जी म. सा. काफी अस्वस्थ हो गये। दस्तों की बीमारी थी और शारीरिक स्थिति के अतिक्षीण हो जाने से मानसिक संतुलन भी समुचित रूप में स्थिर नहीं रहता था। कभी-कभी वस्त्र भी मल से भर जाते थे। लेकिन चरितनायक पूर्ण मनोयोग से उनकी सेवा करते। मलदूषित वस्त्रों को निग्लानि भाव से स्वच्छ करते। कभी-कभी तो ऐसे अवसर भी आ जाते कि अध-बीच में आहार करना छोड़कर उठना पड़ता था। इस स्थिति में खेद-खिन्न हो जाना सहज है लेकिन उस समय भी क्षण भर का प्रमाद न करते हुए आप पूर्ववत् अग्लान भाव से रोगी मुनिश्री की सेवा-परिचर्या में लग जाते थे।

यद्यपि महाभाग मुनिश्री मोतीलाल जी म. सा. का अच्छे से-अच्छा उपचार हो रहा था। लेकिन दिनोंदिन जीवन की आशा क्षीण होती गई और अन्त में सं० १९८३, फाल्गुन कृष्णा १३ को उनका देहावसान हो गया।

आपने जिस लगन और अध्यवसाय से मुनिश्री की सेवा की थी उसकी तुलना नहीं की जा सकती है। आपकी सेवा भावना में अयं निजा परोवेति गणना लघुचेतसां की तरह गुरुजनों के लिये पक्षपात नहीं था, किन्तु 'उदार चरितानांतु वसुधैव कुटुम्बकं के समान सामान्य सन्तों को भी सेवा के सुअवसर प्राप्त थे।

चरितनायक सेवा-वैयावच्च करने के लिये जितने तत्पर थे, उससे भी अधिक उपसर्ग और परिषहों की वेला में स्वय निर्भय और निर्द्वन्द्व रहकर साथी सन्तो को भयमुक्त रखने के लिये भी सन्नद्ध रहते

थे । इसके अनेक उदाहरण आपकी जीवन गाथा में यत्र-तत्र उपलब्ध हैं । जिनमें से एक-दो प्रसंगों का यहां उल्लेख कर देना उपयुक्त है—

एक वार चरितनायक सतपुड़ा पर्वत की तलहटियों में से होकर विहार कर रहे थे । बीच-बीच में बियावान जंगल पड़ता था । बनैले हिंसक जानवर शेर, चीते आदि की गर्जना से जंगल बड़ा भयावना लगता था । उस समय नवयुवा दो विद्यार्थी सन्त श्री श्रीमलजी म. तथा श्री जेठमलजी म. आपके साथ थे । आगे-आगे आप और पीछे दोनों सन्त चल रहे थे । अकस्मात आपकी दृष्टि दो खूंखार शेरों पर पड़ी । सिर्फ चालीस पचास कदम का फासला था । आप तो निर्भय थे। दोनों ओर से आंखें आपस में टकराई । एक ओर तो आंखों में हिंसा का रौद्रभाव झांक रहा था तो दूसरी ओर उन पर भी मैत्री, करुणा और निर्भयता का अभीवर्षण हो रहा था ।

आपको अपने जीवन का मोह नहीं था । किन्तु इस स्थिति में दोनों सन्त भयभीत न हो जायें, अतः उनके निकट आने तक आप ठिठक कर खड़े हो गये । विद्यार्थी सन्तों के निकट आने पर संकेत द्वारा वन राजाओं को दिखलाया ।

कुछ क्षण बीते । मृगेन्द्रों ने महर्षि की महानता को परखा । क्रूरता समता में रूपान्तरित हो गई । 'अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः' के आदर्श को प्रतिफलित करते हुए चरणारविन्दों में नत-मस्तक होकर वनराजि की ओर वनराजों ने मुख मोड़ लिया कि हे अभय अद्वेष के पथ पर आरूढ़ साधक ! हे मुनि पुंगव ! हे श्रमणोत्तम ! तेरी साधना का दिव्य प्रकाश जन-जन को परम कल्याण की ओर गति-शील रहने के लिये प्रेरणादायक हो, तेरी अविचलता विकासोन्मुखी आत्माओं को विकार के कारण उपस्थित होने पर भी अविचलित रहने की सामर्थ्य प्रदान करे । तू धन्य है, तेरी दृढ़ता धन्य है, तेरा साहस धन्य है और तेरे दर्शन कर हम धन्य हैं, अपने सौभाग्य के लिये गर्व है, कृतार्थ हो गये हैं और विजित होकर भी गौरवान्वित हैं ।

भवाटवी के भय भी जिन्हें भयभीत नहीं कर सके, उनके लिये यह वनाटवी का भय कैसे भयभीत कर सकता था ? अतः सहगामी सन्त युगल के साथ विहार के पथ पर बढ़ते चरण पुनः मंथरगति से गंतव्य की ओर बढ़ चले। न तो चहरे पर भय था, न चिन्ता की रेखायें ही ऊभर रही थीं और न जीवन रक्षा होने की खुशी ही। वहां तो अठखेलियां कर रही थी वीतरागता और समता की अपूर्व प्रभा।

यथा समय विश्राम योग्य स्थान आया और वहाँ रात्रि विश्राम करके धर्मदेशना से जन-जन को मुखरित करने के लिये पुनः बढ़ चले।

किसी एक समय की बात है। चरितनायक सन्तों के साथ मरुधरा मारवाड़ के मैदानों में विचरण कर रहे थे। मरुधरा में गांव दूर-दूर बसे हुए हैं और पगडंडियों का तानाबाना रेत से व्याप्त होने के कारण अधिकतर दिशा-बोध के सहारे ग्राम से ग्रामान्तर जाना पड़ता है। लोगों ने कहा कि अमुक गांव पास ही है और सूर्यास्त से पहले-पहले वहां पहुंचा जा सकता है। अतः दिन के तीसरे पहर गंतव्य गांव की ओर विहार कर दिया। अपरिचित होने से रास्ता भटक गये और रास्ता भी लम्बा था। इसलिये आधी दूर पहुंचते-पहुंचते सूर्यास्त होगया।

सूर्यास्त के बाद विहार न होने की साधुमर्यादा है अतः सन्तों के साथ एक पेड़ के नीचे विश्राम हेतु विराज गये। सायंकालीन प्रतिक्रमण आदि करके आत्मध्यान में लीन हो गये। ध्यानोपरांत तात्विक चर्चा में कुछ समय व्यतीत करने के बाद मार्गजनित शारीरिक थकावट दूर करने के लिये भूशयन किया ही था कि कुछ ऐसी आवाज सुनाई दी, जैसे निकट सर्प हो। सोचा जंगल है, इधर-उधर कोई जंगली जानवर होंगे। पास में अन्य सन्त शयन कर रहे थे अतः उन पर दृष्टि डालकर कपड़े आदि ठीक से ओढ़ा दिये और आप श्री भी चद्दर को ओढ़ कर पौढ़ गये।

शयनावस्था में कुछ क्षण ही बीते होंगे कि पैरों पर कुछ वजन-सा मालूम हुआ। ऊपर ओढ़ी चद्दर को कुछ हिलाया जिससे वह वजन

हट गया और निश्चिन्त होकर सो गये और प्रतिदिन की तरह रात्रि के पिछले प्रहर में जागकर स्वाध्याय आदि साधना में रत हो गये। यथा-समय दूसरे सन्त भी जागे और उन्होंने भी स्वाध्याय, प्रतिक्रमण आदि किया।

सूर्योदय होने में विलम्ब था। प्रतिक्रमण, वंदना आदि करने के पश्चात सब सन्त यथा-स्थान आपके समक्ष बैठकर अध्ययन करने लगे। यह सब करते हुए भी किसी को यह प्रतीत ही नहीं हुआ कि कोई सर्पराज भी निकट में स्थित हैं। स्वनिरीक्षण में रत को परनिरीक्षण के लिये अवकाश मिलना असम्भव रहता है।

जैसे ही सूर्योदय हुआ कि समीपस्थ सर्प पर आपकी दृष्टि गई। अन्य सन्तों को भी उसकी ओर देखने के लिये संकेत किया। सर्प अपनी कुण्डली मारे ध्यानस्थ-सा बैठा था। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि साधना में रत साधुओं के सहवास से वह भी आत्म-समाधिस्थ होने की शिक्षा ले रहा है। आपश्री आदि सन्त प्रतिलेखना को तैयार हुए और वह सन्तों का सत्वपरीक्षक करालकाल वहां से रेंगता हुआ अपने बिल की ओर चल दिया। शायद उस समय उसके मन में विचार आया हो कि—

स्व पर-हितकारी, परदुख-कातर, मैत्री, प्रमोद, करुणा और माध्यस्थ भावना से समृद्ध सन्त-जन 'सर्वभूत हितेरतः' के साकार रूप हैं तो उन्हें सता कर कौन अपने को कलंकित करना चाहेगा ?

ऐसे ही और इनसे मिलते-जुलते प्रसग अनेक हैं। जिन प्रसगों का यहां उल्लेख किया है, उनसे ही आपकी सेवा-भावना, सरलता, वत्सलता, निर्भयता और आत्मीयता का दिग्दर्शन पर्याप्त रूप से हो जाता है। संक्षेप में कहें तो आप अपनी कर्तव्यनिष्ठा और सजगता की उपमा आप स्वयं ही हैं।

पुनः गुरुदेव के सान्निध्य में

महाभाग मुनिश्री मोतीलाल जी म० सा० स्वर्गस्थ होने के

पश्चात चरितनायक अपने अन्य तीन सन्तों के साथ जलगांव से विहार करके आचार्य श्रीजी म० सा० की सेवा में उपस्थित हो गये और आचार्य श्रीजी के साथ ही सं० १९८४ का चातुर्मास भीनासर-गंगाशहर में किया।

यह चातुर्मास श्री वाड़ीलाल मोतीलाल शाह की अध्यक्षता में श्री अ० भा० श्वे० स्थानकवासी जैन कान्फरन्स और भारत जैन महा-मण्डल के अधिवेशन एवं श्री श्वेताम्बर साधुमार्गी जैन हितकारिणी संस्था की स्थापना होने से समाज के इतिहास में तो उल्लेखनीय है ही, किन्तु उसके साथ ही भारत के स्वाधीनता के इतिहास में भी स्वर्णाक्षरों में अंकित किया जायेगा।

उन दिनों भारत को स्वतन्त्रता देने के बारे में निर्णय करने हेतु लंदन में भारतीय और इगलैंड के प्रतिनिधियों के बीच गोलमेज परिषद होने जा रही थी। उसमें भाग लेने के लिये भारतीय प्रतिनिधि मंडल के एक सदस्य के रूप में तत्कालीन बीकानेर राज्य के प्रधान-मन्त्री सर मनुभाई मेहता लदन जा रहे थे। वे आचार्य श्री जवाहरलालजी म. सा. के दर्शनार्थ एवं भारतीय जन-भावना की सफलता के लिये आशीर्वादात्मक दो बोल सुनने के लिये पधारे। उस समय आचार्य श्रीजी ने उन्हें जो उपदेश दिया था उसमें आपश्री की राष्ट्रहित एवं जनता की भावना का स्पष्ट चित्र अंकित था कि कैसा भी अवसर हो किन्तु सत्य को सत्य कहने से न झिझकें। स्वतन्त्रता और धर्म एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। पराधीन और अत्याचार पीड़ित प्रजा में यथार्थ धर्म का विकास नहीं हो सकता है। धार्मिक और आध्यात्मिक विकास के लिये स्वतन्त्रता अनिवार्य है।

आचार्य श्रीजी के उक्त कथन में भारतीय आत्मा का समवेत स्वर गूंज रहा था कि सुख और शान्ति प्राप्ति के लिये स्वतन्त्र हो जाओ। परतन्त्र प्राणी न तो सुख प्राप्त करने में समर्थ हैं और न प्राप्त का उपभोग करने के अधिकारी हैं।

यह स्मरणीय चातुर्मास अनेक धार्मिक, सामाजिक और आध्यात्मिक विकास के कार्यों के साथ सोत्साह सम्पन्न हुआ।

थलीप्रदेश में

थली तेरहपंथियों की रंगस्थली है। वे इसे अपना अभेद्य दुर्ग मानते थे। वे अपने स्वच्छन्द, धर्मविरुद्ध विचारों को धर्म के नाम पर प्रचार-प्रसार करने का इससे अच्छा और दूसरा क्षेत्र नहीं समझते थे। वहां की भोली-भाली जनता धर्म विरुद्ध बातों को सुनते-सुनते धर्म के शाश्वत सत्य से विमुख-सी हो गई थी। उसकी विवेक बुद्धि सत्यासत्य का निर्णय करने में कुण्ठित-सी होकर सोचती थी कि साधु महाराज जो कुछ भी कह रहे हैं, वैसा ही भगवान महावीर ने जीव-दया आदि के बारे में फरमाया है। अपने को तो साधुजी के वचनों को प्रमाण मान लेना चाहिये।

आचार्य श्री जवाहरलाल जी म० सा० उनके इस अंध विश्वास को देखकर चकित रह जाते थे। आपश्री को इन भाव रोग से पीड़ितों पर दया आती थी और वास्तविकता से परिचित कराने की सद्भावना रखते थे। इसके साथ ही यह भी प्रतीत हो चुका था कि इस किले में प्रवेश करने पर विविध प्रकार की कठिनाइयों और परिषहों को सहना पड़ेगा लेकिन जब भगवान महावीर ने कठिनाइयों और परिषहों से अपना मार्ग न बदला तो उनके अनुगामी मार्ग-विरत कैसे हो सकते थे। अतः जन-कल्याण की कामना से प्रेरित होकर आचार्य श्रीजी ने थलीप्रदेश में प्रवेश करने का निश्चय कर मार्गशीर्ष शुक्ला ३ को चरितनायक आदि प्रमुख-प्रमुख २६ सन्तों के साथ चातुर्मास समाप्ति के अनन्तर बीकानेर से थली की ओर विहार कर दिया।

आचार्यप्रवर श्री जवाहरलालजी म० सा० का व्यक्तित्व अनूठा था, दिव्य था। उनकी प्रतिभा असाधारण थी। हृदय को आकर्षित करने वाली ओजस्विता और तर्क की तूलिकाओं से प्रतिपाद्य विषय की साकार तस्वीर अंकित कर देने वाली वाणी के वे धनी थे।

आपश्री ने वैसे तो राजस्थान और मालव के विभिन्न क्षेत्रों को अपने विहार से पावन किया था। लेकिन राजस्थान का यह भू-भाग अभी तक भी जैनधर्म के यथार्थ सिद्धान्तों का प्रचार-प्रसार करने वाले सन्तों के चरणन्यास से वंचित था और जैनधर्म के नाम पर शास्त्र-विरुद्ध मान्यताओं के अनुयायी भी वहां विचरण करने वाले वीतरागी सन्तों को सहन नहीं करते हैं।

यद्यपि थलीप्रदेश अनार्य देश नहीं है, तथापि वहां के बहुसंख्यक अपने को भगवान महावीर का अनुयायी कहने में गौरव मानते हुए भी दया, दान, परोपकार, परसेवा आदि भगवान महावीर के सिद्धान्तों में अधर्म मानते हैं। पूज्यश्री इन्हीं मान्यताओं एवं मानवता के लिये कलंक रूप विचारों का उन्मूलन करना चाहते थे। अतः भगवान महावीर के विहार से प्रेरणा लेकर आपश्री ने सन्त-मण्डली सहित थलीप्रदेश के मुख्य नगर सरदारशहर में पदार्पण किया।

सरदारशहर में आपश्री के प्रभावशाली प्रवचनों एवं दया, दान, सेवा, परोपकार आदि के सम्बन्ध में भगवान महावीर के सिद्धान्तों की यथार्थ जानकारी देने से जनता में बहुत ही सुन्दर अनुकूल प्रतिक्रिया हुई और शास्त्रविरुद्ध मान्यताओं के भ्रम से मुक्ति पाकर, धर्म के सच्चे स्वरूप को समझकर बहुत से सज्जनों ने समकित ग्रहण की।

पूज्य आचार्य श्री जवाहरलाल जी म० सा० आदि सन्तों के सरदारशहर पधारने से तेरहपंथियों में खलबली मच गई थी और प्रतिरोध करने की अनेक योजनायें बनाई जाने लगीं। मगर खेद है कि उनमें से एक भी ऐसी नहीं थी जो सफल हुई हो और जिसका सभ्य संसार द्वारा अनुमोदन किया जा सके।

साधु जीवन में आर्थिक या राजनीतिक संकटों के लिये कोई अवकाश नहीं है। लेकिन कभी-कभी विपरीत मनोवृत्ति वाले अज्ञानी लोगों का जमघट अवश्य आत्म-समाधि में विघ्न, विक्षेप और व्याघात उपस्थित कर देता है।

उन दिनों तेरहपंथी संप्रदाय के पूज्य कालूराम जी स्वामी भी सरदारशहर में मौजूद थे। उन्हें आचार्य श्री जवाहरलाल जी म० सा० के ओजस्वी प्रवचनों से अपनी प्रतिष्ठाहानि का भय दिखा और येन-केन-प्रकारेण आचार्य श्रीजी को परेशान करके मैदान मारने का रास्ता अपनाया। लेकिन प्रयास करने पर भी उन्हें सफलता न मिली और न्यायात् पथः प्रवचलन्ति पद न धीराः, धीरवीर न्याय मार्ग से विचलित नहीं होते हैं— की उक्ति के अनुसार आचार्य श्रीजी विरोध को विनोद मानते हुए सद्धर्मदेशना के मार्ग पर अग्रसर ही रहे।

तेरहपंथी सरदारों के शहर सरदारशहर को सर करने के पश्चात पूज्य आचार्य श्रीजी चूरू पधारे। किन्तु चूरू पदार्पण के पूर्व ही आपश्री की कीर्ति वहां पहुंच चुकी थी। जब अपनी शिष्य मण्डली के सहित आप नगर के निकट पहुंचे तो जनता ने भक्ति-भावपूर्वक अगवानी करके ससमारोह नगर प्रवेश कराया। उन दिनों वहां तेरहपंथियों के माघ महोत्सव की तैयारियां हो रही थीं। सैकड़ों साधु-साध्वियां और हजारों अनुयायी एकत्रित हो रहे थे। यद्यपि वहां भी अनेक प्रकार से उपद्रव करने की चेष्टायें की गईं किन्तु वे सभी प्रयत्न और चेष्टायें विफल एवं निरर्थक सिद्ध हुईं।

चूरू नगर में आचार्य श्रीजी की ओजस्वी वाणी का गम्भीर प्रभाव पड़ा। बहुत से भाई शंका-समाधान करने के लिये सेवा में उपस्थित होते थे और आचार्य श्रीजी आगम प्रमाणों के साथ उनका सयुक्तिक समाधान करते थे। परिणामतः बहुत से सज्जन शुद्ध श्रद्धा धारण कर आपश्री के अनुयायी बन गये।

प्रथम स्वतन्त्र चातुर्मास

एक दिन तात्त्विक चर्चा-विचारणा के बीच चूरू के कतिपय विचारक और धर्म-प्रेमी प्रमुख-प्रमुख भाइयों ने आचार्य श्रीजी से चूरू में आगामी चातुर्मास करने की प्रार्थना की। किन्तु आचार्य श्रीजी समग्र थली प्रदेश में विहार करने के पश्चात किसी ऐसे स्थान पर चातु-

र्मास करना उचित समझते थे जहां धार्मिक दृष्टि से विशेष उपकार होने की सम्भावना हो। अतः वहां के भाइयों की विनती तत्काल स्वीकार न कर सके।

तब उन भाइयों ने अपनी मनोभावना व्यक्त की कि आपको यह तो भली-भांति विदित है कि हमारे घर में भी हमारा कोई समर्थक नहीं है। लोग हमारा विरोध करने पर तुले हुए हैं और आपने सभी स्थिति परखी ही है। ऐसी स्थिति में आपकी तपस्या ही सफलता का रंग ला सकती है। अतः कदाचित आपका चातुर्मास होना सम्भव न हो तो अपने जैसे प्रभावशाली सन्तों का चातुर्मास कराने की आज्ञा दीजिये।

चूरू में धर्म-जिज्ञासुओं की अपेक्षा निष्कारण वैर बांधने वालों की संख्या अधिक थी और वे नहीं चाहते थे कि जनता को जैनधर्म के सिद्धान्तों की यथार्थता से परिचित कराने वाले साधु-सन्तों का यहां चातुर्मास हो। वहां अत्यन्त प्रतिभाशाली और शास्त्रज्ञ साधु ही निभ सकता था। अतएव उनके कथन पर गम्भीरता से विचार करते हुए आचार्य श्रीजी की दृष्टि चरितनायक मुनिश्री गणेशलाल जी म० सा० पर गई और विद्वत्ता, शास्त्रीयज्ञान आदि की प्रौढ़ता को लक्ष्य में रखते हुए चरितनायक जी को चूरू में चातुर्मास करने की आज्ञा फरमाई। इस स्वीकृति से चूरूवासियों को मनचाही मुराद मिल गई थी और उनके हर्ष का पारावार न रहा।

चरितनायक जी तो गुरोराज्ञा बलीयसी अपने जीवन का मूलमंत्र मानते थे और विना ननुनच किये अंगीकार करने में गौरव समझते थे। अतः आचार्य श्रीजी के आदेश को सहर्ष शिरोधार्य कर लिया।

चातुर्मासकाल में चरितनायक जी की विद्वत्ता, तर्कशक्ति, सरलता आदि अनेक सद्गुणों से जनता परिचित हुई। मध्यस्थ जनता ने आपकी महत्ता को समझा। प्रतिदिन हजारों श्रोता आपके तात्विक एवं तर्कपूर्ण प्रवचनों का लाभ उठाते थे। आप प्रवचन में शास्त्रीय प्रमाणों एवं मानवीय भावों का विवेचन करते हुए दया-दान के महत्त्व पर

प्रकाश डालते थे और जब मध्याह्न में अनेक तत्त्व-जिज्ञासु भाई एवं विद्वज्जन अपनी शंकाओं का समाधान प्राप्त करने के लिये आते तो आपश्री उनके विचारों का प्रमाण पुरस्सर समाधान करते थे। परिणामतः जिज्ञासु व्यक्ति आपके भक्त बनते गये।

धर्मामृत की वर्षा से चूरू की जनता ने चरितनायक जी को अपने मन-मन्दिर में आराध्यदेव की तरह प्रतिष्ठित कर लिया था और प्रायः समस्त नगरवासी प्यार और श्रद्धा भरे शब्द 'गणेशनारायण' से सम्बोधित करती थी।

इस चातुर्मास का दो दृष्टियों से महत्त्व है। प्रथम, चरितनायक जी ने स्वतन्त्र रूप से चातुर्मास करने का और द्वितीय, अन्धश्रद्धा एवं भ्रांतिपूर्ण विचारों से ग्रस्त महानुभावों ने धर्म का यथार्थ बोध प्राप्त करने का श्रीगणेश किया था। परिणामतः संवत्सरी के दिन चूरू नगर में लगभग ३५० उपवास, पौषध, दया, सामायिक आदि धर्म क्रियायें गृहस्थों ने की थीं। इसके बाद तो यह धर्माचार की धारा वृद्धिगंत ही होती रही और चरितनायक जी निस्पृह हो तात्त्विक जानकारी देते हुए आध्यात्मिक आनन्द के हिंडोलों में झूलते रहते थे। शरीर के प्रति भी उतने ही उदासीन थे जितने ऐहिक भोगों के प्रति। इस सम्बन्ध में एक मनोरंजक घटना उल्लेखनीय है।

निस्पृह शास्ता

मोठ, बाजरा, ग्वार थली प्रदेश का मुख्य भोजन है। चूरू की जनता अपने गणेशनारायण को यह भोजन बड़े प्रेम से देती पर घी, दूध, दही संकोचवश नहीं दे पाती कि कहीं महात्माजी नाराज न हो जायें। भक्तजन अपने संकोच से कुछ कह भी नहीं पाते और इधर महात्माजी थे जो मोठ, बाजरी, ग्वार से उदरदरी को भरते हुए जनता को अमृतपान कराते रहते थे।

महात्मा जी तो संतुष्ट थे, मगर शरीर, वह तो आखिर जड़—मूर्ख—ठहरा। उसेप्रेम रस में पगे हुए अनिर्वचनीय आनन्द की अनुभूति

कैसे हो सकती थी ? जड़ में विवेक हो तो वह भी समझे। वह तो अपने स्वार्थ को ही परखता है। अतः इस नीरस भोजन को पाकर रूठ गया। उसने असहयोग का अस्त्र संभाला। मानो चुनौती दे दी कि आप जब मेरी परवाह नहीं करते तो मुझे भी क्या पड़ी है जो मैं अपना सहयोग देता रहूँ। काया कृश हो गई, नेत्रों की ज्योति भी मंद पड़ गई। किन्तु इस शारीरिक असहयोग से मन कृश नहीं हुआ। अन्तर् में निर्बलता नहीं आई बल्कि आत्मिक तेज और अधिक जाज्वल्यमान हो उठा।

सफलता के साथ चातुर्मास समाप्त हुआ और विहार का समय आ पहुंचा। सन्तों ने विहार के लिये पग बढ़ाये कि दृश्य कारुणिक हो उठा। जनता ने उमड़ते हृदय और अश्रुपूरित आंखों से विदाई दी। सैकडों की संख्या में जनता अपने गणेशनारायण के साथ चल पड़ी।

चूरू से विहार करते हुए चरितनायक जी आदि संत आचार्य देव के चरणों में पधारे। आचार्य श्रीजी ने चातुर्मास सम्बन्धी समाचारों के प्रसंग में शारीरिक कृशता और नेत्र-ज्योति की मंदता का कारण भी पूछा। बात दूसरों ने भी सुनी और उडती-उडती चूरू जा पहुंची। जिसे सुनकर वहां के निवासी अपने आप में अफसोस करने लगे और उससे भी जब उन्हें सन्तोष नहीं हुआ तो प्रतिनिधिमण्डल बनाकर आप व आचार्य श्रीजी की सेवा में उपस्थित हुए।

प्रतिनिधिमण्डल ने क्षमायाचना करते हुए पश्चाताप के स्वर में अपनी अजानकारी के लिये आपको उपालंभ-सा देते हुए कहा— भगवन् ! चार माह तक आत्मोत्थान के लिये धर्म का सरल, सीधा मार्ग बतलाया, लौकिक जीवन में धर्म सिद्धान्तों की उपयोगिता आदि बहुत-सी बातें समझाईं तो एक बात और समझा दी होती। थोड़ा सा संकेत भी तो नहीं मिल पाया कहीं से और हम भी संकोचवश अपने आप कुछ सोच-समझ न सके। हमारी न समझी का प्रायश्चित्त आपने किया। यह आपकी लोकोत्तर उदारता है, किन्तु हमारे संताप की सीमा नहीं है। आपको जो कष्ट उठाना पड़ा है, वास्तव में हम ही उसके

लिये उत्तरदायी हैं। हमें हमारे प्रमाद के लिये शुद्धि का मार्ग बतलाइये, जिससे कुछ सन्तोष मिले।

चरितनायक जी तो चूरू निवासियों के अध्यात्मिक उत्साह, जिज्ञासा और धार्मिक स्नेहसुधा का पान करके परितृप्त थे। अतः उन्होंने प्रतिनिधि मण्डल को इन बातों की ओर ध्यान न देते हुए उत्तरोत्तर आध्यात्मिक विकास की ओर बढ़ते रहने के लिये समझाया।

लेकिन इन भावों से उन भोले भक्तों का समाधान हुआ या नहीं, किन्तु इतना अवश्य मालूम है कि चूरू की जनता अपने गणेशनारायण को नहीं भुला सकी है और उनके हृदयों में अनेक स्मृतियां आज भी जैसी की तैसी बनी हुई हैं।

पुनः चूरू में चातुर्मास

चूरू निवासियों की तीव्र आकांक्षा थी कि पुनः लाभ प्राप्ति का मौका मिले। अतः उन्होंने आचार्य श्रीजी की सेवा में चूरू में चातुर्मास करने की अपनी विनती दुहराई। आचार्य श्रीजी समयज्ञ थे। आपश्री ने द्रव्य, क्षेत्र आदि की परिस्थिति को समझकर सं० १९८६ का चातुर्मास चूरू करने की स्वीकृति फरमा दी।

आचार्य श्रीजी ने चरितनायक जी आदि संत-मुनिराजों के साथ चातुर्मासार्थ चूरू में पदार्पण किया। गत वर्ष के चातुर्मास समय में चूरू-निवासियों ने चरितनायक जी के प्रवचनों से चुन-चुनकर अनेक आध्यात्मिक-आदर्शों को आत्मसात किया था और चरितनायक जी द्वारा बोये गये धर्म-श्रद्धा के बीज आचार्य श्रीजी के वाणीवारिदों की वर्षा से पल्लवित हो उठे। धनतेरस के दिन नगर के अग्रणी और तेरहपंथी समाज के प्रतिष्ठित सज्जन श्री मूलचन्द जी कोठारी ने पूज्य श्रीजी से श्रद्धा ग्रहण कर ली। इस अवसर पर आपने घोषित किया कि मैं सत्य को समझकर यह श्रद्धा ग्रहण कर रहा हूँ। जैनधर्म के सिद्धान्त मानवता का विकास करते हैं। उनमें कभी भी जीवों के प्रति करुणा-दया न करने और दान न देने का उल्लेख नहीं है। इस विषय में मुझे लेशमात्र भी संशय

नहीं है। हाँ अगर किसी को संदेह हो तो पूज्य आचार्यश्री जवाहरलाल जी म० सा० के सान्निध्य में आकर शास्त्रार्थ कर लें। अगर मेरा पक्ष पराजित हुआ तो मैं एक लाख रुपये गोशाला के निमित्त दान दूंगा और यदि तेरहपंथी पक्ष पराजित हो जाये तो भले ही वह कुछ न दे। लेकिन किसी ने भी इस चुनौती को स्वीकार करने का साहस नहीं दिखलाया।

उल्लास पूर्ण वातावरण में यह प्रभावक चातुर्मास पूर्ण हुआ। मगसिर कृष्णा १ को विहार कर थली के विभिन्न क्षेत्रों को स्पर्श करते हुए आचार्य श्रीजी म० सा० आदि संत-मुनिराज सुजानगढ़ पधारे। उन दिनों वहां तेरहपंथी सम्प्रदाय के पूज्य श्री कालूराम जी स्वामी विराजते थे और माघ महोत्सव की तैयारियां चल रही थीं। उपस्थित जनता ने आचार्य श्रीजी एवं चरितनायक के प्रवचनों का लाभ उठाया और क्रम-क्रम से छापर, पड़िहारा, रतनगढ़, राजलदेसर आदि थली के विभिन्न क्षेत्रों को अपने विहार से पवित्र किया। थली प्रदेश में दो वर्ष तक सन्तों का विहार होने से वहां के निवासियों ने अनेक गलतफहमियों और भ्रांत धारणाओं का निराकरण करके जैनधर्म के सिद्धान्तों का सही रूप समझा।

इन्हीं दिनों स्थविर तपस्वी मुनिश्री बालचन्द जी म० सा० भीनासर विराज रहे थे। आप काफी दिनों से अस्वस्थ थे। आपकी भावना आचार्य श्रीजी म० सा० के दर्शन करने की थी। इस भावना को जानकर आचार्य श्रीजी म० सा० मार्ग में पड़ने वाले थली प्रदेश के गांवों को फरसते हुए भीनासर पधारे और तपस्वी जी म० सा० को दर्शन दिये। तपस्वी जी म० सा० की शारीरिक स्थिति दिनोंदिन निर्बल बनती जा रही थी और उन्होंने ज्येष्ठ कृष्णा ४ को रात्रि के करीब ६ बजे इस भौतिक देह का परित्याग कर दिया।

ब्यावर की ओर

साधु-सन्तों की ज्ञानमयी वाणी के श्रवण के लिये जनसाधारण

में एक अनूठी लालसा रहती है। लेकिन सन्तों का पैदल विहार होने से अल्पसमय में सभी स्थानों पर पदार्पण होना सम्भव नहीं है। समयानुसार जिस किसी भी क्षेत्र में उनका पदार्पण हो जाता है तो वहां की जनता अपना अहोभाग्य मानती है।

थली प्रदेश में पूज्य आचार्य श्रीजी म० सा० आदि सन्तों के विहार के पहले से ही बीकानेर श्री संघ अपने यहां चातुर्मास करने के लिये विनती करता आ रहा था। अतः सन्तों के पदार्पण होते ही श्री संघ को अपनी आशा के सफल होने के आसार दिखाई देने लगे और अपनी विनती को दुहराया। जिस पर आचार्य श्रीजी म० सा० ने आगामी चातुर्मास बीकानेर में करने की स्वीकृति फरमाई।

ब्यावर श्रावक संघ भी अपने यहां आचार्य श्रीजी का चातुर्मास कराने के लिये लालायित था और आचार्य श्रीजी भी वहां पर योग्य सन्तों के चातुर्मास होने की आवश्यकता अनुभव कर रहे थे। अतः परिस्थिति को देखकर एवं चूरू चातुर्मास की सफलता से संतुष्ट होकर आचार्य श्रीजी म. सा. ने चरितनायक जी का ब्यावर चातुर्मास होने की स्वीकृति दे दी।

इस स्वीकृति से ब्यावर संघ बहुत ही प्रमुदित हुआ और जैसे-जैसे चातुर्मास का समय निकट आता जा रहा था, वैसे-वैसे आपश्री के पदार्पण की बाट देखी जाने लगी।

यथासमय चातुर्मास हेतु चरितनायक जी ने अन्य मुनिराजों के साथ ब्यावर नगर में पदार्पण किया। जनता ने बड़े उत्साह एवं समारोह के साथ स्वागत किया। आपके प्रवचनों और विद्वत्ता से जनता बहुत ही प्रभावित हुई और साध्वाचार के अनुसार चर्या की महानता के दर्शन किये। तात्त्विक-चर्चा और शंका-समाधान के समय आपके पांडित्य और सीधी, सरल भाषा में सत्य तथ्यों को स्पष्ट करने की अनोखी शैली जहां जनसाधारण को प्रभावित करती थी वहीं विद्वानों को विद्वत्ता परखने का भी मौका देती थी।

चातुर्मास आशातीत सफलता के साथ संपन्न हुआ। ब्यावर संघ वैसे भी धार्मिक आचार-विचारों के प्रति श्रद्धावान संघ है लेकिन इस चातुर्मास काल में ज्ञान-साधना के साथ-साथ अनेक श्रावक-श्राविकाओं ने एकान्तर, बेला, तेला, अठाई, मासखमण आदि करके तप-साधना की प्रभावना की। विभिन्न लोककल्याणकारी कार्यों के निमित्त दान देने में तो सभी तत्पर ही रहते थे।

चातुर्मास-समाप्ति के पश्चात आप राजस्थान के विभिन्न क्षेत्रों को अपनी ज्ञानगंगा के प्रवाह से हरा-भरा बनाने लगे। आप जिस क्षेत्र में पदार्पण करते, उससे पहले ही आपकी कीर्ति वहाँ पहुंच जाती थी और भव्यजन आपके उपदेशों का पान करने के लिये उत्सुक रहते थे। आप जहाँ भी पधारते, वहीं एक अनूठे वातावरण के दर्शन होते थे। किसी से कुछ लेने की आकांक्षा तो थी नहीं जिससे राग-द्वेष पैदा हो। सन्तों का उद्देश्य तो निरीहवृत्ति से ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए स्वयं सन्मार्ग पर चलना और दूसरों को भी उसी मार्ग पर चलने की प्रेरणा देते हुए आध्यात्मिक विकास करना है। इसी में साधु की साधना का आदर्श प्रगट होता है।

पूज्य आचार्य श्री जवाहरलाल जी म० सा० आदि सन्त बीकानेर चातुर्मास समाप्ति के पश्चात पुनः थली प्रदेश के सरदारशहर, रतनगढ़ आदि-आदि मुख्य-मुख्य नगरों में धर्मदेशना देते हुए पंजाब की ओर पधार गये और राजस्थान चरितनायक जी की विहार-भूमि बन गया।

अहिंसा-मैत्री के प्रतिष्ठापक

राजस्थान के विभिन्न क्षेत्रों में श्रमण-संस्कृति का संदेश मुखरित करते हुए चरितनायक जी ने थलीप्रदेश में पुनः पदार्पण किया। थली के भव्यजन आपकी ज्ञानदेशना का अधिकाधिक संख्या में लाभ उठाते थे। अपने-अपने क्षेत्र में पदार्पण के लिये विनतियां करते और आपश्री भी समयानुसार सभी प्रदेशों को स्पर्श करने की भावना रखते थे। इन्हीं दिनों फलौदी संघ आपके चातुर्मास के लिये विनती कर रहा था।

अतः सं० १९८८ के चातुर्मास हेतु फलौदी की ओर विहार कर दिया।

विहार मार्ग में एक ग्राम ऐसा भी आया जहां माता के स्थान पर अन्धश्रद्धा के वशीभूत होकर धर्म के नाम पर अनेक मूक पशुओं की बलि होती थी। धर्म के नाम पर होने वाली इस हिंसा और जनसाधारण की भावना से आपका हृदय द्रवित हो गया। जहां हत्या का ऐसा तांडव नृत्य होता हो और निर्दयता का वास हो वहां सन्त पुरुषों को शान्ति नहीं मिल सकती है। उनका हृदय गद्‌गद हो जाता है। प्राणिमात्र में मैत्री, करुणा, दया भावना को विकसित देखने वाले ऐसे क्रूर कृत्यों को देखकर खेद-खिन्न हों तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं है।

चरितनायक जी मानवता के चितेरे थे और हृदय मानवीय भावनाओं से ओत-प्रोत था। आपसे यह दृश्य— मूक पशुओं का कष्ट— देखा नहीं गया। उनकी यह दुर्दशा देख आप विचारने लगे कि मनुष्य— सृष्टि का राजा— इतना घोर स्वार्थी है। उसके विवेक और बुद्धि का क्या यही सही उपयोग है ? यह मूर्खता जिसमें भरी हुई है, वह मनुष्य राक्षस से किस बात में कम है ?

बलि के नाम पर मारे जाने वाले इन मूक पशुओं की रक्षा के लिये आपका हृदय उमड़ पडा और शक्य उपाय सोचने लगे। अतः अन्धश्रद्धालुजनों के बीच आपने अहिंसा धर्म पर प्रवचन फरमाते हुए बतलाया कि प्रभु की जय इसलिये कहते हैं कि हम उसके प्रति वफादार बन सकें। प्रभु के प्रति वफादारी का अर्थ है कि निश्छल साधना की जाये और इस साधना का प्रमुख रूप है कि इस सृष्टि में हम समानता की स्थिति पैदा करें। फिर यह भेदभाव और विषमता क्यों ? अतः परमात्मा की जय बोलते हुए इस सृष्टि में उसके प्रति वफादार रहने का एक ही मार्ग है और वह है अहिंसा का मार्ग। इसीलिये सभी धर्मों में 'अहिंसा परमो धर्मः' अहिंसा को सर्व श्रेष्ठ धर्म कहा है। अहिंसा को सभी धर्म मान्यता देते हैं। जैनधर्म मान्यता ही नहीं देता किन्तु घोषित करता है कि 'जयं चरे, जयं चिट्ठे ....' हर कार्य इतनी

यतना से होना चाहिये कि वह किसी भी प्राणी को तनिक-सा भी क्लेश देने वाला न हो।

अतएव मेरा आप लोगों से कहना है कि यदि आप अपने आपको परमात्मा का वफादार सेवक बनाना चाहते हैं तो समग्र रूप से अहिंसा का पालन कीजिये। अहिंसा ही वह सशक्त साधन है जिसके द्वारा आत्म-समानता यानी परमात्म-वृत्ति के साध्य को साधा जा सकता है।

इसी प्रसंग में हिंसा से प्राप्त होने वाले दुःखों और अहिंसा से मिलने वाले सुखों का विशद वर्णन करते हुए बतलाया कि विश्व का प्रत्येक प्राणी सुख चाहता है। आप लोग जो कुछ भी करने आते हैं, वह सुख के लिये ही करते हैं। लेकिन सुख की प्राप्ति दूसरे को नाश करके नहीं हो सकती है। मृत्यु किसी को भी प्रिय नहीं है, सभी जीवित रहना चाहते हैं। आप इन मूक प्राणियों की आंखों में देखो। वे आपसे अभय चाहते हैं। उन्हें जीने की इच्छा है और इसीलिये बलि की वेदी पर चढ़ने की अपेक्षा पीछे हटने के लिये छटपटाते हैं। उनकी सिहरन हृदय को झकझोर देती है। यदि आपको सुख चाहना है तो दूसरों को भी सुख पहुंचाओ। आम का फल बोने से आम पैदा होगा, न कि बबूल के बोने से।

यह तो आप जानते हैं कि देवी सबकी माता है। माता वात्सल्य, प्रेम की दायिनी हैं। वह अपने पुत्रों में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं करती। उसकी गोद में सभी को एक-सा स्थान प्राप्त है। वह अपनी अमीदृष्टि से सभी को सराबोर करने में ही सुख अनुभव करती है। अतः आप लोग माता के कुछ एक पुत्रों को उसी के नाम पर मार कर उसके विरुद को कलंकित मत करो। इस कार्य से उसे दुःख होता है। आप मातृ-भक्त हैं, इसलिये जिस कार्य से उसे सुख मिले वैसा कार्य करने का ध्यान रखें।

आपके उपदेशामृत का जनता पर गहरा प्रभाव पड़ा। बलि देने के लिये आने वालों के हृदय करुणा से आप्लावित हो उठे। धर्म

की यथार्थता ज्ञात होते ही सरल परिणामी अपने कृत्य पर पश्चाताप करने लगे। मन का मैल आंखों के द्वारे झर-झर झरने लगा। हृदय ने कुछ हलकापन अनुभव किया और अपने आप में शांति पाकर तत्काल मूक पशुओं की हत्या करने का विचार त्याग दिया और जीवन पर्यन्त के लिये प्रतिज्ञा कर ली कि ऐसा कुकृत्य न तो हम करेंगे और न दूसरे को भी करने देंगे।

सन्तों का माहात्म्य अपूर्व है। उनका एक बोल पत्थर को भी पिघला देता है। दुर्दान्त-से-दुर्दान्त और क्रूर-से-क्रूर प्राणी भी दृष्टि-निपातमात्र से शांत और सरल हो जाते हैं। एकक्षण पहले जिस धर्म-स्थान में रौरवता का नंगा नृत्य होने वाला था वहां क्षणमात्र में दया, अमारि की सुखद लहरें हिलोरें लेने लगीं। अहिंसा की घोषणा से देवी का जगज्जननी नाम सार्थक हो गया।

वहां से विहार कर क्रमशः अनेक स्थानों को पदार्पण से पवित्र कर जब आप तीवरी पधारे, तब तीवरी आपस के वैर-विरोध से तीन तेरह हो रहा था। बैर-विरोध में समस्त ग्रामवासी रचे-पचे हुए थे। वहां के अग्रवाल, ओसवाल, माहेश्वरी, ब्राह्मण आदि विभिन्न जातीय सज्जनों में किसी सामाजिक विषय को लेकर पारस्परिक संघर्ष चल रहा था। प्रत्येक, एक दूसरे को नीचा दिखाने की ताक में रहता था और मौका मिलने पर अपनी ज्वाला को शांत करने से नहीं चूकता था। सभी एक दूसरे की जान के गाहक बने थे और इसी संघर्ष को लेकर हजारों रुपयों का पानी कर चुके थे।

ऐसे समय में चरितनायक जी का पदार्पण तीवरी के लिये वर-दान सिद्ध हुआ। आपने आपस का यह वैमनस्य मिटाने के लिये उपदेश देना प्रारम्भ किया। जिससे निवासियों के रूक्ष हृदयों में ऋजुता का संचार हुआ और मान की कलुषता शनैः-शनैः बहने लगी। दृष्टि के पलटते ही निवासियों को अपने किये पर पश्चाताप होने लगा। लोगों के हृदय शांत और निस्ताप हो गये। उनके हृदयों में एक हूक उठी

कि क्या अपनों से ही विरोध करना हमें शोभा देता है ? एक ही भूमि में खेले हैं, कूदे हैं और बड़े हुए है और उसी को कुरुक्षेत्र बनाना हमारे लिये लज्जा की बात है। सोचते-सोचते सभी एक निर्णय पर आये कि इन महापुरुष के चरणों में हम अपने नये जीवन का श्रीगणेश करें, जो हो गया है, उसे अब भूल जायें।

प्रतिदिन की तरह चरितनायक जी का प्रवचन हो रहा था कि अकस्मात सभी ग्रामनिवासी एक साथ खड़े होकर आपसे प्रार्थना करने लगे कि भगवन् ! हम भूले थे, आपके उपदेशों ने सुमार्ग का दर्शन करा दिया है। हम अपनी द्वेषभावना के लिये शर्मिन्दा हैं। अब आप जो आज्ञा देंगे, हमें स्वीकार है। आपके उपदेश से एक नया प्रकाश पाया है और उसी के सहारे हम सुमार्ग पर बढ़ते रहेंगे। अब हमारा आपस में कोई विरोध नहीं है। हमारी गलती थी कि हम एक दूसरे के विचारों को नहीं समझ सके।

चरितनायकजी के उदार एवं सकरुण हृदय का ही यह प्रभाव था कि सुबह के भूले शाम को अपने ठौर लौट आये। विवाद और विरोध का कीचड़ बह गया और शुद्ध प्रेम नीर में सभी गोते लगाने लगे एवं 'अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः,' इस विधान की सत्यता प्रमाणित हो गई।

विहार मार्ग में इसी प्रकार के अनेक उपकार करते हुए, सामाजिक कुरीतियों, आपसी मनमुटाव आदि को मिटाते हुए आप सं० १९८८ के चातुर्मास हेतु फलौदी पधार गये। आपके उपदेशामृत के प्रवाह से फलौदी ने अपना फलोदधि नाम सार्थक कर दिया।

आप हित मित भाषा में आध्यात्मिक विकास हेतु विवेचन करते और उसका स्थानीय, आस-पास की जनता लाभ उठाती थी। आपके प्रवचनों में सामाजिक कुरूढ़ियों और आत्मोन्नति के साधनों के बारे में विशेष रूप से संकेत रहता था। कुरूढ़ियों के सम्बन्ध में आपके विचार थे कि ये जीवन को गंदा बनाये हुए हैं, जिससे धार्मिकता पनपने नहीं

पाती है। जिस समाज की तह में कुरूढ़ियां चट्टान की भांति जमी हों, वहां धर्म का अंकुर पैदा नहीं हो सकता है। जब तक इनको उखाड़ा न जायेगा, तब तक धर्मवृद्धि के लिये किये जाने वाले प्रयत्न प्राय: निरर्थक हो सकते हैं।

आपकी सरल तथा हृदयस्पर्शी वाणी को श्रवण करने के लिये श्रोताओं की आशातीत उपस्थिति हो जाती थी। जो कुछ भी आप विवेचन करते थे, वह सुनने वालों को अभूतपूर्व प्रतीत होता और सभी लाभ उठाते थे। अनेकों ने आत्मशुद्धि के लिये व्रत-प्रत्याख्यान लेने के साथ-साथ समाज में स्वस्थ वातावरण बनाने के लिये कुरूढ़ियों का यावज्जीवन के लिये त्याग कर दिया।

आपके इस चातुर्मास का सभी क्षेत्रों पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। समाज ने आपके लिये जो धारणा बना रखी थी और प्रशंसा सुनी थी, उससे भी बढ़कर समझने व देखने को मिला। अगाध सैद्धान्तिक ज्ञान, गूढ़-गंभीर तात्त्विक विचारों को सीधी-सादी भाषा में समझाने वाली वक्तृत्व शैली, साधु-मर्यादा का यथावत् पालन आदि का इतना प्रभाव पड़ा कि सभी आप में आचार्य श्री जवाहरलाल जी म० के ही दर्शन करते थे। ऐसा प्रतीत होता था कि आचार्य श्रीजी ही चातुर्मास हेतु यहां विराजमान हैं।

चातुर्मास पूर्ण हुआ। दूर-दूर के क्षेत्रों और स्थानीय निवासियों को यह समय कब बीता, कैसे बीता, कुछ मालूम ही नहीं पड़ा। लेकिन साधु-आचार के अनुसार चातुर्मास समाप्ति के अनन्तर जब विहार का अवसर आया तो आपने अन्तःकरण को दहला देने वाला एक संवाद सुना। किसी ने आपको बतलाया कि यहीं पास के माउड़िया ग्राम में प्रति वर्ष मेला होता है। उस मौके पर देवी के स्थान पर सामूहिक रूप में ५०० और व्यक्तिगत रूप में करीब १५०० पशु धर्म के नाम पर मौत के घाट उतारे जाते हैं।

इस भीषण संवाद से आपके सुकोमल हृदय को गहरा आघात

पहुँचा। इस प्रकार के कृत्य और अन्ध-विश्वास की कल्पना मात्र से आपका अंतःकरण करुणार्द्र हो गया। आपने सोचा— हा दुर्दैव! हा मानव की दानवता! आध्यात्मिक मूल्यों की अन्तिम दशा आन्तरिक ईमानदारी और आन्तरिक जीवन के संस्कार द्वारा प्राप्त की जाती है। इसी को धर्म कहते हैं। इसकी सच्ची आवाज एक ही है और वह है मानवीय दया और करुणा की, अनुकम्पा की, प्रेम की और हम सब उस आवाज को अवश्य ही सुन सकते हैं। जब तक हम बहिर्मुखी जीवन विताते हैं और अपनी आंतरिक गहराइयों की थाह नहीं लेते, तब तक हम जीवन के अर्थ अथवा आत्मा को नहीं समझ सकते। जो लोग ऊपरी सतह पर जीते हैं, उन्हें स्वभावतः ही आत्मिक-जीवन में कोई श्रद्धा नहीं होती है। यदि किसी को महान बनना है तो सेवा, मैत्री, परदुःखकातरता आदि द्वारा बन सकता है। दुर्बलों की सहायता करने का दायित्व सम्पूर्ण सभ्य जीवन का आधार है।

हिंसा अधर्म है और अधर्म ही रहेगी। लेकिन जो इस तथ्य को भूलकर आत्मिक-आवाज को क्षीण कर देते हैं, उनकी विचारशक्ति और आत्मा पर अन्धकार छा जाता है और वे उसके विरुद्ध संघर्ष करने की अपनी इच्छा को भी क्षीण कर लेते हैं।

अतएव मानवजाति के इस कलंक को मिटा देने का प्रयत्न करना मानवता की सबसे बड़ी सेवा होगी और मारे जाने वाले पशुओं के प्रति अनुकम्पा होगी। धर्म के नाम पर होने वाले ऐसे हत्याकाण्ड मानवीय विवेक के दिवालियेपन को सूचित करते हैं। निरपराध मूक प्राणियों के प्रति भयंकर अत्याचार करने वाला मानव किस आधार पर सभ्य, शिष्ट और समझदार होने का दावा कर सकता है?

मानव देवी-देवताओं के नाम पर भोले-भाले प्राणियों की हिंसा का खेल खेल रहा है। स्वार्थ और दैविक अनुग्रह की अन्धश्रद्धा इस पाप की जड़ है। धार्मिक अविवेक और स्वार्थसाधना के निमित्त मनुष्य ने न जाने कितने समुद्र लाल किये हैं और कितनी जमीन को मांस व

उसके लोथड़ों का खाद दिया है। मगर अहिंसा हिंसा को परास्त करके ही रहेगी और व्यापक नीति की प्रतिष्ठा होगी। उसी दिन मानवजाति का समग्र प्राणिजगत में श्रेष्ठ होने का दावा सच्चा माना जायेगा।

फलौदी और माउड़िया की अहिंसाप्रेमी भक्तमण्डली आपके प्रयत्नों की सफलता के लिये प्राणप्रण से जुट गई। आपने बड़े ही हृदयस्पर्शी प्रभावशाली ढंग से अहिंसा की व्याख्या की। जिसका इतना और ऐसा गहरा प्रभाव पड़ा कि क्रूरता से पाषाण बने हृदय पिघल गये। उन्हें अपने दुष्कृत्य के प्रति, अपने प्रति ग्लानि उत्पन्न हो गई कि क्या हम मनुष्य हैं और यही हमारी मनुष्यता है? हम कब तक धर्म के नाम पर प्राणिहत्या से अपने हाथ रंगते रहेंगे। हम अपने किये का परिणाम कब, क्या, कैसा पायेंगे पता नहीं किन्तु हमारी संतान की अवश्य ही बदतर स्थिति होगी। अतः धर्म को कलंकित करने वाली इस हिंसा से विरत होने में ही हमारा कल्याण है।

हिंसकों के हृदय-परिवर्तन की प्रक्रिया में आपके प्रयत्न सफल हुए। ग्राम के समस्त निवासियों ने स्वेच्छापूर्वक इस हिंसा को बंद कर देने का निर्णय किया। इससे तत्काल ही २००० जीवों को अभय-दान मिलने के साथ-साथ मनुष्यता का एक कलंक धुला और अहिंसा की प्रभावना हुई।

'माउड़िया' नाम ही संकेत करता है कि उस ग्राम में माता—देवी— की विशेषरूप से मान्यता होगी। आपके उपदेशों एवं फलौदी आदि आस-पास के गांव से मेले में आगत जनता तथा माउड़िया के विवेकशील निवासियों की सूझ-बूझ से वहां जो अहिंसा माता की प्राण-प्रतिष्ठा हुई, उससे माउड़िया ग्राम वास्तव में माउड़िया नाम का अधिकारी बन सका।

बृहत्साधु-सम्मेलन के पहले

पूज्य आचार्य श्री जवाहरलाल जी म० सा० ने दिल्ली चातुर्मास समाप्ति के पश्चात जमनापार के क्षेत्रों की ओर विहार किया और

भिवानी, हांसी, हिसार, राजगढ़ आदि ग्रामों व नगरों को धर्मदेशना का लाभ देते हुए पुनः राजस्थान के चूरू नगर में पधारे।

इन दिनों किसी केन्द्रस्थान में श्रावकों द्वारा समस्त स्थानकवासी संत-मुनिराजों का सम्मेलन कराने के लिये प्रयत्न किये जा रहे थे। इसके लिये श्रावकों ने विभिन्न साधु-मुनिराजों के पास जाकर विचार-विमर्श कर लिया था। एक प्रकार से वृहत्साधु-सम्मेलन होने की भूमिका वन चुकी थी। अतः आचार्य श्रीजी ने साधु-सम्मेलन और समाचारी आदि आवश्यक विषयों पर विचार करने के लिये अपने नेश्राय के साधु-मुनिराजों को नागौर में एकत्रित होने का आदेश दिया।

तदनुसार चरितनायकजी अपने साथी सन्तों के साथ यथासमय नागौर पधार गये। उस समय नागौर में आचार्य श्रीजी के अतिरिक्त मुनिश्री मोड़ीलालजी म० सा०, मुनिश्री चांदमलजी म० सा०, मुनिश्री हर्षचन्दजी म० सा० आदि-आदि सम्प्रदाय के मुख्य-मुख्य सन्त एकत्रित हुए। उनके सामने आचार्य श्रीजी म० सा० ने अपने द्वारा वनाई गई 'श्री वर्धमान संघ' की योजना रखी और तत्सम्बन्धी विचार-विमर्श किया।

मुनिमण्डल की विचारगोष्ठी के अवसर पर जोधपुर श्री संघ आगामी चातुर्मास की स्वीकृति फरमाने हेतु आचार्य श्रीजी की सेवा में आया। जिस पर स्थिति को देखकर आचार्य श्रीजी ने आगामी (सं० १९८९ का) चातुर्मास जोधपुर करने की स्वीकृति फरमाई और नागौर से गोगोलाव आदि मार्ग में पड़ने वाले ग्रामों में धर्मोपदेश देते हुए चरितनायक जी आदि १३ सन्त-मुनिराजों के साथ आषाढ़ शुक्ला १ को जोधपुर पधारे।

चातुर्मास-समाप्ति के सन्निकट कार्तिक शुक्ला ११ को प्रमुख-प्रमुख श्रावकों का एक शिष्टमण्डल अजमेर में होने वाले साधु-सम्मेलन के वारे में विचार-विमर्श करने एवं सम्मेलन में पधारने की विनती के साथ आचार्य श्रीजी म० सा० की सेवा में उपस्थित हुआ। शिष्टमण्डल से सम्मेलन के वारे में विशदरूप से विचार-विमर्श करके आचार्य श्रीजी

ने उक्त अवसर पर स्वयं या अपने सन्तों के प्रतिनिधिमण्डल के अजमेर पहुंचने के भाव दर्शाये।

अजमेर में होने वाले साधु-सम्मेलन में सम्मिलित होने से पहले पुनः एक वार आचार्य श्रीजी म० सा० ने तत्काल अपने सम्प्रदाय के सन्तों का सम्मेलन कर लेने की आवश्यकता अनुभव की और इसके लिये ब्यावर को उपयुक्त स्थान समझकर सभी सन्तों को ब्यावर पहुंचने के लिये समाचार भिजवा दिये।

चातुर्मास-समाप्ति के अनन्तर आचार्य श्रीजी म० सा० के ब्यावर पधारने के पूर्व ४२ सन्तों का वहां पदार्पण हो चुका था। कुछ दिनों में ३ संतों के और आने से कुल मिलाकर ४५ सन्त हो गये। उनमें चरितनायकजी के अतिरिक्त मुनिश्री मोड़ीलालजी म० सा०, मुनिश्री चांदमलजी म० सा०, मुनिश्री हरखचन्दजी म० सा०, मुनिश्री गब्बूलालजी म० सा० (बड़) आदि सन्त प्रमुख थे।

आचार्य श्रीजी म० सा० ने उपस्थित सन्त मुनिराजों से सम्मेलन के सम्बन्ध में एवं अन्यान्य विषयों पर विचार कर सम्मेलन में अपने सम्प्रदाय का प्रतिनिधित्व करने के लिये पांच मुनिराजों का मण्डल निर्वाचित किया, जिसके चरितनायकजी म० भी एक सदस्य थे।

प्रतिनिधिमण्डल के नामों का निश्चय हो जाने के बाद भी मुनिराजों को यही योग्य प्रतीत हुआ कि प्रतिनिधिमण्डल की अपेक्षा आचार्य श्रीजी का सम्मेलन में पधारना उचित होगा। अतः विनती की कि सम्मेलन में आपका पधारना हम सबके लिये योग्य है। अतः सन्तों के आग्रह को देखकर आचार्य श्रीजी म० सा० ने सम्मेलन में पधारने का निश्चय कर लिया।

बृहद् साधु-सम्मेलन प्रारम्भ

चतुर्विध संघ की धार्मिक स्थिति की सुव्यवस्था के लिये किया जा रहा यह महान आयोजन— बृहत्साधुसम्मेलन— सं० १९९०, चैत्र शुक्ला १०, दि० ५ अप्रैल १९३३ को अजमेर में प्रारम्भ हुआ।

इसमें २६ सम्प्रदाय के २४० सन्त सम्मिलित हुए थे। चरित-नायक मुनिश्री गणेशलाल जी म० सा० आदि पांच सन्तों के साथ आचार्य श्री जवाहरलाल जी म० सा० भी ५ अप्रैल १९३३ के प्रातः अजमेर पधार गये।

प्रारम्भिक औपचारिकताओं की पूर्ति होने के पश्चात सम्मेलन प्रारम्भ हुआ। इसमें साधु-समाचारी आदि-आदि श्रमण वर्ग से सम्बन्धित विषयों पर दि० ५ अप्रैल से २७ अप्रैल ३३ तक चर्चा-वार्ता होकर कुछ निर्णय तो अवश्य लिये गये लेकिन चतुर्विध संघ की धर्मकरिणी की सुव्यवस्था हेतु मुनिराजों में उत्साह दिखाई न देने से सम्मेलन का उद्देश्य सफल न हो सका।

चर्चा-वार्ता के प्रसंग में आचार्य श्री जवाहरलाल जी म० सा० ने भी अपनी 'श्री वर्धमान संघ योजना' प्रस्तुत की। जिसमें मुख्य रूप से सभी संप्रदायों का एकीकरण करके एक आचार्य के नेतृत्व में शिक्षा, दीक्षा, प्रायश्चित, विहार आदि की व्यवस्था करने का आशय व्यक्त किया गया था। यद्यपि सभी सन्तों द्वारा योजना का हार्दिक स्वागत भी किया गया और सिद्धान्त रूप में मान्य भी की गई, लेकिन मतैक्य न हो सकने और कार्यान्वयन के प्रति असमर्थता व्यक्त करने से योजना को मूर्तरूप नहीं दिया जा सका।

विभाजित सम्प्रदाय का एकीकरण

चतुर्विध संघ में पूज्य श्री हुक्मीचन्द जी म० सा० की सम्प्रदाय अपनी संयमसाधना और विद्वत्ता के कारण सम्माननीय मानी जाती है। लेकिन पूज्य आचार्य श्री श्रीलाल जी म० सा० के समय में कुछ एक कारणों से सम्प्रदाय के दो विभाग हो गये थे और पृथक् होने वाले सन्तों ने मुनिश्री मुन्नालाल जी म० सा० को अपना आचार्य बना लिया था। इन दोनों विभागों का एकीकरण करने के लिये समय-समय पर किये गये प्रयत्न सफल नहीं हुए।

लेकिन दोनों विभागों का एकीकरण करने के लिये प्रयत्न करने

वाले हतोत्साह न होकर अपने प्रयत्नों में लगे रहे। चतुर्विध संघ इस सम्प्रदाय में अनैक्य देखने के लिये उत्सुक नहीं था और चाहता था कि श्रमण-संस्कृति की सुरक्षा के लिये तत्पर पूज्य श्री हुक्मीचन्द जी म० सा० की सम्प्रदाय पुनः एक हो जाये।

बृहत्साधु-सम्मेलन के अवसर पर ही श्री हेमचन्दभाई रामजी-भाई मेहता की अध्यक्षता में श्री अ० भा० श्वे० स्थानकवासी जैन कान्फरन्स का नौवां अधिवेशन भी अजमेर में हो रहा था। अतः इन आयोजनों के कारण चतुर्विध संघ के प्रमुख-प्रमुख सन्त-मुनिराजों, गण-मान्य श्रावकों के अतिरिक्त आबालवृद्ध भाई-बहिन एकत्रित हुए थे। इन सभी की भावना थी कि इस अवसर का लाभ उठाकर पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी म. सा. की सम्प्रदाय का एकीकरण कराने के लिये प्रयत्न किये जायें।

चतुर्विध संघ की भावना को देखकर एकता के लिये प्रयत्न करने वालों के द्वारा साधु-सम्मेलन में एकता का प्रश्न प्रस्तुत किया गया। पहले किये गये प्रयत्नों की समीक्षा करने के प्रसंग में प्रश्न उठा कि यह कैसे सम्भव हो? तो विचार-विमर्श करके निर्णय किया गया कि पहले रतलाम में आचार्य श्री जवाहरलाल जी म० सा० एवं पूज्य श्री मुन्नालाल जी म० सा० के बीच हुए वार्तालाप व निश्चय का विहं-गावलोकन करने के लिये यहां पधारे हुए सन्तों में से पंच मुकर्रर कर दिये जायें और उनके निर्णय को दोनों पक्ष स्वीकार करें।

इसी भूमिका पर एकीकरण के लिये प्रयास किये गये और निर्णय के लिये निम्नलिखित मुनिराज पंच नियुक्त हुए—

१- कविवर्य श्री नानचन्दजी म० सा०, २- मुनि श्री मणिलालजी म० सा०, ३- शतावधानी मुनिश्री रत्नचन्द जी म० सा०, ४- आचार्य श्री अमोलकऋषि जी म० सा०, ५- पंजाबकेशरी युवाचार्य श्री काशी-राम जी म० सा०।

पंच मुनिवरों ने एकता के सम्बन्ध में अभी तक किये गये

प्रयत्नों आदि के बारे में मंत्रणा और विचारणा करने के पश्चात सं० १९९०, वैसाख कृष्णा ८, दि० १७-४-३३, सोमवार को अपना निर्णय दिया। निर्णय इस प्रकार है—

आज रोज दोनों पक्ष के भविष्य का फैसला पंच निम्न प्रकार से देते हैं—

१- मुनि श्री गणेशलाल जी म० को युवाचार्य पद पर नियत करें।
२- मुनि श्री खूबचन्द जी म० को उपाध्याय पद पर नियत करें।
३- अब से जो नये शिष्य हों, वे युवाचार्य की नेश्राय में रहें।
४- भविष्य के धाराधोरण दोनों पूज्य मिलकर बांधें।
५- पूज्य श्री हुकमीचन्द जी म० की सम्प्रदाय के चौमासे ठहराने की और दोषशुद्धि करने की सत्ता दोनों पूज्यों की हयाती तक दोनों पूज्यों की रहेगी और एक आचार्य रहने पर एक आचार्य की होगी।
६- फैसला मिलने के साथ ही परस्पर बारह संभोग खुले करें।

द० अमोलक ऋषि, द० मुनि रतनचन्द, द० मुनि मणिलाल
द० मुनि नानचन्द्र द० मुनि काशीराम

उक्त निर्णय को स्वीकृत करते हुए आचार्य श्री जवाहरलाल जी म० सा० ने फरमाया कि— 'फैसला मंजूर है। अमलदरामद धाराधोरण बनाकर किया जायेगा।'

पूज्य श्री मुन्नालाल जी म० सा० ने फरमाया कि— 'फैसला मंजूर है।'

इस निर्णय की वृहत्साधु-सम्मेलन में उपस्थित सन्त-मुनिराजों, श्रावकों आदि सभी ने अनुमोदना की और हृदय उल्लास से भर गये। बहुत दिनों से जो प्रश्न समग्र संघ के लिये चिन्ता का कारण बना हुआ था, उसका समाधान होने से सभी ने साधु-सम्मेलन की आंशिक सफलता मानी और सराहना की।

समस्त स्थानकवासी समाज के इतिहास में यह एक गौरवशाली

कार्य हुआ था और उससे चरितनायक की महानता ही सिद्ध होती है कि पूज्य श्री हुक्मीचन्द जी म० सा० की संप्रदाय की दो धाराओं ने आपको अपना केन्द्रविन्दु मानकर एकीकरण कर लिया ।

एकता विषयक निर्णय हो चुका था और उसके कार्यान्वियन के बारे में सम्मेलन के अवसर पर दोनों पूज्यों के बीच विचार-विमर्श भी हुआ । किन्तु उसमें कुछ गत्यवरोध पैदा हो जाने से उपस्थित जन-समूह में एकता के बारे में गलतफहमियां पैदा होने लगीं । अतः उप-स्थिति को वास्तविक स्थिति की जानकारी देने के लिये दि० २४-४-३३ को प्रातः ८ बजे निम्नलिखित १७ सज्जनों का एक शिष्टमण्डल ममैयों के नोहरे में विराजित मुनिराजों की सेवा में उपस्थित हुआ—

१- श्री हेमचन्दभाई मेहता, २- सेठ श्री अचलसिंह जी, ३-श्री वेलजीभाई लखमसी नपु, ४- दी. ब. श्री विशनदास जी, ५- रा० सा० श्री मोतीलाल जी मूथा, ६- श्री कुन्दनमल जी फिरोदिया, ७- श्री पूनम-चन्द जी नाहटा, ८ रा. सा. लाला टेकचन्द जी, ९- सेठ श्री वर्धमान जी पीतलिया, १०- सेठ श्री कन्हैयालाल जी भण्डारी, ११- श्री सौभागमल जी मेहता, १२- डा. श्री बृजलाल डी. मेघाणी, १३- सेठ श्री दुर्लभजीभाई जौहरी, १४- श्री सरदारमल जी छाजेड़, १५- श्री जेठालालभाई रामजी-भाई, १६- श्री चिम्मनलाल पोपटलालभाई शाह, १७- श्री शांतिलाल मंगलभाई ।

शिष्टमण्डल ने विराजित मुनिराजों की सेवा में एकता संबंधी पंचफैसले के अमलदरामद करने के लिये प्रार्थना की । पंचफैसले के बाद जो कुछ भी विचार-विमर्श हुआ और किन कारणों को लेकर गत्य-वरोध पैदा हो गया आदि सभी के बारे विवेचन होने के बाद आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. एवं पूज्य श्री मुन्नालाल जी म. सा. ने निम्नलिखित निश्चय किये—

१- आज से परस्पर बारह सम्भोग, जहां-जहां दोनों सम्प्र-दाय के मुनि हों, वहां-वहां खुले किये जाते हैं । दोनों पूज्य अभी

ही इस संबंधी संदेश अपने मुनियों को भेज देंगे।

२- धाराधोरण बनाने के लिये निम्नानुसार व्यवस्था की जाती है— पूज्य श्री मुन्नालाल जी म०, मुनि श्री हजारीमल जी म०, मुनि श्री छगनलाल जी म० और पूज्य श्री जवाहरलाल जी म०, मुनि श्री गणेशलाल जी म० तथा मुनि श्री हरखचन्द जी म०, इस तरह छह मुनिराज एकत्रित होकर भविष्य के लिये धाराधोरण बनावें। यदि इसमें कुछ मतभेद हो तो छहों मुनिवर मिलकर एक सरपंच पसन्द कर लें। यदि सरपंच के चुनाव में एक मत न हो तो श्री वर्धमान जी पीतलिया तथा श्री सौभाग्य॰ मल जी मेहता, ये दोनों साथ मिलकर मतभेद का समाधान कर दें। यदि इनके बीच भी मतभेद रहे तो इन दोनों गृहस्थों ने सीलबन्द लिफाफा श्री प्रेसीडेण्ट सा० को दिया है। उसमें लिखे हुए नाम वाला पंच, दोनों गृहस्थों के सरपंच के रूप में जो निर्णय दे, वह अन्तिम निर्णय माना जायेगा।

३- मुनि श्री गणेशलाल जी म० को युवाचार्य पद तथा मुनि श्री खूबचन्द जी म० को उपाध्याय पद सं० १९९० की फाल्गुन शुक्ला १५ से पहले ही दे देना निश्चित किया जाता है।

४- फाल्गुन शुक्ला १५ के बाद जो नये शिष्य हों वे युवाचार्य जी की नेश्राय में रहें।

इस प्रकार पारस्परिक मतभेद के कारणों का समाधान हो जाने से पूज्य श्री हुकमीचन्द जी म. सा. की विभक्त सम्प्रदाय संयुक्त हो गई और भविष्य के लिये धाराधोरण बनाने का कार्य यथावसर किये जाने की आशा थी।

स्वागत के लिये उत्सुक जन्मस्थान

बृहत्साधु-सम्मेलन सम्पन्न होने के पश्चात आचार्य श्री जवाहरलालजी म. सा. ठाणा २२ अजमेर से मारवाड़-मेवाड़ के विभिन्न ग्रामों में विचरण करते हुए उंटाला (मावली के निकट) पधारे। वहां पूज्य

श्री मुन्नालाल जी म. सा. के कालधर्म को प्राप्त होने के समाचार प्राप्त हुए। समाचार ज्ञात कर आचार्य श्रीजी आदि सभी सन्त मुनिराजों ने ध्यान किया और दिवंगत आत्मा का गुणानुवाद पूर्वक पुण्यस्मरण करते हुए अपनी-अपनी श्रद्धा व्यक्त की।

इसी अवसर पर उदयपुर श्री संघ सेवा में उपस्थित हुआ। वह अपने यहां आचार्य श्रीजी म. सा आदि सभी सन्तों का चातुर्मास कराने के लिये बहुत समय से लालायित था और अनेक स्थानों पर वहां के प्रमुख-प्रमुख श्रावक विनती करने के लिये सेवा में उपस्थित होते रहे थे कि आचार्य श्रीजी हमारे भावी संघशिरोमणि के साथ चातुर्मास हेतु उदयपुर में पदार्पण करने की महती कृपा करावें। अतः इस समय अनुकूल संयोग होने से आचार्य श्रीजी ने आगामी चातुर्मास उदयपुर में करने की स्वीकृति फरमाई, जिससे उदयपुर श्री संघ के हर्ष का पार न रहा। वह अपने गौरव की अनुभूति से थिरक पड़ा। अपने प्रांगण में तेजस्वी सूर्य-से और ओजस्वी चन्द्र-से ज्योतिर्धर जवाहराचार्य एवं भावी गणपति गणेशाचार्य के पदार्पण होने रूप अलभ्य अवसर-प्राप्ति से प्रमुदित हो उठा।

दिनों की प्रतीक्षा तो एक, दो, तीन आदि गिनते-गिनते पूर्ण हो चुकी थी और अब चातुर्मासार्थ पदार्पण होना दिनों से क्षणों के बीच आ टिका। वह अवसर भी आ गया जब सन्तों ने नगर प्रवेश किया। नगर के महल और मकान, चौराहे और चबूतरे, चौगान और चौमंजिले देहरी और दरवाजे आबालवृद्ध जनों से अटे पड़े थे। उनकी आंखों में उत्सुकता थी आचार्य श्रीजी एवं अनुगामी युवाचार्य श्रीजी आदि सन्तप्रवरों के दर्शन की। वर्षों से संजोयी आशायें, स्मृतियां आज सफल हो रही थीं। विशेष रूप से उनकी उत्सुकता के केन्द्रबिन्दु थे चरितनायक युवाचार्य श्री गणेशलाल जी म. सा. जिनका—

उदयपुर जन्मस्थान था। जो यहां की धूल में खेले थे, उछले थे और लोटे थे। यहां के अन्न-जल से पले थे। यहां के निवासियों ने

आपको शिशुरूप में, सद्गृहस्थ के रूप में, एक व्यापारी के रूप में देखा था। इसके साथ ही वे दृश्य भी उभर आये जब माता, पिता और पत्नी के देहावसान के पश्चात उनका अपना कहने वाला कोई नहीं रहा था। उसके बाद दृश्य बदला और देखा था आगारी से अनगारी होते और फिर संयमसाधना के साहजिक विकास को। आज वही पदार्पण कर रहे थे। कौन ऐसे स्वतः प्राप्त अवसर का परित्याग कर सकता था? कौन था ऐसा जो भोगविजयी योगी की तेजस्विता, ओजस्विता और मधुरता के दर्शन से वंचित रहना चाहता हो? कौन था ऐसा जो आकांक्षा और वांछा से विरत वैराग्यमूर्ति के प्रति वंदनार्पण से विमुख होना चाहता हो? कौन था ऐसा जो जागरण के अग्रदूत और समता के शास्ता की समीपता का लोभ संवरण कर सकता था?

शनैः-शनैः सीमान्त से सन्तों का नगर में पदार्पण हुआ। राजमार्गों की दोनों ओर की अट्टालिकाओं पर उपस्थित दर्शनोत्सुक नगर-जन सन्तपरिमण्डल के बीच चरितनायक जी को निहार कर निहाल हो गये और प्रतिभा से प्रभावित हो प्रमुदित हो उठे।

यह चातुर्मास धर्मपिपासु जनता के लिये कल्पवृक्ष-सा प्रतीत हुआ और उसकी चिरकालीन आकांक्षा पूरी हुई। चातुर्मास में तपस्वी मुनिश्री किशनलाल जी म. सा. ने ४१ एवं तपस्वी मुनि श्री केसरीमल जी म. सा. ने गरम जल के आधार से ६० दिन की तपस्या की। श्रावक श्री गणेशलाल जी गोगुन्दा निवासी ने ४५ उपवास किये। इसके अतिरिक्त विभिन्न श्रावक-श्राविकाओं ने अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार तपस्या, पचखाण, सामायिक आदि धर्मध्यान किया।

आचार्य श्रीजी म. सा. और चरितनायक जी के ज्ञानगम्भीर, मंगलमय प्रवचनों को श्रवणकर श्रोतागण अपूर्व आध्यात्मिक चेतना का अनुभव करते थे।

शनैः-शनैः चातुर्मास का समय समाप्त हुआ। उदयपुरवासियों ने भरे हुए हृदयों से विदाई दी और धर्मदेशना से आप्लावित करने के

लिये सन्तों ने विभिन्न क्षेत्रों की ओर विहार कर दिया ।

एकता स्थायी न रही

चातुर्मास के दिनों में कान्फरन्स के अध्यक्ष श्री हेमचन्दभाई रामजीभाई मेहता सम्मेलन के प्रस्तावों के बारे में जानकारी देने के लिये देशव्यापी प्रवास कर रहे थे । इसी सन्दर्भ में आप उदयपुर भी पधारे और आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. से विचार-विमर्श किया ।

चातुर्मास समाप्ति के अनन्तर आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. चरितनायक जी आदि सन्त-मुनिराजों के साथ विहार कर नाथद्वारा आदि स्थानों में धर्मदेशना देते हुए निम्बाहेड़ा पधारे ।

बृहत्साधु-सम्मेलन अजमेर के अवसर पर चतुर्विध सघ के प्रयत्नों से पूज्य श्री हुकमीचन्द जी म. सा. के सम्प्रदाय की दोनों धाराओं का एकीकरण हो जाने से सभी को सन्तोष और प्रसन्नता थी । लेकिन कुछ सन्तों ने इस एकता के प्रयास को शुद्ध हृदय से अंगीकार करने की तैयारी नहीं बतलाई । वे सिर्फ दिखावे के रूप में इसका पालन करना चाहते थे ।

लेकिन पूज्य आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. अपनी ओर से ऐसी कोई बात नहीं करना चाहते थे, जिससे चतुर्विध संघ का प्रयास विफल बने । अतः विभिन्न बातों को सुनकर भी मौन रखना उचित मानते थे ।

पूज्य श्री मुन्नालाल जी म. सा.का देहावसान हो जाने से सम्मेलन के निर्णयानुसार आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. दोनों धाराओं के आचार्य हो गये थे और समस्त सम्प्रदाय की व्यवस्था-सम्बन्धी रूपरेखा बनाने के लिये प्रमुख-प्रमुख संतों को चातुर्मास समाप्ति के पश्चात मिती मगसिर शुक्ला १५ के आसपास निम्बाहेड़ा में एकत्रित होने की सूचना करा दी थी ।

आचार्य श्रीजी म. सा. तो निश्चित समय पर निम्बाहेड़ा पधार गये, मगर संघ का दुर्दैव ही समझिये कि अनेक उलझनों के बाद जो एकता हुई थी वह स्थायी न रह सकी और निम्बाहेड़ा में उस एकता की इतिश्री हो गई ।

आचार्य श्रीजी म. सा. ने जब देख लिया कि एकता की भावना ही नहीं है तो ऐसी परिस्थिति में कोई भी उपाय सफल नहीं हो सकेगा। अतः निम्बाहेड़ा में कल्पकाल तक विराजने के पश्चात विहार करके अनेक स्थानों को फरसते हुए जावद पधारे।

युवाचार्य-पद-महोत्सव

बृहत्साधु सम्मेलन के निर्णयानुसार आचार्य श्रीजी म. सा. फाल्गुन शुक्ला १५ से पहले चरितनायक पं० र० मुनि श्री गणेशलालजी म. सा. को युवाचार्य पद एवं मुनि श्री खूबचन्द जी म. सा. को उपाध्याय पद प्रदान करने के शुभ कार्य को किसी योग्य स्थान में चतुर्विध सघ के समक्ष कर देना चाहते थे। इसके लिये अनेक स्थानों के श्री संघों की विनतियां थीं। जावद श्री संघ की भी इस शुभ कार्य को अपने प्रांगण में कराने के लिये पहले से ही आग्रहपूर्ण विनती हो रही थी और जब आचार्य श्रीजी म. सा. जावद पधारे तो पुनः अपनी विनती को दोहराया।

पूज्य श्री हुकमीचन्द जी म. सा. की संप्रदाय के लिये जावद एक महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। पूज्य श्री शिवलाल जी म. मा. आदि अनेक महापुरुषों के युवाचार्य-पद-महोत्सव एवं आचार्य-पद-महोत्सव मनाने का सौभाग्य इसी नगर को प्राप्त हुआ है।

इस प्रकार से सम्प्रदाय के इतिहास में स्मरणीय इस जावद नगर के गौरव में एक नया पृष्ठ जोड़ने के लिये आचार्य श्रीजी म. सा. ने युवाचार्य पद-प्रदान महोत्सव अपने यहां कराने के लिये जावद श्री संघ की विनती स्वीकार कर ली और सं० १९९०, मिती फाल्गुन शुक्ला ३ पदवी प्रदान करने का शुभ मुहूर्त निश्चित किया गया।

इस स्वीकृति से जावद श्री सघ का उत्साह द्विगुणित हो गया। चतुर्विध श्री संघ में जिस मंगल महोत्सव होने की प्रतीक्षा की जा रही थी, उसके जावद में होने के समाचार ज्ञातकर सभी को महान हर्ष हुआ और यथासमय अपनी धर्मकरिणी के भावी संघनायक के युवा-

चार्य-पद और उपाध्याय-पद महोत्सव के दर्शन एवं श्रद्धा-भक्ति प्रकट करने के लिये चारों तीर्थ—साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका—जावद में एकत्रित होने लगे।

फाल्गुण कृष्णा द्वादशी को आचार्य श्रीजी म. सा. अनेक संत-मुनिराजों के साथ जावद पधारे। देश के इस छोर से उस छोर तक निवास करने वाले हजारों आबालवृद्ध भाई-बहिन जावद आने के लिये अपने-अपने स्थानों से चल पड़े। फाल्गुन शुक्ला द्वितीया तक करीब ७००० व्यक्ति जावद आ चुके थे और साधु-मुनिराजों की संख्या ३० एवं महासतियों की संख्या ३५, कुल ६५ हो गई थी।

इस महोत्सव के अवसर पर विराजमान सन्तों व सतियों की शुभ नामावली इस प्रकार है—

१- पूज्य आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा.
२- मुनिश्री चांदमल जी म. सा.
३- ,, हर्षचन्द जी म. सा.
४- ,, मांगीलाल जी म. सा.
५- ,, घूलचन्द जी म. सा.
६- ,, सोतीलाल जी म. सा.
७- ,, गणेशलाल जी म. सा. (चरितनायक)
८- ,, सरदारमल जी म. सा.
९- ,, हजारीमल जी म. सा.
१०- ,, पन्नालाल जी म. सा.
११- ,, शोभालाल जी म. सा.
१२- ,, श्रीचन्द जी म. सा.
१३- ,, मोतीलाल जी म. सा.
१४- ,, वक्तावरमल जी म. सा.
१५- ,, गब्बूलाल जी म. सा.
१६- ,, कपूरचन्दजी म. सा.

१७- मुनिश्री हेमराज जी म. सा.
१८- ,, हर्षचन्द जी म. सा.
१९- ,, हमीरमलजी म. सा.
२०- ,, नन्दलालजी म. सा.
२१- ,, भूरालाल जी म. सा.
२२- ,, जीवनमल जी म. सा.
२३- ,, जेठमल जी म. सा.
२४- ,, चांदमल जी म. सा.
२५- ,, सुमालचन्द जी म. सा.
२६- ,, घासीलाल जी म. सा.
२७- ,, जवरीमल जी म. सा.
२८- ,, चतुरसिंहजी म. सा.
२९- ,, अम्बालाल जी म. सा.
३०- ,, मोतीलाल जी म. सा.

महासतियों में श्री रंगूजी म. सा. की सम्प्रदाय की महासती प्रवर्तनी श्री आनन्दकंवर जी म. सा. ठा. २५ और श्री मोतां जी म. सा. की सम्प्रदाय की महासती प्रवर्तनी श्री केसरकंवर जी म. सा. ठा. १०।

फाल्गुन शुक्ला ३ को एकदिन शेष रह गया था। जावद और जावद के आस-पास के क्षेत्रों में एक आह्लादक वातावरण के दर्शन होते थे। फाल्गुन मास तो वैसे ही प्राकृतिक नवोन्मेष का प्रतीक माना जाता है, जब हेमन्त से छुई-मुई बनी प्रकृति नये-नये पल्लवों के परिधानों से स्ववेषभूषा का साज सजा ऋतुराज वसन्त का स्वागत कर मानव मन को उत्साह एवं आनन्द से आप्लावित कर देती है। फाल्गुन नये का स्वागत करने का सनातन सत्य सिद्धान्त है और मानो इसी को चरितार्थ करने के लिये बाल-युवा-वृद्ध का भेद भूल आबालवृद्ध नरनारी सामूहिक रूप में एकत्रित होकर युवाचार्य का अभिनन्दन करने उपस्थित हो गये थे। अब तो इतनी ही प्रतीक्षा हो रही थी कि कब ऊषा हो

और स्वागत के लिये चल पड़ें। तैयारियां तत्परता से पूर्ण हो चुकी थीं। उत्साह का अतिरेक उत्सव में परिणत होने के लिये मचल रहा था। प्रबन्धक व्यवस्था का निरीक्षण करके अपनी त्रुटियों को सम्भाल रहे थे। लेकिन दर्शकों की विचारधारा तो एक ही केन्द्रविन्दु पर केन्द्रित थी कि इस शुभ महोत्सव का शुभारम्भ शीघ्र ही हो।

युवाचार्य पदवी प्रदान करने के लिये ११ से १ बजे तक का समय शुभ माना गया था। परन्तु फाल्गुन शुक्ला ३ के सूर्योदय की स्वर्णिम प्रभा के साथ ही समारोह का श्रीगणेश हो गया। सात बजे श्री सुखदेव जी खूबचन्द जी के नोहरे से दीवानबहादुर सेठ श्री मोतीलाल जी मूथा के नेतृत्व में आबालवृद्ध श्रावक-श्राविकाओं का जुलूस निकला, जो नगर की प्रदक्षिणा देता हुआ करीब ९ बजे पुनः उसी स्थान पर लौट आया।

समारोह के लिगे राजकीय शाला के प्रांगण में प्रबन्ध किया गया था। सभी दर्शकों के बैठने के लिये एक विशाल पंडाल वहां बनाया गया था। शनैः-शनैः दर्शकों का आगमन प्रारम्भ हुआ और करीब आध घण्टे में विशाल प्रांगण भी उपस्थिति को देखकर छोटा-सा प्रतीत होने लगा। जिधर भी देखने उधर रंग-बिरंगे परिधानों से परिवेष्ठित बाल, युवा, वृद्ध नर-नारी दृष्टिगत होते थे। प्रतीत होता था कि ऋतुराज वसन्त ही स्वयं स्वागतार्थ समुपस्थित हो गये हैं।

साढ़े दस बजे पूज्य आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. ने चरितनायक जी आदि सन्त-मुनिराजों के सहित पदार्पण किया। जय-ध्वनि के साथ दर्शकों ने स्वागत किया।

ग्यारह बजते ही आचार्य श्री जी एवं समस्त सन्तों के समवेत स्वर द्वारा किये गये नवकार मन्त्र के पाठ एवं भगवान शांतिनाथ की प्रार्थना से समारोह का मुख्य कार्य-क्रम प्रारम्भ हुआ। अनन्तर आचार्य श्री जी ने सामयिक प्रवचन फरमाया। जिसमें आज के महोत्सव के कारणों, पूर्वकालीन घटनाओं आदि के बारे में संकेत करते हुए आचार्य-

पद के महत्त्व का उल्लेख किया कि—

यहां भावी आचार्य का प्रसंग है। इसलिये अरिहंत, सिद्ध, उपाध्याय, साधु के विषय में कुछ न कह कर आचार्य के विषय में थोड़ा-सा कहता हूँ।

श्री स्थानांग सूत्र के तीसरे स्थान में तीन प्रकार के आचार्य बतलाये गये हैं— कलाचार्य, शिल्पाचार्य और धर्माचार्य। उनमें से यहां धर्माचार्य से ही सम्बन्ध है अतः धर्माचार्य की व्याख्या की जाती है। धर्माचार्य के भी नामाचार्य, स्थापनाचार्य, द्रव्याचार्य और भावाचार्य यह भेद हैं। भावाचार्य के लिये तो शास्त्र में यहाँ तक कहा है कि जो भावाचार्य है, वह तीर्थंकर के समान है।

दीक्षा लेने मात्र से ही कोई व्यक्ति धर्माचार्य नहीं हो जाता। धर्माचाय पद चतुर्विध संघ द्वारा संस्कार किया हुआ व्यक्ति ही पा सकता है। चतुर्विध संघ ही जिस व्यक्ति को धर्माचार्य पद पर स्थापित कर दे वही व्यक्ति धर्माचार्य है। अपने मन से कोई भी व्यक्ति धर्माचार्य नहीं हो सकता है। धर्मनीति में बलात्कार सम्भव नहीं है। यहां कोई जबरदस्ती आचार्य नहीं बन सकता।

धर्माचार्य में गीतार्थ, अप्रमादी और सारणा-वारणा करनेवाला यह तीन गुण होना आवश्यक हैं। अर्थात् जो सूत्रार्थ का जानकार हो, प्रमाद रहित हो और संघ की व्यवस्था करने वाला हो। जिसमें ये तीन गुण नहीं हैं, वह आचार्य नहीं हो सकता है।

स्वर्गीय पूज्य श्री श्रीलालजी म० सा० फरमाया करते थे कि आचार्य पत्थर-सा कठोर भी न हो और पानी जैसा नम्र भी न हो। किन्तु बीकानेरी मिश्री के कूंजे की तरह हो। अर्थात् जैसे मिश्री का कूंजा सिर पर मारने से तो सिर फोड़ देता है और मुंह में रखने से मुंह मीठा कर देता है। उसी प्रकार आचार्य भी अन्याय का प्रतीकार करने के लिये कठोर-से-कठोर रहे और सत्य तथा न्याय के लिये मुंह में रखी मिश्री के समान मीठा और नम्र रहे।

इसके पश्चात बृहत्साधु-सम्मेलन अजमेर में पंच मुनियों के निर्णय का संकेत करते हुए फरमाया कि सातवें पाट पर मुनिश्री गणेशलालजी को युवाचार्य पद देने का ठहराव किया था और जिसका समर्थन समाज की कान्फरन्स ने भी किया और कान्फरन्स के अध्यक्ष एवं सोलह सदस्य, इस प्रकार १७ व्यक्तियों के शिष्टमण्डल ने भी व पूज्य श्री मुन्नालाल जी म. सा. की स्वीकृति से यह ठहराव किया था कि युवाचार्य पद की चादर फाल्गुन शुक्ला १५ से पहले करने का निश्चय किया जाता है। इस प्रकार युवाचार्य पद के लिये मुनिश्री गणेशलाल जी का चुनाव केवल मेरे या इसी संप्रदाय के संघ द्वारा ही नहीं हुआ वरन भारतवर्ष के समस्त चतुर्विध संघ द्वारा हुआ है। तदनुसार ही आज यह युवाचार्य की चादर देने का कार्य किया जा रहा है।

मुनिश्री खूबचन्द जी को उपाध्याय पद की चादर देने का भी निर्णय में उल्लेख है। इसके लिये उन्हें जावद आने की सूचना करवा दी गई थी और जावद संघ ने शिष्टमण्डल भेजकर श्री खूबचन्द जी से जावद आने की प्रार्थना भी की थी। लेकिन वे नहीं आये, इसलिये आज युवाचार्य-पद की चादर देने की एक ही क्रिया की जा रही है।

आचार्य श्रीजी म. सा. के प्रवचन-समाप्ति के बाद मुनिश्री चांदमल जी म. सा. (बड़े), मुनिश्री हरखचन्द जी म. सा. और मुनि श्री पन्नालाल जी म. सा. (सादड़ी वाले) ने पूज्यश्री के व्याख्यान व मुनिश्री गणेशलाल जी म. सा. को युवाचार्य पद देने का समर्थन किया। अन्य उपस्थित सन्तों की ओर से मुनिश्री गब्बूलाल जी म. सा. ने तथा महासतियां जी की ओर से प्रवर्तनी श्री आनन्दकंवरजी म. सा. व प्रवर्तनी श्री केशरकंवरजी म. सा. ने समर्थन, अनुमोदन करते हुए प्रसन्नता व्यक्त की।

अनन्तर समारोह के लिये बाहर से आगत विभिन्न सन्त-सतियां जी, श्रावक-प्रमुखों और श्रावक-संघों की शुभकामनायें व सन्देश रूप में आये हुए पत्र व तार पढ़कर सुनाये गये।

इस प्रकार चतुर्विध संघ की अनुमोदना हो जाने के बाद चरितनायक मुनिश्री गणेशलाल जी म. सा. पूज्य आचार्य श्री जवाहर-लाल जी म. सा. के सामने आज्ञा की प्रतीक्षा में विनीत शिष्य-से खड़े हुए। आचार्य श्रीजी ने नन्दीसूत्र का पाठ कर अपनी चादर उतार कर चरितनायक को ओढ़ाई और उपस्थित सन्तों ने चादर के कोने पकड़कर अपना सहयोग, समर्थन व्यक्त किया।

उस समय ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो सहस्त्ररश्मि सूर्य तमसावृत रजनी के गहन अन्धकार को भेदन करने का दायित्व लघु दीप को सौंप कर अपने अनिर्वचनीय सन्तोषानुभव में लीन हो।

सवा बारह बजे यह कार्य सम्पन्न हुआ। दर्शकों ने जय-जय-कारों से आचार्य श्रीजी म० सा०, युवाचार्य श्रीजी के प्रति अपनी श्रद्धा, भक्ति, प्रमोद व्यक्त करते हुए अभिनन्दन किया। अनन्तर आचार्य श्रीजी म. सा. ने एक छोटा-सा प्रवचन फरमाया—

श्रीमज्जैनाचार्य पूज्य श्री हुक्मीचन्द जी म. सा. के सातवें पाट पर श्री गणेशलाल जी आचार्य नियुक्त हुए हैं। ये मेरे युवाचार्य हैं। चतुर्विध संघ का कर्तव्य है कि इनके वचनों को 'सद्दहामि', 'पत्त-यामि', 'रोइयामि' रूप में स्वीकार करें। युवाचार्य जी का कर्तव्य है कि धर्ममार्ग में सदा जागृत रहते हुए आस्था और विवेक पूर्वक चतुर्विध संघ को धर्ममार्ग में प्रवृत्त कराते रहें। मुझे विश्वास है कि युवाचार्य जी इस पद की जिम्मेदारी दक्षता पूर्वक निभायेंगे। इनका नाम गण—ईश = गणेश है। यह नाम इस पद के कारण सार्थक हुआ है। आशा है ये उत्तरोत्तर सघ की उन्नति करेंगे।

आचार्य श्रीजी के प्रवचन की समाप्ति के अनन्तर युवाचार्यश्री ने फरमाया—

अकामी यो भूत्वा निखिल मनुजेच्छां गमयति,
मुमुक्ष संसाराम्बुनिधितरि वत्तारय विभो।

महारागद्वेषादि कलहमल हारिन्नामृतदाम्,
सुबुद्धि मह्यं हे जिन ! गणपते ! देहि सततम् ।।

मैं परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ कि मुझे वह शक्ति प्रदान करे जो शक्ति सारे ससार का कल्याण करने वाली है । आज मुझे जो गुरुतर उत्तरदायित्व सौंपा गया है, उसे मैं ऐसी शक्ति के सहारे ही वहन कर सकता हूँ । मैं सदैव भावना रखता था कि जीवन भर आचार्य श्री द्वारा प्राप्त आज्ञा का पालन करता हुआ सन्तों की सेवा करता रहूँ । मेरी इस भावना के विपरीत पूज्य आचार्य श्री एवं चतुर्विध संघ ने मुझ अल्पशक्ति वाले को यह भार सौंपा है । इसलिये मैं नम्रता-पूर्वक आचार्य महाराज से भी ऐसी शक्ति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ जिसके द्वारा मैं इस महान बोझ को उठाने में समर्थ होऊं ।

पूज्यश्री के साथ ही सन्तों ने हाथ लगाकर मुझे जो चादर प्रदान की है, वह चादर तंतुओं की बनी हुई है। संस्कृत में तन्तु का दूसरा नाम गुण है । अर्थात् यह चादर गुणमयी है । मुझे आशा है कि इस गुणमयी चादर के साथ ही मुझे गुणों की भी प्राप्ति होगी, जिससे मैं इसकी रक्षा करने में समर्थ होऊं । यद्यपि यह गुणमयी चादर मेरी रक्षा करने में समर्थ है, तथापि इस चादर की रक्षा होना भी आवश्यक है । मुझे यह चादर आचार्य महाराज सहित सब सन्तों ने प्रदान की और चतुर्विध संघ ने इसका अनुमोदन किया है । इस कारण मुझे विश्वास है कि चतुर्विध संघ इसका रक्षक है। चतुर्विध संघ ऐक्यबल से इसकी रक्षा करता रहेगा तभी इस चादर का गौरव सुरक्षित रहेगा और तभी यह संघ की उन्नति करने में भी समर्थ होगी । मैं शासननायक और गुरु महाराज से यही भिक्षा मांगता हूँ कि इस चादर के गौरव की रक्षा करने की शक्ति मुझे प्राप्त हो ।

अनन्तर समारोह-समापन विधि के रूप में विभिन्न सन्त-मुनिराजों और महासतियां जी म. सा. ने अपने-अपने हृदयोद्‌गार व्यक्त किये और जावद श्री संघ की ओर से इस शुभ समारोह के लिये

पूज्य आचार्य श्रीजी म. सा. की स्वीकृति के लिये कृतज्ञता-ज्ञापन एवं श्रद्धांजलि समर्पण तथा विराजमान सन्त सतियां जी म० सा० की सविधि वंदना करते हुए आगत सज्जनों को धन्यवाद दिया गया और आगत सज्जनों की ओर से इस गौरवमयी अवसर का लाभ प्राप्त कराने के लिये जावद श्री संघ का आभार मानने के बाद समारोह सम्पन्न हुआ। बीकानेर श्री संघ के सज्जनों की ओर से प्रभावना वांटी गई।

इन्हीं दिनों विहार प्रान्त में भयंकर भूकंप आने के कारण हजारों व्यक्ति बेघरवार के होकर कष्ट का अनुभव कर रहे थे। हजारों व्यक्ति अपने प्रियजनों के कालकवलित हो जाने से अनाथ हो गये थे और उनकी डवडवाई आंखें अपने आश्रय एवं अभय के लिये टुकुर-टुकुर देख रही थीं। हृदय की व्यथा आंखें विखेरती थीं। आचार्य श्रीजी का कारुणिक हृदय ऐसी करुणापूर्ण स्थिति की अवहेलना नहीं कर सकता था और अपने प्रवचन में आपश्री ने विहार प्रान्त की कष्ट-कथा का संकेत कर श्रावकों को उनके कर्तव्य का स्मरण कराया।

इस कारुणिक प्रवचन के फलस्वरूप समारोह के उपलक्ष्य में श्री नथमल जी चोरडिया ने 'कान्फरन्स भूकंप रिलीफ फंड' खोलने और उसमें यथाशक्ति सहायता, दान देने के लिये विनम्र निवेदन किया। परिणामतः क्षणमात्र में ही लगभग दो हजार रुपये एकत्रित हो गये और शनैः-शनैः एक वहुत वड़ी धनराशि सहायता कार्यों में व्यय करने के लिये प्राप्त हुई।

मालव की ओर

समारोह सोल्लास सम्पन्न हो चुका था। दर्शनार्थी सुविधानुसार श्रद्धेयों के मांगलिक श्रवण रूप पाथेय के साथ अपने-अपने गंतव्य स्थानों की ओर प्रस्थान करने लगे।

आचार्य श्रीजी म. सा. ने कुछ दिन जावद विराजने के अनन्तर ठाणा १२ से वेगूं की ओर तथा युवाचार्य श्री गणेशलाल जी म. सा. ने ठाणा ६ से रामपुरा की ओर विहार किया। आचार्य श्रीजी

म. सा. बेगू के निकटस्थ स्थानों को धर्मदेशना से मुखरित करते हुए रामपुरा पधारे। चातुर्मास काल निकट ही था और विभिन्न क्षेत्रों की विनतियों पर द्रव्यक्षेत्रादि की अनुकूलता से विचार करके युवाचार्य श्रीजी म. सा. का सं० १९९१ का चातुर्मास रतलाम निश्चित किया।

युवाचार्य-पद का प्रथम चातुर्मास

विक्रम सं० १९९१ का चातुर्मास रतलाम हुआ।

यद्यपि पूज्य आचार्य श्री जवाहरलाल जी म० सा० के साथ आपश्री का पहले भी रतलाम में पदार्पण हुआ था और सं० १९७४, १९७८ में चातुर्मास समय भी यहीं व्यतीत किया था। लेकिन युवाचार्य पद पर प्रतिष्ठित होने के पश्चात का यह प्रथम चातुर्मास होने से विशेष उल्लेखनीय है।

पूज्य श्री हुक्मीचन्द जी म. सा. की सम्प्रदाय के बड़े-बड़े महोत्सवों के मनाने से महनीय एवं पूज्यों के पादपद्मों से पवित्र, प्रभावक प्रवचनों से प्रभावित पुण्यस्थली रतलाम— रत्नपुरी में युवाचार्य पद-प्राप्ति के पश्चात चरितनायक जी का प्रथम पदार्पण रतलाम के लिये गौरव की बात थी। उसे सदैव पूज्य श्री हुक्मीचन्द जी म. सा. की पाट-परम्परा के प्रमुखों की देशना-प्राप्ति में अधिकतर प्रथम स्थान प्राप्त हुआ है।

युवाचार्यश्री वर्षावास हेतु यथासमय रतलाम पधार गये। जनता ने जय-जय घोषों से सरलात्मा, संयमनिष्ठ, सन्तशिरोमणि, श्रमणोत्तम का ससम्मान स्वागत करते हुए नगर में प्रवेश कराया। सन्त-मुनिराजों के साथ युवाचार्यश्री का प्रवचन स्थल पर पदार्पण हुआ। प्रवचन प्रारम्भ हुये। जिनमें विरासत से प्राप्त शाश्वत सत्य को हित-मित वाणी में व्यक्त कर विवेक को विकसित करने की बलवती प्ररणा दी।

प्रतिदिन होने वाले प्रवचनों से भविकजनों के भावों में आत्मा का संगीत गुनगुनाने लगा। सत्य की शोध में आत्म-शक्ति केन्द्रित होने लगी। आत्ममंथन से उद्भूत वाणी आध्यात्मिक, लौकिक, पारलौकिक

प्रश्नों का सम्यक् समाधान कर भौतिक पाश से प्रताड़ित मानवजाति को नई चेतना से अनु ।गित करने लगी। जैनागमों के अगम्य आशय सरल सुबोध भाषा में प्रतिपादित होने लगे।

भव्यात्माओं ने आपश्री की माधुर्यमयी वाणी का महत्त्व समझा। शुद्धि और सिद्धि, जीवन का सत्य, धर्म का मर्म, मानव की मानवता और तत्त्वचिन्तन आदि की झांकियां प्राप्त कीं। जो आज भी हमारे मनों में गूंज रही हैं कि आत्मा के सम्वन्ध में मनन और चिन्तन करना ही हमारी जिज्ञासा का चरमविन्दु है। यही ज्ञान की पराकाष्ठा है। आत्मा को पहचानना ही परमात्मपन को उपलब्ध करना है। जहां से ससार के वदलते हुए भावों का अवलोकन किया जा सके। आत्मस्वरूप को न पहचानने के कारण ही आज संसार में इतना अज्ञानान्धकार व दुःख छाया हुआ है।

आपश्री की इस माधुर्यमयी अमृत वाणी का रसास्वादन करने के लिये दूर-दूर के क्षेत्रों से प्रतिदिन सैकड़ों अबालवृद्ध जनों का आगमन होता रहता था। आपके उपदेश से प्रभावित होकर अनेक धार्मिक आचार-विचार के श्रद्धालु भाई-बहिनों ने आत्मशुद्धि के लिये तपस्यायें कीं। अनेकों ने स्वधर्मी बन्धुओं के सहायतार्थ एवं पारमार्थिक कार्यों में सहयोग देने के लिये यथाशक्ति दान दियां। जीवदया के कार्यों को सम्पन्न किया एव अपने-अपने जीवन को सयमित बनाने के लिये व्रत पचखाण ग्रहण किये। सारांश यह कि स्वपर-कल्याण अथवा सर्वोदय के सन्देश को साक्षात करने के लिये तन-मन-धन से सहयोग देने का निर्णय किया तथा जनसाधारण ने भी उपदेशों के श्रवण एवं संयम-वैराग्यमयी वाणी से प्रभावित होकर मांस-मदिरा आदि अभक्ष्य पदार्थों के खान-पान का त्याग किया और यथाशक्य नियम-प्रतिज्ञा लेकर जीवन को नैतिक बनाने का लाभ उठाया।

पर्यूषण पर्व धर्माराधना एवं संयमसाधना का सुअवसर है। अतः इन पुण्य दिवसों में साधु-मुनिराजों ने विविध प्रकार की तपस्यायें

कों एवं श्रावक-श्राविकाओं ने भी बेला, तेला, पंचोला, अठाई आदि अनेक प्रकार की तपस्यायें शक्त्यनुसार कीं। पूर के दिन बिना किसी प्रकार बाह्य दिखावे के पारणे हुए और इन तपस्याओं की स्मृति में सामाजिक सुधार एवं निर्माण के कतिपय महत्त्वपूर्ण निश्चय किये कि जहां कन्या या वर का विक्रम हुआ हो, उस विवाह में न तो सम्मिलित होना और न भोजन करना। मृत्यु-भोज प्रथा भी समाज में कम होती जा रही थी लेकिन कहीं-कहीं हो जाते थे, अतः उनको अपने-अपने क्षेत्रों में पूर्ण रूप से बन्द करने के लिये, उनमें शामिल न होने की प्रतिज्ञायें तो सैकड़ों में हुईं।

दलित जातियों के उत्थान और उनके नैतिक विकास के लिये पूज्य आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. की तरह आपश्री भी अपने प्रवचनों में संकेत करते थे। बहुत से अछूत समझे जाने वाले भाई-बहिन भी आपका प्रवचन सुनने आते थे। आप उनको जीवन का वास्तविक उद्देश्य समझा कर सन्मार्ग पर चलने का उपदेश देते और अपने को उच्च कहने वालों के प्रति संकेत करते कि मानव समाज का असीम उपकार करने वालों को अस्पृश्य, घृणास्पद या नीच समझने वाले बन्धुओ ! आप अपने को उच्च वर्ग का कहते हो तो समझ में नहीं आता कि उच्चता का अर्थ क्या ? क्या उनसे मानवता का व्यवहार न करना ही उच्चता है या मानवता के नाते अपने समान समझना उच्चता है ? याद रखो कि यह नीच कहलाने वाले आपके समान प्राणधारी हैं, मनुष्य हैं, इनकी इच्छा, आकांक्षा, अनुभूति आपके समान है। इन्हें धिक्कार मत दो। इनका अपमान मत करो।

आपकी वाणी का उच्चवर्ग और अछूतों पर अनूठा प्रभाव पड़ता था और वे अपनी-अपनी कमियों या भूलों को सुधारने की ओर अभिमुख होते थे।

आपश्री के प्रवचनों का लाभ लेने के लिये सुदूर क्षेत्रों से आगत बन्धुओं की यथायोग्य व्यवस्था के लिये रतलाम संघ के भाई-

बहिनों में अपूर्व उत्साह था। वे अपने उत्तरदायित्व के प्रति इतने सजग थे कि प्रत्येक स्वधर्मी बन्धु के आतिथ्य-सत्कार, व्यवस्था आदि में किसी प्रकार की त्रुटि नहीं आने देते थे। सभी का एक ही लक्ष्य था कि आगत सज्जनों को किसी प्रकार की परेशानी अनुभव न हो। वे जिस भावना को लेकर आये हैं, उसमें किसी भी रूप से व्यवधान न आये। नवयुवकों में इतना उत्साह था कि स्वधर्मीजनों की सेवा का प्रत्येक कार्य स्वयं करने में अपना गौरव मानते थे।

चातुर्मास का अन्तिम दिवस

दिन के अनन्तर दिन आते रहे और चातुर्मास के चार मास ऐसे बीत गये मानो कल चातुर्मास प्रारम्भ हुआ था और आज उसका अन्तिम दिन आ पहुंचा है। यह अनुभव ही नहीं हुआ कि चार मास का समय कब सरक गया। लेकिन समय के सरकने के साथ चातुर्मास समाप्ति के पश्चात सन्तों के विहार का दिवस— मार्गशीर्ष कृष्णा १ भी आ पहुंचा। इस दिवस जिधर भी देखो उधर अपार जनमेदनी दृष्टिगोचर होती थी। स्थानीय सज्जनों के अतिरिक्त बाहर से आगत श्रावक-श्राविकाओं की संख्या करीब ५००० की रही होगी। प्रवचन-मंडप में सहस्रों जन थे। लेकिन उनके मुख-मण्डल पर प्रफुल्लता नहीं थी। कुछ उदासीनता झलक रही थी। मनों में द्वन्द्व चल रहा था कि आज आपश्री का विहार होगा।

अनन्तर वह क्षण भी आ गया जब आपश्री ने सन्तों के साथ विहार किया। विदाई का दृश्य बड़ा ही भावपूर्ण था। उपस्थिति ने जयघोष किया लेकिन उसमें भरे मन की गूंज थी। हजारों साथ साथ पैदल चल दिये और सैकड़ों तो दो-दो चार-चार मील तक साथ रहे। आप श्री ने कुछ समय रतलाम के आस-पास के क्षेत्रों में विहार कर पूज्य श्रीजी की सेवा में पहुंचने के लिये मेवाड़ की ओर विहार कर दिया।

मार्ग के जिन ग्रामों या नगरों में आप पधारते थे कि वहां के और उनके निकटस्थ प्रदेश वासियों की ओर से दो-चार दिन विराज

कर धर्मामृत का पान कराने की विनतियां होना प्रारम्भ हो जाता था। उनके मनों में 'यस्य देवस्य गंतव्यं स देवो गृहमागतः' का भाव छलकने लगता था। आपश्री भी समयानुसार दो-चार दिन विराज कर धर्मोपदेश फरमाते थे और सीधी-सादी भाषा में होने वाले आपश्री के उपदेश जनता के अन्तर्मन तक पैठ जाते थे।

आचार्य श्रीजी की सेवा में

आपश्री ने आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. की सेवा मे उपस्थित होने के लिये मेवाड़ की ओर विहार किया था। उधर आचार्य श्रीजी म. सा. का भी चातुर्मास समाप्ति के पश्चात मालवा की ओर विहार हुआ और फाल्गुन शुक्ला चतुर्थी को जावरा पधारे। उसी समय चरितनायक जी मुनिश्री चांदमल जी म. सा. (बड़े) आदि सन्तों सहित जावरा पधार गये और आचार्य श्रीजी के साथ ही नगर-प्रवेश किया। नगरवासियों ने बड़े ही उत्साह और उमंग से अगवानी की।

धर्मप्रवर्तकों के पदार्पण से प्रत्येक स्थल तीर्थ के विरुद को प्राप्त कर लेता है। आचार्य श्रीजी, युवाचार्य श्रीजी एवं अन्यान्य ज्ञान-ध्यान-तप-संलीन सन्त-मुनिराजों के पदार्पण से जावरा नगर तीर्थ बन गया। भव्य जीवों के उत्कर्ष के लिये वीतराग वाणी की देशना मुखरित होने लगी और होली चातुर्मास तक सभी मुनिराजों का जावरा में विराजना हुआ।

इन दिवसों के अन्तराल मालवा और मेवाड़ के विभिन्न श्री सघों का आचार्य श्रीजी एवं युवाचार्य श्रीजी के आगामी चातुर्मास की स्वीकृति फरमाने हेतु जावरा में आगमन हुआ। उनमें देवास श्री सघ की हार्दिक भावना थी कि युवाचार्य श्रीजी म. सा. का आगामी चातुर्मास देवास में होने की स्वीकृति फरमाई जाये। इससे पूर्व भी समय-समय पर देवास श्री संघ का शिष्टमण्डल आचार्य श्रीजी म. सा. की सेवा में अपनी विनती लेकर उपस्थित हुआ था और इस बार द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव को देखते हुए आचार्य श्रीजी म. सा. ने युवाचार्य श्रीजी के

आगामी चातुर्मास (सं० १९९२) के लिये देवास श्री संघ को स्वीकृति फरमाई ।

मालवा और मेवाड़ के विभिन्न क्षेत्रों में जैन-दर्शन, आचार-विचार से समृद्ध धर्मोपदेश देते हुए और त्याग-प्रत्याख्यान कराते हुए चरितनायक जी सं० १९९२ के चातुर्मासार्थ देवास पधारे ।

देवास पर्वतीय उपत्यका के मध्य बसा हुआ हरा-भरा धन-धान्य सम्पन्न एक सुरम्य नगर है । चारों ओर शांत वातावरण, हरे-भरे पर्वतों और दूर-दूर तक खेतों, वनराजि से घिरा होने से तपोभूमि की कल्पना को साकार कर देता है । मध्यभारत के रजवाड़ों में देवास भी एक राज्य था और वहां के राजा छत्रपति शिवाजी के वंशज थे ।

देवास श्री संघ चरितनायक जी की प्रतिभा एवं विद्वत्ता से पहले ही परिचित हो चुका था और चातुर्मास की स्वीकृति से उसका उत्साह द्विगुणित हो गया । भव्य स्वागत-समारोह के साथ श्री संघ ने सन्तों का नगर प्रवेश कराया । सन्तों का समागम सत्पुरुषों के लिये प्रेरणादायक होता है ।

प्रतिदिन आपके प्रवचन होते थे । घर आई इस प्रवचन-गंगा की पवित्र धारा से पावन होने के लिये यथासमय श्रोताओं का समूह एकत्रित होता, तत्त्वचर्चा के अवसर पर विद्वानों का जमघट लग जाता और त्याग, प्रत्याख्यान करने वालों का तो एक मेला-सा ही जुड़ा रहता था ।

इसका लाभ सिर्फ साधारण जन ही लेते हों सो बात नहीं थी । श्रोताओं एवं जिज्ञासुओं में राज्य के उच्च पदाधिकारियों की उपस्थिति भी उल्लेखनीय रहती थी । आपके उपदेश, आचार-विचार का विवेचन सबके लिये समान रूप से हितकर था एवं उसे श्रवण करने का अधिकार भी सभी के लिये सुलभ था । किसी वर्ग या जातिविशेष तक उपदेश सीमित नहीं थे । जो भी आता, उपदेश सुनता और अंतर् में एक नई चेतना, नई स्फूर्ति एवं प्रेरणा प्राप्त कर लौटता था ।

आपके प्रवचनों का इतना व्यापक प्रभाव हुआ कि अनेक राज्याधिकारियों, सरदारों ने मद्य-मांस आदि अभक्ष्य भक्षण आदि के कुव्यसनों का त्याग कर दिया। उनका ऐसा करना कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। जहां पर भी प्रभावशाली और सहृदय सन्त विराजमान होते हैं, वहां ऐसी बातें होना सहज ही है। मानव मात्र में उज्ज्वल आत्मा विद्यमान है और उसकी उज्ज्वलता का प्रकाशन भी करना चाहता है। लेकिन योग्य संयोग पाकर ही सफलता प्राप्त होती है।

आपश्री के देवास विराजने से बहुत उपकार हुए। दया, पोषध, उपवास आदि तपस्यायें बड़ी संख्या में हुईं। संक्षेप में कहा जाये तो आपश्री का यह चातुर्मास सब प्रकार से सफल हुआ।

व्यवस्थापकीय अधिकार-प्राप्ति

चरितनायक जी का सं० १९९२ का चातुर्मास देवास था और पूज्य आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. चातुर्मासार्थ रतलाम में विराजमान थे। इस प्रकार दो-दो सन्त-शिरोमणियों की धर्मदेशना से मालव-मेदनी में मधुरता का प्रसार हो रहा था। दोनों महान थे और उनके महान उपकारी मनोहर मंगल वचनों को सुनकर मुमुक्षु मानवीय आत्माओं को मनन-चिन्तन के लिये नित नूतन अनुभूतियां प्राप्त होती थीं।

दोनों महान अनुपमेय थे। यदि एक सूर्य था तो दूसरा चन्द्रमा। यदि एक संघ-शिरोमणि था तो दूसरा संयम-शिरोमणि। यदि एक तेजस्वी था तो दूसरा ओजस्वी। यदि एक संगठन का प्रस्तावक था तो दूसरा उसका प्रतीक। यदि एक दीपक था तो दूसरा उसकी दीप्ति। यदि एक जीवन का साहित्य था तो दूसरा उसका भाष्य। एक त्यागी था तो दूसरा संयमी। यदि एक संस्कृति का रक्षक था तो दूसरा उसका प्रसारक। इस प्रकार दोनों अपने-अपने रूप में महान थे और अपनी महानता से मालवमेदनी में मानवता की विवेचना करते हुए मुमुक्षुओं को प्रतिबोधित कर रहे थे।

चरितनायक जी युवाचार्य पद पर प्रतिष्ठित हो गये थे, लेकिन

अभी तक पूज्य आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. स्वयं संप्रदाय के चातुर्मास, विहार, प्रायश्चित आदि की व्यवस्था का भार संभाल रहे थे। आचार्य श्रीजी को युवाचार्यश्री की प्रतिभा, प्रबन्धपटुता से सन्तोष था और चतुर्विध संघ की आशा के केन्द्र-विन्दु हो चुके थे। आचार्य श्री का मनोमंथन चल रहा था कि अब युवाचार्य जी को संघीय व्यवस्था का दायित्व सौंप दूं, जिससे सम्बन्धित अनुभव हो जायेगा और जो भविष्य के लिये सुविधाजनक रहेगा।

आचार्य श्रीजी ने अपने विचारों को मूर्तरूप देने के लिये सं० १९९२, आसौज कृष्णा ११, सोमवार, दि० २३ सितम्बर ३५ को प्रवचन के अवसर पर युवाचार्य श्री को अधिकार प्रदान करने की घोषणा करते हुए अपना अनुभव व्यक्त किया कि संघ-व्यवस्था सम्बन्धी जिम्मेदारी आते ही पूज्य श्री श्रीलाल जी म. सा. स्वर्ग सिधार गये और अचानक संप्रदाय की समग्र व्यवस्था का भार मुझ पर आ पड़ा। तब मुझे अनुभव हुआ कि अगर पूज्य श्री की मौजूदगी में ही मैं कार्य करने लगा होता तो यह अकस्मात आया हुआ भार मुझे दुस्सह प्रतीत न होता। इसी अनुभव से मेरी वृद्धावस्था ने मुझे प्रेरित किया है कि प्राप्त अवसर का उचित उपयोग कर लिया जाये। तदनुसार आज मैं चतुर्विध संघ की उपस्थिति में संप्रदाय का कार्यभार जैसे दंड-प्रायश्चित देना, चातुर्मास निश्चित करना, संघ-व्यवस्था सम्बन्धी अन्य कार्य आदि-आदि युवाचार्य श्री गणेशलाल जी को सौंपता हूँ। साथ ही यह भी स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि संघ-व्यवस्था सम्बन्धी कार्य सौंप देने का कोई यह आशय न समझें कि मैं व्याख्यान देना बन्द करके मौनग्रहण कर लूंगा। कुछ भाइयों का ऐसा ख्याल है। लेकिन संघ-व्यवस्था सम्बन्धी कार्य सौंपना अलग है और व्याख्यान देना अलग है।

अनन्तर आचार्य श्रीजी की आज्ञा से मुनि श्री जोहरीमल जी म. सा. ने युवाचार्य श्रीजी को संघ-व्यवस्था सम्बन्धी कार्यभार सौंपने विषयक आचार्य श्रीजी का निम्नलिखित अधिकारपत्र पढ़कर सुनाया—

'सम्प्रदाय के आज्ञावर्ती सन्त श्री बड़े प्यारचन्द जी म. आदि सन्तों, रंगूजी महासती जी की संप्रदाय की प्रवर्तनी जी आनन्दकंवर जी आदि आज्ञावर्ती सतियां, मोताजी महासती जी की सम्प्रदाय की प्रवर्तनी जी केशरकंवर जी, महताबकंवर जी आदि उनकी सब सतियां एवं खेतांजी महासती जी की सम्प्रदाय की प्रवर्तनी जी राजकुंवर जी आदि उनकी सब सतियां, उसी तरह पूज्य श्री हुक्मीचन्द जी महाराज की सम्प्रदाय के हितेच्छु सब श्रावकों और श्राविकाओं से मेरी यह सूचना है कि—

१—अखिल भारतवर्षीय श्री संघ और मैंने श्री गणेशलाल जी को सम्प्रदाय के युवाचार्य पद पर स्थापित कर दिया है।

२—अब मैं अपनी वृद्धावस्था व आन्तरिक इच्छा से प्रेरित होकर आपको सूचित करता हूँ कि मेरे पर जो सम्प्रदाय की जिम्मेदारी है अर्थात् सारणा, वारणा करना, सब सन्त-सतियों को आज्ञा में चलाना, सम्प्रदाय सम्बन्धी कार्यों की योजना करना एवं सम्प्रदाय सम्बन्धी नियमों का पालन करने के लिये संघ को प्ररित करना आदि यह सब कार्यभार अब मैं युवाचार्य श्री गणेशलाल जी के ऊपर रखता हूँ। अतः आप चतुर्विध संघ आज से सम्प्रदाय के कुल कार्य की देखरेख, पूछताछ, आज्ञा लेना आदि सब कार्य उन्हीं से लेवें। मैं आज से सम्प्रदाय का पूर्ण अधिकार उन्हीं को देता हूँ। केवल मेरी सेवा में जिन्हें उचित समझूंगा, उन सन्तों को अपने पास रखूंगा और उन सन्तों पर मेरी देख-रेख रहेगी।

३—आप श्री संघ ने मेरी आणा, धारणा मानकर जैसा मेरा गौरव रखा है, वैसा ही युवाचाय श्री गणेशलाल जी का भी रखेंगे, यह मेरे को पूर्ण विश्वास है। युवाचार्य श्री गणेशलाल जी भी श्री संघ के विश्वासपात्र हैं। अतएव श्री संघ ने उन्हें युवाचार्य पद प्रदान किया है। इसलिये इस विषय में मुझको विशेष कुछ कहने की

आवश्यकता नहीं है।

४—युवाचार्य श्री गणेशलाल जी के प्रति मेरी हार्दिक सूचना है कि अब आप सम्प्रदाय के पूर्वजों के गौरव को ध्यान में रखते हुए सम्प्रदाय का और श्री संघ का कार्य विवेक के साथ इस प्रकार करें कि जिससे श्री संघ संतुष्ट होकर किसी प्रकार की त्रुटि का अनुभव न करे।

श्री शासनाधीश श्रमण भगवंत महावीर स्वामी एवं शासन श्रेयस्कर श्रीमन् हुक्ममुनि आदि पूज्यपाद महानुभावों के तपोमय तेज प्रताप से श्री युवाचार्य गणेशलाल जी इस विशाल गच्छ को सुचारु रीति से चलाकर पूर्वजों के यशः शरीर की रक्षा करते हुए शोभा बढ़ायेंगे, ऐसा मेरा ही नहीं श्री संघ का भी पूर्ण विश्वास है।

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः

आचार्य श्रीजी की उक्त घोषणा से चतुर्विध संघ के हर्ष का पार न रहा। जहां तहां धन्य-धन्य की ध्वनि गूंज उठी। आचार्य श्री ने रतलाम में ही अपने दायित्वों का हस्तान्तरण करना क्यों उचित समझा ? इसके बारे में हमारा अनुमान है कि पूज्य श्री ने यहीं पर युवाचार्य पद के दायित्वों की प्राप्ति की थी और साधु की मर्यादा है कि जो वस्तु जहां से ली जाये या लाई जाये उसे कार्यपूर्ति के बाद उसी स्थान पर लौटा देना चाहिये। सम्भवतः इसीलिये उन्होंने अपने दायित्वों की धरोहर चतुर्विध संघ के समक्ष रतलाम में लौटा देने का निर्णय किया हो।

आचार्य श्रीजी के घोषणापत्र को लेकर रतलाम श्री संघ के प्रमुख-प्रमुख अग्रणी श्रावक युवाचार्य श्रीजी की सेवा में देवास उपस्थित हुए और चतुर्विध संघ के समक्ष आचार्य श्रीजी की घोषणा के बारे में विस्तृत जानकारी दी। सभी ने इस के प्रति अपना उल्लास

व्यक्त किया और गौरव माना ।

घोषणा विषयक समाचारों को सुनकर युवाचार्य श्रीजी के मुख-मण्डल पर गम्भीरता झलक उठी और अपनी शक्ति की तुलना करने लगे । लेकिन 'गुरोराज्ञा बलीयसी' के प्रति श्रद्धाशील आप आदेश को शिरोधार्य कर संयम-साधना के साथ-साथ संघ-साधना के विस्तृत राजमार्ग पर विवेक एवं पूर्व महापुरुषों के अनुभवों के सहारे अग्रसर हुए ।

मेवाड़ की ओर

विविध प्रकार के धार्मिक समारोहों, त्याग, तपस्याओं से आपश्री का देवास चातुर्मास सानन्द सम्पन्न हुआ । चातुर्मास समाप्ति के अनन्तर देवास व देवास के निकटस्थ श्री संघों ने भावभीनी विदाई दी । कुछ दिन आस-पास के क्षेत्रों में विहार करने के पश्चात आपने आचार्य श्रीजी की सेवा में उपस्थित होने के लिये रतलाम की ओर विहार किया । आचार्य श्रीजी म. सा. रतलाम से विहार कर सैलाना पधारे । परन्तु वहां कान में पीड़ा हो जाने से वापिस उनका रतलाम पदार्पण हुआ । उपचार से पीड़ा के शांत हो जाने के पश्चात युवाचार्य श्री आदि १४ सन्तों के साथ जावरा, मंदसौर, निम्बाहेड़ा भीलवाड़ा, गुलाबपुरा, विजयनगर आदि-आदि क्षेत्रों को स्पर्शते हुए ब्यावर पधारे ।

उन्हीं दिनों पूज्य श्री हस्तीमल जी म. सा. ने मारवाड़ में विचरण करते हुए पूज्य आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा से मिलने की इच्छा प्रकट की । तदनुसार अजमेर आदि क्षेत्रों में विहार करते हुए पूज्य श्री हस्तीमल जी म. सा. जेठाणा पधारे और पूज्य आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा, युवाचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. आदि ठाणा ११ भी ब्यावर से विहार कर जेठाणा पधार गये । वहां दोनों आचार्यों का मिलन हुआ और तात्त्विक चर्चा वार्ता होती रही । इस सुअवसर का श्रावक-श्राविकाओं ने लाभ उठाया और अनेक श्री संघों की ओर से सम्मिलित चातुर्मास करने की विनतियां हुईं, लेकिन पूज्य

आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. की सेवा में काठियावाड़ के श्री संघों की ओर से काठियावाड़ पधारने की विनती होने से और पूज्य श्री हस्तीमल जी म. सा. द्वारा जयपुर फरसने का संकेत वहां के श्री संघ को दिये जाने से सम्मिलित चातुर्मास होने की सम्भावना न बन सकी।

काठियावाड़ के श्री संघों की ओर से श्री चुन्नीलाल नागजीभाई वोरा राजकोट निवासी पुनः उधर के श्री संघों की सम्मिलित विनती लेकर पूज्य आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. की सेवा में उपस्थित हुए और उस ओर पदार्पण करने की स्वीकृति चाही। आचार्य श्री जी ने युवाचार्य श्रीजी आदि सन्तों से विचार-विमर्श कर काठियावाड़ की ओर विहार करने का श्री वोरा जी को आश्वासन दे दिया।

काठियावाड़ को लक्ष्य कर आचार्य श्रीजी म. सा. पाली आदि क्षेत्रों को फरसते लाडेराव सांडेराव पधारे। यहां तक युवाचार्य श्रीजी आदि सन्त भी साथ थे। युवाचार्यश्री ने काठियावाड़ की ओर पदार्पण कराने के लिये आचार्य श्रीजी म. सा. आदि ठा. ६ को भावांजलि अर्पित करते हुए विदाई दी और वरद आशीर्वाद के रूप में आचार्य श्रीजी म. सा. की मंगल कामनायें प्राप्त कर आपश्री ने अन्य मुनिराजों के साथ मेवाड़ की ओर विहार कर दिया। उस समय का दृश्य ऐसा प्रतीत हो रहा था कि धर्मदेशना का पीयूषवर्षी प्रवाह विशाल जनमेदनी को समृद्ध, सम्पन्न बनाने के लिये दो धाराओं में प्रवाहित हो रहा है।

चरितनायक जी अपने विहार से मेवाड़ वसुन्धरा को महाप्रभु महावीर के महनीय उपदेशों से पवित्र करने लगे। मेवाड़ में शौर्य था, सरलता थी, आत्मीयता थी लेकिन शिक्षा का यथेच्छ प्रसार न होने से वहां के निवासियों के आचार-विचार रूढ़ियों और अन्धश्रद्धा से आवृत थे। कन्याविक्रय, वरविक्रय, बाल-वृद्ध-विवाह, मृत्युभोज आदि-आदि कुरूढ़ियों ने जन-जीवन को आक्रान्त कर रखा था। जनता इस तथ्य से अनभिज्ञ-सी थी कि ज्ञानविहीन धर्माचरण हाथी के स्नान की तरह

है। अतः आपश्री अपने प्रवचनों में इन विषयों पर प्रभावक संकेत करते थे। जिनका श्रोताओं पर प्रभाव पड़ता था और अब तक जहां व्यावहारिक जीवन को ही महत्त्व देने की स्थिति चल रही थी, वहां लोगों ने व्यावहारिक जीवन में धार्मिकता का मूल्यांकन किया तथा धर्म को मुख्यता देने लगे।

इस प्रकार मेवाड़ की जनमेदनी को जीवन की यथार्थता से परिचित कराते हुए चरितनायक जी ने सं० १९९३ के चातुर्मास हेतु मेवाड़ के मुख्य नगर उदयपुर में पदार्पण किया और आबालवृद्ध नगरवासियों ने अगवानी करके अपने को धन्य माना।

चातुर्मास समय में आपके उपदेशों से जनता में धर्म, नीति, और सत् आचार-विचारों के संस्कारों का सिंचन हुआ और आपश्री नितनूतन शास्त्रों का अवलोकन करते, विविध दार्शनिक विचारों का तुलनात्मक शैली से अध्ययन कर विवेचन की गहराई तक पहुंचते हुए 'ज्ञान-ध्यान-तपोरक्ततपस्वी स प्रशस्यते' की उक्ति को चरितार्थ कर रहे थे।

आपश्री की धर्मदेशना का लाभ उठाने के लिये श्रोताओं की उपस्थिति काफी संख्या में होती थी एवं प्रतिभा और आत्मानुभूति से समृद्ध आपश्री की वाणी ने श्रोताओं को अपनी ओर आकर्षित कर लिया था और आपका उपदेश सुनने के लिये लोगों में उत्सुकता बनी रहती थी।

पूर्व भव का संस्कार कहिये या ज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम कहिये, चरितनायक जी की यशदुन्दुभी चतुर्दिक् में गूंज उठी। आपके उपदेशों से प्रभावित होकर अनेकों ने यावज्जीवन के लिये कुव्यसनों का त्याग कर दिया। जनसाधारण ही नहीं, किन्तु राज्य के उच्च-से-उच्च पदाधिकारी भी आपकी प्रवचनवाणी श्रवण का अवसर नहीं चूकते थे। आप जो कुछ भी कहते थे, वह जनता की भाषा में जनता के लिये था और जो कहते थे तदनुसार करनी में भी उतारते थे, अतः सभी को अपनी ही जीवनोपयोगी बात लगती थी। ज्ञान और संयम का सुमेल

सोने में सुगन्ध की उक्ति को चरितार्थ कर रहा था। इसी कारण राजा और रंक, समान रूप से आपके प्रति अटूट श्रद्धा-भक्ति प्रदर्शित करते थे।

संघव्यवस्थापक की दृष्टि से आप युवा थे, इसीलिये आप युवाचार्य पद पर विभूषित माने जाते थे लेकिन अनुभव, ज्ञान, चिन्तन-मनन की दृष्टि से प्रौढ़ थे। आपकी इस प्रौढ़ता की परीक्षा के लिये अनेक व्यक्ति विविध विचारों, दृष्टिकोणों को लेकर सेवा में उपस्थित होते थे, अतः बच्चों को बच्चों की बोली में, युवकों को युवकों की शैली में और बूढ़ों को बूढ़ों की भाषा में समझकर समाधान करते थे। एतदर्थ सभी आभार मानते हुए श्रद्धावनत होते और अपने को धन्य मानते थे।

चातुर्मास आशातीत सफलता से समाप्त हुआ। लेकिन इसके पूर्व ही विभिन्न श्री संघों की ओर से अपने-अपने क्षेत्रों में पधारने, आगामी वर्ष का वर्षावास बिताने के लिये विनतियां होनी प्रारम्भ हो गई थीं। लेकिन ऐसा सम्भव नहीं था कि सभी को स्वीकृति दी जा सके। अतः आप उनके बारे में मौन रहकर समयानुसार फरसने के विचारों में मग्न रहते थे। चातुर्मास समाप्ति के अनन्तर उदयपुर निवासियों ने भरे हुए हृदयों से आपको विदाई दी।

मारवाड़ के मुख्य केन्द्र : बीकानेर में

श्रद्धेय आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. की भावना थी कि युवाचार्य श्री उन सभी क्षेत्रों का विहार कर लें जिनमें श्रद्धालु श्रावकों की गृह संख्या अधिक है। इस भावनानुसार आपश्री ने मेवाड़, मारवाड के विभिन्न स्थान स्पर्शे।

पूज्य श्री हुक्मीचन्द जी म. सा. के श्रद्धालु-श्रावकों की संख्या मारवाड़ में अधिक है और बीकानेर उनका प्रमुख केन्द्र माना जाता है। युवाचार्य पदवी प्राप्ति के पश्चात अभी तक बीकानेर की ओर आपका पदार्पण नही हुआ था और वहां के श्री संघ की हार्दिक भावना थी कि युवाचार्य श्रीजी बीकानेर में चातुर्मास काल में विराज कर दर्शन, प्रवचन-श्रवण, सेवा-भक्ति का सुअवसर प्रदान करें। इसके लिये समय-

समय पर आचार्य श्रीजी म. सा. एवं आपश्री की सेवा में विनती लेकर बीकानेर संघ उपस्थित होता रहा था और सौभाग्य से उदयपुर चातुर्मास समाप्ति के पश्चात आपश्री का मारवाड़ की ओर विहार हुआ।

मारवाड़ की ओर विहार होने से बीकानेर श्री संघ को आशा बंधने लगी कि बीकानेर को आपके चातुर्मास का सौभाग्य अवश्य ही प्राप्त होगा और प्रत्येक स्थान पर पुनः-पुनः अपनी विनती आपश्री की सेवा में प्रस्तुत की। परिणामतः सं० १९९४ का चातुर्मास बीकानेर में करने की स्वीकृति प्राप्त हो गई। इस स्वीकृति से बीकानेर और आस-पास के श्रावक-श्राविकाओं के हर्ष का पार न रहा।

यद्यपि आपश्री का आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. के साथ पहले बीकानेर में पदार्पण हो चुका था, लेकिन उस समय आपकी विद्वत्ता, महत्ता, प्रभावकता और तेजस्विता का समग्र परिचय श्रोताओं को प्राप्त नहीं हो सका था। यद्यपि आपके यशसौरभ से यह क्षेत्र व्याप्त था लेकिन सौरभ के केन्द्र को निकट से देखने का यह प्रथम अवसर ही प्राप्त हो रहा था। यही कारण था कि जब सन्त-मण्डल सहित आपश्री ने बीकानेर राज्य की सीमा में पदार्पण किया तो बीकानेर मण्डल के श्रद्धाशील भव्य, भावुक भक्त आबालवृद्ध नर-नारीगण आपके दर्शन एवं अगवानी के लिये उमड़ पड़े।

शनैः-शनैः आपके चरण बीकानेर की ओर बढ़ रहे थे लेकिन अब तो बीकानेर और आपश्री के बीच क्षेत्रकृत दूरी ही शेष रह गई थी। यदि आप जंगल में विश्राम लेते थे तो वहीं बीकानेर बस जाता जाता था, कोई गांव पड़ता तो बीकानेर बन जाता और कोई चौराहा पड़ता तो बीकानेर दिखता। जहां भी देखो वहीं बीकानेर वासी ही दिखलाई देते थे। बीकानेर के एक होने पर भी 'एकोऽहं बहुस्याम्' की प्रतीति कराता था।

चातुर्मास प्रारम्भ होने का समय सन्निकट आ गया था और आपश्री बीकानेर के निकटस्थ देशनोक ग्राम में पधारे तो वहां के वासियों

ने अन्यान्य स्थानों से आगत सज्जनों के साथ बहुत दूर तक सामने जाकर अगवानी करते हुए स्वागत किया और अपनी भावना को सफल बनाया।

देशनोक से विहार कर आपश्री बीकानेर पधारे। नगर की सीमा पर स्थानीय गणमान्य सज्जनों के साथ जन-साधारण ने स्वागत किया। जिधर देखो उधर ही चहल-पहल दृष्टिगोचर होती थी। वातावरण में रमणीयता प्रतीत होती थी। उस समय का वर्णन कल्पनागम्य है। लेकिन उसके लिये इतना ही संकेत पर्याप्त है कि उमंगों से महकते मानव मनों में माननीय के आगमन से असीम उत्साह था। जिसे कोई जय-जय के घोषों से व्यक्त कर रहा था तो कोई गीतों के सुर में। कोई वंदन से अभिनन्दन करता तो कोई चरणों में नमन करता। बालकों ने तो अपनी भक्ति की अभिव्यक्ति का एक अनूठा ही तरीका अपनाया था। वे पंक्तिबद्ध टोली के रूप में आगे-आगे चलते हुए अपने सलौने स्वरों से दिग्मण्डल को मुखरित कर रहे थे—

हम लाये हैं इन पूज्य को, अपने ही प्रेम से।
पायेंगे धर्म लाभ को, सुन लो ये ध्यान से।

उनके इस कार्य से प्रेरणा लेकर जन-समूह ने एक जुलूस का रूप ले लिया। जिसमें सबसे आगे उछलता-कूदता शिशुसमूह, मध्य में सन्त-मण्डल और पश्चात श्रावक-श्राविकाओं का समूह था।

नगर के मुख्य-मुख्य मार्गों से होता हुआ जुलूस चातुर्मासकाल में सन्तों के विश्रामार्थ विराजने वाले स्थान पर आया और प्रवचन-सभा के रूप में परिवर्तित हो गया एवं चरितनायक ने प्रासंगिक प्रवचन फरमाया। जिसके भाव थे—

मित्रो ! तुम क्षत्रिय वंशज हो। वीर क्षत्रिय वंश ने अपने कर्तव्य में रत रहकर केवल अपने ही वंश का नहीं, वरन चारों ही आश्रमों को देदीप्यमान कर दिया था। देवाधिदेव तीर्थंकरों ने क्षत्रिय वंश में जन्म लिया था और आप उनके ही अनुयायी हो। क्षत्रिय त्याग

में विश्वास करता है। उसका त्याग अनेक रूप में प्रगट होता है। दीन-दुःखी की आततायी से रक्षा के लिये अपना सर्वस्व त्याग करने में उसे झिझक नहीं होती है। त्याग का साक्षात रूप उपस्थित कर देना ही उसके जीवन की सबसे बड़ी अभिलाषा होती है।

लेकिन आज उन क्षत्रिय वंशजों में बनियापन दिख रहा है। त्याग का स्थान संग्रह ने ले लिया है और उस पर ममत्व भाव रखकर स्वामित्व जता रहा है। इस कारण अनेक बुराइयां घर करती जा रही हैं। दुनिया में चारों ओर देखा जाता है कि सम्पत्ति पर व्यक्ति का स्वामित्व होने से सैकड़ों प्रकार से कलह एवं झगड़ों की उत्पत्ति होती रहती है। इस सारी विषमता और कलुषिता से त्राण पाने एवं समाज में सुव्यवस्था के साथ आत्मा की उन्नति करने का आबाध-मार्ग है असंग्रह भाव — भगवान महावीर द्वारा प्ररूपित अपरिग्रहवाद। जिसकी ओर आप लोगों का ध्यान जागे और उस मार्ग पर चलें तथा इसका प्रकाश सारे संसार में फैलायें। यह आज के युग की मांग है।

आप एक ओर बड़ी-बड़ी तपस्यायें करते हैं और दूसरी ओर परिग्रह के पीछे पड़े रहते हैं। तो क्या यह उस तपस्या को लज्जित करना नहीं है? निष्परिग्रही महावीर के अनुयायियों का यह कार्य क्या स्वयं महावीर को लज्जित करने जैसा कार्य नहीं है?

यदि त्याग और अपरिग्रह के क्रियात्मक रूप को आप अपने जीवन में उतारें तो आप अपने जीवन में आनन्द का अनुभव करेंगे ही— साथ ही सारी दुनिया में एक नई रोशनी, नया आदर्श उपस्थित कर सकेंगे। क्योंकि अपरिग्रह का सिद्धान्त चारित्र एवं संयम की आधार-शिला पर नागरिकों को खड़ा करके पनपने का अवकाश देगा।

इसलिये मैं आपसे कहता हूँ कि आप अपरिग्रह बनिये। अपने बनियापन के विचारों को अपने हृदय से निकाल दो। आपकी धमनियों में वही शुद्ध क्षत्रिय रक्त दौड़ रहा जो त्याग को अपना आदर्श मानता है। उठो! तुम्हारे उठे बिना बेचारा रक्त भी क्या करेगा? महावीर

के अनुयायी कहलाने के गौरवान्वित नाम के गौरव को और अधिक बढ़ाइये । यह बाहर का वैभव बाहर और अन्दर दोनों को डुबाने वाला है । अतः अन्दर के वैभव को बढ़ाइये और उसको समृद्ध कीजिये और उस रोशनी की मशाल फिर से ऊपर उठाइये तो आप देखेंगे कि आपकी उन्नति का निष्कंटक पथ स्पष्ट दिखाई दे रहा है ।

वस्त्राभूषणों से अलंकृत, बाह्य वैभव से समृद्ध, हवेलियों के निवासी श्रावक-श्राविकाओं ने संयम, तप, त्याग के आंतरिक वैभव से अलंकृत, ज्ञानसमृद्ध सन्त के प्रभावक अर्थगम्भीर प्रवचन को सुना और मनोमथन द्वारा तदनुसार जीवन में परिवर्तन लाने का निर्णय किया । क्योंकि मानवीय जीवन का उद्देश्य अन्धकार से प्रकाश की ओर बढ़ते जाना है और चरम विकास के रूप में एकदिन स्वयं के जीवन को परम प्रकाशमय बना लेना है । यदि उच्चता की ओर बढ़ना है और भारहीन होना है तो इस भौतिक भार को जिसे अपना मान रखा है, अवश्य परित्याग कर देना चाहिये ।

योग्य क्षेत्र और उचित समय पर बोयें गये बीज अंकुरित होकर जैसे पल्लवित होते हैं, वैसे ही इन सन्तप्रवर के यह वाणी-बीज भी यथासमय अंकुरित हुये और कालान्तर में अनेक श्रावक-श्राविकाओं ने वैभव को शक्त्यनुसार मर्यादित करने के नियम, व्रत, प्रतिज्ञा ली ।

बीकानेर विवेक-वैभव से भी समृद्ध है। उसने प्रथम दिन के प्रथम प्रवचन में ही आपश्री की प्रतिभा को परख लिया और प्रमोद व्यक्त करते हुए कहा कि युवाचार्य श्री यथानाम तथागुण के प्रतीक बन योग्य गुरु के सुयोग्य शिष्य सिद्ध होंगे । उसने परखा था कि आप श्रमण-धर्म के साक्षात रूप हैं । उसने आप में देखे थे श्रमणत्व के तीनों रूप — श्रमण, समन और शमन । आप आन्तरिक शत्रुओं— कर्मों एवं मनोविकारों को नष्ट करने हेतु श्रमसाधना— तपसाधना के लिये सदैव तत्परता रहते थे। आपका आचार आत्मवत् सर्वभूतेषु का साकार रूप था और कुविचारों और कुवृत्तियों का शमन करने की साधना के प्रति

सतत जाग्रत थे ।

जहां साधु-सन्तों, महापुरुषों का आगमन होता है तो उनके आचार-विचार का प्रभाव अन्यान्य साधारणजनों पर भी पड़ता है और तदनुरूप जीवन व्यवहार बनाने की प्रेरणा लेकर वे साधना में रत हो जाते हैं । आपश्री प्रतिदिन प्रवचनों में आगमानुकूल विवेचन के साथ राष्ट्रधर्म, नारी-जागरण, हिंसाजनक व्यापारों का निषध, सादगी और सरलता आदि विषयों पर अविकार पूर्ण भाषा में प्रकाश डालते थे । जैनसिद्धान्तों एवं आगमसाहित्य की सर्वांगीणता के बारे में आपकी धारणा बहुत उच्च थी और उसके अध्ययन-मनन पर विशेष भार दिया करते थे । एतद् विषयक आपके विचारों को समझने के लिये समय-समय पर हुए प्रवचनों में से सम्बन्धित एवं महत्त्वपूर्ण अंश संग्रहीत करके यहां प्रस्तुत कर रहे हैं—

जिन महापुरुषों ने अपने जीवन में उच्चतम विकास प्राप्त किया है, उन्होंने अपने ज्ञान और अनुभव के सफल सयोग से उत्थान की जो ठोस बातें बताईं वे ही आज हमारे सामने शास्त्रोक्त सिद्धान्तों के रूप में उपस्थित हैं । शास्त्रों की पूर्ण प्रामाणिकता, वास्तविकता एवं वैज्ञानिकता में अटल व अटूट विश्वास करने का यही कारण है कि इनके निर्माताओं का ज्ञान व अनुभव उतना ही विशाल, सजग एवं सुदृढ़ था । इसीलिये हजारों वर्ष बाद भी वह शास्त्रोक्त ज्ञान हमें हमारे घनान्धकार से प्रकाश की ओर उन्मुख करने में ज्योतिर्मय प्रेरणा प्रदान करता रहता है ।

प्रधानतया धार्मिक सिद्धान्तों का लक्ष्य आत्मविकास करना होता है । इसलिये ज्ञान, वैराग्य, तप आदि वैयक्तिक साधना के साधनों का इसमें सविस्तार वर्णन भी होता है । इन सिद्धान्तों की कसौटी भी यही है कि कौन सिद्धान्त विकास के लिये कितनी बलवती प्रेरणा दे सकता है और पतन के समय उसे जाग्रत कर सत्य मार्ग पर ले आता है । इस दृष्टि से मैं कहना चाहूँगा कि जैन-सिद्धान्त व्यक्ति के हृदय-

पटल की सूक्ष्म गहराइयों में प्रवेश करते हैं और उसे अपने पतन से सावधान करते हुए उत्थान की ओर अग्रसर बनाते हैं। इन विकासोन्मुखी परिस्थितियों का जैन शास्त्रों में बड़ी ही सुन्दर रीति से विवेचन किया गया है।

जैन शास्त्रों में ऐसी किसी भी क्रिया का विधान नहीं किया है, जिसमें किसी भी रूप में मानसिक, वाचिक या कायिक हिंसा होती हो। यज्ञ, द्रव्यपूजा आदि का तो भगवान महावीर ने खंडन किया है। शुद्ध चैतन्य का ध्यानस्वरूप भाव-यज्ञ और भाव-पूजा का ही विधान सर्वत्र पाया जाता है। आत्म-विकासहित गति करने की विभिन्न श्रेणियां हमारे यहां कायम की गई हैं और तदनुसार ही विवेचन किया गया है।

जीव या आत्मद्रव्य का वर्णन जैनदर्शन में अति स्पष्ट एवं असंदिग्ध रूप से किया गया है। जीव की पर्याय—अवस्थायें बदलती रहती हैं अतः उसका पूव पर्याय की दृष्टि से विनाश होता है व नवीन पर्याय की दृष्टि से नई उत्पत्ति, परन्तु इन पर्यायों के परिवर्तन के बावजूद भी अपने रूप में आत्मा ध्रौव्य रहता है।

इसके सिवाय आत्मा में अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख व अनन्तशक्ति का अपार तेज रहा हुआ है, किन्तु वह तेज उसी प्रकार ढ़का हुआ है जिस प्रकार काले बादलों से ढक जाने पर सूर्य का ज्वलंत प्रकाश भी छिप-सा जाता है। आत्मा की इन तेजोमयी किरणों पर कर्ममैल की परतें चढ़ी हुई हैं। ये कर्म नित्य नहीं हैं। आत्मा जैसे कार्य करता है, तदनुरूप ही कर्मों का बंध होता है। पूर्व कर्मों की निर्जरा व नये कर्मों के बन्ध होने का यह क्रम इस सृष्टि में चलता ही रहता है, जब तक सारे कर्म खपाकर आगे के बन्ध को रोककर आत्मा का सर्वोच्च उत्थान प्राप्त नहीं कर लिया जाता।

जैनधर्म में किसी भी पदार्थ या तत्त्व के यथार्थ स्वरूप को समझने के लिये नयवाद व स्याद्वाद की दृष्टि से देखना होता है,

क्योंकि इनकी सहायता के बिना उसके विभिन्न पहलू नजर नहीं आयेंगे तथा प्राप्त ज्ञान सिर्फ एकान्तिक दृष्टिकोण वाला होगा।

जैनदर्शन ज्ञान का एक विशाल भण्डार है, उसकी मैं आपको सिर्फ एक झलक मात्र दिखा सका हूँ और इसके बाद मैं आशा करूं कि विचक्षण श्रोता इसके गहन अध्ययन और तत्त्व-चिन्तन की ओर अपना ध्यान केन्द्रित करेंगे।

जलकमलवत् वृत्ति

इसी चातुर्मास समय में तत्कालीन बीकानेर नरेश सर गंगासिंह जी बहादुर की स्वर्णजयन्ती मनाई जा रही थी। इन दिनों बीकानेर में भौतिक वैभव की रंगरेलियां यत्र-तत्र दृष्टिगोचर होती थीं। जिनको देखने के लिये दूर-दूर से दर्शक आते और दर्शनीय दृश्य देखकर प्रसन्न होते थे। इस समारोह में सम्मिलित होने के लिये अनेक राज्यों के शासक, राज्याधिकारी भी आमन्त्रित किये गये थे। उनमें से बहुत से आपश्री के प्रभावक प्रवचनों की प्रसिद्धि सुनकर प्रवचन-श्रवण करने आये और उन्होंने धर्मानुमोदित राजनीति, राष्ट्रनीति से सम्बन्धित आपके स्पष्ट विचारों का लाभ लिया।

उनमें से कुछ एक तो अपनी मनोभावना आपश्री के समक्ष निवेदन कर देते थे। लेकिन आप सुनकर मौन रहते और मुख-मण्डल पर अभिमान की एक रेखा भी परिलक्षित नहीं होती थी। प्रायः देखा जाता है कि कुछ एक साधुओं में राजनैतिक नेताओं या समाज के विशिष्ट व्यक्तियों से मिलने की उत्सुकता रहती है और मिलने पर अभिमान आदि की वृत्तियां बढ़ जाती हैं। इन वृत्तियों के फलस्वरूप विविध प्रकार के उत्सव, महोत्सव करने-कराने, देखने आदि की भी कामना होने लगती है। लेकिन चरितनायक जी का इन सब बातों से लेशमात्र भी लगाव नहीं था। न तो उन्हें किसी से मिलने की आकांक्षा थी और न किसी प्रकार के समारोह आदि में अभिरुचि रखते थे। सिर्फ जलकमलवत् जीवन की धारा प्रवाहित होती थी। यह भावना सिर्फ आपकी ही नहीं

वरन आपके साथ के अन्य सन्त-मुनिराजों की भी थी। वीतराग मार्गानुगामी तो रागप्रवृत्तियों से विलग ही रहते हैं। जो एक तत्कालीन प्रसंग से स्पष्ट हो जाता है—

वीकानेर नरेश की स्वर्ण-जयन्ती-समारोह के प्रसंग में विविध प्रकार के उत्सव आदि प्रतिदिन हो रहे थे। इसके मुख्य दिवस पर वीकानेर नरेश सर गंगासिंह जी बहादुर की शानदार शोभायात्रा निकली। जिसमें राजसी वैभव-प्रदर्शन की अनेक झांकियां थीं। इनको देखने के लिये हजारों दर्शक नगर के राजमार्गों पर खड़े थे। प्रत्येक घर के द्वार, चौराहे, अट्टालिकायें दर्शकों से अटी पड़ी थीं। जब यह जुलूस नगर के विभिन्न राजमार्गों से होता हुआ आपके विराजने के स्थान— श्री अगरचन्द भैरोदान सेटिया कोटड़ी— के सामने से गुजरा तब न तो आपमें इस ऐहिक विलास-वैभव को देखने की उत्सुकता थी और न आपके साथ के अन्य सन्तों में भी। हर्ष-विषाद में समान सन्तजन तो अपने आत्म-चिन्तन में ही तल्लीन थे।

जहाँ ऐहिक आकर्षण रागी को सांसारिक वासनाओं की ओर प्रेरित करते हैं, वहीं विरागी की वृत्ति में विकृति लाने में सक्षम नहीं हो सकते हैं।

चातुर्मास काल में सन्तों और श्रावक-श्राविकाओं ने ज्ञान, ध्यान आदि आध्यात्मिक चिन्तन के साथ-साथ आत्मशुद्धि के लिये विविध प्रकार की तपस्यायें कीं। श्रावकवर्ग ने जीवदया, स्वधर्मीसहयोग आदि लोकोपकारी कार्यों में दान दिया एवं धर्मप्रभावना के कार्य किये।

चातुर्मास बड़े ही उत्साह और भव्य धार्मिक आचार-विचारों की प्रभावना से पूर्ण हुआ। उपदेशामृत से तृप्त मानवों को चार माह के समय का पता ही न चला कि कब पूरा हो गया। उनके मनमें यही लालसा थी कि हम उपदेश श्रवण करते रहें और धार्मिक आचार-विचार-साधना से आध्यात्मिक-विकास के मार्ग पर बढ़ते रहे। लेकिन साध्वाचार की मर्यादा चरैवेति, चरैवेति के आदर्श में गर्भित है। जन-

कल्याण की भावना ही सन्तों को विहारपथ में गतिमान रखने को प्रेरित करती रहती है ।

मार्गशीर्ष प्रतिपदा को आपश्री ने सन्त-मण्डल सहित विहार किया । वर्ष का एक तृतीयांश— चार माह— का समय तो ऐसे बीत गया प्रतीत हो रहा था मानो सन्तों का आगमन कल ही हुआ । किसी को भी समय की इस गति का भान ही नहीं हुआ था कि एक-एक दिन कर के चार माह बीत गये और आज सन्त-मुनिराजों की विहार-वेला आ गई । लेकिन समय अपने परिणमन में अपेक्षा की आकांक्षा न रखते हुए बहता जाता है । यदि कोई प्राणी इस समय का सदुपयोग कर ले तो वह भी अनन्ता प्राप्त कर लेता है ।

आज सन्तशिरोमणि, संघाधिप का विहार है, इस विचार से सभी के मन में विषाद का वातावरण व्याप्त हो गया था । सभी अपने-अपने मन की कहने के लिये मूक थे और फिर कहें भी तो कहें क्या । सभी के एक भाव थे, एक बोल थे और एक से विचारों का ताना-बाना बुना जा रहा था ।

आखिर सन्तों के विहार का क्षण आ गया । सभी ने भावोर्मियों की विदाई-भेंट दी और आपश्री ने बीकानेर के समीपस्थ क्षेत्रों को फरसते हुए थली-प्रदेश की ओर विहार किया । थली-प्रदेश ने आपके पुनः आगमन की सुनी तो हर्षविभोर हो उठा । वह आपश्री से पूर्व एवं पूर्ण परिचित था । वहाँ के निवासियों ने आपश्री की दयामयी वाणी का लाभ प्राप्त किया था और मानवीय भावनाओं को सबल बनाया था ।

थली-प्रदेश में विचरण करते हुए आपश्री ने पुनः सरलहृदय मानवों में श्रद्धा के बीज बोये जो धर्म को समझाना चाहते थे लेकिन धर्म के वास्तविक स्वरूप का ठीक-ठीक प्रतिपादन करने वाले विद्वानों का अभी तक समागम प्राप्त नहीं कर सके थे । अनेक सार्वजनिक व्याख्यानों में आपने जैनधर्म के सार्वभौम स्वरूप को अभिव्यक्त किया ।

आपश्री के प्रभावक प्रवचनों का प्रभाव देखकर बहुत से ईर्षालु-

जन आपश्री को और आपके सहगामी सन्तों को परेशान करने के लिये प्रयत्न करते रहते थे। लेकिन परिषह ही साधक की कसौटी होती है और उनके उपस्थित होने पर साधुता में नया निखार आता है। अतएव ये छोटे-मोटे उपद्रव आपश्री की कीर्ति को बढ़ाने में ही सहायक हुए। आपश्री की निडरता, शांतिप्रियता, धीरता एवं तत्वनिरूपण शैली से वहां की जनता अधिक-से-अधिक प्रभावित हुई एवं सत्य को समझने की ओर उन्मुख ही हुई।

जौहरियों के नगर में

इस प्रकार विविध परिषहों को सहते हुए, विरोध का परिहार और भ्रम का विध्वंस करते हुए आपश्री का सं० १९९५ के चातुर्मास हेतु जयपुर नगर में पदार्पण हुआ।

जयपुर के लिये यह प्रसिद्ध है कि वह जौहरियों का नगर है। वहां अच्छे-अच्छे पारखी वसते हैं जो अपनी एक नजर में ही अच्छों-अच्छों को परख लेते हैं और उनके द्वारा की गई परख निर्णय की अमिट रेखा होती है। इन्हीं पारखियों के बीच चरितनायक सन्तरत्न का चातुर्मास हुआ था।

चातुर्मास प्रारम्भ होते ही आपश्री के प्रवचन प्रारम्भ हुए। आप अपने प्रवचनों में आध्यात्मिक-विकास हेतु तात्त्विक विवेचन करते थे। जिनका श्रोतागण लाभ उठाते और उनमें परीक्षकों का भी जमघट होता था। लेकिन उनमें से कोई तो आपके प्रवचन, प्रभाव की प्रशंसा करता तो कोई तात्त्विक विवेचना की, कोई शास्त्रीय ज्ञान की, तो कोई समाधान की शैली की। किसी को वाणी की मधुरता पसन्द आई तो किसी को संयम की सुघड़ता। किसी ने जिज्ञासा का समाधान चाहा, तो किसी ने तर्क का उत्तर।

इसप्रकार सभी ने अपने-अपने दृष्टिकोणों से आपश्री को परखा। लेकिन आपश्री उन सबकी परख से भी परे दिखाई दिये। अन्त में उन सबको सामूहिक रूप में निर्णय करना पड़ा कि हम सिर्फ जड़ रत्नों की ही परीक्षा कर सकते हैं, लेकिन नररत्नों की नहीं। ऐसे

नररत्न तो अमूल्य होते हैं। जिसे 'जवाहर' ने परखा हो उसे हम परख नहीं सकते हैं।

प्रतिदिन श्रोताओं की संख्या में वृद्धि होने के साथ-साथ संयम-साधना के साधक आपश्री से नितनूतन प्रतिबोध प्राप्तकर आत्मशुद्धयर्थ तत्पर होकर जप-तप-त्याग-साधना में रत रहते थे। लालभवन का विशाल प्रांगण साधना-स्थल बन गया था और योग में उपयोग लगाने से, तप में तत्पर होने से, साधना में समाधिस्थ होने आदि से जो जितना लाभ प्राप्त कर सकता था, उसने अपनी योग्यतानुसार प्राप्त किया।

साधुता के आकांक्षी

चरितनायक जी का जयपुर चातुर्मास आशातीत सफलता के साथ सम्पन्न हुआ। चातुर्मास-समाप्ति के पश्चात जयपुर से हाड़ौती प्रदेश के गांवों को धर्मदेशना से मुखरित करते हुए आप कोटा पधारे। जैन सन्त-परम्परा में कोटा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। आपश्री के वहां पधारने से श्रावक-श्राविकाओं के धर्मोत्साह को वेग मिला।

चरितनायक जी कोटा में विराज रहे थे। विभिन्न स्थानों से आगत भव्य मुमुक्षुजन आपकी व्याख्यान-वाणी का सर्वात्मना लाभ उठा रहे थे कि इसी समय एक बड़ी दिलचस्प घटना घटित हुई। एक तेजस्वी विनीत नवयुवक ने आपकी सेवा में उपस्थित होकर अति विनम्र-भाव से निवेदन किया— भंते ! मुझे अपना शिष्य बना लेने का अनुग्रह कीजिये। मैं आपके श्री चरणों में रहकर संयमसाधना करना चाहता हूँ।

ऐसा प्रश्न आपके लिये नया नहीं था। पहले भी अनेक मुमुक्षु आत्माओं द्वारा आपकी नेश्राय में रहकर संयम-साधक होने की भावना व्यक्त की जा चुकी। लेकिन शिष्य बनाने के सम्बन्ध में आपको उदासीनता थी। शिष्य-व्यामोह को आप साधना में अवरोधक मानते थे, लेकिन गुरुदेव के आदेश को अंगीकार करके आपने शिष्य बनाने का त्याग नहीं किया था। अतएव जो मुमुक्षु शिष्य बनने की अभिलाषा लिये आपके निकट आता, उसे आप आचार्य श्री जवाहरलाल जी म.

सा. का शिष्य बनाते और पूर्ववत् निर्लिप्त रहते थे। जब तक आप युवाचार्य पद पर प्रतिष्ठित नहीं हुए थे, आपने किसी को अपना शिष्य नहीं बनाया था। लेकिन अब आत्महित के साथ-साथ संघहित का भी ध्यान रखना आवश्यक हो गया था। अविच्छिन्नरूपेण चली आ रही गुरुशिष्य-परम्परा को चालू रखना एक प्रकार से पूर्वाचार्यों के ऋण से मुक्त होना है। फिर भी शिष्यलोभ आपश्री को कभी भी व्यामोहित नहीं कर सका। इस सम्बन्ध में आप सदैव तटस्थ एवं सतर्क रहे।

शिष्यविषयक उदासीनता आपके मन में गहरी पैठी हुई थी, जो इस मुमुक्षु के प्रश्न करने पर झलके बिना न रही और प्रत्युत्तर में फरमाया – भाई ! साधु बनना हंसी-खेल नहीं है। पहले से ही साधु बनने की बात मत करो, वरन साधुता को समझने का प्रयत्न करो, ज्ञानोपार्जन करो, त्याग और वैराग्य की भावना को सबल बनाओ, आत्मा के अन्तरंग शत्रुओं—काम, क्रोधादि के प्रतिरोध करने की शक्ति बढ़ाओ, आत्मिक शुद्धि प्राप्त करने की आकांक्षा को वेग दो, उलझनों से उद्विग्न मन को शांत बनाने का अभ्यास करो, विचारों में मौलिकता प्राप्त करो, सयम-साधना में आने वाली कठिनाइयों को समझने की कोशिश करो। अन्यथा चित्त की चंचल लहरों में बहने से जीवन-क्रम अव्यवस्थित हो जाता है। अतएव कल्याण करना है तो आत्मा को तप से तपाओ, सयम से साधो। गुरु की परीक्षा कर लो। इसके पश्चात ही साधु-दीक्षा अगीकार करने का प्रसंग आ सकता है। समताभाव, धर्मदृढ़ता और परमात्मा में आत्मार्पण की भावना जाग्रत हुए बिना जीवन में पवित्रता का भाव पैदा नहीं हो सकता है।

इस निस्पृहतापूर्ण निखालिस उत्तर को सुनकर नवयुवक चकित रह गया। उसके मनमें अतीत के अनेक चित्र साकार हो उठे कि मैं कितने ही सन्तों के पास पहुंचा, उन्होंने आश्वासन दिये, आकर्षक बतलाये और प्रलोभनों के सरसब्ज बाग भी दिखलाये, परन्तु ऐसा यथार्थ पथप्रदर्शक उत्तर किसी ने भी नहीं दिया। इन विचारों से उसके मन

में एक नये प्रकाश का प्रादुर्भाव हुआ, उसके संस्कारों को नवजीवन प्राप्त हुआ। उसके अन्तर् की ज्योति चमकने लगी। अन्तःकरण उद्-भासित होने लगा और वैराग्य की भावना प्रबल हो उठी।

नवयुवक आपकी निस्पृहता की ओर विशेष रूप से आकर्षित हुआ। श्रद्धा-भक्ति से उसका मन गद्गद हो उठा। साथ ही कुतूहल भी उत्पन्न हुआ कि एक वे साधु हैं और एक ये महाराज हैं जो शिष्य बनाने के पहले साधुता को समझने और गुरु की परीक्षा करने का परा-मर्श दे रहे हैं और फिर साधु बनने की बात कह रहे हैं। इसलिये उसने पुनः निवेदन किया— भंते ! सभी साधु बनने वालों के सामने आप ऐसी ही कठोर शर्तें रखेंगे तो फिर कोई आपका शिष्य कैसे बनेगा ? क्या आत्मकल्याण के साधक की शुद्धि का मार्ग अवरुद्ध नहीं होगा ? परीक्षा की प्रतीक्षा में ही वह अपने सत्संकल्प को कैसे चरितार्थ कर सकेगा ? विकासोन्मुखी आत्मायें अपनी प्रतिभा, साहस और मनोयोग का समन्वय कैसे कर सकेंगी ? श्रद्धा और संकल्प को साकार रूप कैसे दिया जा सकेगा ?

नवयुवक के इस प्रकार के तार्किक प्रश्नों को सुनकर आपने फरमाया— कोई मेरा शिष्य नहीं बनेगा तो मेरी क्या हानि हो जायेगी ? मेरे आत्म-कल्याण में कौन सी बाधा आ जायेगी ? मुझे चेलों की जमात खड़ी नहीं करनी है। आत्म-साधना के पथ पर वही बहादुर चल सकता है जो वास्तविक वैराग्य-भावना से विभूषित हो, तपःपूत हो, जिसका ज्ञान अगाधता की ओर अभिमुख हो, श्रद्धा अडिग और चारित्र आगमा-नुकूल व निष्ठापूर्ण हो। दीक्षा ले लेना तो सरल है, मगर उसे निभाना कठिन होता है। उससे आत्मा का कल्याण होता है, किन्तु अंगीकार करने से पहले शांत चित्त होकर सोचना चाहिये कि प्रतिज्ञा निभ सकेगी या नहीं ? आत्मबल को जांचे बिना जोश में आकर ली गई प्रतिज्ञा के लिये बाद में पछताना पड़ता है। भाई ! मुझे साधु-संख्या नहीं, किन्तु साधुता चाहिये...। पारस्परिक सहकार से संयम-साधना में अग्र-

सर होने के लिये ही गुरु-शिष्य-सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। जहां इस उद्देश्य की पूर्ति नहीं हो सकती हो, वहां वह सम्बन्ध निरर्थक ही नहीं, वरन हानिकारक भी सिद्ध होता है।

आपश्री के यह मार्मिक शब्द नवागन्तुक नवयुवक साधक के चित्त में गहरे पैठ गये। उसकी धर्मश्रद्धा तात्कालिक भावावेश का परिणाम न थी, किन्तु अनुभवों से अर्जित संस्कारों का परिणाम थी। अतः इन स्पष्ट विचारों से वह समझ गया कि यही वह विभूति है जिसके नेश्राय में निर्देशन पाकर मैं अपना जीवन सफल व धन्य बना सकूंगा। मेरे आत्म-कल्याण का पथ इन्हीं से प्रशस्त होगा। ऐसे निस्पृह, निःस्वार्थ एवं विरक्त महाभाग महापुरुष ही मेरे जीवन को पावन बना सकेंगे। दुविधा में विधा मन निष्कर्ष पर आ पहुंचा था और विवेक से अनुप्राणित होकर लक्ष्य की ओर बढ़ चला।

विरक्त नवयुवक ने युवाचार्य श्रीजी के उपदेश को सर्वात्मना स्वीकार किया। अन्तरात्मा से उठे नाद को अनुकूल अवसर प्राप्त हो गया था। जो पूर्णनिष्ठा के साथ संकल्प करते हैं, उन्हें कोई भी प्रलोभन विचलित नहीं कर पाते हैं। वह उसी दिन से ज्ञान-दर्शन-चारित्र की साधना में तल्लीन हो गया और प्रयत्नों के फलस्वरूप त्याग के पथ पर अग्रसर होता गया।

नवयुवक की अखण्ड वैराग्य भावना और ज्ञानोपार्जन की तन्मयता ने आपश्री को आकर्षित किया। आपकी धारणा बन गई कि यह खरा सोना है और संयम-साधना की ओर अग्रसर कराने में योग देना चाहिये। अतः आप उसे त्याग वैराग्य-वर्धक उपदेश देने लगे।

इस प्रकार एक लम्बी परीक्षा और प्रतीक्षा की कसौटी पर कसे जाने के पश्चात आपश्री ने नवयुवक को यथावसर दीक्षित कर अपना अन्तेवासी बनाने का निश्चय किया। उस समय किसे ज्ञात था कि आध्यात्मिक साधना के मंगल द्वार में प्रविष्ट होने वाला यह नवयुवक आगे चलकर आपश्री की नेश्राय का प्रथम शिष्य बनेगा और पाट परं-

परा में आपका उत्तरवर्ती होकर संघशासन को दिपायेगा।

वह नवयुवक और कोई नहीं, हमारे परमश्रद्धेय आचार्य श्री श्री १००८ श्री नानालाल जी म. सा. हैं। जो नाना जनों की श्रद्धा-भक्ति के केन्द्रविन्दु बन कर आध्यात्मिक साधना करते हुए चतुर्विध संघ को आत्मकल्याण के मार्ग का निर्देशन कर रहे हैं।

कोटा, बूंदी और उसके आसपास के क्षेत्रों को धर्मदेशना से पवित्र करते हुए आप पुनः मेवाड़ में पधारे। मेवाड़ का प्रत्येक नगर और ग्राम आपका सं० १९९६ का चातुर्मास अपने यहां कराने के लिये आकांक्षी था। सभी की एक ही धुन थी, लेकिन उदयपुर के सौभाग्य का स्वर्णशिखर सर्वात्मना प्रकाशमान हो रहा था। अतः आपका सं० १९९६ का चातुर्मास उदयपुर होना निश्चित हुआ। यथासमय चातुर्मासार्थ आपश्री सन्तों एवं सुपरिचित नवयुवक वैरागी श्री नानालाल जी के साथ उदयपुर पधारे।

चातुर्मास काल में धर्मप्रभावना की दृष्टि से उदयपुर में बड़ा आनन्द रहा। त्याग, तपस्याओं के प्रति चतुर्विध संघ में अपूर्व उत्साह था। उपदेश और धर्मचर्चा का जनता पर खूब प्रभाव पड़ा। वैरागी नवयुवक की प्रतिभा और ओज से उदयपुर श्रीसंघ इतना प्रभावित हुआ कि वह अपने यहां ही दीक्षा महोत्सव मनाने के लिये लालायित हो उठा। किन्तु तत्काल कुछ निश्चय नहीं हो सका।

चातुर्मास सानन्द सम्पन्न हुआ। पश्चात वहां से सन्त-मण्डल के साथ अपने मेवाड़ प्रदेश की ओर विहार किया। भागवतीदीक्षा अंगीकार करने के लिये पारिवारिक जनों की स्वीकृति लेना आवश्यक होने से वैरागी श्री नानालाल जी अपने पारिवारिक जनों से स्वीकृति प्राप्त करने हेतु उदयपुर से दांता चले गये और स्वीकृति प्राप्त कर पुनः आपश्री की सेवा में उपस्थित हो गये। पारिवारिक जनों की स्वीकृति और द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की सुविधा देखकर वैरागी जी को सं० १९९६, पौष शुक्ला ८ को कपासन में भागवतीदीक्षा प्रदान करने का

निर्णय घोषित किया गया।

दिगम्बराचार्य श्री शांतिसागर जी से संलाप

चातुर्मास समाप्ति के पश्चात उदयपुर से विहार कर आप उदयपुर के उपनगर आयड़ पधारे। वहां से ग्रामानुग्राम विहार करते हुए आपका वाटेड़ा पदार्पण हुआ। वाठेड़ा में स्थानकवासी जैनों के करीब पांच घर थे और शेष अधिकांश दिगम्बर जैनों के थे। वहां पर दिगम्बर जैन समाज के आचार्य श्री शांतिसागर जी म. विराज रहे थे।

एक दिन चरितनायक जी का बाजार में प्रवचन हो रहा था। उसी समय आचार्य श्री शांतिसागर जी म. भी वहां पधारे। श्रावकों ने पाटा लगा दिया और वे उस पर विराज गये। व्याख्यान-समाप्ति के पश्चात आप एवं आचार्य श्री शांतिसागर जी म. का स्नेहपूर्ण वातावरण में वार्तालाप हुआ। उसी प्रसंग में आचार्य श्री शांतिसागर जी म. ने वार्तालाप के लिये जिज्ञासा व्यक्त करते हुए कहा कि आपसे और भी वार्तालाप करना है। इसके लिये आपको कौन-सा समय उपयुक्त रहेगा? आपने मध्याह्न का समय उपयुक्त बताया।

वार्तालाप के लिये एक मन्दिर का स्थान निश्चित किया गया। वहां जनता भी एकत्रित हो गई। चरितनायक जी एवं आचार्य श्री शांतिसागर जी म. के बीच अत्यन्त सरल सौम्य वातावरण में वार्तालाप प्रारम्भ हुआ। प्रसंगोपात्त जब परिग्रह सम्बन्धी बात आई तो चरितनायक जी ने पूछा कि परिग्रह की परिभाषा क्या है? यदि शाब्दिक व्युत्पत्ति की दृष्टि से व्याख्या की जाती है तो 'परिगृहीयते इति परिग्रहः' इस परिभाषा में आत्मा के अतिरिक्त जो भी ग्रहण किया जाता है वह सब परिग्रह में आ जाता है। जैसे आत्मा ने कर्म ग्रहण कर रखे हैं और समय-समय पर ग्रहण कर रही है। शरीर को भी ग्रहण कर रखा है और शरीर को आहारादि दिया जा रहा है, वह भी ग्रहण हो रहा है तथा कर्म, शरीर और आहारादि के अतिरिक्त मोरपीछी, कमंडलू भी ग्रहण कर रखा है, अतः उक्त परिभाषा के अनुसार सिद्धों के अति-

रिक्त अन्य कोई अपरिग्रही बन ही नहीं सकेगा। वैसी स्थिति में भगवान महावीर स्वामी ने चार तीर्थ की स्थापना की है उसमें श्रमणवर्ग को पूर्ण निष्परिग्रही और श्रावकवर्ग को देश निष्परिग्रही निर्देश किया है, वह व्यर्थ सिद्ध होगा और फिर भगवान का शासन कैसे चलेगा ? और तदनुसार दिगम्बर समाज की व्यवस्था में भी वस्त्र नहीं रखने पर भी कर्म, शरीर, भोजन, कमंडलू, मोरपीछी आदि ग्रहण करने वाले मुनि निष्परिग्रही कैसे कहला सकेंगे ?

सरल भाव से आचार्य श्री शांतिसागर जी म. ने इसके विषय में कहा कि परिग्रह की परिभाषा मूर्च्छा के रूप में ली जाती है। कमंडलू, मोरपीछी ये सब साधन हैं। इन पर मूर्च्छा नहीं रखी जाती है तो निष्परिग्रही बन सकते हैं। तब आपने कहा कि 'मुच्छा परिग्गहो वुत्तो' शास्त्र में यही परिग्रह की वास्तविक परिभाषा कही गई है। इस परिभाषा के अनुसार जैसे कर्म, शरीर आदि के अतिरिक्त कमंडलू मोरपीछी साधन के रूप में रखे जाते हैं, वैसे ही मर्यादित पात्र, वस्त्र भी संयम की साधना के लिये रखे जाते हैं। ये भी धर्मोपकरण साधन हैं, इनमें मूर्च्छा नहीं रखने वाले भी निष्परिग्रही, निर्ग्रन्थ साधु हैं और इसी परिभाषा के अनुसार चतुर्विध संघ की व्यवस्था भी बैठ सकती है एवं छठे गुणस्थान से लेकर सिद्धों के पहले-पहले मूर्च्छा रहित शास्त्रोल्लिखित मर्यादित वस्त्र-पात्र रखने वाले सभी साधक निष्परिग्रही निर्ग्रन्थ श्रमण कहलाते हैं। दिगम्बर समाज मान्य जयधवला, महाधवला नामक ग्रन्थों में भी संयती शब्द से साध्वी को लिया है और वह वस्त्र बिना नहीं रह सकती है। अतः मर्यादित वस्त्रों के रखने पर भी उसमें साधुत्व स्वीकार किया गया है।

इसी प्रकार साधु भिक्षाचरी विषयक वार्तालाप के प्रसंग में आपने कहा कि श्वेताम्बर समाज में साधु की भिक्षाचरी के ४७ दोष बताये गये हैं, वैसे ही दिगम्बर समाज की मान्यता के मूलाचार आदि ग्रन्थों में साधु की भिक्षाचरी के ४६ दोष माने गये हैं। उसमें साधु के

निमित्त बनाया हुआ आहार आधाकर्मी माना जाता है और साधु को ग्रहण करना निषिद्ध है। तो फिर जो साधु के लिये विशिष्ट रूप से ताजा घी, आटा, पानी आदि सब चीजों की तैयारी करके आहार-पानी बनाकर मुनि को दिया जाता है और मुनि ग्रहण करते हैं, उसमें आधा-कर्मी दोष लगता है या नहीं ? आचार्य श्री शांतिसागर जी म. ने सर-लतापूर्वक स्वीकार किया कि इस प्रकार मुनि के निमित्त बनाये हुए आहारादि को लेने से आधाकर्मी दोष लगता है। यह साधु जीवन नहीं, बल्कि स्वादु जीवन है।

आपने यह भी पूछा कि आप आचार्य हैं और आचार्य को अकेला रहना कल्पता है क्या ? उन्होंने कहा कि आचार्य का अकेला रहना उपयुक्त तो नही है लेकिन मुनि सब काल कर गये हैं, इसलिये मैं अकेला हूँ। एक प्रश्न यह भी उठा कि गृहस्थों से सेवा लेना, घास मंगवाना, घास की कुटिया बनवाना, पाट मंगवाना तथा कमंडलू में पानी मंगवाना आदि साधु के योग्य है ? आचार्य श्री शांति-सागर जी म. ने सरलता से कहा कि यह साधु के योग्य नहीं है। इसी-तरह गृहस्थ से सेवा लेना उपयुक्त नहीं है, आदि विभिन्न विषयों के बारे में सौहार्दपूर्ण वातावरण में वार्तालाप समाप्त होने के पश्चात दोनों अपने-अपने स्थान पर गये।

कुछ दिन वहां विराजने के पश्चात वहां से विहार कर मार्ग में आने वाले ग्रामों में धर्मोपदेश देते हुए वैरागी श्री नानालाल जी को दीक्षा देने के लिये आपश्री कपासन पधारे।

प्रथम शिष्य का दीक्षामहोत्सव

वैरागी श्री नानालाल जी को दीक्षा देने के समय सं० १९९६, मिती पौष शुक्ला ८ व स्थान कपासन की जानकारी समस्त श्री सघों को हो चुकी थी। सभी श्रीसंघों में उक्त महोत्सव के दर्शन करने की उत्सुकता थी और श्रावक-श्राविकाओं के उत्साह में वृद्धि होती जा रही थी।

दीक्षा-समारोह के अवसर पर बाहर से हजारों भाई-बहिन

उपस्थित हुए। मेवाड़ का ऐसा कोई ग्राम न था जिसके दो चार सज्जन दीक्षा महोत्सव के अवसर पर कपासन न पहुंचे हों। विभिन्न संघों की ओर से दीक्षार्थी का मान-सम्मान किया गया और जुलूस के साथ दीक्षार्थी का दीक्षास्थल पर पदार्पण कराया। आपने दीक्षार्थी के पारिवारिक जनों की स्वीकृति एवं चतुर्विध संघ की अनुमतिपूर्वक वैरागी जी को दीक्षा प्रदान की और नवयुवक श्री नानालाल जी पोखरना मुनि श्री नानालाल जी म. सा. बन गये।

प्रथम शिष्य का परिचय

आप द्वारा नाना मुमुक्षु जन संयम-साधना के लिये दीक्षित हुए और उन नानाओं में से भी जो नाम से भी नाना हैं, उनका यहां नाना-सा (संक्षिप्त) परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है।

आपके प्रथम शिष्य मुनि श्री नानालाल जी म. सा. का जन्म मेवाड़ प्रदेशान्तर्गत उदयपुर राज्य के जागीरदारी गांव दांता में ओसवालजातीय पोखरनागोत्रीय श्रीमान् मोड़ीलाल जी की धर्मपत्नी श्रीमती श्रृंगारकंवरबाई की कुक्षि से सं० १९७७ में हुआ था।

लगभग ८ वर्ष की बाल्यावस्था में ही जो माता-पिता के लाड़-प्यार, खेलकूद का समय मानी जाती है, आपको पिताश्री के वरदहस्त से वंचित हो जाना पड़ा और उस समय से लेकर दीक्षा तिथि तक अपने भाई, मातुश्री आदि पारिवारिक जनों की छत्रछाया में अपने जीवन-विकास का मार्ग प्रशस्त बनाया। उन दिनों ग्रामीण क्षेत्रों में जैसा विद्याध्ययन का प्रबन्ध था, तदनुरूप आपने शिक्षण प्राप्त किया और पारिवारिक परिस्थितियों वश बाल्यावस्था में ही आपको जीवकोपार्जन हेतु व्यापार में प्रवृत्त होना पड़ा। प्रारम्भ में गांव की परिस्थिति के अनुसार साधारण परचूरण सामान की दूकान की और कुछ समय पश्चात कपड़े का व्यापार भी प्रारम्भ कर दिया और इस प्रकार सामान्य रूप से जीवनक्रम चलने लगा।

आपने विद्याभ्यास तो प्राप्त सुविधानुसार ही किया था। लेकिन

बौद्धिक प्रतिभा प्रखर एवं तार्किक होने से प्रत्येक विचार के बारे में संयुक्तिक समाधान-प्राप्ति के लिये उत्सुक रहती थी।

बाल्यावस्था का एक प्रसंग है कि एकदिन आपकी मातुश्री शृंगारकुंवरबाई सतियां जी म. सा. से किसी व्रत का पच्चखाण करके घर लौटीं। लेकिन बालक नानालाल जी को यह पच्चखाण करना-कराना अच्छा नहीं लगा। बालबुद्धि इन सब बातों को ढकोसला और व्यर्थ समझती थी। ऐसा क्यों समझा होगा? इसके बारे में हमारा अनुमान है कि तार्किक बुद्धि में ज्ञान बिना की क्रिया की उपयोगिता नहीं है और इसके योग्य समाधान के अभाव में मन विद्रोही बन जाता है, जो असंतोष के रूप में प्रगट होता है। फलतः नियम से इतने क्रोधित हो उठे कि और कुछ न सूझा तो मातुश्री जब सामायिक लेकर बैठीं तो अपने मन की खीज मिटाने के लिये उनके सामने रखी हुई रेत की घड़ी को फोड़ने को उद्यत हो गये। किन्तु स्नेहमयी माता के प्रयत्न ने उन्हें वैसा नहीं करने दिया।

बालक नानालाल जी को उस समय इसका भान नहीं था कि वे क्या कर रहे हैं। समय आया और चल गया। कालप्रवाह में रुकावट नहीं आई। बात आई-गई-सी हो गई और जीवन-क्रम पुनः अपनी गति से बहने लगा। यदि हम वर्तमान के साथ उस समय के बालक नानालाल जी की तुलना करें तो आभास होगा कि उस समय आवरण से आच्छादित आत्मिक गुणों का प्रकाश विकसित होने के लिये अनुकूल अवसर चाहता था। परन्तु उचित संयोगों के अभाव में मार्ग भूला हुआ था और जिसका विकृतरूप वह आवेश था।

आपके बाल्यकाल की एक दूसरी घटना है। आपकी बहिन श्रीमती मोतीबाई ने जो श्रीमान् सवाईलाल जी लोढ़ा भादसोड़ा निवासी को व्याही थीं, पर्यूषण पर्व में पचोले की तपस्या की। लौकिक प्रथा के अनुसार ऐसी तपस्या के प्रसंग पर तपस्विनी बहिन के लिये पितृगृह (पीहर) से वस्त्रादि भेजने का नियम है और यह शुभ कार्य प्रायः घर

के मुखिया द्वारा सम्पन्न होता है। परन्तु उस समय कार्यवशात् बालक नानालाल जी के जेष्ठ भ्राता को भादसोड़ा पहुंचने की सुविधा न हो सकी। अतः यह कार्य आपको सौंपा गया। यद्यपि ऐसे कार्यों में आपकी रस नहीं था लेकिन पारिवारिक प्रतिष्ठा के ख्याल से आप वस्त्र आदि लेकर भादसोड़ा पहुंचे।

भादसोड़ा में मेवाड़ी मुनि श्री चौथमल जी म. सा. चातुर्मासार्थ विराज रहे थे। पर्यूषण पर्व होने से उन दिनों व्याख्यान में अन्तकृत सूत्र का वांचन होता था। आप भी व्याख्यान सुनने गये। प्रसगवश उस समय पांचवें और छठे आरे का वर्णन चल रहा था, जो आपके कर्ण-गोचर हुआ और कथा सुनने का शौक होने से कुछ कथाभाग याद रह गया। लेकिन उसका हृदय पर कुछ भी असर नहीं हुआ।

बहिन को वस्त्रादि देकर आपने अपने ननिहाल भदेसर जाने का विचार किया और संवत्सरी महापर्व का दिन होते हुए भी आप ननिहाल की ओर चल पड़े। बहिन आदि ने उस दिन न जाने के लिये समझाया भी, लेकिन रुके नहीं और अश्वारूढ़ हो चल पड़े।

मार्ग में चारों ओर हरी-भरी वनराजि व्याप्त थी। वर्षाऋतु की समाप्ति और शरद् के सुहावने मौसम एवं मंद-मंद बहने वाली बयार ने आपको मनोमंथन के योग्य अवसर प्राप्त करा दिया। अश्व अपनी गति से चल रहा था लेकिन मन-अश्व की गति पूरे वेग में थी। व्याख्यान में सुनी छह आरों की व्याख्या आपकी स्मृति में घूम गई। मंथन करते-करते ही मार्ग में आपके मन में बिजली-सी कौंध गई। ज्ञान के सम्यक् प्रकाश की किरण झलक उठी और मन में एक झटका-सा लगा और एक क्षण पहले जो मन धर्मविमुख था, वह धर्माभिमुख हो गया।

प्रकाशप्राप्ति के साथ ही आपको अपने पूर्व विचारों एवं कार्यों के प्रति पश्चाताप होने लगा। अतीत में मातुश्री को धर्म-ध्यान न करने देना, त्याग-पचखाण से रोकना, संवत्सरी दिवस होने से बहिन आदि के द्वारा रोके जाने पर भी चल देना आदि अपने बालकृत्यों का

इतना पश्चाताप हुआ कि अन्तरंग पर आवृत मल नेत्रों द्वारा वह निकला। ग्लानि आंसुओं के साथ गलित होने लगी। बूंद-बूंद में टपकने वाले आंसू चौधारा में रूपान्तरित हो गये और जब इतने से भी परिताप शांत न हो सका तो आवेगों ने आक्रंदन का रूप अपना लिया। यह कितने समय तक चलता रहा, पता ही न पड़ा। खूब बहा, खूब बहा और माता धरित्री ने उस मैल को अपने आंचल में समेट लिया। क्योंकि वह मां थी और मां की ममता सदैव मंगलमयी होती है।

आखिर मन को शांति मिली और उसी समय संकल्प किया कि मैं स्वयं धर्मकरणी करूंगा और करने वालों को सहायता दूंगा। इसी सत्सकल्प के साथ आपके जीवन का नया अध्याय प्रारम्भ हुआ, सोने का सूरज उगा। दृष्टि के बदलते ही सृष्टि भी बदल गई। धर्म मार्ग पर चलने के निश्चय के साथ ही अब जिज्ञासायें बढ़ने लगीं— धर्म-क्या है ? धर्म क्यों करना चाहिये ? क्या करना पड़ता है ? इस क्या और क्यों के समाधान के लिये मन उत्सुक रहने लगा। गृहकार्यों से मन उचटने लगा। अब तो दूसरे मार्ग पर चल पड़ने के विचार आने लगे। आप धर्म की गहराई तक पहुंचना तो चाहते थे, लेकिन सुयोग्य मार्गदर्शक का सुयोग उपलब्ध नहीं होने से अपने मन में सोचते, तर्क करते, समाधान का प्रयत्न भी करते लेकिन सन्तोष नहीं होता था। अन्तर्द्वन्द्वों की निवृत्ति के लिये अब आपने सन्तों की सेवा में रहने का निश्चय कर लिया। इस समय आपकी आयु करीब १५-१६ वर्ष की रही होगी, जबकि किशोर मन में नये-नये अनुभवों, विचित्रताओं एवं आकर्षणों का कोषसग्रह करने की उद्दाम भावनायें हिलोरें लेती रहती हैं।

अतः आप चल पड़े योग्य गुरु के सुयोग की खोज में। प्रारंभ में पूज्य श्री मोतीलाल जी म. सा. (मेवाड़ी) का संयोग मिला, उन दिनों पूज्यश्री चातुर्मास हेतु बदनौर विराज रहे थे। अतः आप बदनौर पहुंचे। वहां करीब ३-३॥ मास रहे और समाधान के लिये प्रयत्न करते रहे, लेकिन जितना समाधान कर पाते उससे जिज्ञासाओं की संख्या दुगुनी

हो जाती थी। इस प्रकार की मनःस्थिति के बीच आपको कारणवशात् बदनौर से ब्यावर जाना पड़ा।

उन दिनों ब्यावर में आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. के सुशिष्य पं. र. मुनिश्री जौहरीमल जी म. सा. विराज रहे थे। उनके सान्निध्य में धार्मिक आचार-विचारों आदि का अध्ययन-मनन किया और अपनी जिज्ञासा के समाधान का भी प्रयत्न किया। वहीं पर विभिन्न सन्त-मुनिराजों की थोड़ी बहुत जानकारी के साथ यह भी मालूम हुआ कि पूज्य आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. की एक अलग सम्प्रदाय है और वर्तमान में इस सम्प्रदाय की व्यवस्था युवाचार्य श्री गणेशलाल जी म. सा. संभालते हैं। पूज्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. खादी पहनते हैं और दूसरों को भी खादी पहनने का उपदेश देते हैं।

यह युग गांधीयुग कहलाता था और स्वदेशी आंदोलन नगरों से होता हुआ भारत के गांव-गांव में फैल चुका था। आप भी इससे प्रभावित थे। अतः बुद्धि तुलना करने लगी कि जिस संप्रदाय में खादी का उपयोग हो और जिसके आचार्य खादी पहनने का उपदेश देते हों, वे अच्छे ही होने चाहिये। इस विचार से आपकी जिज्ञासा बढ़ी और उनके निकट सम्पर्क में पहुंचने की भावना भी संजोयी। लेकिन बदनौर वापस आना आवश्यक होने से आप ब्यावर से बदनौर आकर अपने गांव दांता लौट आये।

आपका मन अब घर में नहीं था। उसकी वृत्ति 'गेही पै गृह में न रचै ज्यों जल में भिन्न कमल है' जैसी हो चुकी थी। पारिवारिक जनों को भी इसका स्पष्ट आभास मिल चुका था। अतः बढ़ते चरणों को अवरुद्ध करने के लिये उनकी ओर से प्रयत्न होता, उतना ही प्रगति के लिये प्रयास करने का बल आपको प्राप्त हो रहा था। सन्तों के सहवास से आप यह भलीभांति ज्ञात कर चुके थे कि सन्त-सतियों में लम्बी-लम्बी तपस्यायें होती हैं। कोई-कोई तो केवल छाछ के आधार पर महिनों निकाल देते हैं। इन वृत्तान्तों को सुनकर आपने भी इन्हें

अपने आचरण में उतारने का निराला संकल्प किया। आपने सोचा यदि कोई तपस्या करके कुछ दिनों निराहार रह सकता है अथवा कोई छाछ के आधार पर महीनों गुजार देता है तो फिर मैं केवल पानी पर ही क्यों नहीं रह सकता ? अजीब सूझ थी यह, अपूर्व संकल्प था यह, जिसे आपने अपने भावी जीवन में साकार रूप दिया। किन्तु आप जैसे आत्मवली के लिये यह कुछ विशेष महत्त्व नहीं रखता है।

त्याग के मार्ग पर वढ़ने के लिये कठिनाइयों पर विजय पाने की सामर्थ्य प्राप्त करना आवश्यक है और उसमें भी रसनेन्द्रिय का संयम रखना तो विशेष आवश्यक होता है। अतः अपने संकल्प को साक्षात करने के लिये आप प्रातः आधी रोटी और सायं पाव रोटी पर रहने लगे। यह क्रम कई महीनों तक चलता रहा। जिससे शरीर काफी कृश हो गया। एक दिन ऐसा भी प्रसंग आया कि शारीरिक कृशता के कारण चक्कर आने से गिर पड़े। लेकिन आप तो निर्धारित लक्ष्य की ओर वढ़ने का संकल्प कर चुके थे। अतएव यह कसौटी आपको अपने संकल्प से विचलित नहीं कर सकी।

आप वाल्यकाल से ही तार्किक थे, यह बात पहले स्पष्ट हो चुकी है। जिज्ञासाओं के समाधान के लिये आपकी ज्ञान-पिपासा गुरुगम की चाह में वढ़ने लगी। पारिवारिक जनों की ओर से व्यवधान तो डाले ही जा रहे थे कि अकस्मात इन्हीं दिनों एक सामाजिक भोज के प्रसग में आपको कपासन जाना पड़ा। वहां मुनिश्री इन्द्रमल जी म. सा. की सेवा का अवसर मिला। इसके पूर्व पूज्य श्री काशीराम जी म. सा. तथा दिवाकर जी म. सा. के सन्तों एवं अन्यान्य सन्तों की सेवा, वाणी-श्रवण का भी प्रसंग प्राप्त हो चुका था और उन्होंने आपकी दिनचर्या से अनुमान लगाया था कि आप भावी संत हैं। अतः अपनी ओर आकृष्ट करने के लिये अनेकानेक प्रलोभन प्रस्तुत किये जाते थे। एक ने कहा—हमारे पास साधु वनने से किसी प्रकार का कष्ट नहीं होगा। दूसरे ने फरमाया— चेला वन जा, हम अपनी सब विद्याएं तुझे समर्पित

कर देंगे, तीसरे ने उससे भी दो कदम आगे बढ़कर कहा कि मेरा शिष्य बनेगा तो तुझे सम्प्रदाय का मुखिया बना दूंगा। चौथे ने अपना महत्त्व जताते हुए बताया कि ज्यादा सोच-विचार में पड़ने की जरूरत नहीं, हमारे जैसे सन्त और हमारे जैसा सम्प्रदाय नहीं मिलेगा आदि-आदि। परन्तु आपको आत्म-तुष्टि नहीं हुई और सोचते रहे कि अन्यान्य सन्तों को भी देख लेना चाहिये।

विचारानुसार आपने युवाचार्य श्री गणेशलाल जी म. सा. की सेवा में पहुंचने का निश्चय किया और एक दिन घर पर बिना कुछ कहे-सुने कपासन पहुंचे। वहां से श्री मीठालाल जी चंडालिया के सहयोग से रतलाम होते हुए उस समय कोटा विराजित युवाचार्य श्री गणेशलाल जी म. सा. की सेवा में जा पहुंचे।

युवाचार्य जी से आपका प्रथम परिचय कपासन के वैरागी के रूप में कराया गया। बाद में आपने अपना पूर्ण परिचय स्वयं दिया और युवाचार्यश्री के प्रथम दर्शन, मधुरवाणी, तप, तेज से ऐसे प्रभावित हुए कि बस यही महापुरुष मेरे गुरु बन सकते हैं।

मन में ऐसा संकल्प कर प्रार्थना की कि मैं आपसे भागवती-दीक्षा अंगीकार करना चाहता हूँ। लेकिन स्वीकृति के बदले साधुता क्या है? और गुरु की परीक्षा करने के बाद दीक्षा लेने की बात सोचो। यह संकेत मिला। यह बात आप को अपूर्व प्रतीत हुई और संकेत का ऐसा प्रभाव पड़ा कि मन-ही-मन आपने दृढ़ संकल्प कर लिया कि शिष्य बनना है तो इन्हीं का बनना है।

अब साथ-साथ पैदल विहार, ज्ञान व संयम-साधना का अभ्यास आरम्भ हो गया। इस प्रकार पदयात्रा करते हुए भावी गुरु के साथ आप सं० १९९६ में उदयपुर आये। संकल्प सुदृढ़ हो गया था अतः उसको साक्षात करने के लिये पारिवारिक जनों से स्वीकृति-पत्र प्राप्त करने हेतु उदयपुर से दांता आये। परन्तु जब आपको सहज ही आज्ञा-पत्र नहीं मिला तो आपको तेले का तप करना पड़ा और जब तक आज्ञा

पत्र प्राप्त न हो जाये तब तक घर पर भोजन न करने का संकल्प कर लिया।

अन्त में आपके संकल्प को देख पारिवारिक जनों को स्वीकृति देना उपयुक्त प्रतीत हुआ और पारिवारिक जनों की स्वीकृति एवं चातुर्विध संघ की सहमति से सं० १९९६, मिती पौष शुक्ला ८ को कपासन में आपने युवाचार्य श्री गणेशलाल जी म. सा. की सेवा में भागवती दीक्षा अंगीकार करके अपने को धन्य माना।

दीक्षित होते ही आपने गुरुगम से अध्ययन करना आरम्भ कर दिया। सुयोग्य शिष्य की ओर उन्मुख गुरु की ज्ञानगरिमा ने शिष्य को सिद्धान्त, व्याकरण, षड्दर्शनों का गहन अध्ययन कराया और शिष्य की धारणा-शक्ति एवं तार्किक-बुद्धि जिस किसी भी साहित्य को देखती तो उसके अन्तर् तक पहुंच कर विराम लेती थी तथा जिज्ञासा-वृत्ति ने प्रतिभा को विकसित करने में पूरा-पूरा योग दिया।

दीक्षा क्षण से लेकर गुरु के जीवनान्त तक परछाईं की तरह साथ रहकर आज आप उनके आदर्शों को साकार रूप देकर मानव-समाज के हितार्थ साधना में तत्पर हैं। गुरु गणेश से जीवन का श्रीगणेश कर, गण–ईश बन नामतः नाना होकर भी भावतः गणेश हैं एवं 'हुशिउचौश्रीजगनाना' जो जगत में नम्रता से लघु से लघुतर होगा वही सबसे उच्च गौरव को प्राप्त करता है— को सार्थक सिद्ध कर रहे हैं।

यह है चरितनायक के प्रथम शिष्य का संक्षिप्त परिचय।

आचार्यश्री-संमिलन : सम्मेलन

दीक्षा-सम्पन्न होने के पश्चात चरितनायक सन्तसमूह के साथ मेवाड़ के विभिन्न क्षेत्रों को विहार और धर्मदेशना से पावन करते हुए मारवाड़ की ओर पधारे। जैसे मेवाड़ के विभिन्न क्षेत्र आपकी प्रतिभा और विद्वत्ता का लाभ उठाने के लिये सोत्सुक रहते थे, उसी प्रकार मारवाड़ की ओर आपका पदार्पण होने के समाचार ज्ञात कर मारवाड़ के श्रीसंघ भी अपने-अपने क्षेत्र में पधारने व चातुर्मास कराने के लिये उत्कण्ठित हो उठे। विभिन्न श्रीसंघों की ओर से आगामी चातुर्मास हेतु

विनम्र विनतियां आपकी सेवा में प्रस्तुत की जाने लगीं। लेकिन अभी चातुर्मास के लिये काफी समय था।

इन्हीं दिनों सं० १९९६ का अहमदाबाद चातुर्मास पूर्ण होने के बाद पूज्य आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. भी सौराष्ट्र, गुजरात में जैनधर्म के सिद्धान्तों का प्रचार-प्रसार करते हुए मारवाड़ की ओर पधार रहे थे। उन क्षेत्रों की जलवायु शारीरिक स्वास्थ्य के अनुकूल न होने और वृद्धावस्था के कारण आचार्य श्रीजी के स्वास्थ्य में निर्बलता आ गई थी। जिससे अब स्थिरावास की आवश्यकता विशेष रूप से अनुभव होने लगी थी।

वैसे तो अहमदाबाद में ही स्वास्थ्य उत्तरोत्तर क्षीण होता जा रहा था, फिर भी आचार्य श्रीजी वेला, तेला, उपवास आदि तपस्यायें करके स्वास्थ्य को टिकाये रहे लेकिन सुस्ती और कमजोरी में वृद्धि होती ही गई। यथासमय चातुर्मास-समाप्ति के पश्चात पालनपुर, मेहसाना आदि स्थानों को फरसते हुए सादड़ी में पदार्पण किया। इधर से चरितनायक जी भी फाल्गुन शुक्ला १० को आचार्य श्रीजी की सेवा में उपस्थित हो गये।

वर्षों के पश्चात गुरु-शिष्य के मिलन का यह दृश्य अलौकिक था। आचार्य श्री के चरणों में अपने को पाकर विनीत शिष्य आत्म-विभोर थे तो शिष्य की विद्वत्ता, प्रतिभा, ऋजुता एवं मृदुता का अवलोकन कर गुरु आत्मगौरव से पुलकित थे।

सम्प्रदाय व्यवस्था एवं अन्य सम्बन्धित विषयों पर सन्त वृन्द से विचार-वार्ता करने के उद्देश्य से युवाचार्य श्रीजी आदि सन्तों सहित आचार्य श्रीजी सादड़ी से विहार कर ब्यावर पधारे। उस समय ब्यावर में २९ सन्त एवं ७५ सतियां एकत्रित हो चुके थे।

ब्यावर में एकत्रित सन्त-मुनिराजों से विचार-विमर्श हुआ और उसके निश्चय को सर्वानुमति से समर्थन प्राप्त हुआ। श्रोताओं एवं मुमुक्षुओं ने भी ज्ञान-ध्यान-जप-तप की प्रक्रिया से यथाशक्य इस अवसर

का लाभ उठाया। आचार्य श्रीजी के अस्वस्थ रहने से प्रायः युवाचार्य श्रीजी व्याख्यान फरमाते थे।

अजमेर श्रीसंघ एवं वहां के प्रमुख श्रावक सेठ श्री गाढ़मल जी लोढ़ा की साग्रह विनती को लक्ष्य में रखते हुए आचार्य श्रीजी का ब्यावर में विराजित सभी सन्तों के साथ अजमेर में पदार्पण हुआ। चतुर्विध संघ के विराजने से अजमेर एक तीर्थक्षेत्र-सा हो गया।

वैशाख शुक्ला ३ (अक्षय तृतीया) दि० १०-५-४० को वर्षी तप महोत्सव होने से अनेक क्षेत्रों के आगत श्रोताओं की उपस्थिति में चरित-नायक युवाचार्य श्री गणेशलाल जी म. सा. ने भगवान ऋषभदेव के पारणे का सरस वर्णन करते हुए भगवान के जीवन पर विशद प्रकाश डाला और जिसका श्रोताओं पर बहुत ही गहरा प्रभाव पड़ा।

वैशाख शुक्ला ४ दि० ११-५-४० को व्याख्यान के प्रसंग में युवाचार्य श्रीजी ने वृद्धविवाह की हानियों, सामाजिक रूढ़ियों आदि का विवेचन किया। जिसका यह प्रभाव हुआ कि बहुत से भाइयों ने ४० वर्ष से अधिक उम्र वाले व्यक्ति के विवाह में सम्मिलित न होने और बहिनों ने विवाहादि प्रसंगों पर अश्लील गीतों के न गाने की प्रतिज्ञा ले ली। इसके अतिरिक्त तप-त्याग आदि विविध धार्मिक आचारों का आचरण किये जाने से अजमेर में अनेक उपयोगी कार्य सम्पन्न हुये।

अजमेर में विभिन्न श्रीसंघों की ओर से अपने अपने क्षेत्र में चातुर्मास करने हेतु पुनः विनतियां दोहराई गईं। सभी अपने-अपने यहां आगामी चातुर्मास होने के लिये आशा लगाये हुए थे। लेकिन द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव को ध्यान में रखते हुए सं० १९९७ के लिये पूज्य आचाय श्री जवाहरलाल जी म. सा. का बगड़ी और युवाचार्य श्रीजी का फलौदी चातुर्मास स्वीकृत हुआ।

अजमेर से यथासमय विहार करके ब्यावर आदि मार्गवर्ती क्षेत्रों में धर्मोपदेश देते हुए चातुर्मास हेतु पूज्य आचार्य श्रीजी बगड़ी और युवाचार्य श्रीजी फलौदी पधारे।

गुरुसेवा में रत

चातुर्मास-समाप्ति के पश्चात आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. ने बगड़ी से विहार कर सोजत पदार्पण किया। वहीं पर युवाचार्य श्री गणेशलाल जी म. सा. भी फलौदी से विहार कर आचार्य श्रीजी की सेवा में पधार गये। बगड़ी में पूज्य आचार्य श्रीजी के स्वास्थ्य में सुधार नहीं हुआ और अब रोगजर्जरित देह विहार में असहयोग-सा एवं स्थिरावास की आवश्यकता व्यक्त करती थी। स्थिरावास के लिये भीनासर, बीकानेर, अजमेर, ब्यावर, रतलाम, उदयपुर, जलगांव आदि स्थानों की काफी समय से विनतियां हो रही थीं, लेकिन बीकानेर-भीनासर श्रीसंघों के सौभाग्य से आचार्य श्रीजी ने उनकी विनती स्वीकार कर ली और तदनुसार युवाचार्य श्रीजी आदि सन्तों के साथ सोजत से बीकानेर की ओर विहार कर दिया।

आचार्य श्रीजी आदि सन्तों के जोधपुर के निकट पधारने पर वहां के भाई अपने यहां पधारने की विनती लेकर सेवा में उपस्थित हुए। लेकिन आचार्य श्रीजी की शारीरिक स्थिति को देखते हुए सीधे बीकानेर की ओर विहार होना उचित समझा गया। बलुन्दा में पुनः स्वास्थ्य खराब हो गया और जैसे-तैसे कुछ स्वास्थ्य में सुधार होने पर आचार्य श्रीजी ने ठाणा १८ से बीकानेर की ओर विहार कर दिया।

युवाचार्य श्रीजी आदि सन्त विहार करते हुए बीकानेर के निकटस्थ उदयरामसर पधारे। वहां शौचादि के निमित्त कुछ मुनिवर जंगल गये। रास्ते में उन्होंने देखा कि कुछ लोग एक बकरे को मारने के लिये तैयारी कर रहे हैं। इस दृश्य को देखकर उन मुनिवरों में से मुनिश्री सुन्दरलाल जी म. सा. ने तत्काल वापस लौट कर युवाचार्य श्रीजी की सेवा में स्थिति का निवेदन किया और तत्काल युवाचार्यश्री घटनास्थल पर पहुंचे और अहिंसाधर्म का महत्त्व बतलाते हुए ऐसी सुन्दरता से उन बधिकों को समझाया कि उन्होंने उसी समय बकरे को अभयदान दे दिया और दूसरे दिन व्याख्यान के समय वे सभी

युवाचार्य श्रीजी का व्याख्यान सुनने के लिये आये। इसके सिवाय समयानुसार और भी त्याग-प्रत्याख्यान हुए।

उदयरामसर से भीनासर, गंगाशहर होते हुए आचार्य श्रीजी आदि सभी सन्तों ने बीकानेर में पदार्पण किया। बीकानेर नगर बड़ा है। बाहर के दर्शनार्थियों का तो मेला-सा ही लग रहता था। बीकानेर श्रीसंघ ने उनके सम्मानादि की समुचित व्यवस्था की थी किन्तु गर्मी की अधिकता आचार्य श्रीजी के स्वास्थ्य के अनुकूल नहीं पड़ी।

प्रतिदिन युवाचार्य श्रीजी अपनी वाणी से धर्मामृत का पान करते, जिससे श्रोताओं के हृदय गद्‌गद हो उठते थे। प्रवचन समय के सिवाय चरितनायक शेष समय गुरुदेव की सेवा-वैयावच्च में पूर्ण मनोयोग से तत्पर रहते थे। आपका भी स्वास्थ्य अनुकूल नहीं था, घुटनों में दर्द बना रहता था। परन्तु अपने स्वास्थ्य की उपेक्षा करके सदैव गुरु-सेवा में संलग्न रहना आप अपना सर्वोपरि लक्ष्य मानते थे।

दुविधा का परिमार्जन

नीति कहती है— 'आज्ञा गुरुणां खलु धारणीया' गुरुओं की आज्ञा अवश्य ही मानना चाहिये। चाहे वह आज्ञा रुचिकर हो या अरुचिकर' लेकिन गुरुजनों की आज्ञा के औचित्य-अनौचित्य पर विचार करने का हमें अधिकार नहीं है।

चरितनायक के रोम-रोम में यह मंत्र रमा हुआ था। आपके जीवन की धारा अनुप्राणित थी गुरोराज्ञा बलीयसी के आदर्श से। सेवाधर्मो परमगहनो योगिनाम्प्यगम्यः की उक्ति को आपने सर्वथा झुठलाया था और अपने आचार से सर्वगम्य बना दिया था।

पूज्य आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. द्वारा सं० १९९८ का चातुर्मास युवाचार्य श्रीजी आदि सन्तों सहित भीनासर में करने का फरमा देने से भीनासर, गंगाशहर, उदयरामसर, बीकानेर आदि आसपास के क्षेत्रों में हर्षोल्लास छा गया था।

आषाढ़ मास का समय था। चातुर्मास-स्थापना के दिवस इने-

गिने रह गये थे। उन दिनों पूज्य आचार्य श्रीजी म. सा. बीकानेर में श्री सेठिया जैन धार्मिक भवन में विराज रहे थे और सरदारशहर श्रीसंघ की अपने यहां सन्तों के चातुर्मास के लिये अत्याग्रह भरी विनती हो रही थी। वहां के श्रीसंघ का प्रतिनिधि मण्डल पहले भी अपनी स्थिति की जानकारी कराने के लिये आचार्य श्रीजी की सेवा में उपस्थित हो चुका था और परिस्थिति को देखते हुए पूज्य आचार्य श्रीजी भी विद्वान सन्तों का सरदारशहर में चातुर्मास होना आवश्यक समझते थे।

लेकिन सन्तों की शारीरिक स्थिति और समय की अल्पता के कारण कुछ निश्चयात्मक स्थिति नहीं बन रही थी। युवाचार्य श्री गणेशलाल जी म. सा. के घुटनों में दर्द बना रहता था तथा दूसरे सन्त भी आचार्य श्रीजी की सेवा में रहने के लिये उत्सुक थे।

आचार्य श्रीजी की यह दुविधा देखकर चरितनायक युवाचार्य श्री गणेशलाल जी म. सा. ने सेवा में निवेदन किया कि आपकी जो भी आज्ञा हो मुझे शिरोधार्य है। आपश्री इस दुविधा की स्थिति का मन पर असर न होने दें। आपके मन की समाधि रहना हमारे लिये श्रेयस्कर है। भावों के पारखी आचार्य श्रीजी ने विनीत शिष्य की अन्तर्ध्वनि को सुना और फरमाया— अभी तुम्हारा स्वास्थ्य अनुकूल नहीं है, ग्रीष्म-ऋतु प्रचंड है और समय भी कम है। अतः ऐसी स्थिति में यथासमय सरदारशहर पहुंचना कठिन-सा है, बस यही विचार मेरे मन में बार-बार उठ रहा है।

युवाचार्य श्रीजी ने अर्ज की कि जब सरदारशहर में चातुर्मास होना जरूरी है तो आपश्री मेरे स्वास्थ्य का विचार न करें। आपके आदेश, आज्ञा और आशीर्वाद से सब अनुकूल ही रहेगा। आपकी आज्ञा मेरे लिये नन्दनवन है। आपके आशीर्वाद से शरीर स्वस्थ और सबल बनेगा। बस अपना आशीर्वाद प्रदान कर प्रस्थान को प्रशस्त बनायें, और आचार्य श्रीजी ने शिष्य के गौरव को ध्यान में रखते हुए युवाचार्य श्रीजी को सरदारशहर चातुर्मास हेतु प्रस्थान करने की आज्ञा प्रदान की।

इस समय उपस्थित जनसमूह यह सब देख रहा था। उनके मनोभाव आंखों से बह निकले, कंठ भर आये, मुख मुरझा गये और मूक भाषा एक-दूसरे के अन्तर् की ओर देखने के लिये उत्सुक-सी हो गईं। उन्हें आशा थी कि आचार्यश्रीजी एवं युवाचार्य श्रीजी के उपदेशामृत पान का सुअवसर इसे सहज ही प्राप्त होगा। लेकिन अब यह आशा निराशा में परिवर्तित हो गई थी।

विनीत शिष्य श्री आदेश के साथ ही आशीर्वाद ले प्रस्थान पथ पर अग्रसर होने के लिये चल पड़े। समय मध्याह्न वेला का था। सहस्ररश्मि प्रचंडता से प्रकाशमान था। आगे-आगे संत-समुदाय और पीछे-पीछे श्रावक-श्राविकाओं का समूह आंखों में आंसू भरे चल रहा था और मौन वेदना बारम्बार व्यक्त करती थी कि आप यहीं विराजें।

चरितनायक जी ने उन सबको सांत्वना दी, समझाया और फरमाया— आपका धर्मोत्साह सराहनीय है। गुरुदेव की आज्ञा ही मेरे लिये मंगलप्रद है। मेरे पास अपना कुछ नहीं है, मुझ अकिंचन ने गुरुचरणों के प्रताप से जो कुछ विरासत में प्राप्त किया है उसे ही वितरित कर देता हूँ और निजानन्दरसलीन हो सुखानुभव करता हूँ। रही प्राकृतिक वातावरण की सो आप उसका विचार न करें। मेरे लिये गुरुदेव का वरद आशीर्वाद सभी स्थिति में शांतिप्रद है। मैं अकेला नहीं हूँ, मेरे साथ गुरुदेव का आशीर्वाद है। उसकी मंगलमयी किरणें मेरे लिये सदैव सहायक रही है, और रहेंगी। आपकी भक्ति एवं धर्मप्रेम मुझे गुरुदेव की आज्ञा पालन में सहायक होगा। आप लोग अपने को महावीर का अनुयायी मानते हैं, लेकिन आश्चर्य है कि आज अपनी वीरता को आंखों से बहा रहे हो! वीर तो दूसरों को वीरता का बोध देते हैं। इस प्रकार के आशय के भावों से उपस्थित जनसमुदाय को भली प्रकार आश्वस्त करके श्रमणसरदार ने संतमंडल के साथ सरदारशहर की ओर प्रस्थान कर दिया।

विनयशीलता और अनुशासनप्रियता तो आपकी रग-रग में

समाई हुई था। कदाचित् प्रवचन करते समय गुरुदेव कभी टोक देते तो उसी समय असावधानी के लिये क्षमायाचना के साथ कृतज्ञता पूर्वक उनकी सूचना अंगीकार करते थे। चाहे फिर श्रोताओं की उपस्थिति सैकड़ों में हो और श्रोताओं को सावधानी दिलाते हुए फरमाते कि गुरुदेव की शिक्षा प्रबल पुण्योदय से मिलती है और शिष्य के जीवन विकास के लिये आवश्यक है।

चरितनायक ने सदैव गुरु-आज्ञा के अनुसार चलना सर्वोपरि माना था। यही कारण है कि आप पूर्णरूपेण गुरु का प्रसाद पाने में सफल हुए। आपकी विनम्रता, भक्ति और कर्तव्यपरायणता इतनी उच्चकोटि की थी कि आपके जीवन का आदर्श युग-युग तक स्मरणीय रहेगा।

दारुण दुर्घटना

सरदारशहर थली प्रदेश का प्रमुख नगर है और थली प्रदेश मारवाड़ का मध्य क्षेत्र है। एक तो मारवाड़ की मरुधरा वैसे ही शुष्क होती है और उसमें भी थली प्रदेश की शुष्कता तो अपने ही प्रकार की है। वहां की भौगोलिक स्थिति ही ऐसी नहीं है किन्तु वहां के निवासियों के बहुभाग के हृदय भी शून्य, शुष्क हैं। इसके साथ ही वहां ऐसे-ऐसे व्यक्तियों का विशेष रूप से आवागमन हुआ है जो अपने उपदेशों में मरते जीव को बचाना पाप है, प्यासे को पानी पिलाना पाप है, माता द्वारा बालक का पालन-पोषण होना और गर्भस्थ बालक की रक्षा करना एकान्त पाप है, माता-पिता की सेवा करना पुत्र के लिये पाप है आदि-आदि मानवता विरोधी और अविवेकता से भरी हुई बातों का प्रचार करते हैं। लेकिन यह सब कहा जाता है परमकारुणिक भगवान महावीर के नाम पर कि हे भगवन ! तेरा पथ यह है। ऐसों ने धर्म को तीन तेरह करके तेरे के स्थान पर मेरे-मेरे का ढिंढोरा पीट रखा है।

यद्यपि ऐसे शुश्क जन-मनों को स्नेहासिक्त करने के लिये चरितनायकश्री का पहले भी पदार्पण हो चुका था लेकिन गरम लोहे पर दो-चार बूंद पानी डालने से शीतलता नहीं आती है, किन्तु उसको

शीतल करने के लिये जलधारा के सतत प्रवाह की आवश्यकता होती है। अतः शुष्क मानवों को आर्द्र करने के लिये परमकरुणा के दया-सागर की धारा का प्रवाह वहाने के लिये हमारे चरितनायक बढ़े जा रहे थे, बढ़े जा रहे थे।

थली क्षेत्र में गांव दूर-दूर बसे हुए हैं और मानवता-युक्त मानवों की वस्ती भी कहीं-कहीं पर है। बीकानेर से शिवबाड़ी, नापासर आदि क्षेत्रों में विहार करते हुए आप तीन सन्तों के साथ श्रीडूंगरगढ़ पधारे और तीन सन्त एकाध रोज के अन्तर से पीछे-पीछे आ रहे थे। श्रीडूंगरगढ़ पधारने पर आपश्री आशाराम जी भंवर की बगीची में विराजे और दोपहर बाद वहां से आगे के लिये विहार कर दिया।

तीन सन्त जो एक मजिल पीछे-पीछे आ रहे थे, श्रीडूंगर-गढ़ से तीन कोस पहले एक गांव में पहुंचे। वहां आहार-पानी का सयोग नहीं बना और विशेष रूप से पानी का। गरमी का मौसम था अतः कम-से-कम तीन पात्र पानी चाहिये था लेकिन मिला एक ही जो तीनों सन्तों के लिये पर्याप्त नहीं था। उससे कुछ पिपासा शांत करके उन्होंने सोचा कि यहां से श्रीडूंगरगढ़ तीन कोस है और वहां युवाचार्य श्रीजी आदि सन्त विराज रहे हैं एवं बादल होने से धूप भी कुछ कम है। अतः ऐसा विचार कर दोपहर के करीब उन्होंने श्रीडूंगरगढ़ की ओर विहार कर दिया।

लेकिन थोड़ी देर बाद बादल विखर गये। सूर्य के प्रचंड ताप के साथ लू के झोंके आने लगे। रास्ते में कोई छायादार वृक्ष नहीं था अतः एक खेजड़ी के नीचे वैठकर किसी तरह मध्याह्न का समय व्यतीत किया और पुनः करीब तीन बजे वहां से विहार कर दिया।

इन तीन सन्तों में मुनिश्री मोतीलाल जी म. सा. वयोवृद्ध थे और श्रीडूंगरगढ़ करीब डेढ़ मील रहा होगा कि उनको चक्कर आने लगे। साथ के सन्तों से आपने कहा कि चक्कर आ रहे हैं, घबराहट हो रही है और कण्ठ सूख रहा है, जिससे चलने में कठिनाई मालूम

पड़ती है। इस स्थिति को देखकर साथ के दोनों सन्तों ने सहारा देकर उनको एक खेजड़ी के नीचे बैठा दिया और एक सन्त वहीं सेवा-वैयावच्च के लिये ठहर गये एवं दूसरे सन्त जल लेने के लिये श्रीडूंगरगढ़ की ओर चल दिये।

श्रीडूंगरगढ़ की ओर जाने वाले सन्त ने गांव के निकट आकर किसी राहगीर से जाकर पूछा कि यहां ओसवालों का मोहल्ला किधर है। उसने मोहल्ले की ओर जाने वाले रास्ते का संकेत कर दिया। संकेतित रास्ते से होते हुए सन्त बाजार में पहुंचे और ओसवाल भाइयों से पूछा कि यहां युवाचार्य श्री गणेशलाल जी म. सा. किधर विराज रहे हैं। किन्तु उन्होंने कुछ पता-ठिकाना न बताकर हंसी-मजाक में बात उड़ा दी। इस पर पुनः सन्त ने बताया कि यहां से करीब डेढ़ मील पर एक वयोवृद्ध सन्त को तकलीफ है, प्यास के कारण कण्ठ सूख रहा है और घबराहट है। यहां कोई योग्य मकान बता दीजिये जिसमें पात्रादि भंडोपकरण रखकर और आप लोगों के यहां से साध्वोचित जल की गवेषणा करके, उनके पास पहुंचूं।

फिर भी उन्होंने बात पर ध्यान नहीं दिया और न रास्ता ही बताया। बाजार के इस छोर से उस छोर तक घूमने पर भी सन्त को कुछ भी जानकारी न मिल सकी। अकस्मात श्री भंवर जी के घर के सामने से गुजरना हुआ। वहीं भंवर जी मिल गये। बातचीत करते हुए सन्त ने पूछा कि युवाचार्य श्रीजी किधर विराज रहे हैं? उत्तर में श्री भंवर जी ने बताया कि अभी कुछ देर पहले बगीची से विहार किया है, आप सामान बगीची में रखिये और मेरे घर से जल ले जाकर प्यासे सन्तों को शांति पहुंचाइये।

सन्त पानी लेकर वापस सेवा में आने के लिये चल पड़े। करीब फर्लांग, डेढ़ फर्लांग दूरी रही होगी कि वयोवृद्ध सन्त मुनिश्री मोतीलाल जी म. सा. ने संथारा पूर्वक प्राण त्याग दिये। रास्ता बताने के लिये जो भाई साथ में थे, उन्होंने वापस आकर सब घटना

श्री भंवर जी को सुनाई और बीकानेर के भाइयों को भी जो युवाचार्य श्रीजी के दर्शन कर बीकानेर जाने के लिये स्टेशन गये थे, वृद्ध सन्त के देहावसान की खबर दी।

इस दारुण दुर्घटना को सुनकर सभी जाने वालों ने टिकिट वापस कर स्वर्गस्थ संत के दाहसंस्कार की तैयारी की। बाजार में चंदन, नारियल आदि की तलाश की किन्तु मुंह मांगे दाम देने पर भी उपलब्ध नहीं हो सके। उन्हीं दिनों श्री भंवर जी के यहां विवाह की तैयारी हो रही थी और इसके लिये नारियल आदि उन्होंने ले रखे थे। लेकिन मांगने में संकोच हो रहा था। दुविधा का पता चलते ही श्री भंवर जी ने नारियल आदि की बोरियां दीं और दाहसस्कार करके बीकानेर के भाई वापस बीकानेर लौटे।

जब इस दारुण दुर्घटना के समाचार चरितनायक जी को प्राप्त हुए तो श्रीडूंगरगढ़ से विहार कर जहां पहुंचे थे, वहीं रुक गये और चार लोगस्स का ध्यान किया।

जिस प्रकार श्रमणभगवान महावीर के अनार्य देश की ओर बढ़ते चरणों को लाख बाधायें विचलित नहीं कर सकीं, तो उनके अनुयायी श्रमणों को यह बाधायें कैसे विचलित कर सकती थीं? दुर्जन अपनी दुर्जनता नहीं छोड़ सकते हैं तो सज्जन भी अपने आरम्भ किये हुए जनकल्याण के कार्यों से कभी भी विरत नहीं होते हैं। एक कवि ने कहा है—

त्यजति न विदधानः कार्यमुद्विज्य धीमान्।
खलजन परिवृत्तो स्पर्धते किन्तु तेन॥

दुष्टजनों की चेष्टाओं से घबरा कर बुद्धिमान पुरुष अपने आरंभ किये हुए कार्य का त्याग नहीं कर सकता, वरन स्पर्धा करता है अर्थात् जैसे दुष्ट अपनी चेष्टाओं से बाज नहीं आता, वैसे ही ज्ञानी पुरुष भी अपने कार्य को पूरा किये विना विश्राम नहीं लेता है।

जब पीछे आने वाले शेष दो सन्त आपके पास आ गये तो उन्हें साथ लेकर पुनः सरदारशहर की ओर विहार कर दिया और

यथासमय सरदारशहर के निकट पधार गये।

नगर-प्रवेश

सरदारशहर के बन्धुओं ने चातुर्मासार्थ नगर-प्रवेश के लिये ज्योतिषियों से मुहूर्त निकलवाया था। इसका संकेत उन्होंने चरितनायकजी की सेवा में भी किया तो फरमाया— मैं तो गुरुदेव की आज्ञा से चातुर्मास करने के लिये आया हूँ, अतः गुरु-आज्ञा ही सबसे अच्छा मुहूर्त है और क्षयतिथि के दिवस ही सरदारशहर में प्रवेश किया।

चातुर्मासार्थ नगर में प्रवेश करने के लिये मुहूर्त आदि देखने की परिपाटी श्रावकों तक ही सीमित नहीं है, लेकिन कुछ एक साधु-सन्त भी चातुर्मास के निमित्त नगर-प्रवेश करते समय मुहूर्त आदि देख लिया करते हैं। मगर आपने सदैव गुरु-आज्ञा को ही मुहूर्त समझा। चाहे तिथि क्षय हो या रिक्ता तिथि हो, चौघड़िया अनुकूल हो अथवा न हो, नक्षत्र और योग प्रतिकूल हो, चन्द्रमा और योगिनीवास पीठ पीछे हो, आपने इसकी कभी चिन्ता नहीं की। न कभी मुहूर्त निकाला और न इसका हिसाब लगाया। आपकी तो धारणा थी—गुरु-आज्ञा ही मेरे लिये शुभ मुहूर्त और सन्मुख चन्द्रमा है।

आपका यह चातुर्मास सरदारशहर के लिये ही नहीं। वरन समस्त थलीप्रदेश के लिये ही वरदान सिद्ध हुआ। आत्म-शुद्धि के लिये विभिन्न प्रकार के त्याग, प्रत्याख्यान और तपस्यायें होते के साथ साथ अनेक व्यक्तियों ने धर्म के स्वरूप को समझकर सत्य का अनुकरण करने की प्रतिज्ञा ली।

श्री हुकमचन्द जी और श्री सुमेरमल जी की भागवती दीक्षा इसी चातुर्मास में आपके द्वारा सम्पन्न हुई थीं।

पुनः गुरुचरणों में

चातुर्मास-समाप्ति के पश्चात थली प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों में विचरण करते हुए चरितनायक जी पूज्य आचार्य श्रीजी म. सा. की सेवा में पधार गये। इस विहार से थलीप्रदेश में काफी उपकार हुए

और सरलहृदय जनों ने धर्म के अंतरंग रहस्य को समझकर जड़ मान्यताओं के त्याग का संकल्प किया ।

बीकानेर में कुछ दिन गुरु-सान्निध्य में सेवा का लाभ लेकर गुरुदेव की आज्ञानुसार बीकानेर के निकटस्थ क्षेत्रों— झज्झू आदि की ओर आपने विहार किया ।

पूज्य जवाहराचार्य का अन्तिम समय

आपने जब विहार किया था तब पूज्य जवाहराचार्य का स्वास्थ्य वृद्धावस्था को देखते हुए साधारणतया ठीक था । कमजोरी और घुटनों में दर्द तो था, लेकिन अन्य कोई ऐसे लक्षण नहीं दिखते थे जो चिन्ताजनक हों कि अकस्मात जेष्ठ शुक्ला १५ को आचार्य श्रीजी को पक्षाघात (लकवा) हो गया। इन दिनों चरितनायक देशनोक विराज रहे थे। सूचना मिलने पर आप श्री देशनोक से विहार कर यथाशीघ्र पूज्य आचार्य श्रीजी की सेवा में पधार गये ।

शरीर में विविध व्याधियों के प्रकोप और उनका प्रतिरोध करने वाली शारीरिक शक्ति की असमर्थता को देखकर आचार्य श्रीजी ने प्राणिमात्र से क्षमायाचना कर लेना उचित समझा ।

अतः आचार्य श्रीजी ने भीनासर में जीवन की आलोयणा, प्रायश्चित्त करने के पश्चात दि० १८-६-४२ को चतुर्विध संघ के समक्ष ८४ लाख जीवयोनि से क्षमायाचना की ।

क्षमायाचना सम्बन्धी विचारों के साथ ही चरितनायक युवाचार्य श्री गणेशलाल जी म. सा. के बारे में फरमाया—

> लगभग आठ वर्ष से शारीरिक अशक्ति के कारण मैंने सांप्रदायिक शासन का भार युवाचार्य श्री गणेशलाल जी को सौंप रखा है । उन्होंने जिस योग्यता, परिश्रम और लगन के साथ इस कार्य को निभाया और निभा रहे हैं, वह आपके समक्ष है । मुझे इस बात का परम संतोष है कि युवाचार्य श्री गणेशलाल जी ने अपने को इस उत्तरदायित्वपूर्ण पद का पूर्ण अधिकारी प्रमाणित

कर दिया है और कार्य अच्छी तरह सम्भाल लिया है। साथ में इस बात की भी मुझे प्रसन्नता है कि श्रीसंघ ने भी इनको श्रद्धापूर्वक अपना आचार्य मान लिया है। इनके प्रति आपकी भक्ति, आप सभी का पारस्परिक प्रेम उत्तरोत्तर वृद्धिगत होता रहे और इसके द्वारा भव्य प्राणियों का अधिकाधिक कल्याण हो, यही मेरी हार्दिक अभिलाषा है।

आचार्य श्रीजी के लकवा की शिकायत अभी दूर भी नहीं हो पाई थी कि कमर के बायीं ओर जहरीला फोड़ा (कार्बंकल) उठ आया। फोड़े के कारण दुस्सह वेदना थी और बुखार भी हो गया था। शल्य-चिकित्सा से भी जीवन बचना असम्भव-सा प्रतीत होने लगा कि अकस्मात फोड़ा अपने आप फूट गया और १५-२० दिन बाद फोड़े में कुछ सुधार दिखाई देने लगा। करीब छह माह में फोड़ा तो ठीक हो गया लेकिन दांयीं करवट लेटे रहने के कारण बायें अंगों में इतनी कमजोरी आ गई कि उठना-बैठना कठिन हो गया।

इस शारीरिक अस्वस्थावस्था के कारण आचार्य श्रीजी का संवत् १९९९ का चातुर्मास भीनासर हुआ। युवाचार्य श्रीजी आदि संत सेवा में सदैव उपस्थित रहते थे। यह चातुर्मास धार्मिक प्रभावना की दृष्टि से बड़ी सफलता के साथ सम्पन्न हुआ। चातुर्मास-समाप्ति के अनन्तर मार्गशीर्ष कृष्णा ४ को देशनोक निवासी श्री ईश्वरचन्द जी सुराना और श्री नेमीचन्द जी सेठिया गंगाशहर निवासी की भागवती दीक्षायें आचार्य श्रीजी द्वारा सम्पन्न हुईं। आचार्य श्रीजी के वरदहस्त से यह दो अन्तिम दीक्षायें हुई थीं।

आचार्य श्रीजी का पहले हुआ फोड़ा तो ठीक हो गया था और स्वास्थ्य सुधार पर भी था कि अकस्मात जुलाई ४३ के प्रारम्भ में पुनः गर्दन पर एक जहरीला फोड़ा उठ आया और उसी तरह के छोटे-छोटे फोड़े शरीर के दूसरे भागों में उठ आये। घोर वेदना थी, अतः रात्रि के समय सेवा के लिये सन्तों का बारीसर जागरण रहता था। स्वर्गवास होने के दिन की

पूर्व रात्रि में प्रथम प्रहर तक स्वास्थ्य कुछ ठीक-सा प्रतीत होता था। युवाचार्य श्री अपने नित्य नियम करके प्रहररात्रि वाद पौढ़ गये और करीब ११ बजे जो सन्त सेवा में थे, उनमें से मुनिश्री नानालाल जी म. सा. को आचार्य श्रीजी म. सा. की श्वासगति में परिवर्तन प्रतीत हुआ और युवाचार्य श्रीजी को आचार्य श्रीजी की श्वासगति के वारे में वतलाया कि अव गति के लक्षण दूसरे प्रकार के हैं। युवाचार्य श्रीजी आचार्य श्रीजी के पास आये ओर नाड़ी की गति देखी, उसके परिस्पन्दन में परिवर्तन और निर्वलता प्रतीत हुई। लेकिन आचार्य श्रीजी होश-हवास में थे और उसी समय सबसे क्षमत-क्षमापना करने के पश्चात औषधोपचार आदि के साधारण टंटों की स्थिति की भी आलोचना युवाचार्य श्रीजी के समक्ष कर ली। इस समय युवाचार्य श्रीजी ने विनम्र भाव से प्रार्थना की कि आप स्वयं समर्थ हैं अतः स्वयं ही प्रायश्चित लेने की कृपा करें और मेरे लिये क्या आज्ञा है, सो फरमावें। आचार्य श्रीजी ने इस प्रसंग पर इस आशय के भाव फरमाये कि आप सव तरह से योग्य हैं, शास्त्रीय दृष्टि को सन्मुख रखते हुए अपनी अन्तरात्मा को जैसा जान पड़े, वैसा करना। अन्त में आषाढ़ शुक्ला ८ के सायंकाल करीव ५॥ वजे संथारा पूर्वक इस नश्वर देह को त्यागकर आचार्य श्रीजी की आत्मा अनन्त में विलीन हो गई।

सूर्यास्त के साथ ही ज्योतिपुंज जवाहर-सूर्य अस्त हो गया। संघ की अनमोल धरोहर छिन गई और समस्त श्रीसंघ इसकी सूचना मिलते ही शोक संतप्त हो गये। आबालवृद्ध नर-नारी, अमीर-गरीव, साक्षर-निरक्षर सभी के चेहरों पर अपूर्व विषाद दिखाई देता था। जगवंधु, युगद्रष्टा का वियोग हृदय में चुभ रहा था, मानो किसी स्नेहपात्र आत्मीय जन का वियोग हो गया हो। पूज्य जवाहराचार्य के वियोग से जैनों ने अपना जवाहर खोया, सन्तों ने सिरताज खोया, धर्म ने आधार खोया, संघ ने संघनायक खोया, पंडितों ने पथप्रदर्शक खोया, गुणों ने गुणाकर खोया, पथभ्रष्ट पथिकों ने प्रकाशस्तम्भ खोया, ज्ञान पिपासुओं

ने अमृतस्रोत खोया ।

श्री जवाहराचार्य शताब्दियों में दृष्टिगोचर होने वाली विरल विभूति थे । उनका जीवन राष्ट्र की एक निधि थी, उनके प्रति जनता और जननेताओं की अटूट श्रद्धा और निष्ठा थी । पूज्य जवाहराचार्य बीसवीं शताब्दी के अजोड़ आचार्य थे । भारतीय इतिहास में गांधीजी का नामोल्लेख जितने सम्मान एवं गौरव के साथ किया जाता है, उतने ही आदर से पूज्यश्री का पुण्यस्मरण किया जाता रहेगा । आपश्री की अनमोल वाणी ने राष्ट्र और समाज में नवचेतना का संचार किया है । खादी, गोपालन, गृह-उद्योग और अल्पारंभ, महारंभ के सम्बन्ध में सही विचारों का दिग्दर्शन कराकर उन्होंने समाज को दिव्यचक्षुओं का जो दान दिया है, उसके लिये समाज उनका ऋणी रहेगा और अपनी कृतज्ञता व्यक्त करेगा । जब धर्म के नाम पर महा-आरम्भजन्य उत्सवों, संवर के स्थान पर आस्रव, वैराग्य के स्थान पर विलास, त्याग के स्थान पर भोग का समाज में बोलबाला था, तब पूज्यश्री ने अल्पारंभ और महारंभ की व्याख्या समझाकर पवित्रता के पुनीत पथ पर प्रयाण करने का मार्ग प्रदर्शित किया था और जहां सूर्य का प्रखर प्रकाश भी नहीं पहुंच सकता ऐसे अज्ञान-अन्धकाराच्छादित हृदयपटलों को पूज्यश्री ने प्रकाशित किया था । दीर्घजीवी होना जीवन की विशेषता नहीं है किन्तु महत्त्व तो है आदर्श जीवन का । पूज्यश्री का जीवन आदर्श था, आदर्शपुंज था और आदर्श के कीर्तिमान स्थापित कर जन-जन के लिये आदर्श बन गये हैं । जिस प्रकार यात्रा के जल, थल और आकाश तीन मार्ग हैं और उनमें आकाश-मार्ग सर्वोत्कृष्ट है । इसी प्रकार जीवन-यात्रा के भी तीन मार्ग हैं— आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक । आध्यात्मिक मार्ग सर्वोत्तम है । पूज्य श्री ने अपनी जीवनयात्रा इसी मार्ग से पूर्ण की ।

पूज्य जवाहराचार्य अध्यात्म-विज्ञानशाला की कसौटी पर परीक्षित खरे जवाहरात थे । उन्होंने वही कहा जो शास्त्रसंमत था

और उसे ही आचार में उतारा जो शास्त्रनिरूपित था। वे निर्भय और निर्द्वन्द होकर ही चलते रहे। उन्हे लोकभय आदि भी अपने मार्ग से विचलित नहीं कर सके और न मान-सम्मान की आकांक्षा भी सत्यान्वेषण से विमुख बना सकी।

श्री जवाहराचार्य गये, किन्तु वे अपनी विरासत, अपने अनुभव, अपनी क्रांतिकारी विचारधाराओं का सुरक्षित कोष पाट-परम्परा में नवाभिषिक्त चरितनायक आचार्य श्री गणेशलाल जी म. सा. को सौंप गये। वह कोष आज भी सुरक्षित है, संवर्धित है और जब तक सन्तों की परम्परा चलती रहेगी, तब तक उनके आदर्श सदैव जीवन्त रहेंगे।

आचार्य-पदप्राप्ति

प्रकृति प्रकाश में ही विकसित होती है, यह सनातन का नियम है। नवोदित प्रकाशपुंज के स्वागतार्थ चराचर विश्व के कण-कण में उत्साह की अरुणिमा व्याप्त हो जाती है। इसीलिये चतुर्विध संघ ने एक सूर्य के अस्त होते ही मानो द्वितीय सूर्य का स्वागत-सम्मान करते हुए युवाचार्य श्री गणेशलाल जी म. सा. को सविधि आचार्य-पद की चादर ओढ़ाने की विधि की और आचार्य-पद का दायित्व आपके कंधों पर आने के साथ एक नये युग का श्रीगणेश हुआ।

आचार्य-जीवन

आचार्य-पद का महत्त्व

शाब्दिक दृष्टि से आचार्य शब्द का अर्थ आचरण करने वाला होता है। लेकिन इतने से ही आचार्य-पद का महत्त्व स्पष्ट नहीं होता है। आचरण तो सभी करते हैं, अतः उन सबको आचार्य माना जाना चाहिये। लेकिन यथार्थतः आचार्य शब्द द्वयर्थक है कि परम्परा से चलते आये हुए आचारपथ पर स्वयं चलना, दूसरों को चलाना और उसके रहस्य को प्रगट करना। इसी कारण आचार्य-पद का उत्तरदायित्व बहुत है। वह अव्यवस्था में सुव्यवस्था स्थापित करता है। मर्यादा का पोषण कर संस्कृति की उन्नति करता है और उसका उल्लंघन करने वालों का नियमन तथा समूह के कल्याण हेतु अपना उत्सर्ग करके भी समूह की रक्षा करता है। वह नीति से अनुप्राणित होता है और दूसरों को भी नीतिमय बनाने के लिये कृतसंकल्प होता है।

आचार्य के अनेक प्रकार हैं, लेकिन उनमें धर्माचार्य का पद सर्वोपरि है। धर्माचार्य-पद शास्त्रोक्त विधि-विधान के जानकार एवं तदनुसार जीवन-निर्माता एवं विशिष्ट गुणयुक्त व्यक्ति ही जो चतुर्विध संघ का विश्वासपात्र हो, प्राप्त कर सकता है। धार्मिक क्षेत्र में प्रत्येक व्यक्ति धर्माचार्य नहीं हो सकता है। धर्मनीति में जबरदस्ती सम्भव नहीं है। संघ द्वारा अनुमोदित और मान्य व्यक्ति ही आचार्य माना जाता है।

शास्त्रानुसार धर्माचार्य में ये तीन गुण—१. गीतार्थ, २. अप्रमादी, ३ सारणा-वारणा करने वाला— होना चाहिये। अर्थात जो सूत्रार्थ को जानने वाला हो, प्रमाद रहित हो और संघ की व्यवस्था करने वाला हो। अन्यथा अयोग्य व्यक्ति को आचार्य-पद से पृथक् किया जा सकता है। अतः धर्माचार्य-पद बहुत ही उत्तरदायित्व पूर्ण होता है एवं आध्या-

त्मिक एवं रचनात्मक साधनाशील प्रवृत्तियों से ओतप्रोत होता है।

आचार्य जीवन : कार्य क्षेत्र का विस्तार

चरितनायक जी आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए। आपकी धर्म के प्रति श्रद्धा, चारित्रबल और अनुशासन का परिचय चतुर्विध संघ को प्राप्त हो चुका था और वाणी प्रभावक थी एवं विचारों को व्यक्त करने का ढग इतना रमणीक था कि श्रोताओं के हृदय को आकृष्ट कर लेता था। संघव्यवस्था सम्बन्धी कार्यप्रणाली से चतुर्विध संघ अपने को सौभाग्यशाली मानता था। इस सबका प्रधान कारण विचारों की उदारता, शास्त्रसगत तात्त्विक विवेचना, रचनात्मक आदर्श, आस्तिकता का प्रतिपादन, दया का महत्त्व और कुतार्किकों को धार्मिक सिद्धान्तों के यथार्थ आशय को समझाने की युक्तिपुरस्सर चिन्तन-मनन से समन्वित शैली थी।

अभी तक तो पूज्य श्री जवाहराचार्य का वरद हस्त था और जिस किसी समस्या के बारे में निर्णय लेने या विचार विमर्श, परामर्श करने की आवश्यकता प्रतीत होती तो, वह सब पूज्यश्री से आशीर्वाद के रूप में प्राप्त होता रहता था। लेकिन अब आचार्य-पद पर प्रतिष्ठित हो जाने के पश्चात निर्णय स्वयं करना था, विचार भी स्वयं करना था और शुद्धि व वृद्धि की परम्परा को भी स्वयं गतिमान रखना था।

पूज्य जवाहराचार्य के अवसान से आपको मार्मिक आघात पहुंचा। शोक का भार तो था ही और उसी के साथ आचार्य-पद का भार बढ़ गया। इतने दिनों तक पूज्यश्री की छत्रछाया थी, इसलिये सब कुछ करते हुए भी आप निश्चित थे और आध्यात्मिक-साधना में संलग्न रहते थे। मगर अब समस्त उत्तरदायित्व आप पर आ पड़ा था।

महापुरुषों के जीवन में ऐसे अवसर अक्सर आते रहते हैं, जब वे एक तरफ तो शोक से दवे रहते हैं और दूसरी तरफ महान उत्तरदायित्व आ पड़ता है। इस समय शोक की अवगणना कर विवेक का संबल लेकर वे कर्तव्यमार्ग पर अग्रसर होते हैं। यह अवसर बड़ा ही

करुणाजनक होता है, किन्तु महापुरुष ऐसे विकटकाल में भी कातर नहीं होते हैं। यह अवसर उनकी कसौटी का होता है।

पूज्य जवाहराचार्य के स्वर्गारोहण से चरितनायक जी पर चतुर्विध संघ की सुव्यवस्था का गुरुतर उत्तरदायित्व आ गया था और अपने जीवन के एक नवीन अध्याय में आपने पैर बढ़ाया।

आचार्य-पद का प्रथम चातुर्मास

आषाढ़ शुक्ला ९ को पूज्य जवाहराचार्य के पार्थिव देह का अग्निसंस्कार एवं १० को दिवंगत आत्मा के प्रति श्रद्धा व्यक्त करने हेतु श्रद्धांजलि सभा के आयोजन की परिसमाप्ति के पश्चात नवप्रतिष्ठित आचार्य श्री गणेशलाल जी म. सा. आदि सन्तों ने सं० २००० के चातुर्मास के लिये भीनासर से देशनोक को विहार कर दिया।

पूज्य जवाहराचार्य के अवसान से शोक-संतप्त देश के विभिन्न श्रीसंघों के उपस्थित आबालवृद्ध भाई-बहिनों ने अपनी मनोवेदना के ज्वार को पलकों में छिपाते हुए, उदासीन चेहरों पर सस्मित हास्य की रेखा-सी लाते हुए एवं 'शिवास्ते पन्थानः सन्तु' की अंजलि अर्पित करते हुए विदाई दी।

यथासमय देशनोक पदार्पण हुआ और चातुर्मास-प्रारम्भ के दिन आपने स्व० गुरुदेव पूज्य आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. के लिये अपनी भावना व्यक्त करते हुए फरमाया— पूज्य गुरुदेवश्री का मुझ पर असीम उपकार है। मैं उनके ऋण से कभी भी उऋण नहीं हो सकता हूँ। मेरे जीवन-निर्माण में जिस-जिस प्रकार से निर्देशन और आज्ञा दी है, उसके लिये मैं उनका सदैव कृतज्ञ रहूँगा। यद्यपि आज पूज्यश्री हमारे बीच नहीं रहे हैं, लेकिन उनके आदेश, उनके विचार, उनकी शिक्षायें हमें मार्गदर्शन कराती रहेंगी। मैं चतुर्विध संघ को यह विश्वास दिला देना चाहता हूँ कि संघश्रेय और धर्मसेवा ही मेरे जीवन का ध्येय रहा है और रहेगा एवं पूज्य श्री हुक्मीचन्द जी म. सा. आदि महापुरुषों की पवित्र परम्परा के गौरव की रक्षा करने में

अपनी विवेकशक्ति से सदैव उद्यत रहूँगा।

इसी संदर्भ में मैं चतुर्विध संघ से अपेक्षा रखता हूँ कि वह इस गुरुतर भार को उठाने में अपना सहयोग प्रदान करे। उसके सह्-योग के बिना क्षण भर भी कार्य चलना कठिन है।

व्यवहार में आचार्य-पद सम्मान की वस्तु समझी जाती है। धार्मिक क्षेत्र में ये सबसे बड़ा पद है। लेकिन मैं इसे सेवा का पद मानता हूँ। मैं अपने आपको तभी सौभाग्यशाली मानूंगा जब पद के दायित्वों का भलीप्रकार से निर्वाह कर सकूं। श्रीसंघ की दृष्टि में भले ही आचाय, पूज्य या सम्माननीय पद का आसीन समझा जाऊं लेकिन मैं अपनी आत्मसाक्षी से धर्म का एक अकिंचन सेवक ही रहूँगा।

गुरुदेव के प्रति मेरी यही श्रद्धांजलि है कि उनके द्वारा प्रशस्त किये गये मार्ग पर सदैव सजग होकर चलता रहूँ और अपनी सयम-साधना का उत्तरोत्तर विकास करते हुए अपनी आत्मा का लक्ष्य—वीतराग-विज्ञानता—प्राप्त कर सकूं।

आचार्यपद का यह प्रथम चातुर्मास प्रभावक सफलता से सम्पन्न हुआ। प्रतिदिन प्रवचन के प्रारम्भ में परमात्मा की प्रार्थना-गान करते समय आपकी आत्मानुभूति में तल्लीन मुखमुद्रा दर्शकों को एक महान् भक्त, सतहृदय की अनुभूति कराती थी और जिस तन्मयता से स्तुति का संगायन करते, उसी तन्मयता से उसके हार्द का विवेचन करते थे। उस समय ऐसा प्रतीत होता था मानो परमात्मा के साथ आपकी आत्मा तदाकार हो गई हो।

चतुर्विध संघ ने आपश्री की ओजस्वी वाणी-श्रवण का लाभ प्राप्त तो किया ही, साथ ही तपस्याओं आदि के द्वारा जीवन को शुद्ध, पवित्र और संयमित बनाने की प्रतिज्ञा ली। सभी में एक ही भावना रम रही थी कि संयमसाधना एवं संघचेतना का यह अक्षय कोष हम सबके लिये प्रेरणास्रोत बनेगा।

थलीप्रदेश के सुज्ञ श्रावकों की भावना थी कि श्रापश्री पुनः हमारे क्षेत्र में पधारें। इसके लिये उनकी बारम्बार विनती हो रही थी। श्रतः चातुर्मास-समाप्ति के पश्चात शांत, भद्र और कर्मठ शिल्पी चरितनायक श्राचार्य श्री गणेशलाल जी म. सा. ने सन्तसमूह के साथ अनमोल श्रनुभवों की राशि लेकर देशनोक से जैन सिद्धान्तों—दया, करुणा, मैत्री, दान श्रादि का सन्देश मुखरित करने के लिये पुनः थलीप्रदेश की श्रोर विहार किया।

आप मानवता के प्रसारक थे। दया के लिये श्रापके मन में गहरी श्रनुभूति थी किन्तु दया दान विरोधी बन्धुश्रों की अज्ञानता देखकर श्रापश्री का हृदय दयार्द्र हो जाता था। भगवान महावीर के श्रहिंसा धर्म का विपरीत प्रचार देखकर और भोलीभाली जनता को धर्म के नाम पर श्रधर्म श्रोर निर्दयता का शिकार होते देखकर आपको बार-बार विचार होता था कि जीवरक्षा को पाप बतलाना मानवता व धर्म के नाम पर घोर कलंक है। ऐसी मूढ़ मान्यताश्रों के नागपाश से मनुष्यमात्र को शीघ्र मुक्ति मिलना चाहिये। जैनधर्म ही नहीं, वरन विश्व के सभी धर्म जीवरक्षा को प्रधान धर्म स्वीकार करते हैं। सन्तों ने कहा है—

कला बहत्तर पुरुष की तामें दो सरदार।
एक जीव की जीविका, एक जीव-उद्धार॥
दया धर्म का मूल है, पाप मूल श्रभिमान।
तुलसी दया न छांड़िये, जब लग घट में प्राण॥

धर्म का यह सत्य मनचाही धारणाओं पर श्राधारित नहीं है, श्रोर न किन्हीं किंवदन्तियों के श्रावरण से श्राच्छादित है। बल्कि मानवमात्र की स्वाभाविक स्थिति का एक सजीव श्रोर स्वयंसिद्ध उत्तराधिकार है। श्रात्मिक-विकास का एक दृश्य है। मानवीय स्वभाव के मूल मनोवेगों का परिणाम है। धर्म हमारी वर्तमान-कालीन सीमित चेतना का उपयोग उच्चतर, श्रसीम श्रात्म-श्रस्तित्व श्रोर परम आनन्द की प्राप्ति के लिये सुदृढ़ श्राधार प्रस्तुत करता है। धर्म हमें आध्यात्मिक

वास्तविकताओं को मान्यता देने के प्रति सजग करता है।

इसीलिये धर्म का सार यह बताया गया है कि मानवीय आत्मा के गौरव को प्राप्त करो और उसी के अनुसार आचरण करो। दूसरों के साथ वैसा व्यवहार करो जैसा तुम अपने लिये दूसरों से अपेक्षा रखते हो। ऐसे लोगों को ही समाज के लिये विधान बनाने का अधिकार है जो सब जीवों के प्रति सहृदय हों। ऐसे लोग ही जो कुछ सर्वोत्तम होता है, उसे सुरक्षित रखते ।

दया और दान जैनधर्म का हार्द है। जैनधर्म के श्वेताम्बर, दिगम्बर, स्थानकवासी— सभी संप्रदाय इस विषय में कोई मतभेद नहीं रखते और न कोई कुतर्क एवं विवाद भी करते है। फिर भी एक ऐसा उपवर्ग है जो दया-दान को पाप मानता है। यदि कोई उस विपरीत मान्यता के निरसन के लिये प्रयत्न भी करे तो उसके प्रति अशिष्टता प्रदर्शित करने से भी नहीं चूकता है। ऐसों के बारे में संकेत करते हुए किसी कवि ने कहा है—

क्षीणा नराः निष्करुणा भवन्ति।

थलीप्रदेश में इसी वर्ग के बहुसंख्यक व्यक्ति बसते हैं। जो अपने बौद्धिक स्तर की न्यूनता के कारण, धर्म के उदार व विशाल दृष्टिकोण को नहीं समझने के कारण मानवता विरोधी प्रवृत्तियों को प्रश्रय देते हैं और सत्य को स्वीकार न करने का दुराग्रह करते हैं। यही नहीं, अपनी भूल को छिपाने के लिये परमाराध्य भगवान महावीर को भूला-चूका बताने में भी नहीं झिझकते हैं।

ऐसे व्यक्तियों के मुखियाओं के द्वारा निर्मित विषमताओं को हटाकर सब के वैयक्तिक कल्याण व विकास के लिये समान अवसर प्राप्त कराने एवं उन संस्थाओं को जो सामाजिक न्याय एवं प्राणि-मात्र के कल्याण के मार्ग में दुर्जय बाधायें बन गई हैं, निरस्त करने के लिये, लोगों को वास्तविक स्थिति परखने का विवेक देने के लिये एवं सही जीवन की भावना को पुनर्जीवित करने के लिये ही चरित-

नायक आचार्य श्री का पुनः थलीप्रदेश की ओर विहार हुआ था।

थलीप्रदेश में पहले हुए विहारों से आपने अनेक प्रकार के कष्टों को सहन किया था। पग-पग पर अनेक असुविधायें उत्पन्न की गई थीं। लेकिन आपश्री ने इस अवांछनीय व्यवहार को सन्त-स्वभावानुसार सहज भाव से स्वीकार करते हुए सहन किया था। वे बाधायें आपश्री को अपने सत्संकल्प से विचलित नहीं कर सकी थीं।

महापुरुषों का एक ही लक्ष्य होता है कि धर्म के नाम पर अनैतिकता या लोककल्याणविरोधी प्रथाओं, रीति-रिवाजों का प्रचलन नहीं होना चाहिये। इस कर्तव्यपालन में उन्हें चाहे कितने ही भीषण कष्टों का सामना करना पड़े और प्राण जाने तक का भय हो, लेकिन वे न्यायमार्ग पर ही अग्रसर होते रहते हैं। ऐसे महापुरुषों के बारे में महाकवि भर्तृहरि ने कहा है—

निन्दन्तु नीतिनिपुणाः यदि वा स्तुवन्तु,
लक्ष्मी समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा,
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥

धीर गम्भीर पुरुष चाहे दुनियादारी की दृष्टि से कुशल लोग उनकी प्रशंसा करें या निन्दा करें, चाहे उन्हें सम्पत्ति मिलती हो या चली जाती हो, चाहे तत्काल मृत्यु होती हो या दीर्घजीवन प्राप्त होता हो, लेकिन न्यायमार्ग से कभी विचलित नहीं होते हैं।

आपश्री का सं० २००१ का चातुर्मास सरदारशहर हुआ। सरदारशहर में चातुर्मास होने की खबर सुनकर विरोधी मान्यता रखने वालों में हलचल मच गई। पूर्वकृत कार्यों के अनुभव पुनः उनके मनों को भयभीत करने लगे और प्रतिरोध करने की योजनायें भी निर्मित की जाने लगीं। उन्हें क्षण-क्षण प्रतिष्ठाभंग होने की आशंका बनी रहती थी। वे ऐसा सोच भी नहीं सकते थे कि जिनकी तेजस्विता और आदर्शचारित्र के समक्ष बड़े-बड़े विद्वान एवं विवेकशील भी नतमस्तक

हो जाते हैं, वही महापुरुष पुनः करुणा करके करुणा का स्रोत बहाने थलीप्रदेश में पदार्पण कर रहे हैं।

लेकिन आपश्री की भावना कुछ दूसरा ही चिन्तन करती थी कि दया-दान को पाप मानने के भ्रम में पड़कर स्व-पर का अहित करने वाले भाई सन्मार्ग को समझें, बूझें और प्रेमपूर्वक विचार-विनिमय करें। पारस्परिक सौहार्द तथा स्नेह के वातावरण में शास्त्रीय आधार से चर्चा हो, संवाद हो, प्रश्नोत्तर हों। आपने इस प्रकार की चर्चाओं का सदा स्वागत किया और जहां भी अवसर मिला वहां यथार्थ को समझाने का प्रयत्न भी किया। आप शुद्ध श्रद्धा पर सदैव भार दिया करते थे। आप एक ही बात कहते थे कि धर्म का पहला पाया शुद्ध श्रद्धा है और श्रद्धा का आधार शुभ भावना एवं शुद्ध विचार हैं। शुद्ध विचारों की कसौटी सत्य-असत्य को परखने वाली विवेकशक्ति है और उपादेय, हेय में से उपादेय को ग्रहण करना एवं हेय को त्यागना विवेक के विना सम्भव नहीं है।

आपश्री ने यह बात पहले भी अपने थलीप्रदेश में हुए विहार एवं चातुर्मास काल में समझायी थी। परिणामतः बहुत से बन्धु जैन-धर्म के सिद्धान्तों से परिचित हो चुके थे और बहुत से सत्यान्वेषण की ओर बढ़ने की प्रतीक्षा में थे। अतः आपके इस बार के थलीप्रदेश में हुए विहार और सरदारशहर के चातुर्मास से उन सभी को लाभ मिला और जैनधर्म की सत्य श्रद्धा ग्रहण की। फिर भी सरदारशहर में विरोधी मान्यता वालों का आधिक्य था। वहां और उसके निकटस्थ क्षेत्रों में वे जो कुछ भी कर सकते थे, करने से नहीं चूके। आपका प्रवचन सुनने के लिये आने वाले सरलहृदय साधारण जन भी इनकी कोप-दृष्टि के लक्ष्य बने और उनका बहिष्कार तिरस्कार, करने तो एक मामूली बात थी। वे उनकी आजीविका के साधनों पर कुठाराघात करने में भी नहीं झिझकते थे। ऐसा करने में शायद उनका यह विचार रहा हो कि ये हमारे वश में आ जायेंगे और जैसा चाहेंगे, इनसे करा सकेंगे।

लेकिन सरलहृदय जन तो पहले की तरह ही आपश्री के प्रवचन सुनने के लिये आते रहे।

प्रतिदिन प्रातः प्रवचनों में अथवा सायकाल प्रतिक्रमण के अनंतर होने वाली तात्त्विक चर्चा में आपश्री धर्म के यथार्थ चिन्तन-मनन और वस्तु-स्वरूप का विवेचन करते थे और जो कुछ कहते थे, उसमें किसी प्रकार की स्वार्थ-भावना या आत्म-प्रशंसा नहीं होती थी। आपकी उदारता का द्वार सबके लिये खुला था। आपके कथन में दुराग्रह नहीं किन्तु सरलता रहती थी और सदैव यही कहते थे कि उचित एवं युक्तिसगत प्रतीति को आचरण में उतारो। ऐसे अनाग्रही महात्माओं के बारे में किसी कवि ने कहा है—

निर्गुणेष्वपि सत्वेषु दयां कुर्वन्ति साधवः।
नहि संहरते ज्योत्स्नां चन्द्रश्चाण्डालवेश्मनः।।

गुणहीन जनों पर भी साधुजन दया ही करते हैं। चन्द्रमा चांडल के घर से भी अपनी चांदनी को नहीं हटा लेता है।

चातुर्मास काल में जनता ने धर्म के कल्याणकारी आदर्शों को समझकर अपूर्व बोध प्राप्त किया। सैकड़ों व्यक्तियों ने यथायोग्य त्याग-प्रत्याख्यान किये और सम्यक् श्रद्धा को ग्रहण कर आपको अपना गुरु माना।

चातुर्मास-समाप्ति और विहार

चातुर्मास-समाप्ति के अनन्तर आपश्री ने अपने अन्तिम प्रवचन में फरमाया कि मैं आपसे एक वस्तु मांगना चाहता हूँ कि धर्म को समझकर अपने कर्तव्य का निर्णय कीजिये और तदनुसार आचरण बनाइये। शुद्ध धर्म पर श्रद्धा रखिये और अहिंसा भावना को ही विश्व के लिये हितकर मानिये। सत्य को व्यक्त करते समय बहुत-सी कठोर प्रतीत होने वाली बातें कहने में आ जाती हैं, लेकिन उसमें हित भावना रही हुई है। फिर भी किसी का मन क्षुब्ध हुआ हो तो क्षमा चाहता हूँ।

प्रवचन-समाप्ति के अनन्तर यथासमय विहार हुआ। विहार के अवसर पर विदाई के लिये विविध क्षेत्रों के आबालवृद्ध जन उप-

स्थित थे। ऐसे समय में स्थानीय जनसमूह की भावोर्मियां अनुभूति-गम्य थीं और भरे मन से श्रद्धेय शास्ता को विहार के लिये विदाई दी और मीलों तक साथ-साथ चले और मांगलिक श्रवण कर अपने-अपने आवास पर आये।

अनन्तर थली-प्रदेश के विभिन्न गांवों और नगरों में जैनधर्म का सन्देश मुखरित करते हुए आपश्री ने अजमेर-मेरवाड़ा क्षेत्र में पदार्पण किया।

इस क्षेत्र में विहार करके आपने समाज के आपसी वैमनस्य, कुरूढ़ियों के प्रति लगाव आदि का उन्मूलन किया। आप अपने प्रवचनों में उन विषयों का विशेष रूप से संकेत करते थे जो जीवन को अनैतिकता की ओर बढ़ाने में जाने या अनजाने सहकारी कारण बन जाते हैं। जैसे धूम्रपान, विवाहादि अवसरों पर वारांगना-नृत्य, दीपावली आदि अवसरों पर जुआ खेलना आदि।

समाजसुधार के विषय में आपका स्पष्ट मत था कि ऐसा आचरण लाभकारी नहीं होगा, जिसमें मानवीय गौरव, स्वतन्त्रता और न्याय की रक्षा के लिये मौलिक आधार न हो। परिवर्तित परिस्थितियों के नाम पर अपने आधारभूत सिद्धान्तों में संशोधन करने या छूट देने की सोचना अपनी परम्परा के सिद्धान्तों में विश्वास की कमी का द्योतक होगा। कई बार ऐसा होता है जब मानव अपनी थकान के कारण विचारों के वात्याचक्र में फंसकर सोचता है कि अतीत को त्याग दें और पूर्णरूपेण नये सिरे से प्रारम्भ करें। लेकिन इस स्थिति में उसके द्वारा उत्पन्न अव्यवस्था स्वयं मानव की रक्षा नहीं कर पाती और नये सिरे से जीवन प्रारम्भ करने में रुकावट बनती है। अतः समाजसुधार का यथार्थ आशय है कि मानवसंस्कृति के मौलिक आदर्शों का त्याग न कर अनुष्ठानों एवं आचरणों द्वारा उनको साकार कर ऊपर उठायें। नूतन की उपलब्धियों को अतीत के प्रामाणिक सिद्धान्तों के साथ एकता के सूत्र में गूंथें।

आपके ओजस्वी प्रवचनों के फलस्वरूप अनेक सामाजिक कुरूढ़ियों की जड़ हिल चुकी थी और समाज में एक आशा की किरण चमकने लगी थी। वैसे तो कुरूढ़िग्रस्त समाज में आदर्श की ओर कदम बढ़ाने में सत्कार नहीं, वरन तिरस्कार का पुरस्कार मिलता है। ऐसी स्थिति में आदर्श समाज रचना के प्रयत्न करना बड़े साहस का कार्य माना जाता है। लेकिन आपके उपदेशों ने समाज में असीम स्फूर्ति, साहस और उत्साह का संचार कर दिया था।

समाजसुधार सम्बन्धी आपके विचारों को सुनकर प्रत्येक श्रोता की यह धारणा बनती थी कि मानवहित की भावना से ओत-प्रोत आपश्री की देशना में धर्म की व्यवहारिकता और व्यापकता समझने के लिये वह सब सामग्री मिलती, जो जीवननिर्माण के लिये आवश्यक है। आपश्री के आचार-विचार और व्यावहार में कृत्रिमता का अभाव और आत्मगौरव एवं करुणा का सुन्दर सम्मिश्रण था। संक्षेप में आपश्री के बारे में कवि की यह उक्ति चरितार्थ होती है—

नारिकेल समाकारा दृश्यन्ते हि सुहृज्जनाः।
अन्ये बदरिकाकारा बहिरेव मनोहराः॥

सज्जन ऊपर से नारियल के समान दिखाई देते है— अर्थात् रुखे मालूम पड़ते हैं परन्तु अन्तरंग सद्गुणों का भण्डार होता है और खलजन बेर के समान बाहर से सुन्दर, आकर्षक प्रतीत होते हैं परन्तु उनके अन्दर गुठली के समान कठोरता, परुषता भरी रहती है।

सयम के आकांक्षी

इस प्रकार जनसाधारण को धार्मिक, नैतिक कर्तव्य का प्रतिबोध कराते हुए सं० २००२ के वर्षावास हेतु ब्यावर नगर में पदार्पण किया। नगरप्रवेश के समय जनता के उत्साह का पार नहीं था। नगरजन अगवानी के लिये उमड़ पड़े थे। उनके हृदय की उमंगे समाती न थीं।

यद्यपि पहले भी आपश्री का कई बार ब्यावर नगर में पदार्पण हो चुका था और जनता ने आपके हृदयस्पर्शी उपदेशों से अपने

जीवन को संयमित बनाने के लिये अनेक प्रकार की प्रतिज्ञायें, नियम आदि लिये थे। उक्त अवसरों पर आपका थोड़े-से समय के लिये पदार्पण होता रहा था, लेकिन अब की बार चार माह तक आपश्री की वाणी का पूरा-पूरा लाभ मिलने वाला था। अतः बड़ी उत्सुकता और उमंग के साथ जनता ने स्वागत किया, अगवानी की।

नगरवासियों की भावना थी कि अभी प्रातःकाल आपश्री शंकरलाल जी मुणोत की बगीची में पधार जायें और तीसरे पहर करीब ४ बजे धूमधाम के साथ नगर में पदार्पण कराया जाये।

इस तरह की भावना को मन में रखते हुए ब्यावर श्रीसंघ ने श्री शंकरलाल जी मूणोत की बगीची में विराजने की आग्रह भरी विनती की। लेकिन जब आपने बाहर से ही बगीची की ओर दृष्टि डाली तो चौक के अन्दर मकान में प्रवेश करने के मार्ग में हरी दूब थी। इसलिये यह सोचकर कि लोगों का इस पर आवागमन होगा। उससे वानस्पतिक जीवों की एवं इसमें छिपे हुए अन्यान्य सूक्ष्म जीवों की विराधना होगी। अतः बगीची में न विराज कर राजमार्ग से नगर की ओर विहार कर दिया और धर्मस्थानक में प्रवेश किया।

साधारण जन तो तीसरे पहर चार बजे स्वागत करने के विचार में थे और उन्हें इस स्थिति की जानकरी भी नहीं मिल सकी थी। अतः उनके मन में विविध विचार आने लगे और उनके समाधान के लिये उत्सुक थे। जैसे ही चार बजने का समय हुआ कि मूसलाधार वर्षा प्रारम्भ हो गई। उससे स्वयंमेव ही समाधान मिल गया कि यदि प्रातःकाल आचार्य श्रीजी म. सा. का नगर में प्रवेश न होता तो इस समय नगरप्रवेश की स्थिति बनना तो अशक्य ही था और विचारों का द्वन्द्व शांत होकर गाढ़ श्रद्धा के रूप में परिणत हो गया।

ईर्ष्याग्रस्त मानस

ब्यावर और उसके आसपास के क्षेत्रों में विवेकीशील व्यक्तियों की बस्ती होने से स्थानीय और समागत सज्जन आपके प्रभावक प्रवचनों

का लाभ लेते थे। लेकिन कुछ विघ्नसंतोषी व्यक्ति भी थे। जो समय-समय पर अशांति फैलाने और रूढ़िवादी, पुरातनपंथी, दकियानूसी आदि शब्दों द्वारा मनघड़न्त आरोप लगाने के प्रयत्न करते रहते थे। उन्हें दोषदर्शन के सिवाय और कुछ करने की सूझती ही नहीं थी। कुछ न कुछ अफवाहें फैलाना मानो दैनिक जीवनचर्या ही थी। लेकिन उनके सभी प्रयास आपके असीम शांतिसागर में विलीन होते गये।

आप तो वीतराग-वाणी के माध्यम से मानव-जीवन के महत्त्व, विशेषताओं, कर्तव्यों आदि का अपने प्रवचनों में विशद विवेचन करते थे। इनके सम्बन्ध में आपश्री की महत्त्वपूर्ण विचारधारा का कुछ अंश यहां प्रस्तुत करते हैं—

'मनुष्य एक ऐसा विकासशील जीव है जिसने अपने मस्तिष्क की अत्यधिक प्रगति प्राप्त की है, उसका ज्ञान केवल बाह्य पदार्थों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि उसने वैचारिक व आध्यात्मिक क्षेत्र में भी आश्चर्यजनक उन्नति की है। उसकी जिज्ञासा वृत्ति इन क्षेत्रों में और भी अधिक उग्र हो उठती है— जिसका सबूत है बड़े-बड़े दार्शनिक और विचारक अपेक्षाकृत इस क्षेत्र में नवीन-नवीन विचारधाराओं को जन्म देते हैं तथा बड़े-बड़े आध्यात्मिक साधक स्वकीय दिव्य शक्ति को प्राप्त कर संसार को सही रास्ते का उद्बोध देते हैं। यह वृत्ति इस बात की परिचायिका है कि शुद्ध आत्म-ज्योति का रूप हृदय से सलग्न होकर आकर्षण का केन्द्रविन्दु बनती है, जिससे मनुष्य स्वयं सोचता है, जानता है, सीखता है और स्व-पर के लिये वस्तुतः कार्यक्षेत्र निर्धारित कर सकता है। मनुष्य इसी पवित्र शक्तिस्रोत के बल पर अपने स्वतन्त्र मस्तिष्क, स्वतन्त्र व्यक्तित्व व शुद्ध आचरण की अनुभूतियों द्वारा जीवन-निर्माण कर सकता है।

मनुष्य की सभी शक्तियां नवीन सत्कर्म से उद्बोधित रहती हैं। जीवन के सम्यक् विकास में जुट जाती हैं। मनुष्य अपने सही लक्ष्य की ओर आगे बढ़े इसके लिये उसकी सबसे पहले अनिवार्य आव-

श्यकता होती है। यही कारण है कि आचार और विचार की दृष्टि से भी पिछड़ा नहीं रहना चाहता, उसे नहीं रहना चाहिये। वे इस वात की कोशिश करें कि ज्ञान के विशाल भंडार में वे प्रवेश करें, महान मनीषियों के तत्त्व-चिन्तन व आचरण को जानें, किन्तु उन सबको सम्यग्ज्ञान व आचरण में रमाकर ग्रहण करें, अपनी शुद्ध-बुद्धि की कसौटी पर कसकर उसका मनन करें और यह मनोवृत्ति वास्तविक नवीन विचार तथा आचार क्रांतियों का कारण बनती है।

'प्रचलित परिपाटियों में इधर-उधर से विकार आ जाते हैं, उनको हटाने और चेतना जागृत करने के लिये मूलस्थिति के रक्षण-पूर्वक जो भी विवेक सहित परिवर्तन लाये जाते हैं उन्हें भी नवीनता की संज्ञा दी जा सकती है। इन अर्थों में नवीनता का यह अभिप्राय होना चाहिये कि जो परिवर्तन और एकरूपता को संतुलित रखती हुई मनुष्य की सही जिज्ञासावृत्ति को संतुष्ट करती है और उसे सत्य लक्ष्य की ओर प्रवृत्त होने में जागृत रखती है, ऐसी सच्ची नवीनता है और उसके अनुगामी जीवन के सही प्रगतिमार्ग को निष्कंटक बनाते हैं।

'यहां 'नवीन' व 'प्राचीन' शब्दों के अर्थ व अन्तर को समझ लेना चाहिये। इन दोनों शब्दों का अर्थ अपेक्षाकृत लेना चाहिये। जो नियमोपनियम सिद्धान्त को पुष्ट बनाने वाले हों, शुद्ध संयमी जीवन की उपयोगिता के लिये समाज व व्यक्ति में जीवन का सन्देश फूकने वाले हों, वे बहुत वर्षों के बने हुए होने पर भी नवीन ही समझना चाहिये। किन्तु विवेक एवं आत्मज्योति को भुलाने वाले नवीनता के नाम पर विकारी भाव व स्वार्थ के पोषक नैतिकभाव हीन सुन्दर शब्दों में नवीन बने हुए कितने ही नियमोपनियम क्यों न हों, वे प्राचीन शब्द से कहे जाने चाहिये, इन शब्दों में समय का मापदड ठीक नहीं हो सकता, किन्तु संयमीजीवन की उपयोगिता का मुख्य महत्त्व होता है।

'इस दृष्टि से तत्त्वों का चयन किया जाना चाहिये। न कि आज के किन्हीं जोशीले नवयुवकों की तरह कि पुरानी सब चीजें त्याज्य

हैं। मैं उन नवयुवकों को कहना चाहूँगा कि हठाग्रह अलग चीज है और विवेकपूर्वक समझना अलग बात है एवं मेरा ख्याल है सही समझ के लिये प्राचीन एवं नवीन का जो ऊपर मापदंड बनाया गया है वह सभी दृष्टियों से काफी समुचित जान पड़ेगा।

'नवीनता के असली महत्त्व को नहीं समझने के लिये मैं केवल नवयुवकों के लिये ही नहीं कहता, बल्कि उतने ही अंशों में विचारपोषक प्रथाओं के समर्थकों के लिये भी कहता हूँ कि वे कई समाजघातक रीति रिवाजों से चिपके रहने पर भी सभ्यता के अनुपालन करने का घमण्ड करते हैं और उन्हें जो कोई उन सामाजिक कुप्रथाओं को छोड़ने का कहता है, उसे वे कुलपरम्पराओं की मर्यादाओं को तोड़नेवाले उच्छृंखल आदि कहकर तिरस्कृत करना चाहते हैं। अतः दोनों वर्ग ही इसी मर्ज के बीमार हैं। हठवाद को छोड़कर संयमीजीवन की उपयोगिता और शुद्ध पवित्र अन्तरात्माओं की प्रेरणा के मापदंड से किसी सिद्धान्त व नीति को परखना नवीनता के महत्त्व को भलीभांति समझना है।

'अतः इस अवसर पर निष्कर्ष रूप में मैं यही कहना चाहता हूँ कि आप सच्चे त्यागमय जीवन की जागृति करें, ताकि जीवन को सच्चे अर्थों में सफल बना सकें। व्यावहारिक जीवन और आध्यात्मिक जीवन दोनों का सम्यक् संतुलन और सही अर्थों में जीवन में समन्वय स्थापित कर आत्मीय सर्वांगीण विकास कर सकें।'

आपके इन विचारों के प्रकाश में आक्षेपकर्ताओं को मालूम होना चाहिये कि आप न तो रूढ़ियों के पक्षपाती थे और न नवीनता का अन्धानुकरण ही उचित मानते थे। जो व्यक्ति शास्त्रीय मर्यादाओं की अजानकारी एवं सत्यनिर्णय करने में अपनी अक्षमता के कारण सत्य बात को विगाड़कर कहने से नहीं हिचकते एवं दोषारोपण करने से भी नहीं चूकते उन्हें चाहिये कि आपके विचारों को समझें, चिन्तन करें, मनन करें।

आपका यह चातुर्मास धार्मिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक विकास

की दृष्टि से उस क्षेत्र के लिये उपकारक सिद्ध हुआ। श्रावक-श्राविकाओं ने दया, पौषध, उपवास आदि विविध प्रकार की तपस्यायें कीं और त्याग-प्रत्याख्यान किये। आसपास के क्षेत्रों के श्रीसंघों एवं स्वधर्मी वधुओं के आपसी मनमुटाव, वैमनस्य का निराकरण हुआ और अनेक मूक प्राणियों को अभयदान मिला।

संगठन-चेतना का युग

चातुर्मासकाल में विभिन्न श्रीसंघों की ओर से अपने-अपने क्षेत्रों को फरसने और आगामी चातुर्मास के लिये विनतियां प्रारंभ हो गई थीं। सभी अपने-अपने यहां पदार्पण कराने के लिये उत्सुक थे। चातुर्मास-समाप्ति के अनंतर आसपास के क्षेत्रों में विहार करके अहिंसा की व्यापकता और धर्म के यथार्थ स्वरूप को वतलाया। जिससे देवी-देवताओं के नाम पर होने वाली मूक प्राणियों की हिंसा बंद होने से जीवरक्षा की प्रवृत्ति को वेग मिला। बहुत से व्यक्तियों ने मद्य-मांस आदि के सेवन का त्याग करके जीवन-शुद्धि की ओर बढ़ने का निश्चय किया।

यह समय राष्ट्रीय स्वाधीनता और संगठन का युग था। राष्ट्र अपनी परतन्त्रता से मुक्ति के लिये अहिंसक क्रांति के दौर से गुजर रहा था। जनता की एक ही विचारधारा थी कि देश की स्वतन्त्रता के लिये चाहे जो कुछ भी कुर्वानि करना पड़े, लेकिन स्वतन्त्र राष्ट्र के नागरिक वनने का हमें सुअवसर प्राप्त हो।

समस्त राष्ट्र एकता, संगठन के सूत्र में आवद्ध हो चुका था। स्वाधीनता आंदोलन में ऐसा कोई गांव नहीं था जिसके निवासियों ने भाग नहीं लिया हो। 'स्वाधीनता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' के विचार से राष्ट्र का कोना-कोना गूंज रहा था।

इसी समय स्थानकवासी समाज में संघऐक्य के लिये पुनः प्रयत्न होना प्रारम्भ हो गये थे। स्व० पूज्य आचार्य श्री जवाहरलालजी म. सा. के समय में सम्पन्न साधु-सम्मेलन अजमेर के पश्चात संघऐक्य की आवश्यकता विशेषरूप से अनुभव की जाने लगी थी और एतद्विषयक

विचार-विमर्श होना प्रारम्भ हो गया था।

ग्राम्य वातावरण : साधना में सहायक

चातुर्मास-समाप्ति के अनन्तर आसपास के ग्रामों की ओर आपश्री का विहार हुआ। ग्रामों का शांत, स्वच्छ वातावरण और वहां के सरलहृदय निवासियों के उत्साह के प्रति आपश्री का सदैव झुकाव रहा। आप मानते थे कि साधु-सन्तों के विहार और वर्षावास विशेषतः उन स्थानों पर होना चाहिये जहां संयम-साधना के लिये शांत वातावरण हो और ज्ञानाभ्यास के लिये पर्याप्त समय मिल सके।

आपका यह भी निश्चित मत था कि आत्म-साधकों को लौकिक आडम्बरों और प्रचार, प्रसिद्धि से परे रहकर अपनी साधना में लीन रहना चाहिये। यदि वे साधना से उदासीन होकर लौकिक कार्यों में अपने आपको लगाते हैं तो चारित्र में न्यूनता आना स्वाभाविक है और उस स्थिति में साधकों द्वारा ऐसे कार्य हो जाना संभव है, जो साधना के लिये शोभाजनक नहीं कहे जा सकते हैं।

आपको साधुता प्रिय थी, न कि शिथिलाचार से जर्जर साधु-संख्या की विपुलता। साधुता की महत्ता संख्या की विपुलता में नहीं है, किन्तु चारित्र की उच्चता और त्याग की गम्भीरता में है। अतः जिनके मन में साधुता के प्रति श्रद्धा तो हो नहीं किन्तु क्षणिक आवेश एवं व्यामोहवश साधुवेश धारण कर लें तो वे साधुता को कलंकित करने के सिवाय और कुछ नहीं कर सकते हैं।

अतः द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से किसी भी प्रकार संयम-साधना में व्यवधान न आने देने की दृष्टि से शांत, एकान्त, निर्जन ग्रामीण क्षेत्र आपको विशेषरूप से प्रिय थे।

आगामी चातुर्मास का समय सन्निकट आ गया था और चातुर्मास स्वीकृति के लिये विभिन्न श्रीसंघों की ओर से विनतियां हो रही थीं। लेकिन आपश्री ने अपने विचारों के अनुकूल क्षेत्र को देखते हुए सं० २००३ के वर्षावास-समय में बगड़ी (सज्जनपुर) में बिराजने की

स्वीकृति फरमायी।

आपश्री की संयम-साधना और धर्मदेशना से भव्यजन परिचित थे ही और समय-समय पर वाणी-श्रवण का लाभ भी उठाते रहते थे। अतः चातुर्मास हेतु बगड़ी में आपश्री का पदार्पण होते ही हजारों बंधुओं का बगड़ी में जमघट होने लगा।

साधु-सन्तों का चातुर्मास उस स्थान के समस्त निवासियों की भावनाओं का प्रतीक होता है। अतः बगड़ीवासियों ने धर्मलाभ लेने के लिये आने वाले बंधुओं की सेवा, व्यवस्था का प्रत्येक कार्य स्वयं करने में अपना गौरव माना।

पर्यूषण पर्व के अवसर पर खूब तपस्यायें हुईं। अछूत माने जाने वाले बहुत-से स्त्री-पुरुष भी आपके प्रवचन सुनने के लिये आया करते थे। उन्होंने आपके उपदेशों से प्रभावित होकर मद्य-मांस आदि अभक्ष्य पदार्थों के सेवन न करने की प्रतिज्ञा ली और सामाजिक सुधार की दृष्टि से भी कई महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पन्न हुए।

चातुर्मास-समाप्ति के पश्चात आपश्री ने मार्गशीर्ष कृष्णा १ को बगड़ी से विहार किया और मारवाड़, मेवाड़ के क्षेत्रों में विचरण करते हुए जनता को धर्मामृत का पान कराया।

अहिंसा और करुणा की क्रांति

समयक्रम के अनुसार पुनः आगामी वर्षावास का समय निकट आ गया था और विभिन्न क्षेत्रों की ओर से चातुर्मास के लिये विनतियां हो रही थीं। अतः द्रव्य, क्षेत्र आदि को ध्यान में रखते हुए सं० २००४ का चातुर्मास बड़ीसादड़ी में करने का निश्चय किया।

इस समय देश की स्थिति बहुत ही विषम हो रही थी। राष्ट्र-विभाजन के फलस्वरूप आबादी की अदला-बदली से हजारों हिन्दू परिवारों को अपने जन्मस्थान छोड़ देना पड़े थे और उनके पुनर्वास की समस्या विकट बनी हुई थी। बात-बात में दंगे-फिसाद हो जाना तो एक साधारण-सी बात थी। जनता में भय का वातावरण बना हुआ

था । बड़ीसादड़ी पहाड़ों की तलहटी में बसा गांव है और वहां पहुंचने के लिये यातायात के साधन सरलता से उपलब्ध नहीं होते थे । बर्षा-ऋतु होने से रास्ते भी दुर्गम हो गये थे । फिर भी स्थानीय और बाहर से आगत हजारों भाई-बहिनों ने आपश्री की व्याख्यानवाणी का लाभ लिया एव त्याग-प्रत्याख्यान, तपस्यायें करके आध्यात्मिक-विकास करने की ओर उन्मुख हुए ।

इस चातुर्मास का एक उल्लेखनीय प्रसंग है—

बड़ीसादड़ी के जागीरदार के काका श्री भीमसिंह जी आपके प्रवचन सुनने प्रतिदिन आते थे । मद्य-मांस सेवन, शिकार करना आदि श्री भीमसिंह जी के दैनिक कार्य थे और ऐसा करना वे राजपूतों के लिये जरूरी मानते थे । ठिकाने की ओर से नवरात्रि के समय प्रतिदिन एक-एक की वृद्धि करके ४५ बकरों की जगदम्बा के स्थान पर हत्या कराई जाती थी और दशहरे (विजयादशमी) के दिन एक भैंसे की बलि भी दी जाती थी ।

यद्यपि इस कार्य से सभी ग्रामवासियों को हार्दिक वेदना होती थी, लेकिन जब रक्षक ही विवेकहीन होकर भक्षक बनने को आमादा हों तो वे अपना दुःख किससे कहें ? चातुर्मासकाल में इस रौरवकृत्य की जानकारी आपश्री को मिली । जिससे आपश्री का परदुःखकातर, करुणार्द्र मानस सिहर उठा । अन्धश्रद्धा के वश होकर धर्म को कलंकित करने वाले ऐसे कृत्यों का उन्मूलन करने के लिये आप सदैव तत्पर रहते थे और इस समय तो स्वयं आपकी उपस्थिति में ही ऐसा कुकृत्य होने वाला था ।

यद्यपि आप अपने प्रवचनों में अहिंसा, दया, करुणा आदि भावनाओं का संकेत करते ही रहते थे । लेकिन जब से आपको इन मूक प्राणियों की हत्या की जानकारी मिली तो प्रतिदिन के प्रवचनों में विस्तार से उनका विवेचन करना प्रारम्भ कर दिया । जिनका सारांश इस प्रकार है—

प्रत्येक प्राणी जीवित रहना चाहता है, कैसी भी स्थिति हो, लेकिन उसकी जिजीविषा की भावना सदैव बलवती रही है और मृत्यु का नाम सुनते ही भयभीत हो उठता है। मनुष्य होकर जो धर्म के नाम पर या अपनी आकांक्षापूर्ति के लिये प्राणिहत्या करते हैं वे मनुष्य के रूप में राक्षस हैं।[1] ऐसे व्यक्ति दूसरों का विनाश करने के साथ-साथ अपने लिये रौरव नरक का रास्ता बनाते हैं।

प्राणा यथात्मनोऽभीष्टा भूतानामपि ते तथा।
आत्मौपम्येन भूतेषु दयां कुर्वन्ति साधवः॥

जैसे सभी को अपने प्राण अभीष्ट—प्रिय हैं, वैसे ही और प्राणियों को भी हैं। साधुजन उन्हें भी अपने प्राणों के समान समझकर सदा ही दया करते हैं।

हिंसा की भयानकता से आज विश्व संत्रस्त है। अपनी सुरक्षा और शांति के लिये मानवता का पाठ सीखने को तत्पर है। उस स्थिति में धर्म के नाम पर मूक प्राणियों का कत्ल कर देना धर्म को कलंकित कर देना है। धर्म प्राणिमात्र को जोड़ने का सबक सिखाता है। एक दूसरे के प्रति अपने कर्तव्य निर्वाह की सीख देता है। आत्मवत् सर्वभूतेषु से बढ़कर जीवन का अन्य कोई कर्तव्य नहीं है।

प्रत्येक प्राणी को अपने-अपने रूप में जीने का अधिकार है। जो दूसरे जीव के अंगोपांग नहीं बना सकता तो उनको छीनने का भी अधिकार उसको नहीं है। यदि दूसरे प्राणी भी मनुष्य से कहें कि मेरे खाने के लिये पैदा हुआ है तो मनुष्य उसकी यह बात मान लेगा? इसलिये मानव जीवन की यही सार्थकता है कि अपनी शक्ति और संपत्ति को प्राणिमात्र के दुःखों को दूर करने में लगा दे। यही हमारे लिये सच्चे सुखानुभव का कारण हो सकेगा।

उदारता के साथ प्राणियों की सेवा करने तथा जगत के दुःख दूर करने के लिये पूर्णतया संलग्न रहने में ईश्वर और धर्म की आराधना तथा आत्मा की साधना है। जो दूसरों को दुःख देकर सुख की

खोज करता है और स्वार्थ के वशीभूत होकर अमानवीय क्रियाओं की ओर झुक जाता है, उसका परिणाम बहुसंख्यक अशक्तों की असह्य पीड़ा के रूप में प्रगट होता है।

अगर इस आत्मविस्मृति के विरुद्ध आत्मानुभव की भावना जाग सके और प्रत्येक कार्य को स्वानुभव की कसौटी पर कस ले तो मानव किसी भी प्राणी को किसी भी प्रकार से दुःखी करने, उनके प्राणों को हरने का प्रयत्न नहीं करेगा। इसके लिये आवश्यक है कि मानवीय नीतियों में स्वार्थत्याग की धर्ममय नीति के प्रवेश करने की।

आपश्री के प्रवचनों को सुनकर ठाकुर श्री भीमसिंह जी की अन्तर्चेतना जागृत हुई और धर्म के वास्तविक स्वरूप की जानकारी प्राप्त की। दृष्टि के बदलते ही अभी तक जो कुछ किया या धर्म के नाम पर जीवहत्या का कलंक लगाया, वह सब उन्हें घृणित और निन्दनीय जंचने लगा और मन में विचार पैदा हुआ कि जगदम्बा के महान गौरवशाली पद पर आसीन भवानी अपने सपूतों के खून से कैसे खुश हो सकती है? यह सब तो धर्म को कलंकित करने वाले स्वार्थियों और धर्मद्रोहियों का पाखंड है, धर्म के साथ द्रोह करना है। मैं अन्धेरे में था, आज ही मुझे सद्गुरु का समागम हुआ है और उन्होंने सद्बुद्धि देकर सन्मार्ग के दर्शन कराये हैं।

ठाकुर सा. के मन में यह विचार कितने ही दिन तक चलते रहे और उनके समाधान के लिये विचारों की गहराई में उतरते, उतना ही हृदय पश्चाताप से भर जाता था। मूक प्राणियों की आकृतियां आंखों के सामने झलक उठती थीं। अपने मनोभावों को व्यक्त करने के लिये अनेक वार सोचा भी लेकिन मानसिक द्वन्द्व के कारण आत्मा की आवाज कहते-कहते हिचक जाते थे।

एकदिन मन में कुछ निश्चय-सा करते हुए प्रवचन के समय अपने द्वन्द्व को निवेदन करते हुए ठाकुर सा. ने कहा कि मैं बहुत ही अन्धकार में था। भ्रान्त धारणाओं और अन्धश्रद्धा के वश होकर मेरे

द्वारा अनेक निरीह प्राणियों की हत्या हुई है। इसके लिये मुझे हार्दिक दुःख है और जीवनपर्यन्त के लिये प्रतिज्ञा करता हूँ कि देवी-देवताओं के नाम पर होने वाली वलि नहीं करूंगा और न शिकार ही खेलूंगा। आपके सद्बोध से मेरा जन्म सुधर गया है।

इस प्रकार की प्रतिज्ञा करने के साथ-साथ ठाकुर श्री भीमसिंह जी शुद्ध श्रद्धा धारण करके जैनधर्म के अनुरागी और आपके भक्त वन गये और पहले जो नवरात्रि के दिनों में प्रतिदिन एक-एक बढ़ाकर पैंतालीस वकरों की बलि दी जाती थी, उसके बजाय प्रतिदिन एक-एक बढ़ाकर पैंतालीस वकरों को अभयदान देकर अमारिया घोषित करने की आज्ञा दे दी और दशहरे (विजयादशमी) के दिन भैंसे के वध को तो सदा के लिये वद कर दिया गया।

इस अहिंसा और करुणा की क्रांति के अतिरिक्त अनेक प्रकार के त्याग-प्रत्याख्यान, धर्म-ध्यान व प्रभावना के कार्यों के साथ चातुर्मास सम्पन्न हुआ। वड़ीसादड़ी श्रीसघ के हर्ष का पार न था कि वहुत समय से चली आ रही अन्धश्रद्धा-जन्य पाशविक प्रथा सदा-सदा के लिये वंद हो गई।

चातुर्मास-समाप्ति के पश्चात यथासमय अन्यान्य स्थानों में आपके पधारने से ठाकुरों, जागीरदारों ने भी धर्मोपदेश को सुनकर शिकार, मांसाहार, सुरापान और माता के स्थान पर बलि देने आदि का यावज्जीवन के लिये त्याग कर दिया। वड़ीसादड़ी में हुई अहिंसा-प्रसार की क्रांति की ऐसी लहर फैली कि विनाश की विचारधारा विकास में रूपान्तरित हो गई। गांव-गांव में यह प्रतिज्ञायें दुहराई गईं कि हम लोग अपने-अपने गांव में नवरात्रि। दशहरे के दिनों में वकरों, भैंसों की वलि नहीं देंगे और दूसरे दूसरे स्थानों पर भी ऐसा न होने देने के लिये प्रयत्न करेंगे।

शस्यश्यामला मालव की ओर

इस प्रकार मेवाड़ में अन्धश्रद्धा का उन्मूलन और धार्मिकता के

बीज वपन करते हुए आपने मालव भूमि की ओर विहार किया। इसकी जानकारी जैसे ही मालव श्रीसंघों को मिली तो उनमें एक अपूर्व उत्साह व्याप्त हो गया। सभी श्रीसंघों में होड़-सी चल पड़ी कि हमारे क्षेत्र में तो आपका अवश्य ही पदार्पण हो और अपने-अपने क्षेत्र में पधारने की विनती लेकर सेवा में उपस्थित होने लगे।

यथासमय विहारमार्ग में आने वाले क्षेत्रों में विचरण करते हुए आपने मंदसौर में पदार्पण किया और राजकीय शाला में विराजे।

मंदसौर में होने वाले प्रवचनों का समस्त नगरवासियों ने लाभ लिया। वे सभी ऐसे प्रभावित हुए कि आप यहां विराजकर हमें धर्म के मर्म से परिचित कराते रहें। फलस्वरूप सभी ने आगामी चातुर्मास के लिये सामूहिक रूप में विनती करने का निश्चय किया। उनमें सिन्धी भाई भी थे जो अपने जन्मस्थानों को हजारों मील दूर छोड़कर शरणार्थी के रूप में इस नगर में आकर नये-नये ही बसे थे। उनकी भावना थी कि धर्म के दो शब्द सुनेंगे तो हमारे मन शांत होंगे।

अभी चातुर्मास का समय दूर था अतः निश्चित रूप से प्रत्युत्तर न देकर इस सामूहिक विनती को आपश्री ने अपनी झोली में डाल कर मंदसौर से जावरा की ओर विहार कर दिया।

जावरा में आपका पदार्पण होते ही आगामी चातुर्मास की स्वीकृति फरमाने की विनती लेकर रतलाम, कानोड़, जावरा, मंदसौर आदि श्रीसंघों के सदस्य उपस्थित हो गये और आगामी चातुर्मास के लिये पुनः अपनी-अपनी विनती दोहरायी और द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव को देखते हुए आपने कई आगारों के साथ सं० २००५ का चातुर्मास रतलाम करने की स्वीकृति फरमायी।

इस अवसर पर विनती करने वाले श्रीसंघों में मंदसौर श्रीसंघ के साथ वहां के और दूसरे नागरिक व सिन्धी भाई यह विश्वास लेकर आये थे कि आपश्री हमारी विनती पर अवश्य ही ध्यान देंगे और वर्षावास के चार माह विराजकर धर्मोपदेश सुनाने के साथ-साथ हमें जैन-

धर्म में दीक्षित करने की कृपा करेंगे। लेकिन स्वीकृति न मिलने से उन्हें बड़ी निराशा हुई।

विचारों का अन्तर्द्वन्द्व

अकिंचन अनगार की दृष्टि में राजा-रंक सभी समान हैं। जिन्होंने ऐहिक-भोगों की निस्सारता को परख लिया है, उन्हें सांसारिक वैभव, मान-सम्मान, पूजा-प्रतिष्ठा आदि प्रलोभन किंचिन्मात्र भी आकर्षित नहीं कर पाते हैं। लेकिन वे श्रद्धालुओं की श्रद्धा और धार्मिक-जनों की धर्म-भावना के विकास में सहकार देने के लिये सदैव तत्पर रहते हैं। अतः आपश्री को मंदसौर श्रीसंघ के सदस्यों और विशेषतः सिन्धी भाइयों के विश्वास और आन्तरिक भावना को ठेस पहुंचाना उचित प्रतीत नहीं हुआ। इसी के साथ-साथ यह विचार भी पैदा हुआ कि जब आगामी चातुर्मास के लिये स्वीकृति दे दी है तो अब अपने वचन से मुकरना साधुमर्यादा नहीं है।

आपश्री इस दुविधा के बारे में जितना भी सोचते और समाधान का प्रयत्न करते, उतनी ही उलझन बढ़ती जा रही थी। अतः आपने यह अन्तर्द्वन्द्व रतलाम श्रीसंघ के श्रावकों के समक्ष रखा और फरमाया कि चातुर्मास की स्वीकृति के समय विशिष्ट धार्मिक उपकार होने की सम्भावना से अन्यत्र चातुर्मास किये जाने का आगार रखा है। फिर भी आप लोगों की भावना से परिचित होना चाहता हूँ। आप लोग इस उलझन का समाधान बतायें।

रतलाम संघ के सदस्यों ने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव को लक्ष्य में रखते हुए और विशेष उपकार होने की आशा से आपस में विचार-विमर्श करके प्रार्थना की कि आपश्री अपने आगारों के अनुसार विशेष परिस्थिति में कहीं भी चातुर्मास में विराज सकते हैं और मंदसौर की जनता की भावना को देखते हुए वहां धर्मप्रभावना होने की सम्भावना है। यद्यपि पूज्य आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. के समय में राजाओं द्वारा अपने नगर के लिये चातुर्मास मांगने का प्रसंग आ चुका है लेकिन

किसी नगर के नागरिकों द्वारा सामूहिक रूप में चातुर्मास की प्रार्थना होना पहली ही बार हम देख रहे हैं। अतः भविष्य के लिये अपना अधिकार सुरक्षित रखते हुए प्रार्थना करते हैं कि आपश्री इस वर्ष का चातुर्मास मंदसौर करने की स्वीकृति फरमावें। साथ ही मंदसौर संघ से आशा करते हैं कि आपकी धर्मभावना दिनोंदिन वृद्धिगत हो और गुरु-देव के उपदेशों का लाभ उठायें।

रतलाम श्रीसंघ की स्वीकृति मिलने पर आपने मंदसौर के उपस्थित नागरिकों और उनके अग्रणी प्रमुख सज्जनों से कहा कि आपकी धर्मभावना को समझकर रतलाम संघ ने भी अपनी उदारता दिखलाई है और मैं भी चातुर्मास की स्वीकृति के समय रखे हुए आगारों के अनुसार अन्यत्र चातुर्मास करने के लिये खुला हुआ हूँ। कदाचित् मंदसौर में चातुर्मास की स्थिति बने तो साध्वाचार के अनुरूप विश्राम-स्थान के बारे में आप लोग बताइये।

सिन्धी भाइयों ने इस बात को सुनकर कहा कि आपश्री तो अपनी स्वीकृति फरमावें। योग्यस्थान की व्यवस्था करने में हमें कोई कठिनाई नहीं होगी। सिर्फ आपकी स्वीकृति ही हमारे लिये महान प्रसन्नता और गौरव की बात होगी।

इस बात को सुनकर आपने फरमाया कि जब साधु अपने निमित्त बना हुआ भोजन भी नहीं ले सकता तो यह स्थिति कैसे संभव है कि आप लोग साधु के निमित्त मकान की व्यवस्था करें। साधु अपने निमित्त किसी को कष्ट दे तो उससे संयमसाधना निरतिचार कैसे पल सकेगी? इसलिये आप लोग ऐसा कोई स्थान बतायें, जिसमें किसी को भी कठिनाई न हो एवं साधुमर्यादा का पालन करते हुए साधु संत वर्षावास कर सकें। आप यह सोचें कि किराया देकर मकान ले लेंगे, तो भी यह साधु के लिये नहीं कल्पता है।

इस परिस्थिति को देखकर मंदसौर की जनता विवश हो गई और प्रार्थना की कि भगवन्! आपकी दयालुता महान है लेकिन साधु-

मर्यादा के देखते हुए हम विवश हैं। आपश्री जैसा निर्दोष स्थान फरमा रहे हैं, वैसी स्थिति अभी हमारे यहां नहीं है एवं अपनी विवशता के लिये हमें दुःख है।

आपने पुनः फरमाया कि अब आप ही अपना निर्णय दे दीजिये कि संयमस्थिति का संरक्षण करते हुए हमें चातुर्मास में कहां रहना उपयुक्त हो सकता है। साधु तो साधुता की रक्षा को ही सर्वोपरि मानता है।

इस समग्र परिस्थिति के विशद विवेचन से मंदसौर के निवासियों को संतोष हुआ और बड़े ही हर्ष के साथ प्रार्थना की कि आपश्री अपनी साध्वोचित मर्यादा के अनुनार संयम संरक्षणार्थ आगामी चातुर्मास रतलाम करने की कृपा करावें। आप जहां भी विराजेंगे, वहीं आकर दर्शन, व्याख्यान-वाणी का लाभ ले लेंगे। लेकिन सिर्फ अपने लाभ के लिये हम आपके साध्वाचार में किसी भी प्रकार से अतिचार नहीं आने देना चाहते हैं। अतः सं० २००५ का चातुर्मास रतलाम घोषित हुआ।

अन्धविश्वास का परिमार्जन

जावरा से विहार कर आस-पास के क्षेत्रों में धर्मोपदेश देते हुए चातुर्मासार्थ आपका रतलाम पदार्पण हुआ। चातुर्मास काल में स्थानीय एवं आस-पास के क्षेत्रों के श्रावक श्राविकाओं ने आध्यात्मिक विकास एवं धर्मप्रभावना का लाभ प्राप्त किया। अनेक प्रकार के त्याग, प्रत्याख्यान हुए।

आपकी तात्त्विक विवेचना की अपनी अनूठी शैली थी कि जो कुछ विवेचन करना वह शास्त्रसम्मत हो एवं जैनसिद्धान्तों के आधार पर करना। आपके प्रवचनों की छटा आलौकिक थी और उनका संबंध मानवजीवन, धर्म, समाजसंगठन, जैनतत्त्वों की विशालता से रहता था। इनके सम्बन्ध में आपके विचार मनन करने योग्य हैं। प्रसंगानुसार आप फरमाया करते थे—

'ग्रन्थों में धर्म की विभिन्न व्याख्यायें की गई हैं, उनमें विभिन्न दृष्टिकोण होते हुए भी किसी दृष्टि से तात्पर्य की समता दिखाई देती

है। जैन-शास्त्रों में साध्यागत धर्म की एक व्याख्या की गई है, वह अतीव संक्षिप्त है किन्तु सारगर्भित भी कम नहीं है। धर्म के वास्तविक एवं मूल रूप को सरलता पूर्वक समझने की दृष्टि से उस व्याख्या का कुछ विशेष महत्त्व भी है। वह व्याख्या कहती है— वत्थु सहावो धम्मो—जो वस्तु का (मूल) स्वभाव है, वही उसका लक्ष्यगत धर्म है।

धर्म कोई विशिष्ट प्रक्रिया या पद्धति ही नहीं, बल्कि एक स्थिति भी है अर्थात् विशिष्ट प्रक्रिया-पद्धति लक्ष्यगत धर्म को प्राप्त करने में साधन रूप धर्म है। लेकिन वह साधनरूप धर्म लक्ष्य को सामने रखकर चलता है तभी वस्तुगत स्थिति पर पहुंच सकता है या अधिक स्पष्ट शब्दों में कहें वही सनातन स्थिति है, जिसे हम निर्विकार, वीतराग या ऐसी ही उच्चतम स्थिति के रूप में स्वीकार करते हैं। 'दुर्गतौ पतनां जनानां धारयतीति धर्मः'— इस कथन का यही अभिप्राय हैं कि जब आत्मा विकार की दशा में फंसकर अपने विकासशील स्वभाव से अलग हो जाता है, गिरने लगता है तब उससे सजग होकर जिस वास्तविक मूल स्थिति को वह प्राप्त करने के लिये आगे बढ़ता है और साधना के द्वारा आत्मगत स्वभाव में प्रतिष्ठित हो जाता है, वही धारण करने की स्थिति, धर्म की मंजिल कहलाती है।'

'मानवजीवन की विशिष्टता का तभी अनुभव हो सकेगा कि आत्मा को पतन से बचाकर अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अनुकम्पा, सहानुभूति, उदारता, विशालता, विशुद्धता आदि प्रगतिशील वृत्तियों को ग्रहण करके विकास मार्ग पर कदम बढ़ाये जाते हैं, क्योंकि इन वृत्तियों को अपनाने की शक्ति के फलस्वरूप ही संसार के अन्य प्राणियों में मानव का विशिष्ट स्थान है और यदि मानव ही इन वृत्तियों से हीन रहता है तो वह 'पुच्छविषाणहीनः पशुभिः समानः' ही है। परन्तु मेरी दृष्टि में तो कर्तव्यहीन मानव को पशु की उपमा देना भी पशुत्व का अपमान है, क्योंकि पशु तो ज्ञान के दर्जे में नीचे गिरा हुआ होता ही है लेकिन ज्ञान का ठेकेदार बना आज के वैज्ञानिक युग का मानव जब पशु से भी अधिक

वर्बर, अमानुषिक व अज्ञान हो जाता है तब पशु से भी अधिक निकृष्ट ही हुआ। आज के शोषक मानव की राक्षसी जिह्वा रातदिन निर्दोष प्राणियों के रक्त शोषण हित लपलपाती रहती है और यही विकृत वृत्ति उसे मानवता से गिराये हुए है।

'अतः मानव जीवन की विशिष्टता प्राप्त करने के लिये यह आवश्यक है कि आप प्राणिमात्र के सरल प्रेम से अपने हृदय को आप्लावित कर जीवन के प्रत्येक आचरण को अहिंसा के तराजू पर तौलें और यह जानने की चेष्टा करें कि कितने अंशों में आपका जीवन अहिंसामय और त्यागमय बन सका है, उसमें मानवता की प्रधानता स्थापित हो सकी है।

'आत्मा से परमात्मा तक के विकासक्रम का जिन्होंने ज्ञान प्राप्त किया है और ज्ञानी होकर उसमें अपनी आस्था जुटाई है, उन्हें सुज्ञानी कहा जायेगा। धर्म और उसके दर्शन की जो धुरी है वह है आत्मा का परमोत्कृष्ट विकास, इसलिये इस विकास का मूल है आत्मा! कैसी आत्मा? जोकि इस संसार के गतिचक्र में भ्रमण कर रही है अर्थात् जड़पुद्गलों के संयोग से जन्म-मरण करती हुई बन्धानुबन्ध करती रहती है। तो उस आत्मा का विकास कैसे हो? कौन से कार्य हैं जिनसे आत्मा की भूमिका में उत्थान पदा होगा और वह उत्थान ऊपर-से-ऊपर चढ़ती हुई सांसारिक संकट की जड़ को ही काट डालेगी, जड़ और चेतन का सम्बन्ध समाप्त हो जायेगा।'

'यह जो समस्त ज्ञान है, वही आत्मा की विकासगति को पूर्णतया स्पष्ट करता है और यही आधारगत ज्ञान है, जिसकी रोशनी में अन्य सारी विचारसरणियां विश्लेषित होती हैं। इसलिये जैनदर्शन में इस ज्ञान को विशिष्ट महत्त्व दिया गया है। उसे तत्त्वज्ञान कहते हैं।

'जैन शास्त्रों में इस तत्त्वज्ञान का बड़ा विशद विवरण है और उसमें विस्तार से बताया गया है कि इन तत्त्वों पर ही आत्मा-परमात्मा और संसार की धुरी घूमती रहती है। यह तत्त्वज्ञान संसार के मूल से लेकर मुक्ति के मुख तक समाहित माना गया है।'

इस प्रकार के मननीय विचारों से परिपूर्ण प्रवचन श्रोताओं के अन्तर् तक पैठ जाते थे। साथ ही प्रतिदिन सायंकालीन प्रतिक्रमण के पश्चात चर्चा-विचारणा होती थी। जिसमें मुनिश्री नानालाल जी म. सा. (वर्तमान आचार्यश्री) आदि सन्तों एवं अन्य जिज्ञासुओं के तात्त्विक प्रश्नों का समाधान करते थे।

इसी चातुर्मास समय की बात है। मुनिश्री आइदानजी म. का शरीर रोगाक्रांत हो गया। मुनिश्री कृशकाया थे किन्तु रोग का दौरा होने पर वेहोश हो जाते और हाथ-पैर पछाड़ने लगते थे। दो-चार संत उन्हें संभालने का प्रयत्न भी करते, लेकिन उनके भी काबू से बाहर होते देख आपश्री रोगी की सेवा-शुश्रषा, परिचर्या के लिये पधार जाते थे।

आप अपने प्रारम्भिक जीवन से ही सेवाभावी रहे थे और रोगी की परिचर्या कैसे करना चाहिये आदि को भलीभांति समझते थे। आपकी करुणा और सेवाभावना में पद बाधक नहीं बनता था और अन्य सन्तों द्वारा प्रत्येक प्रकार से परिचर्या करने का विश्वास दिलाये जाने पर भी रोगाक्रांत सन्त को संभालने के लिये आ ही जाते थे। बेभान अवस्था में संत के हाथ पैर फड़फड़ाने से आपको पैर आदि से टक्कर भी लग जाती थी, लेकिन इस स्थिति से आपका मन द्रवित एवं कर्म-विपाक की विडंवना से चिन्तित हो उठता था और करुणाभावना रोग-शमन के उपाय करने के लिये बार-बार प्रेरित करने लगती थी।

योग्य उपचार होने पर भी रोग कावू में नहीं आ रहा था। अतः कई बंधुओं ने मकान में खड़े पीपल के वृक्ष की ओर इशारा करते हुए कहा कि इसमें भूत का वास है। शायद मुनिश्री इसके नीचे समय-बेसमय बैठ गये होंगे। अतः इसके लिये झाड़-फूंक कराना चाहिये।

आपने इस भूत-प्रेत की बात सुनकर फरमाया कि यह प्रेत-बाधा नहीं है, वरन शारीरिक रोग है जो किसी अनुभवी चिकित्सक के उपचार से दूर हो जायेगा। धर्मश्रद्धालु मानस को इस प्रकार के अन्ध-विश्वासों में नहीं फंसना चाहिये।

आपका जादू-टोना, नजर, भूत-प्रेतबाधा आदि के बारे में कोई विश्वास नहीं था और इस सबको व्यर्थ की बातें समझते थे। इस सम्बन्ध में आपके स्पष्ट विचार थे कि शास्त्रीय दृष्टि से देवयोनियां हैं, अवश्य लेकिन जहां कोई अपूर्व बात बने, उसे देवयोनि का प्रकोप नहीं समझना चाहिये। मूर्च्छा आदि आना कोई अपूर्व बात नहीं है, यह तो शारीरिक निर्बलता और वात आदि का विकार है। भूत-प्रेत की कल्पना करके बालकों में जो भय के संस्कार डाले जाते हैं, वे भविष्य में बड़े हानिकर होते हैं और बालक भीरू बन जाते हैं। कभी कभी इन संस्कारों के फलस्वरूप आत्म-विश्वास की भावना पनप ही नहीं पाती है। जंतर-मंतर, टोना-तावीज आदि कोई करामात नहीं हैं, यह सब तो वहम हैं। इन के वहम में पड़कर आप लोग अपनी धर्म-श्रद्धा से च्युत न होओ। अपने कृतकर्मों के सिवाय कोई कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता है। भ्रमित मान्यताओं के वश होकर, कपोल कल्पनाओं में फंसकर अपनी आत्मा का पतन मत करो। धर्म पर दृढ़ श्रद्धा रखो। देवी-देवताओं, जादू-टोना, नजर आदि किसी से डरने की जरूरत नहीं है। ऐसी निराधार कल्पित घटनाओं का सम्बन्ध देवी-देवताओं से जोड़ना मनुष्य की मनोभावना पर आधारित है।

आपके इन विचारों का प्रभाव उपस्थित सज्जनों पर पड़ा। आपने कहा कि यदि कोई अच्छे चिकित्सक हों और वे निदान करें तथा रोगी की परिचर्या से जो मैंने समझा है, उसे समझाऊं तो रोग के काबू में आने की आशा है। तदनुसार रोगी संत को वैद्य को दिखाया गया और आपने भी रोग के लक्षणों को बताया। परामर्श के अनुसार नियमित रूप से १५ दिन तक एरंडी का तेल, सूखे ब्राह्मी के पते और साधारण देशी काष्ठौषधि देने से रोगी सन्त स्वस्थ हो गये।

आप प्रकृतिविरुद्ध आहार, विहार और निहार से शारीरिक मलों— वात, पित्त, कफ— के कुपित होने को रोगोत्पत्ति का कारण मानते थे तथा इनके शमन के लिये प्राकृतिक चिकित्सा—उपवास, योगासन,

प्राणायाम आदि में विश्वास करते थे। इस विश्वास का आधार यह था कि शरीर का सौन्दर्य एवं स्वास्थ्य उसे समरस व समतोल बनाये रखने में है। शिशु जब मां का दूध पीता है तो न दूध में मीठा घोलता है, न दूसरे स्वाद लेता है, न घूमने जाता है और न व्यायाम कुश्ती करता है। फिर भी शिशु का सौन्दर्य, मस्ती और स्वास्थ्य कितना प्रिय व मनोहर होता है। शिशु जगत का सर्वाधिक मनोरम रूप है। इसका कारण यही है कि शिशु अपने आहार—दूध—को पचाना जानता है। कभी उलटा होकर, कभी पैर फैलाकर, फड़-फड़ाकर, कभी इधर-उधर लोट-पोट कर या ऐसी ही अन्यान्य हलचलें करके अपने आहार को पचा लेता है। लेकिन जब अपनी आयुवृद्धि के साथ यह सब बाल्यकालीन नैसर्गिक व्यायाम भूलता जाता है तो फूल-सा सुकुमार देह रसनिसृत वस्तु के समान तेजोहीन हो जाता है।

चिन्तनशील व्यक्ति को प्रतिदिन अपने शरीर और मस्तिष्क के मज्जातंतुओं व सूक्ष्म शिराओं को आसनों द्वारा बल देना चाहिये, जिससे उसे आत्मशांति के लिये मानसिक शांति का भी सहयोग प्राप्त होता रहे। मन की एकाग्रता के लिये आसन, प्राणायाम की आवश्यकता है। अगर मनुष्य सिद्धासन आदि आसन लगा सके तो निश्चित है कि उसका मन कदापि चंचल नहीं होगा।

मानव जाति का स्वास्थ्य यदि रोगों ने नष्ट किया है तो औषधियों ने भी अधिकांश रोगों को जन्म दिया है। आत्मघात करके या स्वयं विषपान करके उतने व्यक्ति नहीं मरे हैं जितनों को औषधियों की बलिवेदी पर अपने प्राणों का उत्सर्ग करना पड़ा है। विष की अपेक्षा औषधियों के विष ने अधिक कहर ढ़ाया है। वस्तुतः आज की चिकित्साप्रणाली समाज के रोगी देह के लिये सफल सिद्ध नहीं हुई है। विजातीय द्रव्यों से भरी औषधियां यदि रोगों का उन्मूलन करती हैं तो अनेक नये रोगों को पैदा भी कर देती हैं।

प्रत्येक व्यक्ति स्वयं अपने शरीर का सुयोग्य उपचारक है।

प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं अपनी चिकित्सा करना चाहिये। यदि यह संभव न हो तो योग्य वैद्य से परामर्श करना चाहिये।

आप अपनी दैनिक चर्या में इन विचारों का उपयोग करते थे। चाहे आप कितने ही व्यस्त हों, विहार में हों या वर्षावास के निमित्त किसी एक स्थान पर विराज रहे हों, लेकिन शारीरिक अंग-प्रत्यंगों को कतिपय आसनों द्वारा अवश्य ही श्रम प्रदान करते थे। आध-पौन घंटे तक योगासनों का प्रयोग करते थे और शीर्षासन, उत्तानपादासन, पद्मासन, बद्धपद्मासन और मयूरासन आदि आसन शारीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से योग्य मानते थे।

लेकिन कभी कदाचित वातादिजनित साधारण व्याधि का प्रकोप भी होता तो सर्वप्रथम आप उपवास का अवलंबन लेते और यदि औषधि का सेवन भी करना पड़े तो ऐसी सामान्य काष्ठौषधि लेते थे कि जिसके लिये न तो चक्कर लगाना पड़ें, गृहस्थ को निमित्त न जुटाना पड़ें और न डाक्टरों के आगे-पीछे ही घूमना पड़े।

इन स्वानुभूत प्रयोगों से आप रुग्ण संत को साधारण-सी औषधियों के प्रयोग द्वारा निरोग करने में सफल बने। आप जितने अध्यात्मविज्ञानी थे उतने ही शारीरिक विज्ञान के भी मर्मज्ञ थे। यही कारण था कि स्थूल शरीर होने पर भी आपके अंग-प्रत्यंग में वही लचक और स्फूर्ति दृश्यमान होती थी, जो युवावस्था में किसी-किसी को प्राप्त होती है। यदि हम भी अपने शारीरिक स्वास्थ्य के लिये आप सदृश सन्तों के पथ का अनुसरण कर सकें तो तन, मन, धन को सुरक्षित रखने के साथ-साथ भक्ष्याभक्ष्य पदार्थों के भक्षण से बच सकते हैं।

श्रमणसंगठन की विचारणा

इन्हीं दिनों श्रमण-संगठन के लिये समाज में वातावरण बनाया जा रहा था। अग्रणी श्रावक मूर्धन्य संतों के साथ हुए विचार-विमर्श को ध्यान में रखते हुए योजना निर्माण में सक्रिय थे। उनके प्रयत्नों से प्रतीत होता था कि निकट भविष्य में यह योजना कार्यान्वित हो सकेगी।

आपके पास भी चर्चा के लिये श्रावकों का शिष्टमंडल उपस्थित हो चुका था और समय-समय पर प्रगति की सूचना मिलती रहती थी।

आप संगठन के हामी थे। संघ ऐक्य के निर्माण में योग देने का आश्वासन पहले ही दे चुके थे। आपको साम्प्रदायिक समाचारी का कट्टर पोषक समझा जाता था लेकिन संघ के निमित्त बड़े-सा-बड़ा उत्सर्ग करने के लिये भी तत्पर रहते थे। सघ की एकता के निमित्त प्रयत्न-शील रहने के सस्कार आपको गुरु-परम्परा से विरासत में प्राप्त हुए थे। क्षण भर के लिये भी आपके अन्तःकरण में आचार्य जैसे महनीय पद के लिये अनुराग नहीं रहा और इसीलिये संघ की एकता के लिये अपनी आचार्य पदवी का परित्याग कर देने की घोषणा करने में नहीं झिझके। जबकि अन्य अनेक आचार्य या अन्य पदवीधारी सत इस स्थिति को उचित नहीं मान रहे थे।

सघ-ऐक्य योजना का शिष्टमण्डल

रतलाम चातुर्मास धर्मप्रभावना के कार्यों से समाप्त हुआ। चार माह का समय क्षणों में बीत गया हो, प्रतीत होता था। चातु-र्मास समाप्ति के अनन्तर आपका रतलाम के आसपास के क्षेत्रों में विहार हुआ और वहां धर्मोपदेश देते हुए जावरा पधारे। इसी समय समाज के प्रमुख श्रावकों का एक शिष्टमंडल जिसमें सर्वश्री कुन्दनमल जी फिरोदिया, बम्बई विधानसभा के अध्यक्ष, चिमनलाल चकुभाई शाह आदि के नाम उल्लेखनीय हैं, संघ ऐक्य योजना की पूर्व भूमिका लेकर सेवा में उपस्थित हुआ।

शिष्टमंडल ने अपने द्वारा किये गये प्रयत्नों, मुनिराजों से हुए वार्तालाप और उसके परिणाम से आपको अवगत कराते हुए संघ-ऐक्य योजना की रूप-रेखा प्रस्तुत की एवं यह प्रार्थना की कि आपश्री जब तक संघ-ऐक्य योजना कार्यान्वित न हो, तब तक यह व्यवस्था रहे कि एक गांव में एक ही चातुर्मास हो, एक ही व्याक्यान हो और प्रसंग आने पर समान समाचारी वाले सन्तों के साथ बैठकर व्याख्यान दिया जाये।

शिष्टमंडल की धारणा थी कि ऐसा होने पर पृथक्-पृथक् संप्रदायों में विभक्त साधु एक दूसरे के निकट आयेंगे। विचारों का आदान-प्रदान होने से एक दूसरे की भावना को समझ सकेंगे और संघ-ऐक्य के लिये प्राथमिक भूमिका का निर्माण होने के साथ-साथ ऊपरी तौर पर एकता भी प्रतीत होगी।

आचार्य श्रीजी ने शिष्टमडल के विचारों को ध्यानपूर्वक सुना। उस समय कई एक सप्रदाय के साधुओं की विचित्र स्थिति हो रही थी। यदि स्वच्छन्द प्रवृत्ति को भी गौण मान लें तो भी कुछ एक घटनायें साधुओं द्वारा ऐसी हो चुकी थीं जो संयम-साधना के विपरीत और अनाचार को बढ़ावा दे रही थीं। कुछ स्थानों पर तो ऐसी घटनायें भी हो चुकी थीं कि जिनसे साधु-सन्तों के प्रति श्रावकों की श्रद्धा ही डिग चुकी थी। आचार्य श्रीजी को इन सब घटनाओं की कुछ जानकारी समय-समय पर मिलती रहती थी, लेकिन आचार्य श्रीजी अपनी पृथक् संप्रदाय होने के कारण उनके बारे में कुछ न कहकर मौन रहना उपयुक्त समझते थे।

अतः आचार्य श्रीजी ने फरमाया कि आप लोग संघ-ऐक्य योजना की भूमिका तैयार करने आये हैं और मेरे सामने ऐसे प्रसंग हैं जिनमें कुछ एक सन्तों को पृथक् करने की स्थिति है। अतः आप ही बतलाइये कि मैं संघ-ऐक्य योजना को आगे बढ़ाने के लिये आपको आश्वासन दूं या अनुशासनहीन प्रवृत्ति करने वाले छद्मवेशी संतों को पृथक् करूं?

शिष्टमंडल के सदस्यों ने वास्तविक बातों को सुनकर आचार्य श्रीजी से प्रार्थना की कि आपको जो भी शिथिलाचारी छद्मवेशी ज्ञात होते हों, उनको पृथक् कर दीजिये। ऐसों को छिपाये रखना या साधुवेश में अनाचार की प्रवृत्तियों को चलने देना संघ-ऐक्य योजना का उद्देश्य नहीं है। श्रमण-संस्कृति की पवित्रता की रक्षा होना सर्वोपरि है और इसी को लक्ष्य में रखकर हमारे प्रयत्न हो रहे हैं कि एक आचार्य के नेतृत्व में समस्त साधु, साध्वियां धर्मसाधना में प्रवृत्त हों, साधुमर्यादा

के विपरीत प्रवृत्ति करने वालों से संघ को बचाया जाये। अतः हमारा विनम्र निवेदन है कि ऐसे साधुओं को पृथक् कर दीजिये और सुदृढ़ धरातल पर ऐक्य-योजना को कार्यान्वित कराने में स्वीकृति फरमावें।

शिष्टमंडल के मनोभावों को समझकर पुनः आचार्य श्रीजी ने अपने अनुभव बताते हुए फरमाया कि कई साधुओं की ऐसी स्थिति है कि वे कहते कुछ हैं और करते कुछ हैं। अपनी भूल को भूल मान-कर सुधारने का प्रयत्न न कर छिपाने की तरकीबें सोचते रहते हैं। एक ओर तो संघ-ऐक्य की उपयोगिता समझते हैं और उसे स्वीकार भी करते हैं लेकिन दूसरी ओर चालाकी से एक गांव में एक चातुर्मास स्वीकृत होने पर भी दूसरे चातुर्मास की स्वीकृति दे देते हैं। कई संत ब्रह्मचर्य महाव्रत का भंग करने वालों को पहले तो दड-प्रायश्चित्त ही नहीं देते और देते भी हैं तो दोष के अनुसार दड-प्रायश्चित न देकर अपने साथ दोषी व्यक्ति को रख रहे हैं। प्रसग मिलने पर अन्य क्रिया-पात्र संतों के साथ स्वयं बैठ या उन व्यक्तियों को बैठाकर श्रावक-श्रावि-काओं को धोखा देने की चेष्टा करने से भी नहीं चूकते और अकसर ऐसे मौकों की तलाश में रहते हैं। कई एक रुपये-पैसे एकत्रित करने का प्रपंच रचते हैं तथा संघ-ऐक्य योजना का बड़ी लच्छेदार भाषा में अनु-मोदन कर वाह-वाही लूटने से नहीं चूक रहे हैं। ऐसी स्थिति में क्या यह संभव है कि एक स्थान पर एक ही व्याख्यान और एक चातुर्मास होगा? इसके अलावा एक बात और स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि दीक्षा लेने के बाद मैंने जिन पूज्य गुरुदेव के नेश्राय में संयमसाधना की है, निर्ग्रन्थ श्रमणसंस्कृति के अनुसार आत्मविकास की ओर अग्रसर हुआ हूँ, साध्वाचार का ज्ञान प्राप्त किया है, आचरण किया है और अनुभव किया है, तदनुसार तो ऐसे साधु-साध्वी वर्ग से वचे रहने में ही अपना और संघ का श्रेय समझता हूँ।

साधुओं और श्रावकों के सम्बन्धों के बारे में स्पष्ट उल्लेख है कि साधुओं के लिये श्रावक अम्मा-पिया—माता-पिता हैं। यद्यपि साधु

महाव्रतधारी और श्रावक अणुव्रतधारी होते हैं लेकिन श्रावकों को माता-पिता की उपमा इसलिये दी है कि जिस प्रकार माता-पिता संतान का लालन-पालन कर उसके जीवन को सुसंस्कारी बनाने में सहायक होते है, उसी प्रकार श्रावक साधुओं की सयमसाधना में सहायक बनें। यदि साधु की भूल की श्रावक उपेक्षा करते हैं तो उसका आशय यह हुआ कि वे साधुओं को स्वच्छन्द प्रवृत्ति करने में सहायता देते हैं और फिर एक बार आदत बिगड़ने पर सुधार की आशा कम दीखती है।

शिष्टमंडल के सदस्यों ने इन विचारों के प्रति अपनी सहमति व्यक्त करते हुए कहा कि आपका फरमाना उचित है और इतने दिन जो कुछ हुआ, सो हुआ। परन्तु हम आपको यह विश्वास दिलाते हैं और भावना व्यक्त करते हैं कि अब ऐसी स्थिति नहीं रह पायेगी। हम अभी जिन सन्तों के पास होकर आये हैं, उन्होंने जिस प्रकार से प्रेरणाप्रद आश्वासन दिये हैं, वैसे ही आपश्री भी स्वीकृति फरमावें। यदि आपश्री की स्वीकृति प्राप्त न कर सके तो शिष्टमंडल को यहीं निरस्त कर देंगे। आपश्री की भावना के बारे में हम इतना ही निवेदन कर देना चाहते हैं कि आपको जिन साधु-सन्तों की क्रियापात्रता और संयमसाधना की निर्दोषता में विश्वास हो, उनके साथ बैठकर व्याख्यान दें किन्तु संघसंगठन की योजना के लिये कम से कम इतनी छूट दीजिये कि एक गांव में एक चातुर्मास हो।

शिष्टमंडल के मनोभावों को समझकर आचार्य श्रीजी ने फरमाया कि परीक्षण के रूप में तीन वर्ष तक एक चातुर्मास होगा। आप लोग इस विषय में निष्पक्ष रहें और जहां जिनकी त्रुटि-स्खलना हो, उनसे सत्य बात कहने और परिमार्जन करने की स्थिति बनायेंगे तो शायद कुछ सुपरिणाम निकलेगा।

आचार्य श्रीजी से स्वीकृति प्राप्त कर शिष्टमंडल ने उद्देश्य की पूर्ति के लिये दूसरे-दूसरे साधु-संतों की सेवा में जाने के लिये प्रस्थान किया और आपश्री भी जावरा से विहार करके अनेक ग्रामों को स्पर्श

करते हुए इन्दौर पधारे ।

भूदानी नेता से साक्षात्कार

इन्दौर भूतपूर्व होलकर राज्य की राजधानी का नगर है। अपनी भौगोलिक स्थिति और उद्योग-व्यापार का केन्द्र होने के कारण धनधान्य सम्पन्न है तथा जैन समाज की दृष्टि से तो इन्दौर जैनियों का गढ़ माना जाता है। शैक्षणिक संस्थाओं और विद्वानों की संख्या भी काफी अच्छी है।

इन्दौर में आपश्री महाराजा तुकोजीराव क्लोथ मार्केट के सभा भवन में विराजे और प्रतिदिन वहीं आपके प्रवचन होते थे। जिनका नगरनिवासी लाभ लेते थे और तात्त्विक-चर्चा के समय विद्वानों का जमघट लग जाता था।

इन्हीं दिनों इन्दौर से करीब तीन कोस की दूरी पर स्थित राऊ ग्राम में सर्वोदय मंडल का अधिवेशन हो रहा था। उसमें अनेक सर्वोदयी कार्यकर्ताओं के अतिरिक्त भूदान आन्दोलन के प्रेरक विनोबा जी भी आये हुए थे। विनोबा जी को आपश्री के इन्दौर में विराजने की जानकारी मिली तो वे अपने कुछ सहयोगी कार्यकर्ताओं को साथ लेकर आपसे मिलने आये और करीब पौन घंटे तक अहिंसा, सत्य, समाजवाद, सर्वोदय आदि के बारे में वार्तालाप होता रहा।

वार्तालाप का उपसहार करते हुए विनोबा जी ने कहा—महाराज ! भूल जाइये कि जैनियों की संख्या कम है। जैनों के आचार-विचार के सिद्धान्त विश्व की समस्त विचारधाराओं में मिश्री की तरह घुल-मिल गये हैं। लेकिन एक बात मेरे मन में सदा खटकती रहती है कि जैनियों ने जिस दृढ़ता के साथ अहिंसा को पकड़ा है, उसी लगन और निष्ठा से वे सत्य को नहीं पकड़ पाये हैं। अगर जैन-समाज ने सत्य और अहिंसा, दोनों को अपने जीवन का पाया बना लिया होता तो निश्चित है कि मानसरोवर से निकलने वाली गंगा की धारा की तरह वह पृथक् ही दिखाई देती।

सत्य और अहिंसा के समन्वय पर ही गंगा और यमुना के संगम के समान दिव्यतीर्थ की प्रतिष्ठा हो सकती है। विश्व के मानव-समुदाय में निरामिष भोजन और व्यसनविहीन जीवन के लिये जैसे जैनसमाज आदर्श है, वैसे ही मैं उसे सत्य और सरलता में, स्वावलंबन और स्वाधीनता के विषय में भी आदर्श देखना चाहता हूँ।

आचार्य श्रीजी और विनोबा जी का यह संमिलन बहुत सौजन्य-पूर्ण और मधुर रहा। यही कारण है कि आज भी विनोबा जी समय-समय पर आचार्य श्रीजी को स्मरण करते रहते हैं।

श्री विनोबा जी के विचार जैन समाज के लिये चिन्तन का अवसर प्रदान करते हैं और सत्य व अहिंसा के जीवनव्यापी प्रयोग के लिये प्रयत्नशील होने का आह्वान करते हैं। क्योंकि सत्य से ऊंचा कोई धर्म नहीं और अहिंसा से बढ़कर कोई कर्तव्य नहीं है। आज विश्व इन्हीं दोनों की असीम परधियों के चारों ओर घूम रहा है। मानवमात्र इनकी प्रेरणा से जीवन-यापन करने के लिये उत्सुक है, लेकिन दो समानान्तर रेखाओं के समान जीवन में सत्य और अहिंसा के गतिमान होने से अधिकतर उन दोनों का समन्वय होने का अवसर नहीं दिख रहा है। यद्यपि मानवमात्र में सुख की आंतरिक आकांक्षा तो है लेकिन सुख के कारणों की अवहेलना कर या गौण समझ कर। परिणामतः जीवन में शून्यता है, उदासीनता है और क्षण-प्रतिक्षण विनाश की ओर अग्रसर हो रहे हैं।

लेकिन इस स्थिति में भी यदि जैन बंधुओं में जो यत्किंचित् भी मानवता के दर्शन हो रहे हैं, उसका कारण है धर्माचार्यों के उपदेश, अहिंसा, सत्य के प्रति लगाव और सत्साहित्य के अध्ययन-मनन के लिये पाई जाने वाली अभिरुचि।

जैनियों की संख्या लाखों से करोड़ों या उससे भी अधिक हो सकती है। किन्तु इसके लिये आवश्यक है कि हम अपने विचारों को वाणी से नहीं किन्तु आचरण द्वारा व्यक्त करें और उन अवसरों को

उपयोगिता समझें, जब मानवीय करुणा के लिये एकाकी रहकर भी बार-बार प्रयत्न करना जरूरी हो। ऐसा करने में कठिनाइयां भी आयेंगी और आना भी चाहिये, लेकिन अहिंसा के धरातल पर सत्य के प्रकाश में समता के माध्यम से समन्वय के लिये सतत सजग और सचेष्ट रहें।

सर्वोदय की परिभाषा

श्री विनोबा जी गांधीवादी विचारधारा के प्रसारक जननेता हैं और सत्य, अहिंसा के सिद्धान्तों पर एक ऐसे मानव समाज के निर्माण में संलग्न हैं जिसमें मानव, मानव के नाते अपनी जीवनोपयोगी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये न्याय-निष्ठा पूर्वक कर्तव्यशील रहकर दूसरे मानवों के प्रति अपने दायित्वों का निर्वाह करे। वर्गसंघर्ष, जातिवाद, आर्थिक विषमता और अनैतिक आचार-विचार की सीमा से परे रहकर अपने-अपने विकास के लिये अवसरों की अनुकूलता प्राप्त हो। व्यक्ति की गरिमा का सदुपयोग हो। साम्यभाव के धरातल पर सर्व धर्म-समन्वय का आदर्श अवतरित हो। सर्वतोमुखी जीवन के विकास के लिये सर्वसत्तासंपन्न विश्वराष्ट्र का निर्माण हो। इस भावना की अभिव्यक्ति का नाम सर्वोदयवाद है।

लेकिन जैनदृष्टि से सर्वोदय की सीमा मानव तक सीमित नहीं है। उसमें मानव भी अन्य सचेतन प्राणी की तरह एक इकाई है। अतः वह प्राणी मात्र के उदय का उदार दृष्टिकोण उपस्थित करती है। उसमें न तो मनुष्य मुख्य है और न अन्य प्राणधारी गौण। सभी को समान स्तर पर रखकर उत्कर्ष की भावना व्यक्त की गई है—

'सर्वापदामन्तकरं निरंतं सर्वोदय तीर्थमिदं तवैव'

पूज्यश्री इसी प्रकार के सर्वोदय में विश्वास करते थे और अपनी निष्ठा को आचार के माध्यम से व्यक्त किया है। सर्वोदय के सम्बन्ध में आपके माननीय विचार इस प्रकार हैं—

'जय जय जगत शिरोमणि·········' इसमें कवि ने परमात्मा की जय का जो नारा लगाया है उसमें परमात्मा के साथ सारे संसार की

ही जय का नारा उठता है। लोकरूपी शरीर में सिद्धात्मायें शिरोमणि-स्वरूप हैं, क्योंकि जिनके ज्ञान रूपी प्रकाश में समस्त लोक 'हस्तामलकवत्' प्रतिभासित होता है। जहां मस्तिष्क की जय है वहां सारे शरीर की भी जय हो ही जाती है, क्योंकि मस्तिष्क की जय में भी सारे शरीर के कार्य का सहयोग छिपा हुआ है तथा छिपी है मस्तिष्क के स्वसचालन के हेतु शरीर को प्राप्त होने वाली सजग प्रेरणा।

'जिस प्रकार भारत के विषय मे केवल उस पर शासन करने वाली सरकार की ही विजय नहीं होती है, किन्तु उसके समस्त निवा-की विजय होती है। उसी प्रकार परमात्मा की जय में ससार के सभी प्राणियों की जय है। इस भावना का नाम ही सर्वोदयवाद है। सबका उदय हो, सब मानवता के रहस्य को समझ कर अपनी अन्याय-पूर्ण नीति को छोड़ और विश्वबन्धुत्व की स्थापना करें—इसी में परमात्मा की जय बोलने का सार रहा हुआ है।

'तात्पर्य यह है कि समाज के सहयोग से ही व्यक्ति का विकास होता है और वह उन्नत अवस्था को प्राप्त होता है। जैसे सभी अंगों के कारण से मस्तिष्क विचारक्षम व गभीर चिन्तन करनेवाला होता है, उसी तरह समाज के सरल सौहार्दमय वातावरण में ही महान विभूतियों और महात्माओं का जन्म होता है और जैसे मस्तिष्क अधिक विचारक्षम होने के पश्चात अन्य अंगों का विशेष रूप से रक्षण व पोषण करता है उसी प्रकार वे महान विभूतियां और महात्मा अपना सब कुछ समाज के हितार्थ बलिदान कर देते है।

'सभी अङ्गों के समुचित सहयोग का प्रश्न समाज के निज के सामूहिक विकास के लिये भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है। जब तक अन्न, वस्त्र आदि जीवनोपयोगी पदार्थों का समाज में प्रत्यावर्तन होता रहता है तब तक सामाजिक जीवन में शांति रहती है। किन्तु जब यह प्रत्यावर्तन बंद हो जाता है या रुक जाता है, चाहे वह समाज में हो या शरीर में, तभी स्वास्थ्य बिगड़ने लग जाता है। जब समाज की

उपेक्षा करके व्यक्ति के हृदय में संग्रह की भावना उत्पन्न होती है तब समाज में संघर्षपूर्ण विषमता पैदा होती है और वह सामाजिक अशांति का मूल कारण बन बैठती है।

'संग्रहवृत्ति की राक्षसी मदान्धता ने ही चोरबाजारी, रिश्वत आदि अमानुषिक प्रवृत्तियों को जन्म दिया है। अतः जब तक अपनी सचय-बुद्धि को त्याग कर अपने द्रव्य का आवश्यकतानुसार संपरित्याग करने की ओर नहीं झुकेंगे तब तक राष्ट्र और समाज में विषमता का नाश होकर शांति की स्थापना होना दुष्कर है।

'अब मैं समाज की वर्तमान व्यवस्था के बारे में बतलाना चाहता हूँ कि समाज के विभिन्न अंगों में क्यों भेद उत्पन्न कर दिया गया और इसके कारण किस प्रकार एक अंग पोषण और दूसरा अंग पोषण के अभाव में विकृत हो चला ?

'जैसे शरीर के चार प्रमुख अङ्ग होते हैं, उसी प्रकार समाज में कर्तव्यों को दृष्टि में रखकर चार वर्णों की स्थापना हुई। समाज की सुव्यवस्था को लक्ष्य में रखकर ही संभवतः यह वर्णविभाग हुआ होगा, किन्तु समयप्रवाह के साथ यह वर्ण-विभाग विकृति की ओर बढ़ चला। कर्तव्य की अपेक्षा जातिवाद को अधिक महत्त्व दिया जाने लगा। अपने को श्रेष्ठ बताकर अपनी ही पूजा-प्रतिष्ठा कराने के लिये अन्य वर्णों का तिरष्कार और निरादर किया जाने लगा। जबकि जैन-संस्कृति का स्पष्ट दृष्टिकोण है कि—

कम्मुणा बंभणो होई, कम्मुणा होई खत्तियो।
कम्मुणा वइसो भवई, सुद्दो हवई कम्मुणा॥

उत्तराध्ययनसूत्र

कर्म अर्थात् कार्य (आचार-विचार) से ही ब्राह्मणत्व आदि का आरोप किया जा सकता है। जैन-संस्कृति वर्ण को बपौती के रूप में नहीं मानती। जैन-संस्कृति के सामने वर्ण का कतई दृष्टिकोण नहीं है, उसके सामने तो आत्मिक-विकास की महिमा है।

'मेरे कहने का निष्कर्ष यही है कि सर्वोदयवाद के महत्त्व को समझें और परमात्मा की जय बोलने में सब प्राणियों के साथ साम्य-दृष्टि को अपनायें। वैभव और ये शरीर आदि सब नश्वर हैं, एकदिन नष्ट हो जायेंगे और साथ रह जायेगा वही जो कुछ किया है। जैन-शास्त्रों में परदेशी राजा का उदाहरण आता है, जिसके हाथ निर्दोषों के खून से सने रहते थे। वह भी केशीश्रमण के उपदेश से त्यागपथ की ओर अग्रसर हुआ। आज भी उसी त्याग की आवश्यकता है, समाज की संघर्षमय विषमता को मिटाने के लिये। शोषण का हमेशा के लिये खात्मा कर दिया जाये, इसके लिये अपनी वासनाओं और आवश्यक-ताओं को सीमित करना चाहिये और अपने वैभव का अमुक हिस्सा दानादि शुभ कार्यों के लिये निर्धारित किया जाना चाहिये।

'अन्त में यही कहना चाहता हूँ कि समस्त प्राणियों को आत्म-वत् समझें, सबसे प्रेम करें, सबकी रक्षा करें, यही सर्वोदयवाद है और इसी में परमात्मा की जय यथार्थ रूप से बोली जा सकती है।,

आचार्यश्रीजी के इन विचारों से वर्तमान के जितने भी राज-नैतिकवाद — समाजवाद, साम्यवाद, प्रजातंत्रवाद, अधिनायकवाद आदि— प्रचलित है, सबका संकलन हो जाता है। इन सबका दृष्टिकोण मानव को सुख-सम्पन्न, समृद्ध बनाना है। लेकिन जैनदृष्टि प्राणिमात्र के उत्कर्ष में अपना विश्वास व्यक्त करते हुए प्रयत्न करने का आदर्श उपस्थित करती है।

आज नहीं तो कल विश्व की विवेकशील जनता को इन विचारों को कार्यान्वित करने में संकोच नहीं करना पड़ेगा और जैसे-जैसे विश्व भौतिकता की चरम सीमा की ओर बढ़ेगा, है उसी तरह से अध्यात्म-वाद की ओर उन्मुख होकर वास्तविक सर्वोदय की ओर बढ़ना आव-श्यक बनता जायेगा। समय की प्रतीक्षा तो करनी पड़ेगी लेकिन यह निश्चित है कि व्यक्ति का व्यक्तित्व समूह के समुत्थान में भी विकसित होता है और उस विकास का नाम सर्वोदय होगा।

एकता-विरोधी कार्य

आपश्री के इन्दौर विराजने के अवसर पर श्रीसंघ जावरा का शिष्टमंडल आगामी चातुर्मास जावरा में करने की विनती लेकर सेवा में उपस्थित हुआ और विशेष उपकार होने की दृष्टि से आपश्री ने अनेक आगारों के साथ आगामी चातुर्मास जावरा में करने की स्वीकृति फरमायी और वहां से विहार कर उज्जैन पधारे।

आपश्री के आगामी चातुर्मास की स्वीकृति से समस्त श्रीसंघों को जानकारी हो चुकी थी और मालव प्रदेश में तो अनोखा उत्साह, उल्लास दृष्टिगोचर हो रहा था। लेकिन सभी जगह कुछ-न कुछ विघ्न-संतोषी और समष्टि का कल्याण न होने देने में प्रसन्न होने वाले होते हैं, वैसे ही जावरा श्रीसंघ में भी कुछ व्यक्ति थे। उन्होंने संघ-ऐक्य योजना के मूल पर कुठाराघात करने के लिये दूसरे संतों से भी आगामी चातुर्मास जावरा में करने की स्वीकृति प्राप्त कर ली।

उज्जैन पधारने पर आपश्री को जब यह बात मालूम पड़ी तो विचार किया कि क्या ऐसी स्थिति में संघ-संगठन की योजना सफल हो सकेगी? संतों का चातुर्मास होना विचारणीय नहीं था लेकिन संघ ऐक्य योजना के आधार— एक गांव में एक चातुर्मास हो— को लेकर समाज के अग्रणी श्रावकों का प्रतिनिधि मंडल विभिन्न संप्रदाय के मूर्धन्य मुनिराजों से स्वीकृति प्राप्त कर चुका था, विरुद्ध यह कृत्य अवश्य था। साथ ही यह भी सिद्ध हो गया था कि संघ-संगठन के विघातक तत्त्व चाहे वे मुनि हों या श्रावक, अपनी कुटिलवृत्ति के प्रदर्शन में सदैव तत्पर रहे हैं और रहेंगे एवं संघ-ऐक्य उनके लिये खिलवाड़ मात्र है।

लेकिन संघ-ऐक्य के लिये प्रयत्न करने वाली संस्था— श्री अ. भा. श्वे. स्थानकवासी जैन कान्फरन्स और उसके पदाधिकारियों तथा संगठन के लिये विभिन्न सन्तों से सपर्क साधने वाले प्रतिनिधि मण्डल के सदस्यों ने इस स्वच्छन्द प्रवृत्ति का विरोध नहीं किया और समाज के समक्ष वास्तविक स्थिति रखने के प्रति उदासीनता बतलाई।

आचार्य श्रीजी ने इस स्थिति का मूल्यांकन करते हुए निर्णय किया कि दूसरे चाहे जैसा करें और अपने आश्वासन का पालन करें या न करें, लेकिन मुझे तो वैसा कुछ नहीं करके संघ-ऐक्य योजना की सफलता के लिये प्रतिनिधि-मंडल को दिये गये अपने वचन का पालन करना उपयुक्त है।

चातुर्मास परिवर्तन : जयपुर की ओर

आपश्री का आगामी चातुर्मास जावरा में होने तथा एकता-विरोधियों की अनुचित प्रवृत्ति की जानकारी मालवा एवं देश के विभिन्न श्रीसंघों को हो चुकी थी। सभी इस स्थिति को संघहित में योग्य नहीं समझते थे और भविष्य में इसकी पुनरावृत्ति रोकने के लिये यथा-समय कार्य भी करना चाहते थे कि इसी समय श्रीसंघ जयपुर अपने यहां चातुर्मास करने की विनती लेकर सेवा में उपस्थित हुआ।

इस विनती के पीछे यह एक विशेष हेतु था कि इस वर्ष जय-पुर से भिक्षु-परम्परा के मानने वाले तेरहपंथ के आचार्य श्री तुलसी का चातुर्मास होने वाला था और उस अवसर पर धर्म के नाम पर होने वाली स्वच्छन्द प्रवृत्तियों के लिये अन्दर-ही-अन्दर जोर-शोर से तैयारियां हो रही थीं। फिर भी ये तैयारियां जयपुर जैन समाज के प्रतिष्ठित अग्रगण्य सज्जनों से छिपी नहीं रह सकीं और समाज के अन्यान्य व्यक्तियों को भी कुछ-न-कुछ जानकारी मिल चुकी थी। लेकिन उस समय तो यह तैयारियां पूर्ण रूप से स्पष्ट हो गईं जब दयादानविरोधी सम्प्रदाय (तेरहपंथ) के आचार्य का जयपुर में आगमन हुआ। जनता ने देखा कि उनके साथ में एक ओर अबोध बालकों और दूसरी ओर बालिकाओं व नवयुवतियों की टोली चल रही है और इनमें से बहुतों को यहां दीक्षित किये जाने का निर्णय हो चुका है और इसी आयोजन के लिये यह प्रच्छन्न रूप में तैयारियां हो रही थीं।

इस बात को जानकर नागरिकों में रोष व्याप्त हो गया था और जैन समाज भी अपने यहां ऐसे कार्यों के होने की कल्पना मात्र से आशंकित

था कि यदि यहां भी मानवता विरोधी मान्यताओं व प्रवृत्तियों की पुनरावृत्ति हुई तो निश्चित ही स्थानीय जैन समाज की प्रतिष्ठा को हानि पहुंचेगी और जैनधर्म के नाम पर कलंक लगाने की स्थिति बन सकती है।

श्रीसंघ जयपुर ने अपने यहां की इस स्थिति का विश्लेषणात्मक विवेचन करते हुए पूज्य आचार्य श्रीजी की सेवा में निवेदन किया कि आपश्री जयपुर में ही चातुर्मास करने की स्वीकृति फरमावें। आपश्री के विराजने से हमें धर्म-विध्वंसनी हरकतों के उन्मूलन का साहस प्राप्त होगा और जैनधर्म व समाज की प्रतिष्ठा को सुरक्षित रखने के प्रयास में सफलता प्राप्त होगी।

श्रीसंघ जयपुर के प्रतिनिधिमंडल के विवेचन से आचार्य श्रीजी ने वहां की स्थिति और उसके परिणाम का अनुमान लगा लिया था। लेकिन समय की कमी, शारीरिक निर्बलता और घुटनों में पीड़ा के कारण अधिक लंबा विहार न हो सकने की स्थिति को देखते हुए आपश्री ने फरमाया कि आप लोग मेरी शारीरिक स्थिति को जानते ही हैं और ग्रीष्मऋतु के प्रचंड ताप के कारण इतने अल्प समय में उज्जैन से जयपुर पहुंचना शक्य नहीं दिखता है। मैं जयपुर पहुंचने की भावना भी रखूं, लेकिन पहुंचना तो इस शरीर को है। अतः आप अन्य सन्तों का चातुर्मास कराने की चेष्टा कीजिये।

आपश्री द्वारा व्यक्त भावों के उत्तर में प्रतिनिधिमंडल ने निवेदन किया कि शारीरिक स्थिति, समय की न्यूनता और भौगोलिक दूरी के कारण आपश्री ने जो कुछ फरमाया, वह उचित है। लेकिन जब हम अपने यहां की स्थिति की कल्पना करते हैं तो घबराहट होने लगती है कि हमारे यहां एक ओर तो धर्मनिन्दा के कार्यों की तैयारियां हों, जनसाधारण में जैनधर्म के प्रति अन्यथाभाव बनने की स्थिति बन रही हो और दूसरी ओर हम परवश होकर उसके प्रतिकार के लिये कुछ भी न कर सकें। इस परिस्थिति में आपश्री के सिवाय हमें अन्य कोई उबारने वाला नहीं दिखता है। आपश्री के जयपुर पधारने से ही

हमें सन्तोष मिल सकेगा।

परमकारुणिक, परदुःखकातर आपश्री ऐसी धर्मविरोधी प्रवृत्तियों को सहन करने के सर्वथा विरुद्ध थे। अतः शारीरिक स्थिति की अवगणना करके द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव को ध्यान में रखते हुए सं० २००६ का चातुर्मास जावरा न करके जयपुर करने की स्वीकृति श्रीसंघ जयपुर के प्रतिनिधिमण्डल को दे दी।

श्रेयांसि बहुविघ्नानि

सं० २००६ का चातुर्मास जयपुर करने की स्वीकृति के साथ ही आपश्री ने जयपुर को लक्ष्य बनाकर उज्जैन से महीदपुर आदि की ओर विहार कर दिया और ग्रीष्मऋतु एवं मार्गजन्य क्षुधा, पिपासा आदि विविध परिषहों को सहन करते हुए कोटा पधारे। शारीरिक अस्वस्थता और घुटनों में दर्द तो पहले से चल ही रहा था लेकिन मार्ग में आने वाली परिषहों से पीड़ा कुछ विशेष बढ़ गई। अतः कुछ दिन कोटा में विश्राम कर आगे विहार करने का विचार किया।

कुछ दिन विश्राम कर आपने कोटा से जयपुर की ओर विहार किया तो कुछ दूर बढ़ने पर ही आपकी शारीरिक वेदना ने उग्ररूप ले लिया। जब यह खबर कोटा श्रीसंघ ने सुनी तो उसने कोटा विराजने का विनम्र निवेदन करते हुए वापस कोटा की ओर विहार करवा दिया। वेदना की शांति और शारीरिक स्वास्थ्य में कुछ परिवर्तन होने पर पुनः कोटा से विहार कर दिया और आषाढ़ शुक्ला १२ को जयपुर पधार गये।

आपके पदार्पण से विवेकशील जैन बंधुओं के हर्ष का पार न रहा और बड़े ही उत्साह से अगवानी करते हुए नगर के प्रसिद्ध राजमार्ग सवाई मानसिंह हाईवे (चौड़ा रास्ता) पर स्थित लालभवन में ससमारोह पदार्पण कराया।

आपका स्वास्थ्य ठीक नहीं था और मार्ग में रुग्ण हो जाने से कमजोरी बढ़ गई थी। कुछ समय विश्राम करने की जरूरत थी लेकिन जिज्ञासुओं की भावना को देखकर आपश्री ने प्रवचन फरमाना प्रारम्भ

कर दिया, जिनका जयपुर के नागरिक लाभ उठाते थे। आपके प्रवचनों के भाव इस प्रकार होते थे—

'आज मानव अज्ञान एवं स्वार्थ के अन्धकार में भटक रहा है। उसका तेज, प्रतिभा एवं प्रकाश क्षीण होता हुआ-सा लग रहा है। उसने अधिकांशतः अपने जीवन की महत्ता स्वार्थपूर्ति में ही समझने की चेष्टा करनी शुरू कर दी है। वह नहीं देखना चाहता है कि उसकी इस स्वार्थपूर्ति की चेष्टा में कितना अन्याय, शोषण एवं उत्पीडन उसके हाथों से हो रहा है।'

'व्यवहारिक जीवन को संयमपूर्वक सफल बनाने की कुछ कुंजियां बताई गई हैं कि समय की अव्यवस्था मिटाकर प्रत्येक कार्य में विवेक पूर्वक नियमितता लाना, आत्मनिर्भर होकर गृहस्थाश्रम में भी स्वलक्षानुरूप उत्तरदायित्व का ध्यान रखना, चारित्र की महत्ता को दैनिक जीवन में उतारना, आय और व्यय को असतुलित नहीं रखना, कुसंगति से दूर रहने का ख्याल रखना, सबके साथ शिष्ट व शोभनीय व्यवहार का उपयोग रखना, पूर्ण विचारपूर्वक सही दिशा में सोचे बिना कोई भी कार्यारम्भ नहीं करना आदि। जिन्हें प्रयोग में लाकर लौकिकजीवन में भी संयम का एक सरल सतुलन पैदा किया जा सकता है।'

'आज आप लोग देखते हैं कि कई व्यर्थ के लोक-व्यवहारों एवं रीति-रस्मों में लाखों रुपयों का पानी कर दिया जाता है, किन्तु सत्साहित्य-प्रसार व धर्म-प्रचार के नाम पर खर्च करने में नाक-भौं सिकोड़ा जाता है। यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि मनुष्य के जीवन-निर्माण में सत्साहित्य का अध्ययन एवं मनन कितना अमूल्य योग देता है। साहित्य मस्तिष्क का विकास करता है और मस्तिष्क उस आधार पर विचारश्रेणी को उच्च बनाकर सत्कार्यों में प्रवृत्ति का मार्ग खोलता है।'

'आज देखा जाता है कि चेतन संसार जड़ अर्थ से शासित हो रहा है। मानव जी रहा है मानवता खोकर। इस अर्थमोह के पीछे जहां मानवता को विस्मृत किया जाता है वहां मर्यादा रक्षा और साधुता

की आशा करना दुराशा-सी जान पड़ती है । अर्थसंग्रह की भट्टियों में ईर्ष्या, द्वेष, कलह, स्वार्थ, माया और लोभ की ऐसी भीषण आग जलती है कि आत्मोत्थान के पथ पर भयंकर विस्फोट होते हैं, जो जन्म-जन्मान्तर तक आत्मा को विनाश एवं पतन के अन्धकूप में ढकेल देते हैं ।'

श्रोतागण ऐसे विचारों से प्रेरणा लेकर स्वय के द्वारा स्वयं को समझने के लिये उन्मुख होते थे । आपश्री के चातुर्मास से जैनधर्म, जैनत्व और जैनाचार के प्रति जनता में संमान भावना विकसित हुई ।

यह आडम्बर : यह प्रदर्शन

तेरहपंथ के प्रमुख आचार्य श्री तुलसी के आगमन और दीक्षार्थियों के नाम पर छोटे छोटे बालकों, बालिकाओं व नवयुवतियों की टोली को साथ में लाने के दृश्य को देखकर जनमानस में व्याप्त रोष समय के साथ कुछ शांत-सा दिखलाई देने पर पुनः दीक्षा के नाम पर उन अबोध बालक-बालिकाओं को मूंडने के प्रयत्न चालू हो गये । जनता पहले भी इस अयोग्य कृत्य के लिये अपना विरोध व्यक्त कर चुकी थी और पुनः अपने नगर की प्रतिष्ठा के विपरीत इस कार्य को किये जाने की तैयारी देखकर भड़क उठी । उसके क्षोभ और रोष का पार नहीं रहा एवं विश्वासघात का प्रत्युत्तर देने के लिये आंन्दोलन प्रारंभ कर दिया ।

बालकों को मूंडने की सब तैयारितां हो चुकी थीं और कार्यक्रम, समय आदि की भी घोषणा की जा चुकी थी । अतः इस जन-आंदोलन ने तेरहपंथियों और उनके प्रमुखश्री को असमंजस में डाल दिया और अपनी प्रतिष्ठा का प्रश्न बना लिया । अतः अपने कृत्य के समर्थन में स्वयं को असमर्थ मानकर येनकेन प्रकारेण जनसाधारण को प्रभावित करने के लिये देश के राजनैतिक दलों के नेताओं को जयपुर लाना व उनके सार्वजनिक रूप में भाषण करवाना चालू किया । प्रतिदिन अनचाहे मेहमान की तरह कोई-न-कोई नेता आते और अनुचित कृत्य से जनता का ध्यान बटाने के लिये वाक्चातुर्य प्रदर्शित कर चल देते थे । परन्तु उन नेताओं की तथ्यहीन भाषा जनता को विचलित

करने में सफल नहीं हुई।

जनता की प्रतिक्रिया से तेरहपंथियों में दिनोंदिन भय और चिन्ता बढ़ रही थी और अपने भक्तों को इस भयावह स्थिति की जानकारी देते हुए अधिक संख्या में जयपुर आने और चन्दा-चिट्ठा करने के समाचार तार व पत्रों द्वारा पहुंचाये जा रहे थे और कहीं-कहीं तो प्रतिनिधियों को भी भेजा गया। फलस्वरूप अनेक व्यक्तियों का जमघट जयपुर में होना शुरू हो गया और जनबल, धनबल या साम, दाम, दंड, भेद की कूटनीति से जनता को प्रभावित करने की तजबीजें सोची जाने लगीं। लेकिन इनका जनता पर उलटा ही प्रभाव पड़ा और वातावरण दिनोंदिन उग्र-से-उग्र बनता गया।

इन होने वाली अनुचित बाल दीक्षाओं के बारे में आपश्री का मंतव्य जानने के लिये प्रवचनों और तत्त्वचर्चाओं के समय स्थानीय विवेकशील विद्वान सेवा में उपस्थित होकर अपने प्रश्न रखते थे।

आपश्री दीक्षा के विरोधी नहीं थे और फरमाया करते थे कि मैं शास्त्रीय दृष्टि से दीक्षा का विरोधी नहीं हूँ। लेकिन वर्तमान समय में अबोध बालकों को दीक्षा देना उपयुक्त प्रतीत नहीं होता है। क्योंकि तत्त्वज्ञान का अधिकारी वही हो सकता है जो हेयोपादेय का विवेक करने में सक्षम है। जिसे अभी सीधा-सादा जीवन-व्यवहार भी चलाते नहीं आता, वह परमार्थ की विशेष स्थिति कैसे साध सकता है। ऐसे व्यक्ति भी तत्त्वज्ञान एवं जीवनशुद्धि के क्षेत्र में आने के प्रायः योग्य नहीं होते हैं जिन्होंने जीवन में असफलताओं के कारण पलायनवादी मनोवृत्ति को अपनाया है। सही मायने में ऐसे उदासीन, अबोध और अतृप्त मानव तत्त्वज्ञान का विकास नहीं कर सकते और न ही शुद्धि के मार्ग पर बढ़ने का अध्यवसाय कर सकते हैं।

दीक्षा लेना अति गंभीर उत्तरदायित्व है और उसका जीवनान्त तक निर्वाह करना पड़ता है। अतः दीक्षा अंगीकार करने वाले की क्षमता को परख लेना जरूरी है। दीक्षा जीवन का मौलिक परि-

वर्तन है, इसमें क्षणिक आवेश के लिये अवकाश नहीं है, किन्तु जीवन-पर्यन्त स्थायी रहनेवाला मानसिक, वाचनिक और कायिक त्याग का मार्ग है और वैसा त्याग सर्वांगरूप से अन्तर् में व्याप्त वैराग्य के विना नहीं टिक सकता है। सिर्फ वेश परिवर्तन से ही कोई प्रतिष्ठा-प्राप्ति का अधिकारी नहीं बन सकता है। अतः दीक्षा अंगीकार करने वाला सक्षम, समर्थ और विवेकबुद्धि युक्त होना चाहिये। तभी वह भलीभांति दीक्षा के महत्त्व को समझ सकता है और उसके प्रति समाज की आदर-संमान की भावना विकसित होगी।

क्रमिक विकास के अनंतर मुमुक्षु को स्वाधीन भाव से सोचने और अपने श्रेय का मार्ग निश्चित करने का अवसर दिया जाना चाहिये। ज्ञान और वैराग्यभावना आदि की पूरी तरह से परीक्षा हो जाने के पश्चात दीक्षा देने की बात पर विचार करना चाहिये।

कुछ एक शिष्य-लोभ से जो आये, उसे ही मूंड़ने की वृत्ति रखते हैं, तो कुछ एक की ऐसी भी धारणा है कि वैराग्य का आवेग आने पर तत्काल ही दीक्षित कर देने में उसका कल्याण है। लेकिन ऐसा समझना ठीक नहीं है, क्योंकि आवेग के शांत होने पर विचारा संसार के जंजाल में पुनः फंस सकता है और भोग-लालसा का गुलाम बन सकता है। अतः सामान्य मानव की तुलना में दीक्षा लेने वाले में महत्त्वपूर्ण आंतरिक परिवर्तन की अपेक्षा है। तभी वह तत्त्व का तल-स्पर्शी चिन्तन और सदाचरण करने में सफल होगा एवं अधिक विनम्र बनने का प्रयत्न करेगा।

आपश्री के उक्त मंतव्यों के अनुरूप ही जयपुर के विचारक और जागरूक बुद्धिजीवी वर्ग के विचार थे। उनका यही कहना था कि योग्य दीक्षार्थी को अवश्य दीक्षा दी जाना चाहिये और इस पुनीत कार्य के लिये मनसा, वाचा, कर्मणा हमारी सहमति है। लेकिन सिर्फ आडंबर और प्रदर्शन के लिये इन अवोध बालकों व किशोरियों की भावुकता का लाभ लेकर चेले मूंडने की प्रक्रिया के वारे में हमारा विरोध है और ऐसे

कृत्य से हम अपने व अपने नगर के नाम को कलंकित नहीं होने देंगे। लेकिन इतनी सीधी और सरल बात भी इन अनुचित दीक्षाओं के कराने के लिये उतावले सज्जनों और उनके प्रमुख आचार्यश्री तुलसी की समझ में नहीं आ रही थी।

आखिर नागरिकों के रोष से परास्त होकर तेरहपंथियों ने एक नई पैंतरेबाजी चालू की और प्रचार के लिये मनघड़न्त आरोपों के साथ पपलेट प्रकाशित करना प्रारंभ किया और उनमें आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. पर आरोप लगाना शुरू कर दिया।

तेरहपंथियों के लिये यह परंपरा नई नहीं थी। पहले भी जब पूज्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. एवं उसके पश्चात चरितनायक जी विचरण करते हुए थलीप्रदेश में पधारे थे तो उस समय इससे भी अधिक निन्दनीय वृत्ति का प्रदर्शन करने से नहीं चूके थे। कई एक पाषाण-हृदयों ने तो गोचरी-हेतु पधारे संतों के पात्रों में आहार के बदले पत्थर रखने में भी संकोच नहीं किया था। कतिपय कृत्य तो इसकी अपेक्षा भी गर्हणीय हैं, जिनका उल्लेख करने से मानवता कलंकित और सभ्यता लांछित होती है तथा साधारण समझदार व्यक्ति उन कार्यों का अनुमोदन नहीं कर सकता है।

इसप्रकार के प्रचार और छींटाकसी ने आग में घी का काम किया। जनता का रोष भड़क उठा और उसकी जो प्रतिक्रिया हुई, उससे ऐसा मालूम होने लगा कि यह चिनगारी न जाने कितने घरों को फूंक डालेगी। जब इस बात के लिये अयोग्य कार्य करने वालों और उनके प्रमुख आचार्यश्री तुलसी से स्पष्टीकरण चाहा तो उत्तर देना दूभर हो गया और नये-नये उपाय सोचे जाने लगे।

मगर आचार्य श्री गणेशलाल जी म. सा. इस भ्रांत प्रचार से किंचिन्मात्र भी विचलित नहीं हुए। विचलित वही होते हैं जिनकी आत्मा पक्षपात से भरी हुई हो और अपने अहम् के पोषण के लिये प्रतिपल प्रयत्नशील हों। आपश्री तो 'माध्यस्थभावं विपरीत वृत्तौ' के साधक थे।

आपका लक्ष्यविन्दु था— मुनियो ! तुम पृथ्वी के समान क्षमाशील वनो और निन्दा-प्रशंसा के भेदभाव में न पड़कर अपने आपको देखो। निन्दा करने वाला निर्मल बना रहा है, साधना में सहायक हो रहा है। अतः उसके प्रति किसी प्रकार का द्वेषभाव न रखकर उसका कल्याण करो, उसको सुबुद्धि-प्राप्ति की सत्कामना और सद्भावना रखो।

तेरहपंथी अपनी सुरक्षा के लिये विविध चक्रव्यूहों की रचना में लगे हुए थे। नेताओं को लाने का तांता तो चालू ही था लेकिन सफलता की आशा नहीं दिख रही थी। अतः इसी श्रृंखला के बीच स्वार्थसाधना में तन, मन, धन से सहयोग देने वाले कलकत्ता निवासी कतिपय धनिकों के द्वारा दौड़धूप कराकर तत्कालीन जनता में विशेष रूप से प्रसिद्ध नेता श्री जयप्रकाशनारायण को भी जयपुर लाया गया। वायुयान से उतरते ही श्री जयप्रकाशनारायण को बड़े आदर-सत्कार के साथ अपने प्रमुख आचार्यश्री तुलसी के पास ले गये और काफी समय तक एकान्त में वातचीत होती रही। ऐसा भी सुना जाता है कि उनके समक्ष अनेक सांकेतिक प्रस्ताव भी रखे गये। लेकिन उन्होंने तत्काल ही अपना मंतव्य व्यक्त न करते हुए कहा कि विश्रामस्थल पर पहुंचने के पश्चात ही शांति से सोच-समझकर कुछ कहा जा सकेगा।

अनंतर जब श्री जयप्रकाशनारायण को उनके विश्राम-स्थल की ओर ले जाने के लिये कार को बढ़ाया तो उन्होंने लालभवन में विराजित आचार्य श्री गणेशलाल जी म. सा. के पास चलने के लिये कार-चालक को संकेत किया और वहां आकर काफी देर तक आचार्य श्रीजी से वार्तालाप करते रहे।

वार्तालाप के प्रसंग में वालदीक्षा विषयक चर्चा भी चल पड़ी और श्री जयप्रकाशनारायण ने सम्बन्धित विषय में आचार्य श्रीजी के विचारों को जानने की जिज्ञासा व्यक्त की। अतः आचार्य श्रीजी म. सा. ने अपने पूर्व में व्यक्त किये गये भावों को पुनः स्पष्ट करते हुए फरमाया कि—

जैनदीक्षा के माने हैं अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और

अपरिग्रह— इन पाँच महाव्रतों का सर्वांशतः शुद्ध पालन करने का जीवन-व्रत। इस व्रत के पालन करने की गंभीरता के बारे में दो मत नहीं हो सकते हैं। इस व्रत को अंगीकार करने के पश्चात् छोड़ देने की कोई व्यवस्था ही नहीं है। अर्थात् दीक्षित होने के अनंतर कोई गार्हस्थिक जीवन में पुनः आने की आकांक्षा करे तो उसे शासकीय कानून की दृष्टि से कोई जबरदस्ती नहीं रोक सकता है, परन्तु ऐसा करने वाले की धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र में अप्रतिष्ठा होती है, संमान की दृष्टि से नहीं देखा जाता है, विश्वास का पात्र नहीं रहता है और प्रायः उससे कोई किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रखता अर्थात् समर्थन नहीं देता है। जिसका दीक्षार्थी को भान करा देना चाहिये। लेकिन अपरिपक्व बौद्धिक-विकास की स्थिति में ऐसा ज्ञान होना संभव नहीं दीखता। इसलिये परिस्थिति की जानकारी न देकर किसी को भ्रम में रखना योग्य नहीं माना जा सकता है।

मानव की शैशवावस्था सस्कारों के समाजंन की सर्वोत्तम स्थिति है। चाहे फिर वे संस्कार जीवन को विकास की ओर ले जाने वाले हों या ह्रास की ओर ले जाने वाले हों। दीक्षा— यह एक उच्चस्तरीय संस्कार है और इस संस्कार की वास्तविक स्थिति साकार रूप ले तो विश्व में अभूतपूर्व आध्यात्मिक विज्ञान का आदर्श उपस्थित हो सकता है। यह एक वैज्ञानिक तथ्य है और मानवकल्याणार्थ ऐसे आदर्शों की आवश्यकता है। अतः शैशवावस्था की मनोवैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक शक्ति की दृष्टि से पूर्णरूपेण परीक्षा की जाये और परीक्षक को तटस्थ, निःस्वार्थ एवं अनासक्त वृत्ति वाला होना चाहिये एवं परीक्षार्थी की स्थिति भी साहजिक होना चाहिये। वर्तमान में ऐसी स्थिति का प्रायः अनुभव नहीं हो रहा है। अतः शास्त्रीय दृष्टि से बालदीक्षा का निषेध नहीं होने पर भी द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव आदि परिस्थितियों का ध्यान तो अवश्य ही रखना चाहिये। साधुओं की संख्या बढ़ाने के लिये येन-केन प्रकारेण किसी को भी साधुसंस्था में प्रविष्ट करा देना साधु-

गतवर्ष के प्रमादजन्य कार्यों के लिये प्रतिक्रमण कर चौरासीलक्ष जीव-योनि से खमतखामणा की गई।

संवत्सरी के अगले दिन सहयोगी सन्तों के साथ आचार्यश्रीजी म. सा. प्रातःकालीन चर्या के निमित्त रामनिवास बाग की ओर पधारे। वहीं बाग में आचार्यश्री तुलसी से साक्षात्कार हुआ।

पारस्परिक खमतखमापना के दौरान ही अप्रासंगिक रूप में आचार्यश्री तुलसी ने कहा— देखो गणेशलाल जी, मैं थांने एक बात कहूँ हूँ के थारो रवैयो ठीक नईं।

इस अप्रासगिक बात को सुनकर आचार्य श्रीजी ने फरमाया— कैसा रवैया ?

प्रत्युत्तर में आचार्यश्री तुलसी ने कहा— थारी तरफ से छींटा-कसी हुई है, पंपलेट बंटावो हो, आ ठीक कोइनी, इने बंद कर देनी चाहिजे।

तब आचार्य श्रीजी ने फरमाया कि यह आपका और आपके अनुयायियों का भ्रम है। न तो मैं छींटाकसी करता हूँ और न वैसे पंपलेटों को छपवाता या बंटवाता हूँ और न पंपलेटों में मेरा कोई सह-योग भी है। हां, श्रावकों द्वारा लाये हुए कुछ पर्चे देखे जरूर हैं परतु उनमें ऐसी कोई बात मेरे ध्यान में नहीं आई है जो निन्दाजनक हो या व्यक्तिगत आक्षेप किये गये हों। उनमें जो कुछ भी लिखा गया है, आपके द्वारा प्रकाशित पुस्तकों के उद्धरण मात्र हैं और उनमें छींटा-कसी मानना आपकी भूल है।

इस बात को सुनकर आचार्यश्री तुलसी पसीना-पसीना हो गये और अपने समीप में खड़े शिष्य के कंधे का सहारा लेकर खड़े होकर बोले— थें मने बदनाम करो !

इसके प्रत्युत्तर में आचार्य श्रीजी ने फरमाया कि बदनाम करने जैसी कौनसी बात है। सैद्धान्तिक सत्य को स्पष्ट रूप से कहना प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है। तदनुसार तात्त्विकदृष्टि से प्रतिपादन मैं भी करता हूँ किन्तु विपरीत प्ररूपणा करने से जनता की गलत धारणायें

बनती हैं और वह जैनधर्म को उपेक्षणीय समझे तो ऐसा किसी भी जैनधर्मानुयायी को अभीष्ट नहीं हो सकता है। आप भी ऐसा ही मानते हैं और मैं भी जैनधर्म के आचार-विचारों का अनुसरण करनेवाला हूँ, अतः यदि मैं शुद्ध तत्त्व का प्रतिपादन नहीं करता या तदनुसार आचार-विचार नहीं रखता हूँ तो अपने कर्तव्य से गिरता हूँ।

दूसरी बात यह है कि आपको बदनामी का भय क्यों? आपके मान्य ग्रन्थ भ्रमविध्वंसन में लिखा हुआ है— 'साधुथी अनेरो ते कुपात्र छे। अन्यने दीधां अन्य प्रकृतिनो बंध छे। अन्य प्रकृति पापनी छे।' इस उल्लेख के अनुसार अभीप्सित के अतिरिक्त जितने भी मनुष्य हैं, उनको उनके योग्य आहार-पानी देने, सेवा-सहायता करने आदि में आप एकान्त पाप बताते हैं और ऐसी मान्यता का प्रतिपादन करते हैं। यदि यह मान्यता आपकी व्यक्तिगत होती तो भी उपेक्षा कर देते, लेकिन जब जैनधर्म के नाम पर इन मानवता-विरोधी बातों का प्रतिपादन होता है तो जैनधर्म के बारे में घृणा, भ्रांति फैलना संभवित है और उस घृणा व भ्रांति को मिटाना प्रत्येक जैनधर्मावलंबी का कर्तव्य है।

यदि आप भूखे को भोजन, प्यासे को पानी, रोगी को औषधि देने एवं अन्य परोपकारी कार्य करने में पाप नहीं मानते हैं तो स्पष्ट घोषणा कर दीजिये कि मैं इन या ऐसे ही अन्यान्य दयादान-सम्बन्धी कार्यों में पुण्य व धर्म मानता हूँ। मेरे पूर्ववर्तियों ने जो दयादान-विरोधी मान्यतायें प्रतिपादित की हैं, वे सब मिथ्या हैं, भूल भरी हैं और जैनधर्म के सिद्धान्तों के विपरीत हैं।

यदि इन सब बातों के बारे में आप और मैं यहीं किसी स्थान पर बैठकर निर्णय कर लें कि शुद्ध सिद्धान्त क्या है? यह स्पष्ट हो जाये और आपके भ्रम का विध्वंस हो जाये तो आप व आपके अनुयायी जैनधर्म के सिद्धान्तों के वास्तविक प्रतिपादन करने वाले कहला सकेंगे और स्थानकवासी समाज में रही हुई संप्रदायों की तरह आपकी भी एक संप्रदाय मानी जाने लगेगी।

संस्था, समाज और स्वयं व्यक्ति के लिये भी हितकर प्रतीत नहीं होता है।

दूसरी बात यह भी है कि दीक्षा देना सिर्फ व्यक्तिगत प्रश्न नहीं है किन्तु सामाजिक क्षेत्र को भी अतिनिकट से छूता है। यदि इससे भी आगे बढ़कर विचार करें तो ज्ञात होगा कि साधु-संस्था का यथार्थ उत्कर्ष अयोग्य दीक्षाओं के पोषण या उत्तेजन देने से नहीं हो सकता है। साधु-संस्था के बारे में ममत्व रखने वालों का आग्रह होना चाहिये कि हमारे साधुओं में ऐसा एक भी व्यक्ति न हो, जिसे देखकर जनता हंसी उड़ाये और उससे जैनधर्म को भी उपेक्षापात्र बनना पड़े।

इसलिये साधु-संस्था के गौरव को अक्षुण्ण बनाये रखने या उसे नष्ट करने का निर्णय विवेकशील, गंभीर चिन्तकों को करना है। दीक्षायें हों, साधु-संस्था के प्रभाव, उत्कर्ष में वृद्धि हो और दीक्षार्थी अपने अंगीकृत व्रत—प्रतिज्ञा की साधना में पूर्ण निष्ठा, निर्भयता से तत्पर हों, इसी में दीक्षार्थी और दीक्षागुरु का गौरव है।

सम्बन्धित प्रश्न के बारे में श्री जयप्रकाशनारायण के भी ऐसे ही विचार थे और आचार्य श्रीजी के उक्त उदार विचारों को जानकर काफी प्रभावित हुए। वार्तालाप-समाप्ति के अनंतर श्री जयप्रकाशनारायण ने वंदना करते हुए कहा कि मैं जनता का विनम्र सेवक हूँ और उसके हितार्थ ही मेरी कार्य-प्रवृत्ति है। उसमें आपका आशीर्वाद चाहिये।

एतदर्थ आचार्य श्रीजी ने इस आशय के भाव व्यक्त किये कि सार्वभौम महाव्रतों को स्वीकार करके साधुवृत्ति की भूमिका प्राप्त की जाती है। उस साधुवृत्ति में विश्वकल्याण की भावना समाहित होती है और उसी वृत्ति के अनुरूप मानवकल्याण के शुभ कार्यों में सदा आशीर्वाद रहता ही है।

तत्पश्चात् उपस्थित जनसमूह के समक्ष पूज्य आचार्य श्रीजी के प्रति आभार प्रदर्शित कर श्री जयप्रकाशनारायण ने अपने विश्राम-स्थल की ओर प्रस्थान किया।

बालदीक्षा के बारे में अपना दृष्टिकोण व्यक्त करने और

सम्मति देने के लिये श्री जयप्रकाशनारायण द्वारा निर्धारित समय के पूर्व ही बालदीक्षा के सम्बन्ध में अनुकूल सम्मति प्राप्त करने के लिये कतिपय व्यक्ति उनके पास पहुंचे और उसी समय सम्मति देने के लिये दबाव डाला। किन्तु इस प्रक्रिया से श्री जयप्रकाशनारायण का मानस क्षोभ से भर गया और असंमानजनक कार्य के लिये आने वालों की भर्त्सना करते हुए अपने कक्ष में चले गये और अन्दर आने की भी मनाई कर दी।

निर्धारित समय पर जनसमूह के समक्ष आकर श्री जयप्रकाश-नारायण ने व्यक्ति, समाज और धर्म की दृष्टि से बालदीक्षा की हानियां बतलाते हुए बालदीक्षा के विरुद्ध अपना मत व्यक्त किया। वक्तव्य प्रकाशित होते ही दयादानविरोधियों एवं बालदीक्षाओं के आयोजकों में खलबली मच गई और अपने विचारों को कार्यान्वित करने का पुनः साहस न कर सके।

पूर्वग्रह का प्रदर्शन

यद्यपि आचार्यश्री तुलसी और उनके अनुयायियों को जयपुर में होने वाली अबोध बालक बालिकाओं को दीक्षा न देने के लिये विवश होना पड़ा था और अपना आत्म-विश्वास भी खो बैठे थे, लेकिन दयादान के सम्बन्ध में बनाई गई भ्रांत मान्यताओं के समान ही यह धारणा बना ली कि इस जन-आन्दोलन में पूज्य आचार्य श्री गणेशलाल जी म. सा. का संकेत है। पूर्वग्रह से ग्रस्त मानस की प्रतिक्रिया ऐसी ही होती है और उस स्थिति में सत्य को समझने का प्रयत्न होना असम्भव हो जाता है।

पूज्य आचार्य श्री गणेशलाल जी म. सा. के प्रवचन पूर्ववत् लालभवन में होते थे। जिनका आबालवृद्ध जनसमूह लाभ लेता था और दिनोंदिन उपस्थिति बढ़ने से पर्यूषणपर्व के दिनों में प्रवचनों के लिये सुबोध हाईस्कूल के प्रांगण में व्यवस्था की गई।

पर्यूषणपर्व संयम-साधना और धर्मप्रभावना के त्रिविध आयो-जनों के साथ सम्पन्न हुआ। सांवत्सरिक प्रतिक्रमण पर्व के अवसर पर

अनंतर अपने साथ के संतों की ओर सकेत करते हुए आचार्य श्रीजी ने फरमाया कि ये मेरी नेश्राय में रहकर साध्वाचार का पालन कर रहे हैं, तो आप इनको सुपात्र मानते हैं या नहीं ?

पूज्य आचार्य श्रीजी के इस ओजस्वी और अर्थगंभीर कथन को सुनकर आचार्यश्री तुलसी कुछ उत्तर न दे सके। चेहरे का रंग क्षण-क्षण में बदल रहा था। अतः बिना कुछ कहे ही अपने समीपवर्तियों के कंधों का सहारा लेकर आगे बढ़ने का उपक्रम किया।

वाचनिक-सौष्ठव हेतु संकेत

वार्तालाप के प्रसंग में पूज्य आचार्य श्री गणेशलाल जी म. सा. साधुमर्यादानुसार अपने कथन में आचार्यश्री तुलसी को शिष्टजनोचित संमानसूचक 'आप' शब्द से सम्बोधित कर रहे थे, जबकि आचार्य श्री तुलसी 'थें, थांनें' आदि ग्राम्यबोली के संकेतों से सम्बोधित कर रहे थे।

इस प्रकार बिना कुछ उत्तर दिये आचार्यश्री तुलसी और उनके सहयोगियों को चलते देखकर आचार्य श्रीजी म. सा. ने उन्हें रुकने का संकेत करते हुए फरमाया कि आप अपने पंथ के आचार्य माने जाते हैं। यह शिष्ट और संस्कृत जनों में उच्च पद माना जाता है। अतः उस पद पर स्थित व्यक्ति को वार्तालाप करते समय शिष्ट और सभ्यजनोचित वचनोच्चारण करने की जरूरत है। मुझसे वार्तालाप करते समय आप मुझे थें, थांनें या नाम लेकर या अन्य किसी भी शब्द से सम्बोधित करें, उसके लिये कुछ नहीं कहना है, परन्तु अन्यत्र वार्तालाप का प्रसग आने पर समक्ष बैठे व्यक्ति को सभ्य, शिष्ट भाषा में सम्बोधित करने का ध्यान रखें। अभी आप जो वार्तालाप के प्रसग में 'थें थें' से सम्बोधित कर रहे हैं, यह शिष्टजनोचित भाषा नहीं है।

इस पर आचार्यश्री तुलसी ने कहा कि या तो म्हारे थलीरी ऊंची बोली है।

[illegible] हो सकता है, यह थली की ऊंची बोली हो। परन्तु अभी आप थली से बाहर निकल आये हैं और अपने संप्रदाय के आचार्य माने

जाते है। इसलिये देशकाल के अनुकूल भाषा का प्रयोग करें— पूज्य आचार्य श्रीजी म. सा. ने फरमाया।

हमारे आपके बीच तात्त्विक दृष्टि से सैद्धान्तिक एवं आचार-विचार का भेद है। मतभेद हो सकता है किन्तु मनभेद नहीं होना चाहिये। आत्मिकदृष्टि से आपकी आत्मा, मेरी आत्मा के समान है। इसलिये तात्त्विक विवेचना हेतु कुछ कहा गया है और उससे यदि आपकी आत्मा को कष्ट हुआ हो तो क्षमा चाहता हूँ।

इस संकेत पर आचार्यश्री तुलसी ने थली की ऊंची भाषा का प्रयोग न कर शिष्टजनोचित आप शब्द से सम्बोधित करना प्रारंभ किया और कहा कि आपकी तरफ से 'सुपात्र व कुपात्र चर्चा' पुस्तक प्रकाशित हुई है। जिसके मुख पृष्ठ पर छपा है कि— 'तेरहपंथी साधु अपने साधु के सिवाय सबको कुपात्र समझते हैं।' क्या यह छींटाकसी नहीं मानी जायेगी ?

आप ऐसा ही तो मानते हैं, आचार्य श्रीजी ने फरमाया। यदि ऐसी मान्यता नहीं है तो मैं आपसे पूछता हूँ कि मेरे अनुशासन में ये मुनिराज पंच महाव्रतों का पालन और संयमसाधना कर रहे हैं। इनकी श्रद्धा किसी जीव को बचाने में तथा साधु के सिवाय अन्य को दान देने में पाप मानने की नहीं है और न भगवान महावीर स्वामी को छद्मस्थ अवस्था में चूका (भूला) मानते हैं। तो क्या इन्हें आप साधु एवं सुपात्र मानते हैं ?

अपनी मान्यता की यथार्थता को प्रकट होते देखकर आचार्य श्री तुलसी बगलें झांकने लगे और उत्तर देते न बना तो खमतखामणा जोर-जोर से बोलते हुए चल दिये।

इस दृश्य को देखने के लिये दर्शकों का समूह एकत्रित हो गया था। आचार्य श्री तुलसी को जाते देखकर उन्होंने आवाज लगाई कि बिना उत्तर दिये क्यों जा रहे हैं, समाधान करने से क्यों झिझकते हैं। लेकिन जब स्वयं अपने को संभालना ही कठिन हो रहा था तो आचार्य

श्री तुलसी उत्तर क्या देते ? अतः अगल-बगल में खड़े साधुओं के कंधों का सहारा लेकर कांपते हुए-से चल ही दिये ।

नागरिकों के सत्य-आग्रह के कारण तेरहपंथियों द्वारा अपरिपक्व वय के अबोध बालकों की दीक्षाओं के रुकने और पूज्य आचार्य श्रीजी से हुए वार्तालाप से आचार्यश्री तुलसी के लिये आत्मनिरीक्षण का अवसर प्राप्त हुआ था, लेकिन वे अहं के वश होकर वैसा न कर सके।

पल्लीवाल क्षेत्रों की ओर

चातुर्मास धार्मिक प्रभावना के साथ सम्पन्न हुआ । जयपुर के वातावरण का प्रभाव देश के समग्र जैन सघों पर पड़ा। अलवर श्रीसंघ की हार्दिक भावना थी कि चातुर्मास समाप्ति के अनंतर आचार्य श्रीजी म. सा. का अलवर और उसके आसपास के क्षेत्रों में पदार्पण हो । इस आकांक्षा को लेकर अलवर श्रीसंघ, चातुर्मास काल के प्रारम्भ से ही विनती करता आ रहा था और समाप्ति के अन्तिम दिनों में पुनः उसने अपनी विनती दुहराई ।

चातुर्मास समाप्ति के पश्चात पूज्य आचार्य श्रीजी के अलवर की ओर विहार होने की सम्भावना थी कि इसी समय पल्लीवाल जैनों के अग्रणी सेठ श्री ऋद्धिचन्द जी जगन्नाथ जी गंगापुर, श्री नारायणलालजी जयपुर आदि-आदि के प्रतिनिधिमंडल ने विनती की कि अनेक वर्षों से हमारे उधर के क्षेत्रों में सन्तों का पदार्पण न होने से हम अपने धार्मिक आचार-विचारों को भूलते जा रहे हैं । नई पीढ़ी का तो साधु-सन्तों से संपर्क बिल्कुल रहा ही नहीं है (आपश्री के अलवर की ओर विहार होने की संभावना है, अतः हमारी यह प्रार्थना है कि सवाईमाधोपुर, हिंडौन, महुवारोड़ मंडावर आदि क्षेत्रों को जहां हमारी समाज के घर है, स्पर्श करते हुए पधारें तो बड़ा उपकार होगा ।

आचार्य श्रीजी ने परिस्थिति का विचार कर चातुर्मास-समाप्ति के अनंतर जयपुर से सवाईमाधोपुर आदि क्षेत्रों की ओर विहार किया। मार्गजन्य परिषहों की पग-पग पर संभावना रहती थी किन्तु आपश्री

का लक्ष्य एक ही था कि मानवीय आत्मा में जीवन की यथार्थता को समझने की शक्ति प्राप्त हो एवं धार्मिक श्रद्धा और आचार-विचार की सुदृढ़ता से विश्व का वातावरण संदेह, अनिश्चय एवं भय से मुक्त बने। इसी लक्ष्य की पूर्ति हेतु पल्लीवाल प्रदेश में पदार्पण किया और ग्राम-ग्राम और नगर-नगर को पावन बनाया।

बृहत्-साधु-सम्मेलन से पूर्व

करीब ३।। माह तक पल्लीवाल प्रदेश को धर्मदेशना से प्रभावित करते हुए आचार्य श्रीजी म. सा. हिन्डौन के आसपास विराज रहे थे। बृहत्साधु-सम्मेलन किये जाने की भूमिका बन रही थी और इस संबंध में आपश्री से चर्चा-वार्ता करने के लिये श्री अ. भा. श्वे. स्थानकवासी जैन कान्फरन्स का एक शिष्टमंडल पुनः सेवा में उपस्थित हुआ।

इन्हीं दिनों ब्यावर में भी स्थानकवासी जैन सन्तों की पांच-छह संप्रदायों का सम्मेलन होने जा रहा था। शिष्टमंडल ने विनती करते हुए निवेदन किया कि आपश्री उक्त अवसर पर ब्यावर पधारें और आपके नेश्राय में उसका कार्य-संचालन हो, ऐसी हमारी आकांक्षा है।

शिष्टमंडल के निवेदन पर विचार व्यक्त करते हुए आपने फरमाया कि जब बृहत्साधु-सम्मेलन होने के लिये आप प्रयत्न कर रहे हैं और उसके होने की सम्भावना भी दिख रही है तो यह पांच-छह संप्रदायों का अलग से संगठन बनाना महत्त्व नहीं रखता है। हां, यह बात जरूर है कि जो भी सन्त इस अवसर पर एकत्रित हों और वे सुसंगठन की भूमिका तैयार करें तो कोई हर्ज की बात नहीं है। मैं अभी इन क्षेत्रों में आ गया हूँ और इधर सन्तों के विहार की विशेष आवश्यकता है। अगर मैं इन क्षेत्रों से बिहार कर गया तो सम्भवतः पुनः स्पर्श नहीं जा सकें। अतः अभी मारवाड़ की ओर आने की स्थिति बनना संभव नहीं दिखता है।

शिष्टमंडल जिस उद्देश्य को लेकर आया था, वह पूर्ण नहीं हो सका। आपश्री इस प्रकार के आयोजनों द्वारा एकता के कार्यों को वेग

मिलने की संभावना नहीं समझते थे। विशाल उद्देश्य की पूर्ति मनसा-वाचा-कर्मणा एकरूपता और शुद्धि के धरातल पर ही सम्भव है।

पूज्य श्री पृथ्वीचन्दजी म. सा. से मिलन

पल्लीवाल प्रदेश के ग्रामों को स्पर्श करते हुए आप महुआरोड-मंडावर पधारे। जनता के उत्साह का पार न था। स्थानीय और आस-पास के क्षेत्रों के श्रोतागण प्रवचनों का लाभ उठाते थे। प्रथम दिन के प्रवचन में आपने धार्मिक-शिक्षण की आवश्यकता के बारे में फरमाया कि— जैनधर्म की स्पष्ट मान्यता है कि मनुष्य स्वयं ही अपने जीवन-विकास का आप विधाता होता है। उसका ही सद्गुणमय जीवन, त्याग व पराक्रम उच्चतम विकास के रूप में प्रतिबिम्बित होता है। सरल शब्दों में कहें तो जीवनविकास की इस दौड़ में सभी हिस्सा ले सकते हैं, आत्म-विकास कर सकते हैं और अपनी दौड़ने की सत्पुरुषार्थवृत्ति के आधार पर प्रतियोगिता में जीत हासिल कर सकते हैं। ऐसी अवस्था में विकास के लिये जो प्रयास करने की आवश्यकता होती है वह यह कि छिपी हुई शक्ति को आत्मविकास की रचनात्मक कर्मठता के तेज से प्रदीप्त व प्रकाशित की जाये और इस शक्ति को तेजवती बनाने का प्रबल साधन है— संस्कारयुक्त सद्शिक्षा। शिक्षा या विद्या की प्राचीन परिभाषा है—

'सा विद्या या विमुक्तये'

अर्थात् वही शिक्षण वास्तविक विद्या है जो जीवन को विकृति के सारे बन्धनों से मुक्त कर दे। यही शिक्षण का स्वरूप है। केवल अक्षरज्ञान कर लेने और पुस्तकीयवृत्ति को पनपा लेने में ही शिक्षा का उद्देश्य पूरा नहीं हो जाता। पुस्तकीय शिक्षा तो सच्ची शिक्षा की साधिका मात्र हो सकती है, क्योंकि विवेकपूर्वक प्राप्त शिक्षा मस्तिष्क को सही दिशा में सोचने के लिये समर्थ व योग्य बनाती है। इस प्राप्त-शिक्षा द्वारा तदनन्तर मस्तिष्क एवं हृदय को परिष्कृत तथा विकसित करना होता है। अतः शिक्षा के साथ संस्कार-निर्माण के विषय में साव-

धान रहना अति आवश्यक है।

वर्तमान समय में ऐसी संस्कारयुक्त सद्शिक्षा का सब ओर प्रसार हो— ऐसे प्रयास की जरूरत है।

आचार्य श्रीजी के ऐसे विचारों का स्थानीय संघ और आस-पास के क्षेत्रों पर प्रभावक प्रभाव पड़ा था और सद्शिक्षा के प्रसार के लिये स्थान-स्थान पर धार्मिक शालायें स्थापित हुईं। स्थानीय संघ के द्वारा भी धार्मिक-शिक्षण के लिये शाला स्थापित हुई।

जिस किसी ग्राम या नगर में आपश्री का पदार्पण होता तो आसपास के सैकड़ों बंधु प्रवचनों का लाभ लेने के लिये उपस्थित हो जाते थे। अलवर श्रीसंघ के सज्जन तो पल्लीवाल जैनों के क्षेत्रों में विहार होने के समय से ही प्रत्येक क्षेत्र में उपस्थित होकर लाभ उठा रहे थे। आचार्य श्रीजी के मंडावर में विराजने के अवसर पर श्रीसंघ आगरा का शिष्टमण्डल आगरा की ओर विहार कर वहां विराजित ठाणापति पूज्यश्री पृथ्वीचन्दजी म. सा. आदि सन्तों को दर्शन देने की विनती लेकर उपस्थित हुआ कि पूज्यश्री पहले इधर पधार कर बाद में अलवर पधारने की कृपा करावें।

इधर के क्षेत्रों में अभी आचार्य श्रीजी का विहार होना आवश्यक था और श्रीसंघ आगरा अपने यहां पदार्पण कराने की अभिलाषा व्यक्त कर चुका था। अतः इस स्थिति के सम्बन्ध में स्थानीय क्षेत्रों से परिचित सज्जनों से विचार करना आवश्यक समझ प्रातःकालीन चर्या के लिये जंगल की ओर जाते हुए आपश्री डाकबंगला में पधारे और वहां ठहरे हुए अलवर श्रीसघ के प्रमुख-प्रमुख गणमान्य सज्जन श्री रतनलालजी संचेती आदि से पूज्यश्री पृथ्वीचन्दजी म. सा. आदि के आग्रह भरे अनुरोध को लेकर आये हुए आगरा श्रीसघ के प्रतिनिधि-मडल की भावना के बारे में विचार किया और विचार-विमर्श द्वारा किये गये निर्णय के अनुसार आपश्री ने आगरा की ओर विहार करने के भाव प्रतिनिधिमंडल को बतलाये और आगरा की ओर विहार कर दिया।

श्रीसंघ आगरा स्वागत-समारोह के साथ अपने नगर में आपश्री का पदार्पण कराने का इच्छुक था लेकिन आप इस प्रकार के लौकिक प्रदर्शनों के प्रति उदासीन थे और इस प्रकार के आकर्षणों को साधु व साधुता के लिये श्रेयस्कर नहीं मानते थे। अतः किसी प्रकार का संकेत किये बिना अकस्मात लोहामंडी स्थानक में पधार गये।

आपश्री के पदार्पण की खबर सुनकर श्रद्धालु जनसमूह को आश्चर्य हुआ और परोक्ष में अपने-अपने स्थान पर चरणारविन्दों की वंदना कर लोहामंडी पहुंचने का तांता लग गया और पूज्यश्री पृथ्वीचन्द जी म. सा. आदि सन्तों के मध्य आपश्री को विराजित देखकर दर्शनार्थियों के मुखमंडल हर्षविभोर हो उठे।

कुछ समय लोहामंडी, मानपाड़ा आदि आगरा नगर के विभिन्न क्षेत्रों की जनता को जैनधर्म के मौलिक सिद्धान्तों से अवगत कराया।

आगरा से अलवर की ओर

आगरा श्रीसंघ की आकांक्षा थी कि आपश्री का कुछ समय यहां ही विराजना हो, लेकिन अभी पल्लीवाल जैन क्षेत्रों में अनेक गांवों को फरसने की भावना होने से पुनः भरतपुर, बयाना आदि की ओर विहार कर दिया। आगरा श्रीसंघ ने आभार मानते हुए विदाई दी।

आपश्री आगरा से विहार कर भरतपुर आदि आसपास के क्षेत्रों का स्पर्श करते हुए अलवर पधारे। समग्र जैन समाज और नागरिकों ने भावभीना स्वागत करते हुए नगर में प्रवेश कराया और श्री महावीर भवन में विराजे।

श्री महावीर भवन में प्रतिदिन होने वाले प्रवचनों का जनता लाभ उठाती थी। श्रोताओं की उपस्थिति की अधिकता से बहुत से श्रोताओं को बाहर बैठना पड़ता था। आपश्री सादा जीवन और उच्च आचार-विचार के प्रबल हिमायती थे अतः अपने प्रवचनों में जीवन को सादा, सरल और धर्मानुकूल बनाने के बारे में बार-बार संकेत करते

थे। आदर्श जीवन के बारे में आपके विचारों का सारांश इस प्रकार है—

'प्रायः सभ्यता को आचार-विचार का विषय माना जाता है और इस दृष्टि से वही देश सभ्य कहलाने का अधिकारी है, जहां के निवासी सत्कर्म-निष्ठा, नैतिक जीवन बिताने वाले और इन्द्रियों एवं आवश्यकताओं का दमन करने वाले होते हैं। संक्षेप में जो भौतिकता के गुलाम नहीं किन्तु भौतिकता जिनकी दासी है, वे ही सभ्य हैं और इन्हीं स्रोतों से सुसभ्यता के मधुर प्रवाह प्रवाहित हुआ करते हैं। कोरा भौतिक विकास चाहे बाह्य रूप में विकास प्रतीत होता हो, किन्तु उसमें आध्यात्मिकता की उच्चता आये बिना आत्मोत्थान का मार्ग प्रशस्त नहीं हो सकता।

'यही कहा जा सकता है कि चूंकि जीवन-विकास की दीवार नीति, धर्म और चारित्र की नींव पर टिकी हुई रह सकती है, अतः उस नींव को उखाड़ कर कोरी दीवार खड़ी नहीं रखी जा सकती है। इसलिये यांत्रिक प्रसार और व्यवस्था को सही मानव-विकास के अनुकूल नहीं बनाया गया तो उससे निर्गत सभ्यता विकृति का विषैला वातावरण ही बनायेगी। यांत्रिक-सभ्यता जीवन-विकास की दिशा में सहायक बन सके— इसके लिये आध्यात्मिकता को जीवन के सभी क्षेत्रों में अपनाना कल्याणकारी हो सकेगा।'

अलवर श्रीसंघ चातुर्मास करने के लिये पहले भी अनेक बार विनती कर चुका था और उस अवसर पर समस्त नगरवासियों ने सामूहिक रूप में अपनी भावना आपके श्रीचरणों में रखी और आपश्री ने भी विशेष उपकार होने की संभावनाओं को लक्ष्य में रखते हुए सं० २००७ का चातुर्मास अलवर करने की स्वीकृति फरमाई।

श्रीसंघ दिल्ली का शिष्टमंडल

जब अलवर से आसपास के क्षेत्रों में आपश्री के विहार होने की संभावना दिख रही थी तो उसी समय दिल्ली के प्रमुख श्रावक श्री लाला कुन्दनलाल जी जौहरी के नेतृत्व में श्रीसंघ दिल्ली का एक

शिष्टमंडल दिल्ली पधारने की विनती लेकर सेवा में उपस्थित हुआ और अपने यहां की परिस्थितियों की विशद जानकारी दी।

आपश्री ने समग्र परिस्थिति का पर्यालोचन करते हुए फरमाया कि चातुर्मास प्रारम्भ होने के पहले-पहले इधर के क्षेत्रों को फरसने की भावना है, उसमें दिल्ली क्षेत्र भी मेरे ध्यान में है। लेकिन समय पर क्या कैसी परिस्थिति बनती है, अभी से कुछ निश्चियात्मक रूप में नहीं कहा जा सकता है।

आसपास के क्षेत्रों को फरसते हुए आपश्री ने दिल्ली की ओर विहार कर दिया। जब दिल्ली के भाइयों को यह जानकारी मिली तो उनके आने-जाने का तांता-सा लग गया। वे सोचते थे कि यदि दिल्ली पधारने के समय का कुछ संकेत मिल जाये तो ठीक रहेगा। लेकिन आपश्री इस प्रकार की प्रवृत्ति से साधु को विलग रहना ही श्रेयस्कर मानते थे। अतः दिल्ली संघ के आग्रह को देखकर आपने फरमाया कि साथ के सन्तों के विहार आदि के अनुसार ही स्थिति बन सकती है।

इस उत्तर से दिल्ली श्रीसंघ ने विचार किया कि अपने को ही कुछ ऐसी व्यवस्था कर लेना चाहिये, जिससे प्रतिदिन विहार-स्थिति मालूम होती रहे और वैसी जानकारी के लिये संघ ने अपनी व्यवस्था कर ली।

जब आपश्री का दिल्ली की ओर विहार हो रहा था तो उन्हीं दिनों महावीर भवन (बारादरी) में स्थविरपदविभूषित मुनिश्री जग्गूमलजी म. सा. एवं उनकी सेवा में व्याख्यानवाचस्पति पं. र. मुनिश्री मदनलालजी म. सा. के सुशिष्य पं. र. मुनिश्री सुदर्शनमुनिजी म. सा. आदि ठा. विराजते थे। बाद में उपाध्याय कवि श्री अमरचंदजी म. आदि ठा. भी आगरा से विहार कर दिल्ली पधार गये थे।

अभूतपूर्व अगवानी: अभूतपूर्व स्वागत

आपश्री का दिल्ली में पदार्पण हुआ। श्रीसंघ के हर्ष का पार न था और नगर की सीमा पर उल्लास एवं उत्साहपूर्वक स्वागत किया। जिन राजमार्गों से आपका पदार्पण हो रहा था, वहां जनता की इतनी

भीड़ हो गई कि कहीं कहीं मोटर-कार आदि का यातायात भी रुक जाता था। चांदनी चौक में आते-आते तो आबालवृद्ध जनों की संख्या इतनी हो गई कि ट्राम-मोटरगाड़ियों आदि का आवागमन बिल्कुल ही रुक गया।

विशाल जनसमूह के साथ आपने महावीरभवन (बारादरी) में प्रवेश किया और प्रतिदिन होने वाले आपके तात्त्विक प्रवचनों से श्रोतागण लाभान्वित होने लगे।

जनता की जिज्ञासा

आपश्री के प्रवचनों को सुनकर जनता में जिज्ञासा पैदा हुई कि अभी कुछ दिन पहले आचार्यश्री तुलसी नामक जैन साधु आये थे और उनके साथ करीब पचास साधु और साध्वी थे। अनेक धनी-मानी व्यक्तियों की मोटरें भी आगे पीछे दौड़ रही थीं और कई लारियों में समान लदा आ-जा रहा था। प्रचार के लिये प्रचारकों की काफी बड़ी संख्या साथ में थी और जिनमें से कुछ सामयिक पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादकों से संपर्क साधने में व्यस्त हैं तो कुछएक नेताओं और बड़े माने जाने वाले व्यक्तियों को बारम्बार आग्रह पूर्वक विनतियां कर आचार्यश्री तुलसी के पास लाने में जुटे हुए हैं। जनसाधारण व शिक्षित समुदाय से सम्पर्क करने के लिये भी कुछ व्यक्तियों की नियुक्तियां की गई हैं और प्रचार के लिये एक कार्यालय खुला हुआ है, जिसमें हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी के जानकार कार्यरत हैं। फिर भी जनसमूह में आचार्यश्री तुलसी के प्रति कोई आकर्षण नहीं है और न वहां जाने का उत्साह है। अपितु हिचकिचाहट विशेष दिखाई देती है।

लेकिन एक ये जैन आचार्य हैं। जिन्हें न तो मान-सम्मान की आकांक्षा है और न प्रचार-प्रसार के द्वारा अपनी प्रसिद्धि के इच्छुक हैं, और न उनका अनुयायी वर्ग भी ऐसी कोई प्रवृत्ति करते देखा जाता है। फिर भी हजारों श्रोता उपस्थित होकर प्रवचनों का लाभ लेते हैं और तत्त्वचर्चा में विद्वानों का काफी अच्छा जमघट हो जाता है।

इस प्रकार की तुलनात्मक जिज्ञासा के फलस्वरूप जनता दोनों

आचार्यों की सैद्धान्तिक मान्यताओं को जानने के लिये उत्सुक हुई तो ज्ञात हुआ कि आचार्यश्री तुलसी धर्म के मूल उपादान—अहिंसा की विकृत व्याख्या कर प्रकारान्तर से ऐसी विचारधारा का प्रचार करने में तत्पर हैं, जिसका समर्थन विश्व का कोई धर्म, मत या संप्रदाय नहीं करता और कोई भी सहृदय व्यक्ति किसी प्राणी पर दया करना या दान देना धर्मविरुद्ध नहीं मान सकता है। सभी विचारकों और तत्त्व-मनीषियों ने दया करना और दान देना मानवता का अंग माना है। इन मानवताविरोधी धारणाओं को जानकर जनता में जैनधर्म के बारे में भ्रम फैलने लगा और अन्यान्य आरोपों से लांछित करने लगी।

जनता की इस मानसिक स्थिति का समाधान करने के लिये आचार्य श्रीजी म. सा. ने प्रवचनों में जैनधर्म के आचार-विचारमूलक सिद्धान्तों का विशद विवेचन करना प्रारम्भ कर दिया और प्रसंगवश तुलनात्मक दृष्टि से दया-दान की विशदता और तेरहपंथियों की मान्यताओं का भी संकेत कर देते थे।

इससे जनता को जैनधर्म के सिद्धान्तों की सही जानकारी मिली और समझ लिया कि जैनधर्म के नाम पर जिन मान्यताओं का प्रचार किया जा रहा है, उनका जैनधर्म से सामंजस्य नहीं है।

वैसे तो आपश्री के दिल्ली पदार्पण होने के समय से ही तेरहपंथियों व आचार्यश्री तुलसी के मन में एक प्रकार की घबराहट व्याप्त हो चुकी थी और अपनी मान्यताओं को छिपाने के लिये नित नई नई तरकीबें की जाने लगी थीं। लेकिन जनमानस की प्रतिक्रिया से उनको यह आशंका हुई कि यहां भी जयपुर की तरह तेरहपंथ खतरे में पड़ सकता है। मौखिकरूप से प्रचार कार्य प्रारम्भ किया ही जा चुका था और उससे भी जब जनमानस की प्रतिक्रिया में परिवर्तन न देखा तो पर्चेबाजी चालू कर दी। पर्चों में आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. व अन्यान्य गणमान्य श्रावकों आदि पर आक्षेप करने के सिवाय सैद्धान्तिक मान्यताओं के बारे में कुछ भी नहीं लिखा जाता था। अतः उनमें शिष्ट-

जनोचित भाषा के प्रयोग करने का तो सवाल ही नहीं रहता था।

इन्हीं दिनों 'अमरभारत' पत्र में आचार्यश्री तुलसी के अनुयायी श्री शुभकरणजी सुराणा चूरू का एक लेख प्रकाशित हुआ। जिसमें आचार्यश्री गणेशलाल जी म. सा. पर मनचाहे आरोप लगाते हुए दम्भ-प्रदर्शन के साथ लिखा गया कि यदि किसी बात में मतभेद हो और समझ में न आती हो तो आचार्यश्री तुलसी से मिलकर समाधान प्राप्त कर लें। साथ ही चेतावनी देते हुए लिखा गया कि गंदे प्रचार से तो रागद्वेष बढ़ने और जैनधर्म की अवहेलना होने की सम्भावना है।

तेरहपंथियों की पर्चेबाजी का खेल दिल्ली की समग्र जैन-समाज शांति से देख रही थी, लेकिन श्री सुराणाजी के तथाकथित लेख ने समाज-मानस को झकझोर दिया। समाज के अनेक अग्रगण्य सज्जनों ने यह सब स्थिति आपश्री से निवेदन की। अतः श्रोताओं के बारंबार निवेदन करने पर आपने प्रवचन में लेख का सर्वांग स्पष्टीकरण किया कि जीवरक्षा करना परम धर्म है, हां उसमें विवेक परम आवश्यक है। हम साधु भी प्राणिरक्षा का कार्य कर सकते हैं और करते हैं। हमारे लिये शास्त्रों में जो मर्यादायें बांधी हैं, उनका उल्लंघन न करते हुए निर्दोष साधनों से हम किसी भी कष्टग्रस्त प्राणी की कष्टमुक्ति में सहयोग दे सकते हैं। ध्यानस्थ व्यक्ति की नजर भी यदि किसी सताये जाते हुए प्राणी पर पड़ जाये तो ध्यान खोलकर उसको कष्ट से छुड़ाकर वापस ध्यान में आकर बैठ जाये। यह तो हृदय की विशालता है। जिन लोगों का हृदय पत्थर का बना हुआ है, वही यह कह सकते हैं— रक्षा करना पाप है, मरने वाला अपने कर्मों को भुगत रहा है, अपने पूर्वजन्म का कर्जा चुका रहा हैं, तुम बीच में पड़कर बाधा क्यों डालते हो। यह कथन शास्त्र और अनुभव के विरुद्ध है।

विचारकों का निश्चय

इस स्पष्टीकरण से प्रवचन में उपस्थित विद्वानों, विचारकों और जनसाधारण को सन्तोष हुआ और उन्होंने तय किया कि अब

दोनों सम्प्रदायों के आचार्य तथा अन्यान्य प्रमुख सज्जन दिल्ली में विद्यमान हैं तो दया-दान-सम्बन्धी प्रश्नों के बारे में चर्चा करके निर्णय कर लिया जाये। जिससे सही स्थिति सामने आ जाये और जनसाधारण में भ्रांत धारणायें न फैलें।

उक्त विचारानुसार कुछ प्रमुख विचारक जैनबंधु श्री रामकृष्णजी डालमिया के बंगले पर पहुंचे। वहां आचार्यश्री तुलसी द्वारा भाषण दिये जाने का कार्यक्रम बनाया गया था। भाषण में इनेगिने व्यक्तियों के अतिरिक्त विशेष रूप से आमंत्रित सर्वश्री जैनेन्द्रकुमार जी जैन, पं० राजेन्द्रकुमार जी शास्त्री, लाला राजकृष्ण जी जैन उपस्थित थे। इन सज्जनों के पहुंचने पर श्री रामकृष्णजी डालमिया को भी बुला लिया गया।

भाषण-समाप्ति के अनन्तर आचार्यश्री तुलसी की अनुमति लेकर आने वालों में से एक सज्जन ने आचार्यश्री तुलसी को संबोधित करके स्पष्ट शब्दों में घोषित किया कि महाराज आप भी दिल्ली में विद्यमान हैं और आचार्य श्री गणेशलालजी म. भी। अतः आप दोनों की दया-दान के सम्बन्ध में धार्मिक और मानवीय दृष्टिकोण से स्पष्ट आशय व्यक्त करने के लिये चर्चा-वार्ता हो जाये, ताकि जनता को सही बात की जानकारी मिल सके।

इसके अतिरिक्त उन्होंने उपस्थित महानुभावों के समक्ष यह भी स्पष्ट कर दिया कि आचार्यश्री तुलसी जीवरक्षा एवं सहायता कार्य में पाप मानते हैं। यदि कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति पर तलवार से वार करने के लिये तैयार है और कोई तीसरा दयालु व्यक्ति उपदेश देकर या हाथ पकड़ कर हिंसा करने से रोकता है एवं मारे जाने वाले की रक्षा करता है तो इस रक्षारूप पवित्र कार्य को पापयुक्त और हिंसामय कार्य बताते हैं एवं रक्षा करने वाले को पाप रूप फल होना बताते हैं। इसी प्रकार शरणार्थियों और रेल दुर्घटना-ग्रस्त व्यक्तियों की मरहम-पट्टी या भोजनादि द्वारा सहायता करने में पाप मानते हैं। साधु के अलावा सब प्राणी असंयती हैं, अतः उनकी रक्षा करना या उनको

कुछ भी सहायता पहुंचाना पाप कार्य है, आदि। आचार्यश्री तुलसी की ऐसी प्ररूपणा और मान्यता है।

जबकि आचार्य श्री गणेशलाल जी म. सा. इन कार्यों में धर्म, पुण्य मानते हैं। शुभनिष्ठा या शुभयोग तो प्रत्येक कार्य में होना ही चाहिये, तभी वह धर्म, पुण्य की कोटि में गिना जाता है। किन्तु आचार्यश्री तुलसी तो शुभनिष्ठा या शुभयोग पूर्वक भी उक्त कार्य किये जायें, तो भी इनका फल पाप होना बताते हैं। इनकी राय में केवल साधु ही रक्षा और दान या सहायता का पात्र है और इसके अलावा अन्य सब कुपात्र हैं।

आचार्यश्री तुलसी तो मौन रहे किन्तु श्री जैनेन्द्रजी, श्री राजेन्द्रकुमारजी और श्री डालमियाजी ने श्री शुभकरणजी सुराणा के लेख की निन्दा करते हुए पारस्परिक सौजन्यपूर्ण वरताव की अपील की। अनंतर चर्चा या सम्मिलित व्याख्यान कराने के बारे में विचार करने के लिये दोनों ओर के कुछ सज्जनों को श्री राजकृष्णजी जैन के निवासस्थान पर सायकाल इकट्ठे होने का तय किया गया।

चर्चा के लिये समिति का गठन

पूर्व निश्चयानुसार श्री राजकृष्णजी जैन के निवासस्थान पर दिल्ली जैन समाज के प्रतिष्ठित अग्रगण्य सज्जन एकत्रित हुए। गोष्ठी में स्थानकवासी जैन बंधुओं ने इस बात के लिये तत्परता बताई कि दया-दान सम्बन्धी बातों के लिये दोनों आचार्यों में चर्चा हो जाये, जबकि तेरहपंथी सज्जन इस बात पर अड़े रहे कि हमें किसी बात की शंका नहीं है और जिसे शंका हो वह हमारे आचार्यश्री के पास आकर पूछ ले। उन्हें काफी समझाया गया लेकिन वे अपने दुराग्रह से टस-से-मस नहीं हुए। अन्त में श्री जैनेन्द्रकुमार जी ने सुझाव रखा कि एक मध्यस्थ समिति बनाकर उसके माध्यम से सम्बन्धित बातों का स्पष्टीकरण हो जाये। ऐसा करने से चर्चा और शास्त्रार्थ में एक दूसरे को विजित करने की भावना नहीं बनेगी तथा सैद्धान्तिक तथ्यों का स्पष्टी-

करण भी हो जायेगा कि दया-दान के सम्बन्ध में किस आचार्य की क्या मान्यता है और जनता को समझाने में सुविधा होगी।

श्री जैनेन्द्रकुमार जी के इस सुझाव को स्थानकवासी जैन बंधुओं ने तत्काल स्वीकार कर लिया किन्तु तेरहपंथी भाई तो अपने दुराग्रह पर ही अड़े रहे कि हमें कुछ शंका ही नहीं है और न कुछ पूछना ही है। अतः इस प्रकार के आयोजन की आवश्यकता नहीं है। जिसे शका हो, हमारे आचार्यश्री से पूछ ले।

इस सरल, सीधी-सादी बात के लिये भी तेरहपंथी सज्जनों के दुराग्रह को देखकर श्री जैनेन्द्रकुमार जी ने कुछ रोष प्रकट करते हुए कहा कि मेरे सुझाव में कुछ त्रुटि होगी, इसीलिये स्वीकार नहीं किया जा रहा है। अच्छा हो कि इस बात को यहीं पर समाप्त कर दिया जाये और जैसा समझें, कर लें। इस दो-टूक बात को सुनकर तेरहपंथी सज्जनों ने विवश होकर सोचा कि अगर हम अब भी दुराग्रह पर जमे रहे तो स्पष्ट हो जायेगा कि हमारी मान्यतायें कपोलकल्पित एवं भ्रमोत्पादक हैं और जैनधर्म के सिद्धान्तों के प्रतिकूल हैं। अतः अन्य कोई उपाय न देखकर उन्हें समिति-निर्माण के सुझाव को मानना ही पड़ा।

जैसे-तैसे समिति के निर्माण की बात को स्वीकार भी कर लियां तो उसमें अपने एक सदस्य को शामिल करने की बात पर पुनः तेरहपंथी भाई अड़ गये। उपस्थित सज्जनों का स्पष्ट मत था कि तेरहपंथी सदस्य के बिना समिति का निर्माण पूर्ण और सर्वमान्य न होगा। सदस्य होने से समिति द्वारा किया गया कार्य तेरहपंथियों के लिये भी बंधनकर्ता होगा तथा इससे सबका प्रतिनिधित्व सिद्ध हो जायेगा। अंत में जब पुनः बात टूटने को ही थी कि तेरहपंथी भाई अपना एक सदस्य समिति में रखने के लिये राजी हुए और चर्चा की व्यवस्था करने के लिये निम्नलिखित सदस्यों की समिति गठित की गई—

१. श्री जैनेन्द्रकुमार जी, २. श्री राजेन्द्रकुमार जी, ३. श्री राजकृष्णजी जैन, ४. लाला कुन्दनलाल जी पारख (स्थानकवासी),

५. श्री मोहनलाल जी कठौतिया (तेरहपंथी)। समिति के कार्य-संचालन के लिये श्री जैनेन्द्रकुमार जी संयोजक नियुक्त किये गये।

समिति का कार्य निश्चत किया गया कि चर्चा दया और दान से सम्बन्धित प्रश्नों तक सीमित रहेगी और एक दूसरे के प्रश्न दोनों आचार्यों को पहुंचा दिये जायें और उनसे जो उत्तर प्राप्त हों, प्रश्नों सहित प्रकाशित कर दिये जायें। जिससे जनसाधारण निर्णय कर सके कि सम्बन्धित प्रश्न के बारे में किस आचार्य का क्या मंतव्य है। समिति के पास दोनों आचार्यों की ओर से जो प्रश्न आयेंगे, समिति के प्रश्न माने जायेंगे और उनका उत्तर दोनों आचार्यों को देना होगा।

उक्त निश्चयानुसार स्थानकवासियों की ओर से ६ और तेरहपंथियों की ओर से ६ प्रश्न समिति को प्राप्त हुए, जिन्ह दोनों आचार्यों के पास उत्तर देने के लिये भेजा गया। दोनों ओर से प्राप्त उत्तरों पर समिति ने अपनी ओर से ८ प्रतिप्रश्न बनाकर पुनः दोनों आचार्यों के पास उत्तार के लिये भेजे। इन सब प्रश्नोत्तरों का सही दिग्दर्शन 'दिल्ली चर्चा' नामक पुस्तक में किया गया है।

तत्त्वचर्चा में भाव, भाषा या शाब्दिक छलकपट नहीं होना चाहिये। लेकिन इन प्रश्नोत्तरों को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि तेरहपथी संप्रदाय ने कभी भी सरलता के साथ अपनी मान्यता स्पष्ट नहीं की। यद्यपि शब्दाडंबर के माध्यम से अपने उत्तरों की अपूर्णता को छिपाने का प्रयत्न करने से चर्चा निर्धारित लक्ष्य-पूर्ति की नहीं कर सकी, तो भी तटस्थ जिज्ञासुजनों को यथार्थता समझ में आ गई।

इस प्रकार की चर्चायें उनके लिये ही लाभदायक होती हैं जो दुराग्रह और कदाग्रह से परे रहकर सत्य तथ्यों को समझना चाहते हैं, सत्य को सर्वोपरि मानते हैं, सत्य की आराधना को परम पुनीत कर्तव्य समझते हैं और सत्य की वरद छाया के आकांक्षी हैं।

ऐहिक-एषणा में अनासक्त

सांसारिक वैभव, मान-संमान को निस्सार समझकर तज देने

वाले अकिंचन, अनगार भिक्षु की दृष्टि में राजा-रंक समान हैं। आध्यात्मिक-वैभव से विभूषित, भौतिक-वैभव की विविधता और विचित्रता से विलग ही रहते हैं। उनके लिये राजा होने से, शासन का उच्चाधिकारी होने से अथवा धनसम्पन्न होने से कोई व्यक्ति स्पृहणीय नहीं होता है और न रंक होने के कारण कोई उपेक्षणीय हो जाता है।

दिल्ली श्रीसंघ के अग्रणी श्रावकों ने एक दिन सेवा में निवेदन किया कि कुछ दिन पहले महामहिम राष्ट्रपति श्री राजेन्द्रप्रसाद जी से मिलने का अवसर मिला था तो उस समय साधुसन्तों के उल्लेख के प्रसंग में आपश्री के दिल्ली विराजने की जानकारी उन्हें दी। उन्होंने आपश्री से मिलने की भावना दर्शाई थी। उन्हें आपश्री के उपदेश-श्रवण की आकांक्षा है, अतः आपश्री राष्ट्रपतिभवन पधारने की कृपा करावें।

दिल्ली श्रीसंघ के उन अग्रणी श्रावकों की बात सुनकर आपश्री ने फरमाया— मुझे वहाँ जाने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती है। राष्ट्रपति महोदय को शासन-सम्बन्धी बहुत जरूरी कार्य रहते हैं, अतः उनके कार्यक्रम में व्यवधान डालना उचित नहीं समझता हूँ। राष्ट्रपतिजी को जब सुविधा होगी और मिलने की इच्छा होगी तो कहीं पर भी मिल सकेंगे। उनको परेशानी में डालना मेरी दृष्टि से उचित नहीं है।

आपश्री के लिये ऐसे प्रसंग कई बार आ चुके थे जब विभिन्न स्थानों के राजा, जागीरदारों की ओर से अपने राजमहलों में आमन्त्रित कर वार्तालाप या प्रवचन फरमाने का निवेदन किया गया था। लेकिन न तो आपको ऐसी लौकिक एषणाओं की आकांक्षा थी और न राजमहलों में व्याख्यान देने की भावना रखते थे। आपश्री के विराजने के स्थान पर यदि कोई आ जाये तो प्रमोद व्यक्त करते हुए तात्त्विक चर्चा, वार्तालाप अवश्य कर लेते थे।

भीड़भाड़ से दूर रहना आपको सदैव रुचिकर रहा है। नगरों की अपेक्षा भारतीय-सभ्यता के प्रतीक ग्रामों के एकान्त शांत वातावरण में विचरण करना साधना की दृष्टि से योग्य मानते थे। तब राजमहलों

में जाना और राजपुरुषों से मिलना तो उससे भी दूर की बात थी।

इस सम्बन्धी अनेक प्रसंग उल्लेखनीय हैं। लेकिन एक-दो प्रसंगों का उल्लेख यहां कर रहे हैं।

एक बार आपका देवगढ़ (मेवाड़) में पदार्पण हुआ। वहां के रावसाहब ने राजभवन में व्याख्यान देने की प्रार्थना की। प्रत्युत्तर में आपने फरमाया— मेरे लिये प्रत्येक स्थान समान है। किसी स्थान-विशेष को प्रमुखता देना मुझे रुचिकर नहीं है। धर्मशाला और राज-भवन, सभागार और मैदान मेरे लिये एक समान हैं। आजकल जहां व्याख्यान हो रहे हैं, वह स्थान भी अनुपयुक्त नहीं है और जब यह स्थान योग्य है तो फिर राजभवन को ही मुख्यता देने से क्या लाभ? रावसाहब ने आपके कथन को शिरोधार्य कर व्याख्यान-स्थान पर आकर प्रवचन श्रवण किया।

सं० २००६ का चातुर्मास उदयपुर था। वहां के महाराणा साहब ने आपश्री के प्रवचन सुनने की आकांक्षा व्यक्त करते हुए राज-महल में व्याख्यान देने का आग्रह किया। परन्तु आपश्री ने अपनी मनोभावना का संकेत करते हुए फरमाया कि मेरी यह कभी भी आकांक्षा नहीं रही है कि राजमहलों में व्याख्यान देने को मुख्य मानूं। आज-कल जहां व्याख्यान होते हैं, वह सार्वजनिक स्थान है, यहां किसी के आने-जाने पर प्रतिबंध नहीं है और यहां आकर कोई भी व्यक्ति अपनी सुविधानुसार व्याख्यान-श्रवण कर सकता है। यह स्थान महाराणा जी के लिये कोई बाधाकारी नहीं है। महाराणा साहब प्रवचन सुनने के लिये उत्सुक थे, अतः जब आपश्री विहार कर नगर के बाहर विराज रहे थे, वहां आकर उन्होंने व्याख्यान-श्रवण का लाभ लिया।

'प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम्' कि उन्हें न तो संमान करने वाले के प्रति राग होता है और न अपमान करने वाले के लिये द्वेष। उनका जीवन-प्रवाह तो समतल पर बहते जलप्रवाह की तरह सुख, शांति को पल्लवित, पुष्पित और समृद्ध करता रहता है।

जमनापार के क्षेत्रों में

कल्प-मर्यादानुसार आपश्री का दिल्ली में विराजना हुआ। इस समय में अनेक विद्वानों, नगर के संभ्रान्त नागरिकों, राजनेताओं आदि ने सेवा में उपस्थित होकर जैन-सिद्धान्तों के बारे में चर्चा-वार्ता कर जानकारी प्राप्त की।

सं० २००७ का चातुर्मास अलवर में व्यतीत करने की स्वीकृति दी जा चुकी थी और चातुर्मास प्रारम्भ होने में अभी कुछ समय था। अतः दिल्ली के उपनगरों में कुछ दिन विराजने के पश्चात अलवर की ओर विहार करने का विचार चल रहा था कि जमनापार के क्षेत्रों के अनेक भाई हिलवाड़ी ग्राम की हकीकत लेकर सेवा में उपस्थित हुए।

उन्होंने बताया कि हिलवाड़ी में स्थानकवासी जैन समाज के करीब २०-२५ घर हैं। उनके सामने दया-दानविरोधी मान्यतायें इस प्रकार के शाब्दिक छल द्वारा रखी जा रही हैं, जिससे वे इनकी वास्तविकताओं को नहीं समझ पा रहे हैं। अतः आपश्री का इन क्षेत्रों में पदार्पण होना बहुत जरूरी है।

जमनापार के क्षेत्रों के बंधुओं ने सीधे-सादे शब्दों में अपने इधर की स्थिति का संकेत किया था और आपश्री भी परिस्थिति को देखते हुए उधर के क्षेत्रों में विहार करना आवश्यक मानते थे। अतः शारीरिक स्थिति निर्बल होने पर भी जनकल्याण के लिये आपश्री ने दिल्ली से जमनापार के क्षेत्रों की ओर विहार कर दिया। क्रम-क्रम से आसपास के क्षेत्रों को स्पर्श करने के बाद आपश्री का पदार्पण हिलवाडी ग्राम में हुआ।

आपश्री ने परिस्थिति को समझकर प्रतिदिन अपने प्रवचनों में जैनधर्म के मौलिक सिद्धान्तों का विवेचन करना प्रारम्भ कर दिया। जिससे जैनधर्म और दया-दान के सम्बन्ध में फैलाई गई भ्रांत धारणाओं का निराकरण हुआ और विपरीत श्रद्धा-प्ररूपणा से ग्रस्त भाइयों ने धर्म के सही स्वरूप को समझा।

इस प्रकार धार्मिक श्रद्धा का स्थिरीकरण करने के पश्चात आपश्री अन्यान्य क्षेत्रों की ओर विहार न कर हिलवाड़ी से अलवर की ओर विहार करने का विचार कर रहे थे कि कांधला, बड़ौत के धर्मप्रेमी भाइयों ने सानुरोध विनम्र विनती करते हुए निवेदन किया कि आपश्री चाहे हमारे यहां पर एक-एक दिन ही विराजें, लेकिन अपने चरणकमलों से हमारे क्षेत्रों को अवश्य ही पवित्र करें। आपश्री के पधारने से हमारे क्षेत्रों का विशेष उपकार होगा।

आपश्री ने वहां के भाइयों को काफी समझाया और चातुर्मास प्रारम्भ होने के समय आदि के बारे में संकेत भी किया किन्तु उन भाइयों ने निवेदन किया कि सिर्फ एकाध दिन का फर्क पड़ेगा और निकट में ही हमारे गांवों के होते हुए भी आपश्री का पदार्पण न हो तो हमें दुःख होगा। अतः आपश्री अपनी स्वीकृति फरमाकर कृतार्थ करें।

सन्त स्वभावतः दयार्द्र होते हैं। आपश्री ने हिलवाड़ी से बड़ौत होते हुए कांधला की ओर विहार कर दिया। जब आपश्री ने कांधला की सीमा में प्रवेश किया, वहाँ के निवासियों की प्रफुल्लता का पार नहीं था। उस समय ऐसा मालूम पड़ता था, मानो प्रकृति के कण-कण में एक नवीन चेतना का संचार हो गया है और उसका उल्लास जनमन में नहीं समा रहा हो।

जैसे ही आपश्री ने संतमंडल के साथ नगर के प्रवेशद्वार में पदार्पण हुआ कि वहां के उत्साही धर्मप्रेमी सज्जनों ने बड़े ही उत्साह के साथ अगवानी की और जुलूस के साथ नगर के राजमार्गों से होते हुए धर्मस्थान में पदार्पण कराया तथा राजमार्गों के दोनों ओर खड़े नागरिकों ने आपश्री के दर्शन कर अपने आपको धन्य माना।

आपश्री दो-चार दिन कांधला विराजे और प्रवचनों में विशेष रूप से दया-दान सम्बन्धी सिद्धान्तों का विवेचन किया। अनेक विद्वानों और प्रमुख-प्रमुख व्यक्तियों ने जैनधर्म के सिद्धान्तों के बारे में अपनी-अपनी शंकाओं का समाधान प्राप्त किया और आपकी विद्वत्ता, शैली आदि की प्रशंसा

करने में अपना गौरव माना। कांधला से विहार कर बड़ौत पधारे और वहां भी दो चार दिन विराजकर धर्मप्रेमी जनता को प्रतिबोध देते हुए आपश्री ने चातुर्मास हेतु अलवर की ओर विहार कर दिया।

रोग का आक्रमण

बड़ौतवासियों ने भरे हुए हृदयों से विदाई दी और कुछ एक सज्जन काफी दूर तक साथ-साथ चले। लेकिन ग्रीष्म-ऋतु की प्रचण्डता और मार्ग में अनेक गांवों के होते हुए भी साध्वोचित आहारादि की संयोगस्थिति न बन सकने से टीटीरीमंडी के निकट मूत्रकृच्छ्र रोग पैदा हो गया। जिससे एक डग चलना भी मुश्किल हो गया और जैसे-तैसे करके टीटीरीमंडी पहुंचे। सहसा और सर्वथा पेशाव वन्द हो जाना शारीरिक स्वास्थ्य के लिये बड़ा खतरनाक होता है। मार्मिक पीड़ा, शारीरिक शिथिलता, विकलता आदि इस रोग के परिणाम हैं।

टीटीरीमंडी में जैनों के एक-दो घर थे। गांव के एक वैद्य ने कुछ उपचार भी किया लेकिन वेदना बढ़ती ही जा रही थी। जब इस विषमस्थिति की जानकारी अन्य बंधुओं को मिली तो उन्होंने दिल्ली श्रावक संघ को खबर दी और दो कोस की दूरी पर स्थित सरकारी अस्पताल से डाक्टर को बुलाया। डाक्टर ने परीक्षा कर नली से पेशाब कराई, जिससे वेदना कुछ कम हो गई।

आचार्य श्रीजी के स्वास्थ्य के समाचार मिलते ही दिल्ली के भाई विशेषज्ञों को लेकर टीटीरीमंडी जा पहुंचे तथा दूसरे क्षेत्रों के श्रीसघों को भी इस विषमस्थिति की सूचना मिलने पर रतलाम, ब्यावर, बीकानेर, अलवर आदि से भी सैकड़ों भाई वहां पहुंच गये।

पूज्य आचार्य श्रीजी की शारीरिक स्थिति काफी गिर गई थी। कमजोरी इतनी बढ़ गई कि चलना-फिरना वन्द हो गया। विशेषज्ञों ने निदान करके बताया कि पेशाब की नली में गठान हो जाने से यह स्थिति बनी है और उपचार के लिये शीघ्र ही मोटर द्वारा दिल्ली ले चलने का कहा। जब उन्हें बताया गया कि जैन साधु पेदल विहार

करते हैं और किसी भी स्थिति में मोटर आदि वाहन का उपयोग करना उनकी मर्यादा नहीं है। तब डाक्टरों ने कहा कि इसके लिये आप चाहे जो व्यवस्था करें लेकिन स्थिति को देखते हुए पैदल चलना खतरनाक है।

साधु पराश्रयी नहीं होते हैं। अस्वस्थ होने पर या तो वे अपनी परिचर्या स्वयं करते हैं या समान समाचारी वाले संतों से सहयोग ले सकते हैं, गृहस्थों से तो किसी भी स्थिति में सहायता ले ही नहीं सकते हैं। परिस्थिति की विकटता देखकर संतों ने आपको अपने कंधों पर उठा लिया। उस समय सबके मन में एक ही बात घूम रही थी कि किसी-न-किसी प्रकार दिल्ली पहुंच जायें।

ग्रीष्मऋतु तो थी ही और आचार्य श्रीजी की इस शारीरिक वेदना आदि से संत भी स्वस्थ नहीं थे। फिर भी उनके मनों में उत्साह था कि दिल्ली पहुंच गये तो आचार्य श्रीजी म. सा. निरोग हो जायेंगे।

संत आपश्री को उठाकर कुछ दूर चले अवश्य, किन्तु कंधों ने जवाब देना शुरू कर दिया और डोली के डंडों से परेशान होकर बार-बार कंधों की अदला-बदली करने लगे। अभी एक दो फर्लांग ही बढ़ होंगे कि आपश्री ने स्थिति को देखकर संतों को रुकने का संकेत किया। संत रुक गये। डोली नीचे रख दी गई और आपश्री नीचे उतरे। संतों ने समझा कि लघुशंका मिटानी होगी।

संत स्वयं कष्ट सहन कर लेते हैं, लेकिन अपने निमित्त दूसरे को कष्ट देना सहन नहीं होता है। परदुःखकातर और करुणामूर्ति सन्तजन खिन्न ही तब होते हैं जब दूसरों को क्लान्त देखते हैं। वे तो ममता त्यागकर आत्मा में रमण करते है और आत्मरमणता में उन्हें अपने शरीर का भान नहीं रहता है।

कुछ ही क्षणों में सन्तों ने देखा, श्रावकों ने निरखा और चिकित्सकों ने पलक उठाई कि पूज्य आचार्य श्रीजी म. सा. मंथरगति से पैदल ही चल पड़े हैं। इस संकटापन्न स्थिति में भी अपूर्व साहस एवं आत्मबल के दर्शन कर उपस्थिति के मस्तक श्रद्धावनत हो गये।

कुछ साहस संकलित कर चिकित्सकों ने रोका, सन्तों ने अनुनय की, श्रावकों ने आग्रह किया, मगर यह सब पूज्य आचार्य श्रीजी के बढ़ते चरणों में व्यवधान नहीं डाल सके। इस विकट परिस्थिति में भी आपश्री का एक ही उत्तर था— मैं अपने लिये दूसरों को कष्ट नहीं देना चाहता हूँ।

मूत्रकृच्छ रोग की उग्रता चरमसीमा पर थी। वेदना उत्कट थी। पता नहीं कि जीवनरज्जु कब छिन्न-भिन्न हो जाये। इस स्थिति का विचार आते ही साथ में रहने वालों के मन छिन-छिन में सिहर उठते थे। मन की टीस अन्दर-ही-अन्दर गहरी होती जा रही थी। लेकिन आचार्य श्रीजी तो इन सबसे परे जलकमलवत् निर्लिप्त थे और स्वस्थ शरीरधारी की तरह चरणों में गति थी ईर्या-समिति पूर्वक। रोगजन्य निर्बलता और चलने में श्रम का लेशमात्र भी आभास नहीं हो रहा था और शनैः-शनैः मंथरगति से मार्ग तय करके आपश्री दिल्ली पधार गये।

आपश्री के विहार की कथा जिस किसी ने भी सुनी और चिकित्सकों को अवगत कराई गई तो उनके आश्चर्य का पार न रहा। उन्हें विश्वास ही नहीं होता था कि इस सकटापन्न-स्थिति में इतनी दूर पैदल कैसे आये ? जबकि चिकित्सा-विज्ञान की दृष्टि से ऐसे रोगी का एक कदम चलना भी जीवन को संकट में डालना है।

चातुर्मास प्रारम्भ होने का समय सन्निकट था। दिल्ली के अच्छे-अच्छे चिकित्सकों द्वारा रोग का निदान कराये जाने पर उन्होंने अपना निर्णय दिया कि इस रोग का उन्मूलन शल्यक्रिया (आपरेशन) के द्वारा ही हो सकेगा। लेकिन पूज्य आचार्य श्रीजी का विचार था— यदि आपरेशन कराने की बजाय अन्य उपचारों से रोग का उन्मूलन हो जाये तो अच्छा है। इसलिये आपश्री ने चिकित्सकों की राय पर विचार व्यक्त करते हुए कहा कि यदि निर्दोष औषधियों और आसन-प्राणायाम द्वारा रोग शांत हो जाये तो अच्छा है।

लेकिन चिकित्सकों ने रोग की सभी स्थिति बतलाते हुए कहा कि मूत्राशय में गांठ पड़ गई है और वह बिना आपरेशन किये दूर नहीं की जा सकती है और शीघ्र ही आपरेशन करा लेना चाहिये। इसके बारे में जितनी देरी होगी, उतना ही खतरा है।

चिकित्सकों की राय के बारे में विचार हो रहा था कि इसी बीच सदरबाजार दिल्ली के सुप्रसिद्ध यूनानी हकीम श्री प्रेमचन्द जी बरनालावाले आचार्य श्रीजी म. सा. के दर्शनार्थ आये। उन्होंने रोग के बारे में जानकारी करने के बाद संघ के प्रमुख सज्जनों से कहा कि मुझे भी आचार्य श्रीजी की सेवा का कुछ अवसर मिले तो मैं भी अपने नुस्खों को अजमा सकूं। वृद्धावस्था के कारण मूत्राशय में ऐसी गांठ प्रायः हो जाती है, लेकिन मुझे आशा है कि वह ठीक हो जायेगी। मैं भी आप जैसा एक श्रावक हूँ और मुझे भी सेवा करने का हक है। इसलिये सिर्फ तीन दिन मेरी दवा लें और उससे फायदा दिखे तो आगे चालू रखिये।

पूज्य आचार्य श्रीजी आपरेशन सम्बन्धी दोषों से बचना चाहते थे। अतएव हकीमजी की बात मान लेना आपने ठीक समझा। इस स्वीकृति से हकीमजी को प्रसन्नता हुई और उपचार चालू होने के दो-तीन दिन बाद रोग में कमी दिखाई देने लगी और बेचैनी घट गई।

शारीरिक स्थिति, चिकित्सकों की सलाह और दिल्ली श्रीसंघ की विनती को ध्यान में रखते हुए सं० २००७ का चातुर्मास अलवर न होकर दिल्ली हुआ।

दिल्ली का यह चातुर्मास विद्वन्मंडल एवं जनसाधारण के लिये प्रेरणादायक रहा। नगरजन आपश्री की विद्वता से परिचित ही थे, अतः प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल प्रवचन, तत्त्वचर्चा आदि के समय अधिक-से-अधिक श्रोताओं एवं जिज्ञासुओं की उपस्थिति होती थी।

हकीम श्री प्रेमचन्द जी की दवा से रोग में काफी सुधार हो गया था, लेकिन ऐसा नहीं कहा जा सकता था कि आप पूर्ण स्वस्थ

माने जायें। फिर भी प्रतिदिन प्रवचन, तत्त्वचर्चा आदि का क्रम निर्बाध रूप से चलता रहा। स्थानीय विद्वानों के अतिरिक्त अन्यान्य विदेशी विद्वान भी जैनदर्शन के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिये आपके पास आते रहते थे। आपश्री उनकी जिज्ञासाओं का सयुक्तिक समाधान करते थे। एक दिन हंगरी निवासी बौद्धधर्म के प्रमुख विद्वान डा. फैलिक्स-बैली जैनसिद्धान्तों की विशेष जानकारी के लिये प्रवचन के समय पधारे और स्याद्वाद सिद्धान्त के बारे में अपनी जिज्ञासा व्यक्त की। अतएव आचार्य श्रीजी ने बहुत ही सरल और संयुक्तिक शैली में 'स्याद्वाद' के बारे में प्रवचन फरमाया। प्रवचन का सारांश यह है—

'जैनधर्म आत्म-विजेताओं का महान् धर्म है। जिन्होंने राग-द्वेष आदि अपने आन्तरिक विकारों पर विजय प्राप्त करके सयम एवं साधना द्वारा निर्मल ज्ञान प्राप्त कर अपनी आत्मा को उत्थान के मार्ग पर अग्रसर किया है, उन्हें हमारे यहां 'जिन' (विजेता) कहा गया है तथा इन विजेताओं द्वारा प्रेरित दर्शन का नामांकन जैन-दर्शन के नाम से हुआ। अतः यह दर्शन किसी व्यक्ति-विशेष, वर्ग-विशेष या शास्त्र-विशेष की उपज नहीं, बल्कि इसका विकास उन आत्माओं द्वारा हुआ है जिन्होंने सारे सांसारिक (जातीय, देशीय, सामाजिक, वर्णिय आदि) भेदभावों व यहां तक कि स्वपर को भी विसर्जित कर अपने जीवन को सत्य के लिए होम दिया। यही कारण है कि इसका यह स्वरूप इसकी महान् आध्यात्मिकता व व्यापक विश्वबन्धुत्व का प्रतीक है।

'मैं यहाँ पर जैनदर्शन की मौलिक देन स्याद्वाद या अनेकान्त-वाद पर कुछ विशेष रोशनी डालना चाहता हूँ। जिस प्रकार सत्य के साक्षात्कार में हमारी अहिंसा स्वार्थ-संघर्षों को सुलझाती हुई आगे बढ़ती है, उसी प्रकार यह स्याद्वाद जगत् के वैचारिक संघर्षों की अनोखी सुल-झन प्रस्तुत करता है। आचार में अहिंसा और विचार में स्याद्वाद—यह जैनदर्शन की सर्वोपरि मौलिकता कही है। स्याद्वाद को दूसरे शब्दों में वाणी व विचार की अहिंसा के नाम से भी पुकारा जा सकता है।

'किसी भी वस्तु या तत्त्व के सत्य स्वरूप को समझने के लिए हमें इसी सिद्धान्त का आश्रय लेना होगा। एक ही वस्तु या तत्त्व को विभिन्न दृष्टिकोणों से देखा जा सकता है और इसलिए उसमें विभिन्न पक्ष भी हो जाते हैं। अतः उसके सारे पक्षों व दृष्टिकोणों को विभेद की नहीं, बल्कि समन्वय की दृष्टि से समझकर उसकी यथार्थ सत्यता का दर्शन करना इस सिद्धान्त से गहन चिन्तन के आधार पर ही संभव हो सकता है। विज्ञान ने भी सिद्ध कर दिया है कि एक ही वस्तु की कई बाजुएँ हो सकती हैं और उनमें भी ऐसी बाजुएँ अधिक होती हैं, जिनका स्वरूप अधिकतर प्रत्यक्ष न होकर अप्रत्यक्ष ही रहता है। अतः इन सारे प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष पक्षों को समझने के बाद ही किसी भी वस्तु के सत्यस्वरूप का अनुभव किया जा सकता है।

'किसी वस्तु-विशेष के एक ही पक्ष या दृष्टिकोण को उसका सर्वांग स्वरूप समझकर उसे सत्य के नाम से पुकारना मिथ्यावाद या दुराग्रह का कारण बन जाता है। विभिन्न पक्षों या दृष्टिकोणों के प्रकाश में जब तक एक वस्तु का स्पष्ट विश्लेषण न कर लिया जाये, तब तक यह नहीं कहा जा सकता कि हमने उस वस्तु का सर्वांग स्वरूप समझ लिया है। अतः किसी वस्तु को विभिन्न दृष्टिकोणों के आधार पर देखने, समझने व वर्णित करने वाले विज्ञान का नाम ही स्याद्वाद या अनेकान्तवाद या अपेक्षावाद (Science of Versatility or Relativity) कहा गया है।

'यह स्याद्वादी दृष्टिकोण किसी भी वस्तु के यथार्थ स्वरूप को हृदयंगम करने के लिए परमावश्यक साधन है। इसके जरिये सारे दृढ़-वादी या रूढ़िवादी विचारों की समाप्ति हो जाती है तथा एक उदार दृष्टिकोण का जन्म होता है, जो सभी विचारों को पचा कर सत्य का दिव्य प्रकाश शोधने में सहायक बनता है।

'एक ही वस्तु के स्वरूप पर विभिन्न लोग अपनी-अपनी अलग-अलग दृष्टियों से सोचना शुरू करते हैं। यहां तक तो विचारों का क्रम

ठीक रूप से चलता है। किन्तु उससे आगे होता है कि एक ही वस्तु को विभिन्न दृष्टियों से सोचकर उसके स्वरूप को समन्वित करने की ओर वे नहीं झुकते। जिसने एक वस्तु को जिस विशिष्ट दृष्टि से सोचा है, वह उसे ही वस्तु का सर्वांग स्वरूप घोषित कर अपना ही महत्त्व प्रदर्शित करना चाहता है। फल यह होता है कि एकान्तिक दृष्टिकोण व हठधर्मिता का वातावरण मजबूत होने लगता है और वे ही विचार जो सत्य ज्ञान की ओर बढ़ा सकते थे, पारस्परिक समन्वय के अभाव में विद्वेषपूर्ण संघर्ष के जटिल कारणों के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। ऐसी परिस्थिति में स्याद्वाद का सिद्धान्त उन्हें बताना चाहता है कि सत्य के टुकड़ों को पकड़कर उन्हें ही आपस में टकराओ नहीं, बल्कि उन्हें तरकीब से जोड़कर पूर्ण सत्य के दर्शन की ओर सामूहिक रूप से जुट पड़ो। अगर विचारों को जोड़कर देखने की वृत्ति पैदा नहीं होती व एकांगी सत्य के साथ ही हठ को बांध दिया जाता है तो यही नतीजा होगा कि वह एकांगी सत्य भी सत्य न रहकर मिथ्या में बदल जायेगा। अतः यह आवश्यक है कि अपने दृष्टिबिन्दु को सत्य समझते हुए भी अन्य दृष्टिबिन्दुओं पर उदारतापूर्वक मनन किया जाये तथा उनमें रहे हुए सत्य को जोड़कर वस्तु के स्वरूप को व्यापक दृष्टियों से देखने की कोशिश की जाये।

'सर्वसाधारण को स्याद्वाद की सूक्ष्मता का स्पष्ट ज्ञान कराने के लिए मैं एक दृष्टान्त प्रस्तुत कर रहा हूँ।

'एक ही व्यक्ति आपने अलग अलग रिश्तों के कारण पिता, पुत्र, काका, भतीजा, मामा, भानजा आदि हो सकता है। वह अपने पुत्र की दृष्टि से पिता है तो इसी तरह अपने पिता की दृष्टि से पुत्र भी। ऐसे भी अन्य सम्बन्धों के व्यावहारिक उदाहरण आप अपने चारों ओर देखते हैं। इन रिश्तों की तरह ही एक व्यक्ति में विभिन्न गुणों का विकास भी होता है। अतः यही दृष्टि वस्तु के स्वरूप में लागू होती है कि वह भी एक साथ सत्-असत्, नश्वर-अनश्वर, प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष,

क्रियाशील-अक्रियाशील, नित्य-अनित्य गुणों वाली हो सकती है। जैसे एक ही व्यक्ति में पुत्रत्व व पितृत्व दो विरोधी गुणों का सद्भाव संभव है, क्योंकि उन गुणों को हम विभिन्न दृष्टियों से देख रहे हैं। उसी प्रकार एक ही वस्तु विभिन्न अपेक्षाओं से नित्य भी हो सकती है तथा अनित्य भी। जब स्थूल सांसारिक व्यवस्था भी सापेक्ष दृष्टि पर टिकी हुई है तो वस्तु के सूक्ष्म स्वरूप को हठ में जकड़कर एकान्तिक बताना कभी सत्य नहीं हो सकता। यह ठीक वैसा ही होगा कि एक ही व्यक्ति को अगर पुत्र माना जाता है तो वह पिता कहला नहीं सकता और इसकी असत्यता प्रत्यक्षतः सिद्ध है। चाहे तो यह सांसारिक व्यवस्था ले लीजिए या सिद्धान्तों की स्वरूप विवेचना—सब सापेक्षदृष्टि पर अवलम्बित हैं। अगर इस दृष्टि को न माना जायेगा व सम्बन्धित सारे पक्षों के आधार पर वस्तु के स्वरूप को न समझा जायेगा तो एक क्षण में ही जागतिक व्यवस्था मिट-सी जायेगी। आश्चर्य यही है कि स्थूल रूप से जिस सापेक्षदृष्टि को अपने चारों ओर सांसारिक व्यवहार में देखा जाता है, उसी सापेक्षदृष्टि को वैचारिक सूक्ष्मता के क्षेत्र में भूला दिया जाता है और फलस्वरूप व्यर्थ के विवाद उत्पन्न किये जाते हैं।

'यहां यह शंका की जा सकती है कि एक ही वस्तु में दो विरोधी धर्म एक साथ कैसे रह सकते हैं? शंकराचार्य ने यह आपत्ति उठाई थी कि एक ही पदार्थ एक साथ नित्य और अनित्य नहीं हो सकता, जैसे कि शीत और ऊष्ण गुण एक साथ नहीं पाए जाते। किन्तु शंका ठीक नहीं है। विरोध की शंका तो तब उठाई जा सकती है जबकि एक ही दृष्टिकोण—अपेक्षा से वस्तु को नित्य भी माना जाये और अनित्य भी। जिस दृष्टिकोण से वस्तु को नित्य माना जाये, उसी दृष्टिकोण से यदि उसे अनित्य भी माना जाये तब तो अवश्य ही विरोध होता है, परन्तु भिन्न-भिन्न दृष्टियों की आज्ञा से भिन्न-भिन्न गुण मानने में कोई विरोध नहीं आता, जैसे एक व्यक्ति उसके पुत्र की अपेक्षा से पिता माना जाता है व पिता की अपेक्षा से पुत्र, तब पितृत्व व पुत्रत्व

के दो विरोधी धर्म एक ही व्यक्ति में अपेक्षाभेद से रह सकते हैं, उसमें कोई विरोध नहीं होता। विरोध तो तब हो जब हम उसे जिसका पिता माना है, उसी का पुत्र भी मानें। इसी तरह भिन्न-भिन्न अपेक्षा से भिन्न-भिन्न धर्म मानने में कोई विरोध नहीं होता।

'जैनदर्शन की मान्यता के अनुसार प्रत्येक पदार्थ उत्पन्न होने वाला व नष्ट होने वाला और फिर भी स्थिर रहने वाला बताया गया है। "उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्" यह पदार्थ के स्वरूप की व्याख्या है। आश्चर्य मालूम होता है कि नष्ट होने वाली वस्तु भला स्थिर कैसे रह सकती है, किन्तु स्याद्वाद ही इसको सुलझा देता है। ये तीनों पर्यायें सापेक्षदृष्टि से कही गई हैं। एक दूसरे के बिना एक दूसरे की स्थिति बनी नहीं रह सकती है। उदाहरण स्वरूप समझ लीजिये कि एक सोने का कड़ा है और उसे तुड़ा कर जंजीर बना ली गई तो वह सोना कड़े की अपेक्षा से नष्ट हो गया एवं जंजीर की अपेक्षा से उत्पन्न हो गया, किन्तु स्वर्णत्व की अपेक्षा से वह पहले भी था और अब भी है, वह उसकी स्थिर स्थिति हुई। पदार्थ की पर्याय बदलती है। उसमें पूर्व-पर्याय का विनाश व उत्तर-पर्याय की उत्पत्ति होती रहने पर भी पदार्थ का द्रव्यस्वरूप उसमें कायम रहता है। इस तरह पर्यायार्थिक नय (दशा-परिवर्तन) की अपेक्षा से पदार्थ अनित्य है और द्रव्यार्थिक नय (स्थिरस्थिति) की अपेक्षा से नित्य भी है। यही स्याद्वाद का गौरव-पूर्ण एवं मार्मिक स्वरूप है।

'स्याद्वाद के सिद्धान्त को जैनदर्शन का हृदय कहा जाता है। जैसे हृदय शुद्ध किया गया रक्त सभी अंगों में समान रूप से संचारित करता रहे तो शरीर का टिकना सम्भव होगा। उसी तरह स्याद्वाद सभी सिद्धान्तों को समझने में समन्वय की उदार भावना की बराबर प्रेरणा देता रहता है। जैनदर्शन की सबसे बड़ी विशेषता तो यह है कि वह अपनी मान्यता के प्रति भी हठवादी (दुर्नयी) नहीं है। वहां तो सत्य से प्रेम किया जाता है और निरन्तर अपने स्वरूप

को सत्य के रंग में रंगा रखने में परम सन्तोष की अनुभूति की जाती है। सत्य की आराधना जैनदर्शन का प्राण है। वह न अपनी मान्यता के विषय में दुराग्रही है और न दूसरों की मान्यताओं का किसी भी रूप में तिरस्कार करना चाहता है। वह तो केवल यह चाहता है कि समस्त विश्व पूर्ण सत्य के स्वरूप को समझने के सही राह पर आगे बढ़े।

'स्याद्वाद एक तरह से संसार के समस्त विचारकों व दार्शनिकों का आह्वान करता है कि सब अपने आपसी हठवाद व एकांगी दृष्टिकोणों के कलह को त्याग कर एक साथ बैठो तथा एक दूसरे की विचारधाराओं का स्पष्ट रूप से आदान-प्रदान करो। इस तरह जब सामूहिक रूप से व शुद्ध जिज्ञासा व निर्णय बुद्धि से सम्मिलित विचार-विमर्श किया जायेगा, उनका मन्थन होने लगेगा तो जरूर ही छाछ-छाछ पेंदे में रह जायेगी और साररूप मक्खन ऊपर तैर कर आ जायेगा। तब स्याद्वाद का सन्देश है कि उन विचारधाराओं के समूह में से असत्य अंशों को निकाल कर अलग कर दो, हठवाद, एकान्तवाद और अपने ही विचारों में पूर्ण सत्य मानने की दुराग्रही वृत्तियों को पूरे तौर पर तिलांजलि दे दो। सत्य के भिन्न-भिन्न खडों का चयन करो, उन्हें जोड़ कर पूर्ण सत्य के दर्शन की ओर उन्मुख होओ। सूंड ही हाथी है, पांव ही हाथी है या पीठ ही हाथी है. मान सकते रहने से कभी भी हाथी का असली स्वरूप समझ में नहीं आयेगा बल्कि ऐसा हठाग्रह करने पर तो ऐसा मानना एकांगी सत्य होने पर भी हाथी के पूर्ण स्वरूप की दृष्टि से असत्य ही कहलायेगा। अतः सिद्धान्तों और विचारों के क्षेत्र में इसे गम्भीरतापूर्वक समझने व सुलझाने की जरूरत है कि सूंड ही हाथी नहीं है, पाँव ही हाथी नहीं है या पीठ ही हाथी नहीं है, बल्कि ये सब अलग-अलग हिस्से मिलकर पूरा हाथी बनाते हैं। आज उन अन्धों की तरह हाथी देखने की मनोवृत्ति चल रही है—क्या तो दार्शनिक क्षेत्र में और क्या वैचारिक क्षेत्र में, उसे इस स्याद्वाद के प्रकाश में सुष्ठु बना देने का आज महान् उत्तरदायित्व आ पड़ा है।

क्योंकि अगर वर्तमान में फैला हुआ विचार-संघर्ष और अधिकाधिक जटिलता का जामा पहनता गया तो आश्चर्य नहीं कि एक दिन पिछले युद्धों से भी अधिक खौफनाक युद्ध संसार व मानवजाति की विकसित संस्कृति को बुरी तरह तहस-नहस कर डालेगा।

'विश्वशान्ति का प्रश्न धर्म सभ्यता व संस्कृति के विकास तथा समस्त प्राणियों के हित का प्रश्न है। कोई भी व्यक्ति चाहे किसी भी क्षेत्र में कार्य कर रहा हो, इस प्रश्न से अवश्य ही सम्बन्धित है। इस प्रश्न की सही सुलझन पर ही मानवता की वास्तविक प्रगति का मूल्यांकन किया जा सकता है और विश्व शान्ति की नींव को मजबूत करने का आज की परिस्थितियों में सबसे प्रमुख यही उपाय है कि चारों ओर फैला हुआ विचारों का विषैला विभेद शांत किया जाये और एक दूसरे को समझने के उदार दृष्टिकोण का प्रसार हो सके। ऐसे व्यापक वातावरण का सर्जन जैनदर्शन के स्याद्वाद सिद्धान्त की सुदृढ़ आधारशिला पर ही किया जा सकता है। यदि प्रत्येक व्यक्ति व सामूहिक रूप से विभिन्न राष्ट्र व समाज इस स्याद्वाद दृष्टि को अपने वैचारिक क्रम में स्थान देने लगें तो विश्वशान्ति की कठिन पहेली सहज ही में शान्ति व सद्‌भावना से हल की जा सकती है। इस महान् सिद्धान्त के रूप में जैनधर्म विश्व की बहुत बड़ी सेवा बजाने में समर्थ है।

'उपसंहार रूप में मुझे यही कहना है, जो कि इस शास्त्र-वाक्य में कहा गया है—

"अत्थि सत्थेण परेण परं, नत्थि असत्थं परेण परं"

'सत्य का साक्षात्कार ही जीवन का चरम साध्य है। जीवन उन अनुभवों व विभिन्न प्रयोगों का कर्मस्थल है, जहाँ हम उनके जरिये सत्य की साधना करते हैं, क्योंकि सत्य ही मुक्ति है, ईश्वरत्व की प्राप्ति है। जीवन के आचार-विचार की सुघड़ता व सत्यता में व्यक्ति, समाज व विश्व की शांति रही हुई है तथा शांति के शुभ्र वातावरण में ऊँचे-से-ऊंचा आध्यात्मिक विकास भी सबके लिए सरल बन सकता

है। अतः विचारों की उदारता, पवित्रता, शांतिपूर्ण प्रेरणा की जागरूकता के लिए आज स्याद्वाद के सिद्धान्त को बड़ी बारीकी से समझने, परखने व अमल में लाने की विशेष आवश्यकता आ पड़ी है, जिसके लिए मैं आशा करूं कि सब तरफ से उचित प्रयास अवश्य किये जायंगे।'

सन्तों और श्रावकों ने विविध प्रकार की तपस्यायें कीं तथा धर्मप्रभावना के आयोजनों से चातुर्मास समय समाप्त हुआ। आचार्य श्रीजी पूर्ण रूप से निरोग नहीं हुए थे। दिल्ली श्रीसघ और चिकित्सकों ने साग्रह निवेदन किया कि रोग निर्मूल नहीं हुआ है और जब तक उपचार पूरा नहीं हो जाता, आपश्री दिल्ली मे ही विराजें। यहां उपचार के अच्छे-से-अच्छे साधन और विशेषज्ञ हैं और आपरेशन कराये बिना रोग दूर नही होगा, अतः आपरेशन कराने की स्वीकृति दीजिये।

पूज्य आचार्य श्रीजी ने उत्तर में फरमाया कि यह शरीर तो क्षणभंगुर है, इसकी कितनी भी संभाल करें तो भी नष्ट होगा। यदि कुछ कष्ट भी सहना पड़े तो कोई हर्ज नहीं, किन्तु आपरेशन कराने की इच्छा नहीं है। व्यर्थ ही इस शरीर के निमित्तसंयम-साधना में व्यवधान नहीं डालना चाहिये। जितने दिन इस शरीर का उपयोग होगा, सो हो जायेगा।

यह है विरागियों की वीतरागता। वे आत्मोपलब्धि को सर्वोपरि मानते हैं। वे अपने संयम-तप-त्यागमय जीवन, निरीहवृत्ति एवं उपदेशों से सुख-शांतिप्रद वातावरण का निर्माण करते हैं। उपरी तौर पर देखने से कुछ भी प्रतीत नहीं होता है, लेकिन वे जो निर्माण करते हैं वह आंतरिक होता है और उसकी नींव गहरी, दृढ़ और स्थायी होती है। मानवजाति के सबल और व्यापक संस्कारों का निर्माण सन्तों की बदौलत हुआ है। सन्त चलते-फिरते शिक्षाकेन्द्र हैं, विश्वकोष हैं और स्वतःप्राप्त विशुद्ध परामर्शदाता हैं। वे तीर्थरूप होकर तिरने वालों को तैरने का बोध कराते हैं, तिन्नाणं तारयाणं हैं।

चातुर्मास-समाप्ति के पश्चात कुछ दिनों तक दिल्ली के विभिन्न

उपनगरों में विराजे। जब सदर बाजार पधारे तब वहां पर पंजाब सम्प्रदाय के सन्त स्थविर मुनिश्री भागमलजी म., मुनिश्री तिलोकचन्दजी म. आदि विराजते थे। उनसे आचार्य श्रीजी म. सा. का मिलन हुआ। इसी अवसर पर स्थविर मुनिश्री भागमलजी म. के पास होने वाली एक वंरागी भाई की भागवती दीक्षा आचार्य श्रीजी म. सा. के मुखारविन्द से सम्पन्न हुई। इसी तरह पंजाब की प्रसिद्ध महासती श्री पन्नादेवीजी म. की सतियों के पास होने वाली एक बहिन की भागवती दीक्षा भी आचार्य श्रीजी म. सा. के द्वारा सम्पन्न हुई।

अयोग्य को दीक्षा नहीं

दीक्षा-सम्पन्न होने के पश्चात दिल्ली के एक लालाजी करीब १३-१४ वर्ष के एक लड़के को लेकर सेवा में उपस्थित हुए और कहने लगे कि मुझे एक चेला भेंट करना है, आप इसको ग्रहण कीजिये। तब आचार्य श्रीजी म. सा. ने फरमाया कि यदि दीक्षा लेने वाला दीक्षार्थी स्वतः दीक्षा लेने की भावना से आता है तो सबसे पहले उसकी भावना की परीक्षा की जाती है और संयम की योग्यता मालूम होने पर उसके संरक्षकों की आज्ञा पूर्वक दीक्षा दी जा सकती है। लेकिन इस तरीके की भेंट नहीं ली जाती है। इसी तरह दूसरे भी पांच-सात व्यक्तियों ने दीक्षा ग्रहण करने के भाव व्यक्त किये, लेकिन कसौटी पर खरे नहीं उतरने से आचार्य श्रीजी म. सा. ने दीक्षा नहीं दी।

सं० २००७ का चातुर्मास अलवर होना था, लेकिन शारीरिक कारणवश दिल्ली विराजना पड़ा था। इससे अलवर के नागरिकों को कुछ निराशा भी हुई, किन्तु परिस्थिति को देखते हुए उन्हें निराशा में भी विश्वास की एक किरण दिखाई दे रही थी कि आचार्य श्रीजी म. सा. स्वस्थ रहेंगे तो आगामी वर्ष अवश्य ही चातुर्मास होना संभव है।

अलवर श्रीसंघ को पूज्य आचार्य श्रीजी म. सा. के स्वास्थ्य-सुधार से संतोष था। अतः पुनः आगामी वर्ष का चातुर्मास अलवर करने की विनती लेकर सेवा में उपस्थित हुआ और पूज्य आचार्य श्रीजी

म. सा. ने द्रव्य-क्षेत्र-आदि को ध्यान में रखते हुए विविध आगारों के साथ सं० २००८ का चातुर्मास अलवर में करने की स्वीकृति फरमाई।

अलवर की ओर विहार करने के लिये आचार्य श्रीजी म. सा. सब्जीमण्डी से विहार कर नई दिल्ली पधारे। वहां पर उपस्थित सब्जी-मण्डी, सदर बाजार, चांदनी चौक दिल्ली तथा आस-पास के क्षेत्रों के सैकड़ों भाई-बहिनों के समक्ष आचार्य श्रीजी म. सा. ने फरमाया कि परिस्थितिवश मुझे दिल्ली क्षेत्र में रहना पड़ा और रोगशमन के लिये जहां तक हो सका निर्दोष उपायों का अवलम्बन लिया गया। फिर भी डाक्टरों को दिखाना, जांच करवाना आदि लाचारीवश संयमी-मर्यादा में लगे दोषों का मैं प्रायश्चित ग्रहण करता हूँ।

आचार्य श्रीजी म. सा. की संयम-मर्यादा के प्रति निष्ठा और जाग्रति देखकर उपस्थित दिल्ली श्रीसंघ और दूसरे-दूसरे श्रीसंघों के सदस्यों पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा। वहां के बुजुर्ग कहने लगे कि विशेष दोष नहीं लगने पर भी जनता के समक्ष यत्किंचित दोषों का भी शुद्धि-करण करके प्रायश्चित ग्रहण करना हमारे दिल्ली नगर के लिये यह पहला ही अवसर है।

पुनः रोग-उदय

औषधोपचार से यद्यपि रोग उपशांत हो गया था और आचार्य श्रीजी म. सा. विहार भी करने लगे थे, फिर भी पैदल चलने से पुनः रोग उभर आया। लेकिन रोगजन्य वेदना को समतापूर्वक सहन करते हुए सं० २००८ के चातुर्मास के निमित्त यथासमय अलवर पधार गये।

अलवर श्रीसंघ ने अगवानी करते हुए नगर-प्रवेश कराया। शारीरिक अस्वस्थता के कारण आचार्य श्रीजी म. सा. को विश्राम करने की जरूरत थी, किन्तु दर्शनार्थियों के आने-जाने, प्रातः प्रवचन, मध्याह्न बांचणी और सायंकाल तत्त्वचर्चा में अधिकांश समय लगने से विश्राम करने के लिये अवकाश नहीं मिलता था। यद्यपि अलवर के स्वच्छ जलवायु का स्वास्थ्य पर अनुकूल प्रभाव भी पड़ा, लेकिन अधिक परि-

श्रम के कारण रोग में वृद्धि के लक्षण दिखाई देने लगे। फिर भी पहले की तरह ही मुखमंडल पर मधुर मुस्कान और तपोपूत तेजस्विता झलकती रहती थी।

अलवर-नरेश की आकांक्षा

पूज्य आचार्य श्रीजी के प्रतिदिन प्रवचन महावीर भवन में होते थे। जिनका लाभ आबालवृद्ध श्रोतागण उठाते थे। एक दिन अलवर नरेश ने स्थानीय श्रीसंघ के प्रमुख सज्जनों के द्वारा आचार्य श्रीजी की सेवा में निवेदन करवाया कि आचार्य महाराज महलों में पधार कर हमें दर्शन और सेवा का अवसर प्रदान करें और दो शब्द सुनावें।

उक्त भावना को सेवा में निवेदन किये जाने पर आपश्री ने प्रत्युत्तर में फरमाया कि अलवर नरेश की धर्मभावना एवं साधु-सन्तों के प्रति आदरभाव प्रशंसनीय है। लेकिन मेरे लिये तो राजा और रंक सभी समान हैं। किसी विशिष्ट स्थिति के अतिरिक्त वर्तमान स्थान को छोड़कर अन्यत्र जाने-आने की भावना नहीं रखता हूँ और इससे अन्य व्यक्तियों को भी असुविधा हो सकती है। दूसरों के साथ अलवर नरेश भी यहां पर धर्म लाभ ले सकेंगे।

ऐसा स्पष्ट उत्तर वही दे सकते हैं जो मानापमान की अनुभूति से उदासीन हैं और जिनको किसी से कोई आकांक्षा नहीं है। वे तो जलकमलवत् संसार में रहकर निर्लिप्त भाव से विचरण करते रहते हैं। सन्तों की महिमा महान है। इन महापुरुषों के बारे में कहा गया है—

चाह गई चिन्ता मिटी, मनुआ बेपरवाह।
जिनको कछु न चाहिये, वे शाहन के शाह॥

अरि-मित्र, महल-मसान, कंचन-कांच, निन्दन-थुतिकरन।
अर्घावतारन, असिप्रहारन में सदा समता धरन॥
जग-सुहितकर सब अहितहर श्रुति-सुखद सब संशय हरैं।
भ्रमरोगहर जिनके वचन मुखचन्द्रतें अमृत झरैं॥

लाभालाभे सुहे दुक्खे जीविए मरणे तहा ।
समो निंदापसंसासु तहामाणावमाणओ ॥

पूज्य आचार्य श्रीजी की भावना का संकेत अलवर नरेश को करा दिया और उन्होंने विजयादशमी (दशहरा) के दिन स्वयं महावीर भवन में आकर प्रवचन-श्रवण का लाभ उठाया ।

संगठन के लिये घोषणा

समाज की धर्मकरणी के आधार संत-सतियां जी म. को एक आचार्य के नेश्राय में श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण संघ के नाम से संगठित देखने की चतुर्विध श्रीसंघ उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहा था । वैसे तो एकता सम्बन्धी प्रयत्नों का सूत्रपात पूज्य आचार्य श्री जवाहर-लालजी म. सा. के समय सन् १९३३ से ही हो चुका था और यह प्रयत्न उसी के आगे की कड़ी थे ।

संगठन के प्रयत्नों में वेग लाने की दृष्टि से श्री अ. भा. श्वे. स्थानकवासी जैन कान्फरन्स के एक शिष्टमंडल ने पूज्य आचार्य श्रीजी की सेवा में उपस्थित होकर एक गांव में एक चातुर्मास होने की विनती की थी और परीक्षण के रूप में तीन वर्ष तक आचार्य श्रीजी ने अपनी ओर से ऐसा करने की मंजूरी फरमा दी थी । फलस्वरूप शिष्टमंडल को निकट भविष्य में पुनः श्रमण-संमेलन होने के कुछ कुछ आसार दिखाई देने लगे थे और इस सम्बन्ध में शिष्टमंडल ने अन्यान्य मुनिराजों से परामर्श करके प्रारूप तैयार किया ।

संगठन-विषयक प्रारूप तैयार हो जाने के पश्चात् पुनः श्री अ. भा. श्वे. स्थानकवासी जैन कान्फरन्स का शिष्टमंडल साधु-सम्मेलन के बारे में निश्चित प्रस्ताव लेकर पूज्य आचार्य श्रीजी म. सा. की सेवा में उपस्थित हुआ और अपने कार्यों का विवरण बताया ।

शिष्टमण्डल के प्रयत्नों के लिये अपनी प्रसन्नता व्यक्त करते हुए पूज्य आचार्य श्रीजी म. सा. ने फरमाया कि एक समाचारी, एक शिष्यपरम्परा तथा एक के हाथ में प्रायश्चित आदि व्यवस्था और एक

आचार्य के नेश्राय में समस्त साधु-साध्वियां साधना करने की भावना रखते हैं तो मैं और मेरे नेश्राय में रहने वाले साधु-साध्वी संघ-ऐक्य के लिये अपने आपको विलीन करने में सर्वप्रथम रहेंगे। आपश्री के हृदय में संघ-ऐक्य की भावनायें हिलोरें ले रही थी अतः अलवर में उपस्थित चतुर्विध श्रीसंघ के समक्ष अपनी महत्त्वपूर्ण घोषणा करते हुए फरमाया—मुझे किसी संप्रदाय विशेष के प्रति न मोह है, न ममता है और न लगाव है। संत-जीवन ममता-विहीन होना चाहिये। किन्तु अपने कर्तव्य-पालन के लिये संप्रदायान्तर्गत कार्यरत रहना पड़ता है। यदि एक आचार्य की नेश्राय में एक समाचारी आदि का निर्णय करते हुए संयम-साधना के पथ पर चारित्रिक दृढ़ता के साथ अग्रसर होने की स्थिति के योग्य कोई संगठन बनता है तो मैं प्रथम मुनि होऊंगा जो अपनी आचार्य पदवी को छोड़कर संगठन के अधीन चतुर्विध संघ की सेवा करने के लिये सहर्ष तत्पर रहूँगा। जो निष्ठा पूज्य गुरुदेव श्रीमज्जवाहराचार्य के हृदय में विद्यमान थी, वही निष्ठा मेरे मानस में रम रही है।

उक्त घोषणा की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए शिष्टमण्डल एवं उपस्थित चतुर्विध संघ ने अभिनन्दन किया। संघ-ऐक्य के बारे में आपकी अटूट निष्ठा का संक्षिप्त दिग्दर्शन मात्र यहां कराया गया है और इसकी पूर्ति के लिये यावज्जीवन प्रयत्नशील रहे।

इस घोषणा से स्थानकवासी समाज को एकसूत्र में आबद्ध होने का सूत्रपात हुआ। लेकिन उद्देश्य रूप में स्वीकार किये जाने पर भी भविष्य में भावनानुसार कार्य किये जाने की किसी ने आवश्यकता अनुभव नहीं की और स्वार्थपूर्ति के प्रयत्न प्रच्छन्न रूप से चलते रहे। लेकिन आचार्य श्रीजी म. सा. इस उद्देश्य पर दृढ़ रहे और तदनुसार चलने वाले संत-सतियों का एक संगठन बनाकर संगठन-सम्बन्धी उद्देश्य को अमली रूप दे दिया।

रोग की विषमतम स्थिति

चातुर्मास का समय धार्मिक प्रभावना के साथ सम्पन्न हो रहा

था। लेकिन पूज्य आचार्य श्रीजी की शारीरिक स्थिति दिनोंदिन विषम बनती जा रही थी। जिस समय आप लघुशंका से जैसे-तैसे निवृत्त होकर उठते तो शरीर पशीने से सराबोर हो जाता था और मालूम पड़ता था कि स्नान के बाद जैसे शरीर पोंछना बाकी हो। बूंद-बूंद कर पेशाब निकलता था लेकिन असह्य वेदना होते हुए भी मुख पर पीड़ा की रेखा तक नहीं दिखती थी।

रोग की इस विषम स्थिति से संतों और श्रीसंघ की चिन्ता का पार नहीं था। अतः अलवर श्रीसघ ने निश्चय किया कि रोगोन्मूलन के लिये तत्काल आपरेशन करवाया जाये। राजकीय चिकित्सालय के प्रमुख शल्यचिकित्सक एवं अन्य प्रमुख चिकित्सकों ने तो पहले ही निणय कर दिया था कि शल्यक्रिया शीघ्रातिशीघ्र हो जाना चाहिये। इसके लिये जितनी देरी होगी, उससे जीवन को खतरा है।

लेकिन पूज्य आचार्य श्रीजी म. सा. निर्दोष उपचार के लिये तो तैयार थे और शल्यचिकित्सा जैसे उपचार से बचना चाहते थे। इस सम्बन्ध में आप फरमाया करते थे— भोले भाइयो ! कर्मों की व्याधि का मूल इस आपरेशन से निर्मूल होने वाला नहीं है। कर्म-व्याधि का मूल बहुत गहरा है, उसका उन्मूलन यह डाक्टर नहीं कर सकेंगे। हां ये शारीरिक व्याधि को मिटाने में निमित्त हो सकते हैं, लेकिन कर्मों को मूल से उखाड़ने के लिये तो आत्म-पुरुषार्थ की जरूरत है। आत्मा में पैंठे हुए दोषजनक तत्त्वों को निकाल कर फैंकना होगा। अतः आपरेशन के बिना ही अगर काम चलता हो तो चला लेना चाहिये।

पूज्य आचार्य श्रीजी म. सा. अपनी शारीरिक व्याधि के लिये जितने उदासीन थे उतनी ही अलवर श्रीसंघ एवं बीकानेर, रतलाम, ब्यावर आदि-आदि अन्यान्य नगरों और ग्रामों के उपस्थित श्रावक-श्राविकाओं की चिन्ता बढ़ती जा रही थी। अतः इस जटिल स्थिति से चिन्तित अलवर श्रीसंघ ने उस समय उपस्थित अग्रणी श्रावकों की सभा का आयोजन किया। सभा में स्थिति की विषमता पर विचार कर

सर्वानुमति से निर्णय किया गया कि आचार्य श्रीजी के विचार संयम-साधना के अनुरूप हैं। लेकिन आचार्य श्रीजी का जीवन एवं शरीर श्रीसंघ के लिये अमूल्य है और उन पर श्रीसंघ का अधिकार है। अतः हम सब अपने दायित्व को लक्ष्य में रखते हुए पूज्य आचार्य श्रीजी म. सा. की सेवा में निवेदन करें कि सघहितार्थ आप अपना शरीर सघ को समर्पित कर देने की कृपा करें, जिससे सघ जैसा उचित समझे वैसी व्यवस्था कर सके।

संघ के विनम्र निर्णय को पूज्य आचार्य श्रीजी की सेवा में उपस्थित किया गया तो सघ के आग्रह और युक्तियों को ध्यान में रखते हुए आपने वैसा ही उत्तर दिया जैसा आपके गुरुदेव स्व. पूज्य जवाहराचार्य ने भीनासर में दिया था। उन्होंने फरमाया था— इस शरीर पर संघ का भी अधिकार है, यह शरीर मेरे अकेले का नहीं है, श्रीसघ का भी है। श्रीसंघ की जो इच्छा हो वही कर सकता है। मुझे अपनी ओर से कुछ भी नहीं कहना है।

आचार्य श्रीजी की कितनी महानता थी कि श्रीसंघ के आग्रह के समक्ष अपना अस्तित्व गौण कर लिया और संघ की इच्छा का तिरस्कार नहीं किया। श्रीसघ ने समग्र परिस्थिति का गम्भीरता से विचार कर आपरेशन करवाना तथा भारत के सुप्रसिद्ध सर्जन व पूज्य आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. के जलगांव में किये गये आपरेशन से श्रीसघ के विश्वासपात्र डा. श्यामराव रामराव मूलगांवकर बवई से आपरेशन कराना तय किया।

सभी उपस्थित सज्जन इस अवसर पर अपनी-अपनी सेवायें देने के लिये आग्रह कर रहे थे, लेकिन बीकानेर निवासी दानवीर सेठ श्री गोविन्दराम जी भीखनचन्द जी भंसाली की विनम्र विनती और निवेदन पर श्रीसंघ ने श्री भसाली जी को लाभ-प्राप्ति की स्वीकृति दी। इस महान् सुअवसर की प्राप्ति होने से श्री भंसाली जी के हर्ष का पार न रहा और श्रीसंघ ने अभिनन्दन करते हुए अपना प्रमोद व्यक्त किया।

आपरेशन होने के पूर्व

आपरेशन गम्भीर था। डा. मूलगांवकर से संपर्क स्थापित कर समय निश्चित हो चुका था और देश के कोने-कोने में इसकी जानकारी हो जाने से दर्शनार्थियों का अलवर आने का तांता लग गया। स्थिति की गम्भीरता से सभी के चेहरों पर चिन्ता झलक रही थी। अलवर निवासियों के द्वार आगत बन्धुओं के लिये खुले थे और श्रीसंघ के कार्यकर्ता बड़ी तत्परता से प्रबन्ध कर रहे थे।

आपरेशन का दिन भी आ गया। डा. मूलगांवकर अपने अन्य चार सहयोगी डाक्टरों के साथ बंबई से अलवर आ गये थे और उन्होंने राजस्थान के प्रसिद्ध शल्यचिकित्सक डा. बांचू से मिलकर आपरेशन की तैयारी की। श्री महावीर भवन के एक कमरे में ही आपरेशन के लिये स्थान बनाया गया था। डा. मूलगांवकर ने पूज्य आचार्य श्रीजी की शरीर-परीक्षा की और आपरेशन की गम्भीरता को देखते हुए आवश्यक साधनों को एकत्रित कर लिया गया।

क्षण-क्षण और पल-पल करते-करते आपरेशन होने का अवसर भी आ गया। महावीर भवन के चारों ओर जनमेदनी का जमाव हो चुका था और जिधर भी देखो उधर जनसमूह महावीर भवन की ओर आता दिखाई दे रहा था और वातावरण में निस्तब्धता छाई हुई थी।

आपरेशन स्थल पर प्रवेश करने से पूर्व पूज्य आचार्य श्रीजी म. सा. उपस्थित जनसमूह के सन्मुख पधारे। दर्शनार्थियों ने जयघोष करते हुए सविधि वंदना की और अपने नेत्रों को आचार्य श्रीजी के शांत, गम्भीर मुखमंडल पर केन्द्रित कर लिया। निस्तब्धता व्याप्त होने पर आचार्य श्रीजी म. सा. ने अपनी भावना व्यक्त करते हुए फरमाया—

'आज चतुर्विध श्रीसघ यहां उपस्थित है। पूर्वोपार्जित असातावेदनीय कर्म के उदय से शरीर में रोग की उत्पत्ति हुई है, जिसे मैं समतापूर्वक सहन करके और तपस्यादि में प्रवृत्त होकर निर्जरामार्ग की ओर अग्रसर होना चाहता था, किन्तु चतुर्विध संघ की आज्ञा इसके

अनुकूल न होने की जानकर, संघ की आज्ञा मानते हुए मैं शल्यचिकित्सा के लिये प्रस्तुत हो रहा हूँ। ऐसी परिस्थिति में मुझे क्रिया एवं दोषों का लगना अवश्यंभावी है। इसलिये मैं आपसे निवेदन करता हूँ कि जब तक मैं इस प्रवृत्तिमार्ग से निवृत्त होकर प्रायश्चित न कर लूं और लगे हुए दोषों व क्रियाओं के लिये समुचित दंड ग्रहण न कर लूं, तब तक मुझे वंदन न करें। स्थिति गम्भीर है, इसलिये आपरेशन कराने के पूर्व मैं ज्ञात एव अज्ञात अवस्था में अथवा संघहित के कार्यों में भी यदि मेरे किसी क्रियाकलाप से श्रावक, श्राविका, साधु, साध्वी रूप चतुर्विध श्रीसंघ को किसी प्रकार क्लेश पहुंचा हो तो अन्तर्मन से सबसे क्षमत-क्षमापना करता हूँ और आशा करता हूँ कि आप सब जीवन के इस कंटकाकीर्ण पथ पर भगवान महावीर द्वारा प्रदर्शित अखड ज्ञानज्योति को हृदयंगम कर शाश्वत सुख की ओर अग्रसर होते रहेंगे।

'मुझे जो कुछ भी प्राप्त हुआ है वह सब गुरुदेव का प्रसाद है और समाज के सहकार का फल है। मैं गुरुदेव और समाज का ऋणी हूँ।'

पूज्य आचार्यश्री के उल्लिखित भाव श्रमणसस्कृति के त्याग-प्रधान प्रकृति के प्रतीक थे। उनमें हृदय की अभिव्यक्ति, जैन-शासन की पावन परंपरा को अक्षुण्ण बनाये रखने की अभिलाषा और संतजनोचित उच्चकोटि की उदारता व्यक्त की गई थी।

उपस्थिति ने आचार्यदेव के शब्दों को सुना तो अवश्य था किन्तु हृदय थम न सका। अधिकांश के नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी और कई एक की आखें सूखी भी थीं तो मन की पीड़ा मन ही अनुभव कर रहा था और ऐसे ही वातावरण में निमग्न जनसमूह को छोड़ आचार्यदेव आपरेशन के लिये पधार गये।

आपरेशन करने के पूर्व डाक्टरों ने आचार्य श्रीजी के शरीर व हृदय की धड़कन की पुनः परीक्षा की। डाक्टरों को यह सब करते देख आचार्यदेव ने स्मित हास्य किया। खातरी कर लेने के बाद आपरेशन प्रारम्भ हो गया। डाक्टरों के कुशल हाथ शारीरिक रोग-

उन्मूलन के लिये चपलता से अस्त्रों से अठखेलियां करने लगे। रक्त की धारा वह निकली, किन्तु पूज्य आचार्यदेव सब कुछ देखते हुए भी डाक्टरों से बातचीत कर रहे थे। मुख पर वेदना की रेखा तक नहीं थी। मानो देहातीत स्थिति में विचरण कर रहे हों।

अत्यधिक रक्तप्रवाह के अनुमान से डाक्टरों ने रक्त चढ़ाना चाहा किन्तु आचार्यदेव ने अपनी भावना व्यक्त करते हुए कहा कि यदि जीवन समाप्त होता हो, तो हो जाये किन्तु इस नश्वर शरीर के लिये अन्य किसी जीव को कष्ट पहुंचाना मुझे अभीष्ट नहीं है। डाक्टर-गण पहले ही आपकी सहनशीलता देखकर विस्मित हो रहे थे और इस बात ने तो उन्हें और भी आश्चर्य में डाल दिया। बेहोशी के लिये क्लोरोफार्म सूंघे बिना ही इतने गम्भीर आपरेशन के लिये तैयार हो जाना एक आलौकिक घटना ही थी। वस्तुतः महात्माओं का हृदय दूसरों के लिये तो फूल-सा होता है और अपने प्रति वज्र-सा कठोर।

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।
लोकोत्तराणां चेतांसि को हि विज्ञातुमर्हति॥

लोकोत्तार पुरुषों के चित्त को परखना बड़ा ही कठिन है। एक ओर वे वज्र के प्रतिरूप प्रतीत होते हैं तो दूसरी ओर कुसुम से भी कोमल और फिर हमारे आचार्यदेव ने तो उस संस्कृति के वायु-मंडल में सांसें ली थीं जो विधान करती है—

अवि अप्पणो वि देहंमि नायरंति ममाइयं।

महात्मागण अपनी देह के प्रति भी ममता का भाव उत्पन्न नहीं होने देते। जिन्होंने काया को भी पराया समझ लिया और अपने शुद्ध आनन्दमय स्वरूप में अवगाहन कर लिया है उन्हें संसार की कोई भी घटना व्यथा नहीं पहुंचा सकती है। जिनके सामने गजसुकुमार का उच्चतर आदर्श है, वे शारीरिक व्यथा से कब व्याकुल होते हैं?

डाक्टरों ने सफलता पूर्वक रोगाक्रान्त अवयव को निकाल लिया। आपरेशन सफल हुआ और सोत्सुक जनसमूह को सफलता के

समाचार सुनाने के लिये हाथ में एक मांसग्रन्थि लेकर डाक्टर मूलगांव-कर ने बाहर आकर कहा—

महाराजश्री का आपरेशन सफल हो गया है। तेरह तोले की गांठ काटकर बाहर निकाल दी गई है। आश्चर्य है कि महाराज श्री ने क्लोरोफार्म सूंघ कर बेहोश होना पसन्द नहीं किया। उनकी मानसिक शक्ति अजेय है, संकल्प बल विस्मयजनक है। मैंने कई लोगों के आपरेशन किये और बड़े-बड़े सहनशील व्यक्ति भी देखे, किन्तु इतने शक्तिशाली और सहिष्णु महापुरुष पहले कभी देखने में नहीं आये हैं।

इन शब्दों ने सुधा का सिंचन-सा कर दिया। गम्भीर और व्याकुल वातावरण हर्ष और उल्लासमय हो गया। तत्काल ही देश के समस्त श्रीसघों की जानकारी के लिये आकाशवाणी, तार, टेलीफोन द्वारा आपरेशन की सफलता के समाचार प्रसारित कर दिये गये और अनेक व्यक्तियों ने हजारों रुपये दान में दिये।

शुद्धि हेतु प्रायश्चित

धीरे-धीरे घाव भर गया। शनैः-शनैः कमजोरी दूर होने से शरीर में विहार करने योग्य शक्ति आ गई थी। आचार्य श्रीजी चाहते थे कि चिकित्साकाल में हुए दोषों की आलोचना कर प्रायश्चित ले लिया जाये। यद्यपि आचार्य श्रीजी स्वयं इस विधि-विधान के विज्ञ थे, फिर भी उन्होंने पंजाब संप्रदाय के आचार्य श्रीजी से आलोचना विधि मंगवाई। उन्होंने प्रत्युत्तर में लिखवाया कि आप स्वयं विज्ञ हैं, किन्तु यह आपकी महानता है कि मुझसे प्रायश्चित्त मंगवा रहे हैं। जिस स्थिति में आपने आपरेशन करवाया है, वह आपवादिक स्थिति है। ऐसी स्थिति में लगे हुए दोषों का शुद्धिकरण गुरु चौमासी तप (१२० उपवास) का प्रायश्चित लेकर कर लेवें। लेकिन आचार्यश्री ने इससे भी भारी चार मास दीक्षाछेद का प्रायश्चित लिया।

विहारवेला का अवसर

आचार्य श्रीजी शीघ्र विहार करना चाहते थे। समयक्रम से

विहार का भी क्षण आ पहुंचा। महावीर-भवन श्रोताओं से खचाखच भरा हुआ था। काफी समय के पश्चात श्रोताओं को प्रवचन-प्रसाद की प्राप्ति का अवसर प्राप्त हुआ था। सभी के मन वचन-माधुर्य से पूरित हो रहे थे। अतः प्रवचन परिसमाप्ति का संकेत ही न लग सका। आखिर तल्लीनता भंग हुई और सूने मन से श्रोतामण उठ खड़े हुए।

सन्तमंडली से परिवेष्टित पूज्य आचार्य श्रीजी ने महावीर-भवन से बाहर पदार्पण किया। जनता ने जयघोष किया लेकिन उसमें उमंग नहीं थी, उत्साह नहीं था, सिर्फ भावभरे हृदयों की अनुभूति का उच्छ्‌वास झलक रहा था।

प्रायश्चित की घोषणा

अलवर से जयपुर की ओर विहार हुआ। नगरान्त का अंतिम विश्राम स्थल सस्कृत महाविद्यालय में किया। अन्तिम प्रवचन सुनने का सौभाग्य आज ही मिलने वाला है अतः अलवर श्रीसंघ के आबालवृद्ध नरनारी महाविद्यालय के प्रांगण में एकत्रित हो गये। आचार्यश्री ने जनमेदनी के सन्मुख अपना प्रवचन फरमाया और प्रवचन के अन्त में निम्नलिखित घोषणा की—

'आप सब लोगों को मालूम है कि रोगग्रस्त अवस्था में मुझे प्रमादजन्य कतिपय दोषों एवं क्रियाओं का भागी बनना पड़ा है और इसीलिये आपरेशन के पूर्व मैंने कहा था कि जब तक दोष-निवृत्ति हेतु मैं आलोचना, प्रायश्चित न कर लूं, आप मुझे वंदना-नमस्कार न करें। उपचार के पश्चात मैंने अपने दोषों का प्रायश्चित्त किया है और अब श्रीसंघ की साक्षी में एतद्‌विषयक दंड-विधान— चार मास का दीक्षाछेद स्वीकार करता हूँ। आज से ४ माह की दीक्षावधि कम होने से जो मुझसे छोटे होकर मुझे नमस्कार करते थे, अब मैं उन्हें बड़ा मानकर नमस्कार करूंगा। साथ ही उपचारावस्था में जो मुनिवृन्द मेरी सेवा-शुश्रुषा में रत रहे, उन्हें भी क्रियाओं के लिये दोषी मानते हुए यथा-योग्य दंड-प्रायश्चित देता हूँ।'

पूज्य आचार्य श्रीजी की उक्त घोषणा को उपस्थित चतुर्विध श्रीसंघ ने सुना और मुनिवृन्द ने आज्ञानुसार दंड-प्रायश्चित विधान को अंगीकार किया। अन्त में उपस्थिति ने पुनः-पुनः वंदना कर पूज्य आचार्य श्रीजी को विदाई दी।

अलवर चातुर्मास अनेक महत्त्वपूर्ण कार्यों के होने से स्मरणीय रहेगा। इसी समय में संघ-ऐक्य की योजना को कार्यान्वित करने के लिये घोषणा की गई और आचार्य श्रीजी के स्वस्थ होने से समाज की चिन्ता दूर हुई। तप, त्याग, संयम आदि का जो प्रभाव जनमानस पर पड़ा, वह तो अलवर श्रीसंघ की अमरनिधि रहेगी।

संघ-ऐक्य : दो विचारधारायें

एक ही आचार-विचार परम्परा के अनुगामी सन्त-संप्रदायों को एकसूत्र में आबद्ध करने के लिये पूज्य आचार्य श्री जवाहरलालजी म. सा. के समय से प्रयत्न हो रहे थे। पहले सन् १९३३ में अजमेर में एक वृहत्साधु-सम्मेलन हुआ था। उक्त अवसर पर पूज्यश्री जवाहरलालजी म. सा. ने विभिन्न संप्रदायों में विभाजित श्रमणवर्ग को एक आचार्य और एक समाचारी के आधार का शिलान्यास कर दिया था। लेकिन वैसी स्थिति नहीं बन सकी थी। अतः उसी समय से ही संघ-ऐक्य के लिये प्रयत्न हो रहे थे।

अलवर चातुर्मास के समय में आपका वक्तव्य प्रकाशित होते ही स्थानकवासी सन्त-सम्प्रदायों में एकता, सम्प्रदाय-विलीनीकरण और संघ-निर्माण की योजनाओं पर चर्चा विचारणा प्रारम्भ हो गई थी। इस समय में साधु मुनिराजों में विभिन्न प्रकार की विचारधारायें विद्यमान थीं। बहुत से आचार्यों के मन में सभी सम्प्रदायों के विलीनीकरण और सर्वसम्मत ऐक्य-योजना के स्वीकृत होने में सन्देह था कि क्या सैकड़ों वर्षों से चले आये संप्रदायों का विलीनीकरण हो सकेगा? अतः वे एक साथ कोई बड़ा कदम उठाने के विरोधी थे। वे चाहते थे कि फिलहाल संप्रदाय पूर्ववत् बने रहें और एकता के बदले पारस्परिक

संगठन किया जाये। यह संगठन परीक्षण के रूप में अस्थायी हो। जब यह परीक्षण सफल हो जाये और एकता की भूमिका निर्मित हो जाने पर संघ-ऐक्य का आदर्श रखा जाये। अभी ऐसा वातावरण नहीं दिखता है कि सभी सन्त-मुनिराज एक ही आचार्य के आदेश और निर्देश में रह सकें। अतः इस परिस्थिति में संगठन के लिये मध्यम मार्ग का अवलम्बन करना योग्य है।

लेकिन कुछ दूसरे सन्त एकता का पूर्ण समर्थन करते थे। उनका अभिप्राय था कि चारों ओर से एकता की प्रबल मांग हो रही है। एकता की कल्पना मात्र से श्रावक-श्राविकायें हर्ष प्रकट कर रहे हैं। परिस्थितियां भी एकता के अनुकूल हैं। जब तक भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों की सत्ता रहेगी, पारस्परिक स्पर्द्धा और संघर्ष चालू रहेंगे और सम्प्रदायों में हमारी शक्ति विभाजित रहेगी तो संगठन को बल कहां से मिलेगा ? सांप्रदायिक भेदभाव के विषाक्त फल हम खूब चख चुके हैं एवं चखते-चखते संघ-मानस दूषित हो चुका है। यही अवसर है कि एकता की सुधा पिलाकर संघ को पुनः स्फूर्तिमय और सजीव बनाया जाये। यदि इस बार भी हम उदारता प्रदर्शित करके एकता का निर्माण न कर सके तो श्रावकवर्ग की उग्र प्रतिक्रिया होगी। इसके सिवाय एकता के लिये उठाया जा रहा कदम आकस्मिक नहीं, वरन् पूर्व विचारित है। पूर्व में एक बार हमारे महारथी अजमेर में मिल चुके हैं। हम दूसरी बार मिल रहे हैं। अगर हर बार वातावरण के नाम पर कोई उपयोगी और क्रान्तिकारी कदम उठाने से हिचकते रहे तो कभी भी एकता के लक्ष्य को प्राप्त न कर सकेंगे।

वातावरण का निर्माण स्वयं तो होता नहीं, किन्तु हमारे मन का सुदृढ़ संकल्प और हृदय की उदार भावना ही उसका निर्माण करती है। अतएव ज्ञान, दर्शन, चारित्र की अभिवृद्धि हेतु यदि हम संघ की सेवा में अपनी समस्त महत्त्वाकांक्षायें समर्पित करने को उद्यत हैं और विराट संघ के उत्कर्ष में ही अपना उत्कर्ष मानने को तैयार हैं तो

फिर कोई कारण नहीं कि हम एकता के लिये भविष्य की ही प्रतीक्षा करते रहें। जो कर्तव्य हमारा है, उसे हमें करना चाहिये, उसका भार अगली पीढ़ी पर डालना उचित न होगा। हमें पथ का निर्माण कर देना चाहिये, जिससे भविष्य के सन्त उस पर सकुशल अग्रसर हो सकें।

वृहत्साधुसम्मेलन होने की घोषणा

इस प्रकार की विचारधाराओं के होने पर भी संघ-ऐक्य के लिये प्रयत्न करना योग्य माना जा रहा था। इसी बीच संघ-ऐक्य योजना के बारे में पूज्य आचार्य श्रीजी के उदार विचारों की घोषणा हो चुकी थी। जिससे जनता में आशा और उत्साह की लहर व्याप्त हो गई थी। श्री अ. भा. श्वे. स्थानकवासी जैन कान्फरेन्स के कार्यकर्ता सम्मेलन की भूमिका तैयार करने में सलग्न थे। उनका प्रयास सफल हुआ और सन्त-मुनिराजों की सुविधा व स्थिति को देखते हुए दिनांक २७-४-५२, सं० २००९, वैशाख शुक्ला ३ से घाणेराव सादड़ी में वृहत्साधु-सम्मेलन होने का निश्चय किया गया।

संगठन की भावना समाज में तीव्र रूप से व्याप्त थी। अतः सम्मेलन के समय, स्थान के निश्चय से समाज में नवस्फूर्ति के दर्शन होने लगे। सम्मेलन के समय दर्शनार्थ जाने के लिये सभी भाई-बहिन अपने-अपने कार्यक्रम नियत कर रहे थे और बहुत से मुनिराज सम्मेलन-स्थान से काफी दूर थे, लेकिन संघ ऐक्य के प्रयत्नों में सहयोगी बनने के लिये उन्होंने भीषण गर्मी में भी उग्र विहार करके समय से पूर्व सादड़ी पहुंचने के लिये अपने-अपने स्थानों से विहार कर दिया था।

आचार्य श्रीजी का सम्मेलन क्षेत्र की ओर विहार

पूज्य आचार्य श्रीजी स्वास्थ्यलाभ के पश्चात् अलवर से विहार कर जयपुर पधारे। उपाध्याय कवि श्री अमरचन्द जी म. जयपुर विराजते थे और प र. मुनिश्री सिरेमलजी म. सा. भी दक्षिण की तरफ से विहार करते हुए जयपुर पधार गये और सम्मेलन के बारे में वार्तालाप करते हुए वहां से अजमेर पधारे। अजमेर में वयोवृद्ध स्थविरपद

विभूषित मुनिश्री पूरणमल जी म. सा., श्री इन्द्रमल जी म. सा., श्री मोतीलाल जी म. सा. आदि साधु-सन्तों का मिलन हुआ। पंजाबकेशरी मुनिश्री प्रेमचन्द जी म. भी अजमेर पधार गये थे। यहां भी सम्मेलन सम्बन्धी कुछ चर्चा-वार्ता हुई।

अजमेर से सुविधानुसार विहार करते हुए पूज्य आचार्य श्रीजी आदि सन्त ब्यावर पधारे। ब्यावर में कुछ अर्से से समाज में पारस्परिक मनोमालिन्य था, रागद्वेष की तीव्र परिणति हो गई थी। एक दूसरे के यहां जाना-आना बन्द हो गया था। इससे वहां के विवेकशील बन्धु खेद-खिन्न थे और चाहते थे कि यह मनोमालिन्य दूर होकर संघ में वात्सल्यभाव की वृद्धि हो। पूज्य आचार्य श्रीजी के समक्ष उन्होंने अपने विचार रखे। आपश्री ने पारस्परिक संघर्ष से उत्पन्न समाज की दैन्यावस्था का सकेत करते हुए वात्सल्य–वृद्धि का उपदेश दिया और साधुमर्यादानुसार निर्णय दिया। उक्त निर्णय सभी के लिये हित-मित और पथ्य था और सभी ने एक स्वर से अंगीकार किया एवं ब्यावर में कुछ दिन विराज कर आपश्री ने सम्मेलन के निमित्त घाणेराव सादड़ी की ओर विहार कर दिया।

सम्मेलन का शुभारम्भ

घाणेराव सादड़ी मारवाड़ की मरुधरा के बीच बसा एक छोटा-सा कस्बा है। ग्रीष्मऋतु के कारण मारवाड़ में काफी गरमी पड़ती है, लेकिन सम्मेलन के व्यवस्थापकों ने श्रावकों के लिए आवास, पानी आदि की बहुत ही अच्छी व्यवस्था की थी और पधारने वाले साधु-सन्तों के लिये श्री लोंकाशाह जैन गुरुकुल के भव्य भवन में विराजने तथा उसके विशाल सभाकक्ष में सम्मेलन की बैठकें करने का प्रबन्ध किया था। बाहर से आगत दर्शनार्थियों के लिये गुरुकुल के आसपास के मैदान में लों शाह नगर बसाया गया था। क्षेत्र की दृष्टि से व्यवस्था के लिये जुटाये गये साधन निस्संदेह उल्लेखनीय थे। लगभग ३५,००० भाई-बहिन दूर-दूर के [illegible] से दर्शनार्थ पधारे थे।

सम्मेलन-प्रारम्भ होने के एक-दो दिन पहले ही साधु-मुनिराजों के पधार जाने और दर्शनार्थियों का आवागमन चालू हो जाने से सादड़ी में चहल-पहल बढ़ गई।

सम्मेलन में भाग लेने के लिये २२ सम्प्रदायों के ५३ प्रतिनिधियों सहित मुनि ३४१ और आर्याजी ७६८ पधारे थे।

पूर्व निश्चयानुसार सं० २००९, वैशाख शुक्ला ३, दि० २७-४-५२ को दिन के ३ बजे सम्मेलन का शुभारम्भ हुआ। पूज्य आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. सम्मेलन की कार्रवाई को सुव्यवस्थित और सुचारु रूप से संचालित करने के लिये शांतिरक्षक निर्वाचित किये गये और आपकी सहायता के लिये व्याख्यानवाचस्पति पं. र. श्री मदनलालजी म. सा. भी शांतिरक्षक चुने गये। यह चुनाव सर्वसम्मति से हुए थे।

अनन्तर संघ-ऐक्य के उद्देश्य के सम्बन्ध में विभिन्न मुनिराजों ने अपने-अपने विचार व्यक्त किये और सर्वानुमति से लक्ष्य—एक आचार्य के नेतृत्व में श्रमणसंघ की स्थापना—स्वीकृत हो गया तो उसकी पूर्ति के साधनों पर विचार-विनिमय प्रारम्भ हुआ।

उस समय प्रतिनिधि मुनिवरों ने भाव दर्शाये कि विभिन्न सम्प्रदायें सुदीर्घकाल के अनन्तर परस्पर मिल रही हैं, अतः लक्ष्यपूर्ति की दिशा में क्रम-क्रम से बढ़ना उचित होगा। प्रतिनिधियों द्वारा व्यक्त विचारों और भावनाओं को ध्यान में रखते हुए पूज्य आचार्य श्रीजी म. सा. ने अपनी योजना को तत्काल ही समग्र रूप से स्वीकार करने पर अधिक बल नहीं देकर नवनिर्मित श्रमणसंघ में सशर्त सम्मिलित होने की स्वीकृति प्रदान की।

संगठन से सम्बन्धित मुख्य-मुख्य विषयों पर गम्भीरता से विचार करने के बाद मुनिराजों की संसद जब ऐक्ययोजना के बारे में सहमत हो गई तो प्रश्न उठा—समस्त स्थानकवासी जैन संघ का आचार्य किसे बनाया जाये? जिसके नेतृत्व में शताब्दियों से बिखरा समाज, पृथक्-पृथक् आचार्यों के निर्देशन में चलने वाला साधु-सम्प्रदाय और भिन्न-

भिन्न सम्प्रदायों के सम्पूर्ण सत्तासम्पन्न आचार्य एक रूप से आबद्ध हो सकें।

संघ ऐक्य योजना की स्वीकृति ही कठिन थी किन्तु आचार्य-निर्वाचन की समस्या तो उससे भी अधिक कठिन थी। प्राचीन और अर्वाचीन विचारधारायें आपस में टकरा रही थीं, फिर भी सभी यह चाहते थे कि ऐसे महापुरुष निर्वाचित किये जायें जो समग्र संघ का योग्यतापूर्वक संचालन कर सकें और सबके श्रद्धा-केन्द्र हों।

सम्मेलन में संघऐक्य की रूपरेखा निर्णीत हो चुकी थी और मुख्य-मुख्य प्रश्नों के बारे में सर्वानुमति से निर्णय भी किये जा चुके थे, सिर्फ कुछ-एक छोटे-मोटे प्रश्नों पर विचार करना शेष रहा था। अतः ग्रीष्मऋतु की उग्रता और दर्शनार्थियों का जमघट विशेष होने से प्रतिनिधि मुनिराजों ने निश्चय किया कि यहां आचार्यपद पर सर्वमान्य सन्तप्रवर का चयन करके चतुर्विध संघ की उपस्थिति में ही उन्हें आचार्य पद प्रदान कर दिया जाये और शेष प्रश्नों के सम्बन्ध में विचार-परामर्श और निर्णय करने का अधिकार आगे होने वाले पदाधिकारी मुनिराजों के सम्मेलन को सौंपना उचित है।

सुझाव का सभी ने स्वागत किया। अतः बैशाख शुक्ला ८ को रात्रि की बैठक में आचार्य पद के लिये सुयोग्य सन्तप्रवर के चयन पर विचार प्रारम्भ हुआ। तब सबका ध्यान पूज्य आचार्य श्रीजी पर केन्द्रित हो गया। पूज्य श्री हस्तीमलजी म. सा. ने श्रमण संघ के आचार्य पद के लिये पूज्य आचार्य श्री गणेशलाल जी म. सा. का नाम प्रस्तावित करते हुए इस आशय के भाव व्यक्त किये कि आप सब गुणों से सम्पन्न हैं। आपकी शास्त्रों पर प्रगाढ़ श्रद्धा है, आप में चारित्र की दृढ़ता है और ज्ञान की गरिमा से ओतप्रोत हैं। ऐसे आचार्य के नेतृत्व में ही हम ज्ञानदर्शनचारित्र की अभिवृद्धि अच्छी तरह कर सकते हैं। अतः आपको श्रमणसंघ के आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया जाये।

लेकिन पूज्य आचार्यश्रीजी ने प्रस्ताव समर्थन के बीच ही फरमाया कि आपकी भावना अच्छी है, लेकिन मुझसे बिना पूछे मेरा नाम

कैसे रख दिया ? मैं तो अपना पूर्व भार ही कम करने की सोच रहा हूँ और इच्छुक हूँ कि ज्ञान-दर्शन-चारित्र-संयम-साधना की समुचित व्यवस्था बन जाये तो अपने उत्तरदायित्व से हलका होकर आत्मसाधना में तल्लीन होऊं। लेकिन आप लोग मुझ पर और अधिक उत्तरदायित्व डालने की चेष्टा कर रहे हैं। यह मैं अपने लिये उपयुक्त नहीं समझता। आप सब मुनिवरों का मेरे प्रति वात्सल्यभाव सराहनीय है और उसके लिये मैं आपका आभारी हूँ। लेकिन इस संघ-सचालन के दायित्व से मुझे विमुक्त ही रखें और अन्य किसी भी मुनिवर को इस पद पर प्रतिष्ठित किया जाये।

लेकिन सभी उपस्थित बड़े-बड़े विद्वान, दीक्षावृद्ध, वयोवृद्ध और विभिन्न संप्रदायों एवं गणों के संचालक अनुभवी सन्तों ने एक स्वर से पूज्यश्री की सेवा में सानुरोध निवेदन किया कि आपश्री ही इस नव-निर्मित श्रमणसंघ के आचार्य पद को स्वीकार करने की कृपा करें।

प्रतिनिधि मुनिवरों की तो एक ही प्रार्थना थी कि यह आचार्य-पद के चयन का विषय है जो समस्त मुनिवरों की भावना पर निर्भर है। वे जिनको मनोनीत करना चाहें, उसमें पूछने जैसी बात कौन-सी रह जाती है। आपश्री के चरणों में समग्र सत नेतृत्व समर्पण करना चाहते हैं इसीलिये सभी प्रतिनिधि-सन्त प्रस्ताव का समर्थन कर रहे हैं और आप इस नेतृत्व को अंगीकार करें। अतः पूज्य श्री हस्तीमलजी म. सा. द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव— पूज्य श्री गणेशलालजी म. सा. श्रमण संघ के आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किये जायें— सर्वसम्मति से पारित हुआ।

अनन्तर पूज्य आचार्यश्री गणेशलालजी म. सा. ने अतीव मार्मिक शब्दों में साधु-समुदाय के समक्ष आत्मनिवेदन उपस्थित करते हुए कहा— मेरा शरीर वैसा नहीं रहा जैसा कि जवानों का होता है। मैं वृद्ध हो चला हूँ और रुग्ण रहता हूँ। आप बृहत् श्रमणसंघ का महान् उत्तरदायित्व मुझ पर डाल रहे हैं, आपके इस विश्वास का मैं आभारी हूँ, किन्तु उसे उठाने में मैं कठिनता अनुभव कर रहा हूँ। अतः यह

उत्तरदायित्व किसी अन्य योग्य ज्ञानवृद्ध और उत्कृष्ट संयमी महात्मा को सौंपा जाये तो मुझे अत्यन्त प्रसन्नता होगी।

पूज्यश्री की इस उदारता और महानुभावता ने एक सुन्दर और स्पृहणीय वातावरण का निर्माण कर दिया। सभी सन्त आपकी उत्कृष्ट त्यागशीलता के प्रति श्रद्धा व्यक्त करने के साथ-साथ सर्वसम्मत निर्वाचन को स्वीकृति देने के लिये साग्रह अनुरोध करने लगे।

इस प्रकार जब यह प्रश्न चर्चा में पड़ गया तो प्र. व. मुनिश्री सौभागमलजी म. ने एक सुझाव रखा कि पंजाब संप्रदाय के पूज्य श्री आत्मारामजी म. सा. एक माने हुए महान सन्त हैं। उनकी साहित्य-सेवा से समाज ऋणी है। अतः उनको भी कोई-न-कोई उच्चपद देना चाहिये। उन्हें भी आचार्य का पद दिया जाये तो अच्छा रहेगा। लेकिन उनके लिये यह पद सिर्फ सम्मानार्थ ही माना जायेगा और कार्य करने की समग्र सत्ता एवं अधिकार के लिये पूज्यश्री गणेशलालजी म. सा. का निश्चय हो ही चुका है।

इस पर प्रश्न उपस्थित हुआ कि दो आचार्य बनाने से तो हमारा उद्देश्य— एक आचार्य के नेतृत्व में श्रमण संघ बनाना— पूरा नहीं हो सकेगा। इसलिये उद्देश्य की पूर्ति में किसी प्रकार से व्यवधान भी न आये और पूज्यश्री आत्मारामजी म. सा. को उच्चपद भी दिया जा सके, इन दोनों बातों पर विचार करना जरूरी है।

इस पर कुछ एक प्रतिनिधि सन्तों ने कहा कि जिस प्रकार राजनैतिक क्षेत्रों में महाराजप्रमुख और राजप्रमुख शब्दों का प्रयोग किया जाता है, उसी तरह यहां भी दो शब्द निश्चित कर, पद के नामांकन में कुछ भिन्नता रखने से यह गुत्थी सुलझ सकती है। इस सुझाव पर सर्वसम्मति से पूज्यश्री आत्मारामजी म. सा. सम्मान की दृष्टि से आचार्यपद से विभूषित किये गये और पूज्यश्री गणेशलालजी म. सा. श्रमण-संघ-संचालन की पूर्ण सत्ता के साथ उपाचार्य पद पर निर्वाचित किये गये।

लेकिन पद की गुरुता ज्ञात होने से पूज्य आचार्य श्रीजी म.

सा. इस भार को लेने के लिये सहमत नहीं हुए और उधर मुनिवरों के सामने दूसरा कोई विकल्प नहीं था। इसी विचारणा में रात्रि काफी बीत चुकी थी अतः पुनर्विचार के लिये इस चर्चा को प्रातःकाल के लिये स्थगित कर दिया गया।

पूज्य आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. ध्यान आदि कर श्रमापहार हतु शयनासन पर आसीन भी हुए किन्तु विचार-तरंगों में निद्रा नहीं आई और परिस्थिति के विचारों मे निमग्न रहे। इसी प्रकार प्रतिनिधि मुनिवरों के मनों में भी अन्तर्द्वन्द्व चलता रहा। रात्रि के तीसरे पहर करीव तीन वजे होंगे कि प्रमुख सन्तों में से एक के बाद एक आपश्री के निकट एकत्रित होने लगे और उन्होंने हर प्रकार से प्रार्थना की, आश्वासन दिये कि आपश्री नेतृत्व सम्भालने की स्वीकृति फरमावें। आप यदि इस पद को स्वीकार नहीं करेंगे तो यह संगठन नहीं वनेगा। हम सभी जनसाधारण में भी हास्यास्पद माने जायेंगे कि इतने बड़े साधु-समुदाय में नेतृत्व सम्भालने वाले सक्षम सन्तप्रवर के नहीं होने से संगठन नहीं बन सका।

कई एक का तो इस स्थिति के कारण गला भर आया और आंसू बहाते हुए बोले—हम सव आपका अनुशासन चाहते हैं, आप जो भी आदेश देंगे, सहर्ष पालन करेंगे और क्रियात्मक रूप देंगे। सुवह की बैठक में आपको इस पद के लिये स्वीकृति देनी ही पड़ेगी।

वार्तालाप करते-करते प्रातःकाल हो गया था और प्रतिक्रमण आदि का समय हो जाने से निश्चय किया गया कि प्रातःकालीन बैठक में इस चर्चा को पुनः आरम्भ किया जाये।

प्रातकालीन दैनंदिनी कृत्यों से निवृत्त होने के अनन्तर प्रतिनिधि मुनिवरों की वैठक प्रारम्भ हुई। वातावरण में गम्भीरता थी। विचारों में डूवे मनों की परछाइँ बोली और मुखों पर झलक रही थी।

मगलाचरण के पश्चात आचार्यपद-स्वीकृति की अधूरी चर्चा पुनः प्रारम्भ हुई। उपाध्याय कविरत्न श्री अमरचन्दजी म. ने समस्त

प्रतिनिधि मुनिवरों की ओर से पूज्य आचार्य श्रीजी के प्रति भावभीनी श्रद्धा व्यक्त करते हुए प्रासंगिक वक्तव्य दिया—

'मैं दो वर्षों से पूज्यश्री के परिचय में आया हूँ। आगरा और देहली में मुझे चरणसेवा करने का अवसर प्राप्त हुआ है। मैंने सुन रखा था कि पूज्यश्री चट्टान की तरह कठोर हैं व अनुशासन में पूरे कड़क कदम उठाते हैं। परन्तु प्रत्यक्ष दर्शन करने और सेवा में रहने का प्रसंग आने पर मुझे अनुभव हुआ कि अनुशासन के नाते जितने कठोर हैं, उससे ज्यादा नरम एवं उदार भी हैं। हमने आचार्य श्री आत्मारामजी म. को नियत किया है परन्तु शारीरिक स्वास्थ्य अच्छा न होने के कारण वे एक स्थान में ही केन्द्रित हैं। उनकी साहित्य-सेवा से संघ ऋणी है। इसी हेतु से उनके प्रति श्रद्धा एवं सद्भावना प्रकट की गई है। परन्तु हमारे विराट संघ को अनुशासित करने के लिये योग्य आचार्य की आवश्यकता है जो साधु-साध्वी और श्रावक संघ में श्रद्धा एव प्रेम की लहर पैदा कर सके। हम देखते आ रहे हैं कि छोटे-मोटे साधुओं के आचार्य चुने जाते हैं, उसमें भी एकाध व्यक्ति अड़े रहते हैं। परन्तु अखिल भारतवर्ष के लिये आपको सर्वानुमति से नियत कर रहे हैं। मुनिमंडल आपके अनुशासन की आवश्यकता महसूस करता है। अतः मैं निवेदन करूंगा कि आप हमारी तुच्छ प्रार्थना को जरूर स्वीकार करेंगे।

'आपके पीछे फौज तैयार है। आप जो भी आज्ञा प्रदान करेंगे, हम उसे मूर्तरूप देंगे। बहुत दिनों का बिछड़ा हुआ संघ मिलता है तो कठिनाई जरूर आ सकती है, परन्तु आचार्यश्री! आप उदार एवं अनुभवशील हैं। ऊंची-नीची भावनाओं को परखने वाले भी हैं और आपके नीचे आपके कार्यभार को संभालने के लिये मन्त्रीमण्डल रहेगा। वह व्यवस्थित रूप से सारा कार्य संभालेगा। अतः मैं आचार्य श्री से प्रार्थना करता हूँ कि वे उपाचार्य पद को स्वीकार कर लें।'

प्रतिनिधि मुनिवरों की ओर से जब उपाध्याय श्री अमरचन्दजी

म. उक्त वक्तव्य दे चुके तो सबके चेहरों पर मन्द मुस्कान मुखरित हो उठी। पूज्य आचार्य श्रीजी भी उस प्रेममय वातावरण से अपने आपको अलिप्त नहीं रख सके और सब मुनिवरों के प्रेमभरे आग्रह और सहयोग के आश्वासन को मान देकर श्रमण संघ के नेतृत्व को सुशोभित करने के लिये आपने अपनी स्वीकृति प्रदान की।

जब पूज्य आचार्य श्रीजी अपनी स्वीकृति फरमा चुके तो सब मुनिवरों की ओर से मरुधरकेशरी श्री मिश्रीमलजी म. ने पूज्य आचार्य श्रीजी म. सा. की सेवा में अभिनन्दन अर्पित करते हुए निम्नलिखित वक्तव्य दिया—

"अत्यन्त खुशी का समय है कि अखिल भारतवर्षीय स्थानकवासी जैन समाज के लिये सर्व-सम्मति से आचार्य का चुनाव हो गया है। सादड़ी के लिये हम लोग रवाना हुए और यहां तक पहुंचे, तब तक लोग यही कहते थे कि महाराज दिन पूरे क्यों करते हो? किन्तु शासनदेव की कृपा से कहिये या विकास और संगठन का समय पक चुका, इस कारण कहिये आज हम सर्वसम्मत होकर सहर्ष आचार्य की नियुक्ति कर सके हैं। विशेष प्रसन्नता की बात यह है कि जैनजगत के चमकते सितारे पूज्यश्री गणेशलालजी म. ने इस पद को स्वीकार करके हमें कृतज्ञ किया है। एतदर्थ मुनिमण्डल की ओर से उन्हें कोटिशः धन्यवाद प्रदान करता हूँ।'

इस प्रकार जब आह्लादमय वातावरण में चुनाव का कार्य सम्पन्न हो गया तो निम्नलिखित प्रस्ताव पारित किया गया—

'आचार्य पद चद्दर की रस्म वैशाख शुक्ला १३, सं० २००६, बुधवार को दिन के ११ बजे अदा की जावेगी। इसके पूर्व सर्व मुनि प्रतिज्ञापत्र मयदस्तखत के तैयार रखेंगे जो आचार्य पद पर विराजते ही आचार्यश्री के चरणों में भेंट कर देंगे।'

आचार्य पद का चुनाव हो जाने के बाद अन्यान्य व्यवस्थाओं के लिये मन्त्रीमण्डल के १६ सदस्यों का चुनाव हुआ। जिसमें प्रधान-

मन्त्री पं. मुनिश्री आनन्दऋषि जी म. सा. निर्वाचित किये गये एवं अन्य १५ प्रमुख सन्तों को सहमन्त्री चुना गया और उन-उनके कार्य निश्चित कर दिये गये।

इस प्रकार श्रमणसघ के व्यवस्था-सम्बन्धी निर्णय लिये जा चुके थे तथा समाचारी-सम्बन्धी मुख्य-मुख्य धारायें तो बन चुकी थीं लेकिन उन धाराओं में अभी कुछ चर्चनीय होने से विचार करके निर्णय के लिये किसी योग्य स्थान पर व्यवस्थापक मण्डल का सम्मेलन करने का निश्चय किया गया।

सम्मेलन के अवसर पर श्री अ. भा. श्वे. स्थानकवासी जैन कान्फरन्स का अधिवेशन बम्बई धारासभा के अध्यक्ष श्री भाऊ सा. कुन्दनमल जी फिरोदिया की अध्यक्षता में हुआ। श्री फिरोदिया जी श्रावक-श्राविकाओं की ओर से सम्मेलन की कार्रवाई में दर्शक के रूप में भाग लेते थे। सम्मेलन की सुव्यवस्थित कार्रवाई को देखकर आपने प्रशंसा करते हुए कहा था कि इतनी व्यवस्था तो धारासभा की कार्य-प्रणाली में भी मुझे देखने को नही मिली है तथा वैशाख शुक्ला ३ से १२ के मध्य पूर्ण हुई सम्मेलन की कार्रवाई का विवरण उपस्थित श्रावक-श्राविकाओं को बतलाया।

आचार्य-पदारोहण-महोत्सव

सम्मेलन में पारित प्रस्तावानुसार वैशाख शुक्ला १३ को दिन के ११ बजे श्री लोंकाशाह जैन गुरुकुल के प्रांगण में आचार्य पद की चादर समर्पित करने का समारोह आयोजित किया गया।

इस समारोह को देखने के लिये प्रातःकाल से ही दर्शकों का आवागमन प्रारम्भ हो गया था और दस बजे तक तो करीब पेंतीस-चालीस हजार भाई-बहिनों की उपस्थिति हो चुकी थी। लेकिन अभी भी इक्के-दुक्के दर्शकों के आने का क्रम जारी था।

सन्त-सतियां जी म. अपने-अपने योग्य स्थान पर विराज रहे थे और जब प्रमुख मुनिराजों के साथ पूज्य आचार्य श्री गणेशलालजी

म. सा. का पदार्पण हुआ तो दर्शकों ने जयघोष से स्वागत करते हुए अभिनन्दन किया।

पूर्व निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार समारोह का शुभारम्भ हुआ। उस समय का दृश्य तो दर्शनीय ही था जब उच्चकोटि के संतों, आचार्यों, उपाध्यायों, प्रवर्तकों आदि ने स्वहस्ताक्षरित प्रतिज्ञापत्र के साथ अपनी-अपनी पदवियां संघऐक्य के आदर्श को फलितार्थ करने के लिये समर्पित करना प्रारम्भ किया। सर्वप्रथम चरित्रनायक पूज्य आचार्य श्रीजी ने स्वयं अपना प्रतिज्ञापत्र प्रस्तुत किया। अनन्तर पंजाब-सम्प्रदाय के आचार्य श्री आत्माराम जी म. सा. का आचार्यपद के परित्याग का पत्र और संघऐक्य योजना के अनुसार व्यवहार करने का सन्देश पढ़कर सुनाया गया। सन्देश में संघ-ऐक्य के लक्ष्य को फलितार्थ करने के लिए अन्तरात्मा के स्वर संकलित किये गये थे।

इस कार्य के सम्पन्न होने के अनन्तर समस्त मुनिराजों की ओर से प्रतिनिधि मुनिवरों ने आचार्यपद की चादर पूज्य आचार्य श्री गणेशलाल जी म. सा. को ओढ़ाई। विभिन्न मुनिराजों ने प्रासंगिक प्रवचन फरमाये। जिनमें एकता के सूत्र को सुदृढ़, समृद्ध और पल्लवित करने की भावना के स्वर गूंज रहे थे।

सम्मेलन के प्रति जनभावना

वृहत्साधुसम्मेलन की योजना ने समस्त जैन समाज का ध्यान आकर्षित किया था। अतः सभी में इसका फलितार्थ जानने की उत्सुकता थी। सम्मेलन से लौटकर जाने वाले दर्शनार्थियों से मिलने वाले प्रायः प्रश्न पूछते थे कि सम्मेलन में क्या हुआ? सम्मेलन के मुख्य-मुख्य प्रस्तावों के बारे में बतलाओ और आचार्यपद किन सन्तप्रवर ने सुशोभित किया है? समस्त जैन पत्रों और अग्रणी कार्यकर्ताओं ने सम्मेलन की सम्पूर्ण कार्रवाई की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए आशा व्यक्त की कि वह दिन दूर नहीं, जब समस्त जैन बन्धु एकता के सूत्र में आबद्ध होकर जिनशासन की विश्वव्यापी प्रभावना करने में सफल होंगे।

प्रस्ताव का अमल

संगठन का शंखनाद होने के पूर्व श्रमणवर्ग पृथक् पृथक् संप्रदायों में विभक्त था। मूलभूत सिद्धान्त, मान्यतायें और आगम आदि एक समान होने पर भी कतिपय संप्रदायों में पारस्परिक वंदन व्यवहार होना तो दूर रहा, संभाषण करने का भी व्यवहार नहीं था। संमेलन में इस परिस्थिति पर विचार-चर्चा करके पारस्परिक सम्बन्धों को चालू करने का निर्णय किया गया था। फिर भी सदियों पुराने भेदभाव को मिटाकर परस्पर में अपनत्व की भावना का विस्तार करने एवं अन्यान्य दीक्षावृद्धों को अपने ही गुरुजनों के समान वंदना और सत्कार करने में संकोच दिखलाई देता था।

लेकिन इस संकोच को दूर करने का श्रीगणेश स्वयं चरितनायक पूज्य आचार्य श्रीजी म. सा. के अपनी ओर से किया। व्यक्ति का वास्तविक विकास पद से नहीं, अपितु आन्तरिक सद्वृत्ति, विराट, एवं भव्य अन्तरात्मा से होता है और यही जगत के लिये कल्याणकारी है। आपने नवनिर्माण के समय भविष्य की उज्ज्वल कल्पना को दृष्टि में रख कर पुरानी स्थिति को गौण कर दिया था। आपश्री की विनय, सेवावृत्ति, स्नेहशीलता, सौजन्य शिष्टता और सद्भावना के फलस्वरूप सैकड़ों वर्षों से पृथक् पृथक् संप्रदायों में विभक्त सन्तों में अपनेपन का भाव उत्पन्न हुआ और समग्र संघ एक प्राणचेतना से परिस्पन्दित होने लगा।

पूज्य आचार्य श्रीजी ने संघऐक्य सम्बन्धी निजी विचारों को सम्मेलन के समय विशद रूप से व्यक्त किया था और विभेदक कारणों को दूर करने के लिये प्रत्येक पूर्व संप्रदाय में एक दूसरे संप्रदाय के मुनिराजों का संयुक्त रूप में चातुर्मास कराना आवश्यक समझते थे और इस प्रवृत्ति को आपने अपने से ही प्रारम्भ किया।

पूज्य आचार्य श्रीजी का सं० २००९ का चातुर्मास उदयपुर था और आपके साथ ही सहमन्त्री श्री प्यारचन्द जी म. सा. जो जैन-दिवाकर श्री चौथमलजी म. के शिष्य थे, का भी चातुर्मास हुआ। इस

चातुर्मास की ऐतिहासिक महत्ता थी। वैसे तो पूज्य श्री हुक्मीचन्द जी म. सा. की संप्रदाय के आचार्य के रूप में पहले भी आपश्री के अनेक चातुर्मास उदयपुर में हो चुके थे लेकिन समस्त स्थानकवासी जैन साधु-साध्वियों के सर्वसत्ता-सम्पन्न आचार्य के रूप में यह प्रथम चातुर्मास था। उदयपुर श्रीसंघ में अभूतपूर्व उत्साह व्याप्त था। आचार्य श्रीजी के दर्शनार्थ एव प्रवचन-प्रसाद की प्राप्ति के लिये प्रतिदिन बाहर के सैकड़ों भाई-बहिन आते रहते थे और कितनेक तो समस्त चातुर्मास काल को यहां ही व्यतीत करने के लिये बस गये थे।

चातुर्मास काल में सहमन्त्री श्री प्यारचन्द जी म. ने अपने भाव व्यक्त किये थे कि हमारे इतने वर्ष दूर रहने से मनों में कई तरह की भ्रान्तियां थीं। लेकिन निकट में रहने से वे सब भ्रांतियां दूर हुईं और आचार्य श्रीजी के हृदय को नजदीक से समझ पाया हूँ। आपश्री के बर्ताव ने मुझे श्री जैनदिवाकर जी म. को भुला दिया है। अब चाहे कुछ भी हो, हम कभी अलग नहीं होंगे। कदाचित श्रमणसघ बिखर सकता है किन्तु पूज्य श्री हुक्मीचन्द जी म. की सम्प्रदाय नहीं बिखर सकती। आपश्री जो भी हुक्म देंगे, हम उसको शिरोधार्य करेंगे। यदि मुझे धूप में खड़ा कर देंगे तो भी मैं कोई तर्क नहीं करूंगा। हमारी आप पर पूर्ण श्रद्धा हो गई है।

नवनिर्मित श्रमणसंघ की व्यवस्था में दृढ़ता लाने के लिये विचारविमर्श की आवश्यकता थी। अतः वर्षावास काल में भी सहमंत्री मुनि श्री प्यारचन्द जी म. से व्यवस्था-विषयक अनेक बातों पर विचारों का आदान-प्रदान हुआ था। इसी प्रसंग में यह भी विचार किया गया कि मन्त्रिमण्डल की एक बैठक होना चाहिये, जिससे संघव्यवस्था में रही हुई कमियों का परिमार्जन किया जा सके और संगठन के आदर्श की पूर्ति हो सके।

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये प्रयत्न प्रारम्भ हुए और निर्णय किया गया कि चातुर्मास-समाप्ति के पश्चात मन्त्रिमण्डल का सम्मेलन

आयोजित किया जाये। अतः अधिकारी मुनिवरों के विचार-परामर्शानुसार सं० २००६, माघ शुक्ला २, दि० १७-१-५३ से सोजत में मन्त्रि-मण्डल का सम्मेलन किये जाने का निश्चय करके सब अधिकारी मुनि-राजों को इसकी सूचना भिजवा दी गई।

चातुर्मास में श्रोताओं ने प्रवचनों का लाभ उठाया और अत्यधिक प्रभावित हुए। इन्हीं दिनों में श्री सेठ लक्ष्मीचन्द जी धाड़ीवाल के ज्येष्ठ भ्राता श्री नथमलजी धाड़ीवाल की सुपुत्री श्री सूरजकंवरबाई की भागवती दीक्षा सम्पन्न हुई।

मन्त्रिमण्डल-सम्मेलन के पूर्व

चातुर्मास धार्मिक प्रभावना के साथ सानन्द सम्पन्न हुआ और मगसिर कृष्णा १ को आचार्य श्रीजी म. सा. सन्तमण्डली के साथ उदयपुर नगर से विहार कर हाथीपोल के बाहर शासकीय अधिकारी श्री भभूतमल जी के बंगले पर पधारे। वहां पर पाली के कवि श्री हस्तीमल जी और श्री ताराचन्द जी ने आचार्य श्रीजी के गुणगान करते हुए कवितापाठ किया एवं अन्य कई व्यक्तियों ने भी आचार्य श्रीजी की सेवा में प्रांजल भावों से समन्वित अपने-अपने हृदयोद्गार व्यक्त किये।

दूसरे दिन प्रातःकाल वहां से विहार करके आचार्य श्रीजी म. सा. आदि सन्त नाई गांव पधारे और वहां एक-दो दिन विराजकर पुनः उदयपुर की प्रसिद्ध शिक्षणसंस्था विद्याभवन में पधारे और विद्यार्थियों एवं प्राध्यापकों के समक्ष, शिक्षा, संस्कृति आदि के सम्बन्ध में मननीय प्रवचन फरमाया और वहां से विहार कर भुवाना पधारे और जैन मन्दिर में विराजे।

दूसरे के उत्कर्ष एवं प्रभाव को सहन नहीं करने वाले कतिपय कलहप्रिय व्यक्ति सभी जगह होते हैं। उदयपुर में भी कुछ एक ऐसे व्यक्ति थे, जिन्हें चातुर्मास काल में होने वाले प्रवचनों का प्रभाव, आचार्य श्रीजी के प्रति जनता की श्रद्धा-भक्ति, भागवती दीक्षा के समारोह की भव्यता सहन नहीं हुई और ईर्ष्या-द्वेष की प्रतिक्रिया को व्यक्त

करने के लिये अवसर की टोह में रहते थे ।

उदयपुर में तो इन व्यक्तियों को अवसर नहीं मिल सका । किन्तु भुवाना गांव में वे अपनी मनोवृत्ति का प्रदर्शन करने से नहीं चूके । उन्होंने मन्दिर में आकर शोरगुल मचाना चालू कर दिया कि भगवान के मन्दिर में ये साधु क्यों ठहर गये हैं ? इनके यहां ठहरने से भगवान की आसातना होती है । यहां साधुओं को आहार-पानी, उठना-बैठना आदि नहीं करना चाहिये ।

उन अनर्गल प्रलाप करने वालों को समझाते हुए आचार्य श्रीजी म. सा. ने फरमाया कि भगवान ने चतुर्विध संघ की स्थापना की है । जिसमें साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका चारों तीर्थ आ जाते हैं । भगवान के पास बहुत से गणधर आदि संत विराजमान थे । वे उन्हीं के पास बैठकर आहार-पानी करते थे और उन्हीं की चरणछाया में शयन आदि क्रियायें होती थीं तो वहां साक्षात् भगवान की आसातना नहीं होती, बल्कि उनकी भक्ति और सेवा का दृश्य रहता था । जब कि यहां पर तो प्रतिमा है और वह भी खास मन्दिर के भाग में है । वहां पर सन्तों के बैठने का प्रसंग ही नहीं आता है। बाहर के भाग में जहां पर आप लोग भी बैठते-उठते हैं, वहां पर संत ज्ञान-दर्शन-चारित्र की वृद्धि करते हुए रहते हैं। इसमें आसातना जैसी कौन-सी बात है ?

आचार्य श्रीजी के शांत, गंभीर और युक्तियुक्त वचनों को सुनकर वे कलहप्रिय निरुत्तर हो गये और आचार्य श्रीजी के समक्ष विशेष न बोलते हुए पास ही मन्दिर के प्रांगण में जहां अन्य सन्त बैठे हुए थे, आकर हो-हल्ला मचाने लगे कि यहां से बाहर निकलो, हम भगवान की पूजा करना चाहते हैं । इस स्थिति को देखकर भुवाना के श्री सोहनलाल जी आदि कुछ प्रमुख श्रावकों ने शान्ति रखने का संकेत करते हुए उन भाइयों को समझाया कि आप पूजा करना चाहते हैं तो खुशी से कीजिये । संत महात्मा तो एक तरफ विराजमान हैं । उनसे आपको क्या लेना-देना है !

लेकिन उन लोगों का पूजा करना तो केवल बहाना था। वास्तव में उन्हें तो अपने मन की ईर्ष्या और द्वेष का प्रदर्शन करना था और चातुर्मास काल में आचार्य श्रीजी के प्रवचनों से जनता में हुए प्रभाव को धूमिल करना चाहते थे। ये सब बातें पूर्व नियोजित कार्यक्रम की अंग थीं, जिसको तटस्थ दर्शक प्रकारान्तर से समझ गये।

कलहप्रिय व्यक्ति फिर भी शांत नहीं हुए और मन्दिर के द्वार पर आकर पुनः हो हल्ला मचाना चालू कर दिया और जबरदस्ती मन्दिर में प्रवेश करने का प्रयास करने लगे। तब श्री सोहनलाल जी ने पुनः उन लोगों को समझाने और शान्ति रखने का प्रयत्न किया कि आप लोगों को पूजा करना है तो शांति से कीजिये। लेकिन उन्हें तो किसी भी प्रकार से शान्तिभंग करना अभीष्ट था और पूर्व निर्धारित योजनानुसार पुलिस को भी बुला लिया एवं मारपीट, दंगे का रूप देने का प्रयास किया।

पुलिस अधिकारी ने आकर सारी स्थिति का गहराई से निरीक्षण किया और पूछा कि इस मन्दिर की मालकी किसकी है? श्री सोहनलाल जी आदि श्रावकों ने बताया कि यह मन्दिर हमारा है, हम भुवानावासियों की मालकी का है। ये आने वाले उदयपुर के निवासी हैं और यहां इनका कोई अधिकार नहीं है। फिर भी ये यहां आये हैं तो लाठी आदि से रहित होकर शान्तिपूर्वक मन्दिर में जाना चाहें, जा सकते हैं। लेकिन पूजा न करके अशांति फैलाने का प्रयत्न करना योग्य नहीं है।

पुलिस अधिकारी ने सही स्थिति को समझ लिया और आये हुए कलहप्रिय लोगों को उपालंभ देते हुए उदयपुर की ओर रवाना कर दिया। ये लोग आये तो थे उपद्रव करने की भावना से, लेकिन आचार्य श्रीजी म. सा. की शांति, गंभीरता एवं भुवाना संघ के विवेकशील सज्जनों की दृढ़ता और शिष्टता से अपने कृत्य में सफल नहीं हुए और लज्जित होकर निराश लौटना पड़ा। विवेकहीनता का ऐसा

ही कटु परिणाम होता है।

भुवाना मे सुखेसमाधे विहार कर सीरवा के घाटे पर एक मकान में रात्रि विश्राम किया और वहां के चौकीदार ने आपके हितोपदेश को सुनकर मद्यमांस आदि का त्याग किया। दूसरे दिन प्रातःकाल वहां से विहार कर एकलिंगजी पधारे। एकलिंगजी वैष्णव समाज का तीर्थस्थान माना जाता है। उदयपुर राज्य में एकलिंगजी की गादी मानी जाती है। वहां के महन्त की वैष्णव समाज में बड़ी प्रतिष्ठा है। वहां एकलिंगजी के मन्दिर में आचार्य श्रीजी का एक प्रवचन हुआ।

एकलिंगजी से विहार करके देलवाड़ा पधारे और प्रधानमन्त्री श्री आनन्दऋषिजी म. से श्रमण संघ के सम्वन्ध में विचार विमर्श हुआ। प्रधानमन्त्रीजी ने संघ विषयक कई उलझन भरी समस्यायें रखीं, जिनका आचार्य श्रीजी म. सा. ने समाधान किया।

देलवाड़ा में कुछ दिन विराजने के पश्चात वहां से विहार कर नाथद्वारा पधारे। यहां पर भूतपूर्व मेवाड़ संप्रदाय के सन्तों व भूतपूर्व मेवाड़ सम्प्रदाय से अलग हुए सन्तों के बीच मनमुटाव था। उस समम्त स्थिति को आचार्य श्रीजी म. सा. की सेवा में निवेदन किया गया। जिसका आपश्री ने योग्य रीति से समाधान करके परस्पर में खमतखामना कराया। यहां पर सेवाभावी मुनिश्री इन्द्रचन्दजी म. सा. के अस्वस्थ हो जाने से पं० मुनिश्री नानालालजी म. सा. (वर्तमान आचार्य श्रीजी) को सेवा में रखकर आचार्य श्रीजी म. सा. विहार करते हुए सेवाज पधारे। बाद में स्वस्थ होने पर सेवाभावी मुनिश्री इन्द्रचन्दजी म. सा. एवं पं० मुनिश्री नानालालजी म. सा. भी सेवा में पधार गये।

इन दिनों आचार्य श्रीजी म. सा. की भी शारीरिक स्थिति कमजोर चल रही थी। अतः आचार्य श्रीजी म. सा. सोच रहे थे कि संघ-संचालन सम्वन्धी कार्यभार अन्य किन्हीं मुनिराज को सौंप कर आत्मसाधना में लगूं। लेकिन जब यह बात समाजदर्शी वरिष्ठ श्रावकों

एवं सन्तों को मालूम हुई तो उन्होंने आपश्री से ऐसा नहीं करने की प्रार्थना करते हुए साग्रह निवेदन किया कि बड़ी मुश्किल से श्रमणसंघ बना है और वह भी आपके इस भार को ग्रहण करने से ही। यदि आपश्री अभी से ही इस भार को छोड़ देते हैं तो यह सब कुछ बिखर जायेगा और दूसरे लोग हंसी उड़ायेंगे। क्योंकि आपके अलावा इस समय सबके विश्वासपात्र अन्य कोई मुनिवर नहीं हैं। कुछ संत राजनतिक दलों की तरह पेंतरेबाजी में लगे हुए हैं। अतः आपको इस नाजुक स्थिति में इस भार को कतई नहीं हटाना चाहिये।

इन प्रार्थनाओं पर आचार्य श्रीजी म. सा. ने गंभीरता से विचार किया और अपनी शारीरिक स्थिति को गौण कर दिया।

मन्त्रिमण्डल का सम्मेलन

मन्त्रिमण्डल के समय व स्थान को ध्यान में रखते हुए आचार्य श्रीजी म. सा. मेवाड़ के विभिन्न क्षेत्रों को धर्मदेशना से पावन बनाते हुए सोजत की ओर विहार कर रहे थे। अन्य अधिकारी संत-मुनिराजों ने भी यथासमय सोजत पधारने के लिये चातुर्मास-समाप्ति के अनंतर अपने-अपने क्षेत्रों से विहार कर दिया।

पूर्व निश्चयानुसार सं० २००९, माघ शुक्ला २ से आचार्य श्रीजी म. सा. के नेतृत्व में मन्त्रिमण्डल की बैठक प्रारम्भ हुई। सम्मेलन में सचित्ताचित्त-निर्णायक समिति के ६, तिथिनिर्णायक समिति के ८ एवं मन्त्रिमण्डल के ११ सदस्य मुनिराजों या उनके प्रतिनिधि संतों के अतिरिक्त विशेष रूप से आमन्त्रित पं० मुनिश्री समर्थमलजी म., पं० मुनिश्री मदनलालजी म., कवि श्री अमरचन्दजी म. उपस्थित थे।

प्रतिदिन प्रातः ९ से १०॥ और दोपहर १ से ३ बजे तक पूज्य आचार्य श्रीजी की अध्यक्षता एवं व्या. वा. मुनिश्री मदनलालजी म. सा. की शांतिरक्षकता में मन्त्रिमण्डल तथा दोनों निर्णायक समितियों का कार्य संयुक्त रूप से चला।

प्रत्येक विचारणीय विषय पर खुलकर विचारविमर्श हुआ।

सचित्ताचित्तनिर्णय और ध्वनिवर्धकयन्त्र को लेकर समाज में खूब ऊहापोह चल रहा था। उनका समाधान होना आवश्यक था। नवीन और पुरातन विचारधाराओं में भी मेल बैठाना आवश्यक था। सोजत में दोनों धाराओं के गुणावगुणों के निरीक्षण का अवसर प्राप्त हुआ।

ऐसे समय में आचार्य श्रीजी की समता और उदारता अनायास ही सबके सामने झलकती रहती थी। आपश्री का आदर्शों के प्रति प्रगाढ़ स्नेह था। तप त्याग ही आपके साधकजीवन के एक मात्र भोजन थे। संयम ही आपके जीवन का श्वास था।

दृष्टिकोणों की विभिन्नता के कारण आपका किसी से विरोध नहीं था, द्वेष नहीं था, किन्तु सभी दृष्टिकोणों को भलीभाँति समझने की एक सरल जिज्ञासा आप में सतत विद्यमान रहती थी। आपके मन की मृदुता वार्तालाप करने वाले के मन में असद्भाव उत्पन्न नहीं होने देती थी किन्तु वार्तालाप करने के पश्चात प्रत्येक व्यक्ति को अपने विचारों का पुनर्निरीक्षण करने की इच्छा होती थी। यही कारण है कि आपसे मतभेद रखने वालों में भी आपके प्रति मनभेद उत्पन्न नहीं होता था। अपनी इस उदारवृत्ति के कारण ही आप संघ-संगठन के साधक और शांति के सन्देशवाहक के रूप में प्रसिद्ध रहे।

सम्मेलन में बहुत से प्रश्नों पर निर्णय हो चुका थे। मन्त्रिमण्डल के कार्यों का विभाजन हो चुका था। लेकिन अभी भी कुछ ऐसे प्रश्न शेष रह गये थे जिन पर शास्त्रीय दृष्टि से विचार करना आवश्यक था। इसके बारे में सोचा गया कि आचार्य श्रीजी के नेतृत्व में कविवर्य श्री अमरचन्दजी म., व्याख्यानवाचस्पति श्री मदनलाल जी म. सहमन्त्री श्री हस्तीमल जी म., प्र. मन्त्री श्री आनन्दऋषि जी म., और पं० र. श्री समर्थमल जी म. का संयुक्त रूप से आगामी चातुर्मास किसी एक स्थान पर कराया जाये और उस समय फिर इन प्रश्नों के बारे में चर्चा करके निर्णयात्मक रूप चतुर्विध संघ के समक्ष रख दिया जाये।

पूज्य आचार्य श्रीजी से इस सम्बन्ध में स्वीकृति मांगने पर आपने फरमाया कि विचार स्तुत्य है लेकिन संयुक्त चातुर्मास में विचारणीय विषयों की रूपरेखा, तत्संबन्धी शास्त्रीय प्रमाण आदि की तैयारी हो जाना चाहिये। रूपरेखा व्यवस्थित होने पर मैं इसके बारे में कुछ निश्चयात्मक कह सकता हूँ। संत-मुनिराजों ने आपके विचारों को महत्त्वपूर्ण माना और कहा कि आपके विचारानुसार कार्य की रूपरेखा तैयार कर ली जायेगी।

इस सम्मेलन में तेतीस विषयों के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण निर्णय किये गये और उनमें से पच्चीस निर्णयों को चतुर्विध संघ की जानकारी के लिये यथासमय घोषित कर दिया गया। सम्मेलन दि० ३०-१-५३ को समाप्त हुआ।

मैत्री और शांति के दूत

सोजत सम्मेलन के अवसर पर विभिन्न श्रीसंघों ने पूज्य आचार्य श्रीजी से अपने-अपने क्षेत्र पावन करने की विनतियां कीं। उनमें ब्यावर श्रीसघ भी एक था। उसने अपनी प्रार्थना में कहा—भंते! हम पर भी कृपा कीजिये। ब्यावर का सामाजिक विरोध संघ-संगठन में चट्टान की तरह बाधक बन रहा है। आपकी पीयूषणवर्षी वाणी द्वारा स्नेहसुधा का सिंचन होने से वहाँ एकता स्थापित हो सकती है। अतएव हमारी प्रार्थना स्वीकार करके ब्यावर पदार्पण कीजिये। हमारा पथ प्रदर्शन कीजिये। आपका पुण्य पदार्पण हमारे लिये मंगलमय होगा। महापुरुषों का सहवास महानता का महोत्सव है।

जब मनुष्य स्वार्थपरक विचारों से प्रभावित होकर संग्रह की भावनाओं में लिप्त हो जाता है तो वह उन साधनों को एकत्रित करने में व्यस्त रहता है, जिससे समूहगत साधनों का व्यक्तिमूलक रूप रह जाये। इस स्थिति में विषमता का जन्म होने से सभी दुखी होते हैं। स्पष्टता, सरलता, शुद्धता एवं आनन्द का रूपान्तरण हो जाता है और रहस्य का आवरण अनेक समस्याओं को जन्म देता है जो नैतिक मूल्यों

के विकास को अवरुद्ध कर देता है। लेकिन महापुरुषों की यह विशेषता है कि वे उस विषमता में समता, समस्या में समाधान और शांति का सृजन करते हैं। उनकी अन्तर्मुखी वृत्ति आधारभूत तथ्यों पर प्रकाश डालकर सदैव निकट से निकटतर और निकटतम आने के लिये अनुप्रेरित करती रहती है।

पूज्य आचार्य श्री का हृदय नवनीत-सा कोमल था। आपने सब सुना और गुना। आपने सोचा— ब्यावर में ईर्ष्या-द्वेष की आग धधक रही है और वहां से उठने वाली ज्वालायें आस-पास के क्षेत्रों को भी संतप्त कर रही हैं। लोग कषाय से प्रेरित होकर व्यर्थ ही कर्म-बंध कर रहे हैं। उनके चित्त में शांति स्थापित हो, मैत्रीभावना का विकास हो, स्वधर्मी-वात्सल्य का विस्तार हो और संघ से द्वेष दूर हो जाये तो उत्तम रहेगा। यह सोचकर आपश्री ने ब्यावर संघ की प्रार्थना को स्वीकार कर यथावसर वहाँ पहुंचने के भाव व्यक्त किये।

ब्यावर संघ की विनती में आत्मवेदना की अभिव्यक्ति का स्वर संजोया गया था। लेकिन उसमें इतना विश्वास भी विद्यमान था कि पूज्यश्री के पदार्पण से हमारा ईप्सित प्राप्त होगा। विनती की तत्काल स्वीकृति को ब्यावर श्रीसघ ने शांति और मैत्री के लिये शुभ शकुन माना।

सोजत से विहार कर क्रम-क्रम से विभिन्न क्षेत्रों में विशिष्ट उपकार करते हुए पूज्य आचार्य श्रीजी ब्यावर नगर के वहिर्भाग में आ पहुंचे और एक योग्य स्थान में ठहर गये। सभी सज्जन आपके आगमन की टकटकी लगाये राह जोह रहे थे। शुभागमन की अगवानी करने के लिये सेवा में उपस्थित हुए लेकिन आपश्री ने फरमाया—जब आपके सघ में पारस्परिक शांति स्थापित हो जायेगी, तभी हम सन्तों का नगर में प्रवेश होगा।

आचार्य श्रीजी का यह निर्णय ब्यावर श्रावक संघ के लिये आत्मनिरीक्षण का अवसर बन गया कि हमारे अहोभाग्य से महान

सन्तों का पदार्पण हमारी नगर-सीमा तक तो हो चुका है लेकिन आपसी फूट, कलह और द्वेष का वातावरण नगर-पदार्पण में व्यवधान बना है। आत्मग्लानि की अग्नि में द्वेष गलने लगा। अन्तर् में बैठा अभिमान मृदुता में रूपान्तरित होने लगा। कलह का कंकास सुलह के कलकल में परिवर्तित होना लगा। परिणामतः संघ में शांति व समझौते का वायुमण्डल बना और मैत्री, शांति स्थापित हो गई।

आपश्री ने यथासमय नगर में प्रवेश किया। उस समय ब्यावर में अपूर्व उल्लास फैल गया था। बरसों के बिछुड़े हुए गले लग रहे थे और नये प्रकाश में नये निर्माण की नींव रख रहे थे। पूज्य आचार्य श्रीजी के दूरन्देशी निर्णय में आदेश नहीं लेकिन सत्य के प्रति आग्रह था। समूह की शक्ति को छिन्न-भिन्न करने वाले व्यवहार और पारस्परिक असहयोग, असहकार एवं अन्याय का प्रतिकार नहीं किया जाये तो उससे व्यक्ति ही नहीं, वरन समाज और राष्ट्र विपत्ति में फसता है। उसका प्रतिकार करना साधु पुरुष अपना कर्तव्य समझते हैं। प्रभावशाली, महत्त्वपूर्ण और व्यवहार्य उपाय खोज निकालना उनके सत्य-आग्रह का ध्येय होता है। पूज्य आचार्य श्रीजी ने यही आदर्श अपने निर्णय द्वारा व्यक्त किया था। इसीलिये तत्काल सुमति के माध्यम से समता और शांति का वातावरण बन गया।

ब्यावर में समता का सन्देश मुखरित कर और अपने प्रभावशाली प्रवचनों द्वारा उसको स्थायी बनाकर आपश्री ने वहाँ से जेठाणा की ओर विहार किया। रास्ते में थांवला ग्राम से कुछ ही आगे एक गांव पड़ता है। वहां अधिकतर राजपूतों के घर हैं। जो देवी-देवताओं के नाम पर या भोजन के हेतु जीवहिंसा करना साधारण कार्य समझते थे। ऐसा कोई तीज त्यौहार नहीं होता था जब दो चार मूक पशु मौत के घाट न उतार दिये जाते हों। सारा गांव अपरिचित था और जैनों का एक भी घर नहीं था। वहां आपश्री का एक प्रभावशाली प्रवचन हुआ। जिसे सुनकर ग्रामवासी गद्गद हो गये। आपश्री

ने प्रवचन में उन मानवीय भावों को स्पष्ट किया था जिनके अभाव में मनुष्य ही नहीं, प्राणिमात्र दुखी होता है। राजपूतों को अहिंसा का महत्त्व समझाते हुए आपने फरमाया—

"अहिंसा वीरों का साधन है। कायर तो सबसे पहले मानसिक हिंसा से ही अधिक पीड़ित है। ऐसा व्यक्ति मानसिक हिंसा से दूसरों को तो गिरा सके या नहीं, किन्तु अपने आपको तो बहुत गहरे अवश्य ही गिरा देता है।

'इसलिये मेरा आप लोगों से कहना है कि यदि आप अपने आपको परमात्मा का वफादार सेवक बनाना चाहते हैं और इस सृष्टि में उत्कृष्ट समानता का वातावरण बनाना चाहते हैं तो समग्र रूप में अहिंसा का पालन कीजिये। अहिंसा ही वह सशक्त साधन है, जिसके द्वारा आत्मसमानता यानि परमात्मवृत्ति के साध्य को साधा जा सकता है।'

प्रवचन का इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि ३५ व्यक्तियों ने तत्काल शिकार खेलने का परित्याग कर दिया। जुआ खेलने, मद्य-पान करने तथा तमाखू आदि नशीली चीजों के सेवन करने का भी बहुत-सों ने त्याग किया।

सन्तों के सहज प्रेममय प्रवचन का जो अमृतपान कर लेता है, वह सदा के लिये सन्तों का बन जाता है। सन्तों का अपना स्वार्थ क्या है? वे स्वात्मकल्याण के साथ परहित में स्वहित मानते हैं। परोपकार को भी आत्मकल्याण की साधना का अंग समझकर जगत का कल्याण करते हैं। इस उदात्त भावना के कारण वे जगत का महान्-से-महान्तम कल्याण करते हुए भी अहंकार का अनुभव नहीं करते हैं। उन्हें यह गर्व नहीं होता कि उन्होंने दूसरों को उपकृत किया है। सन्तों के जीवन की यही विशेषता होती है कि उनमें जीवन के सहायक तत्त्वों का स्वाभाविक समावेश होता है।

संयुक्त-चातुर्मास

सोजत में मन्त्रिमण्डल की बैठक के अवसर पर यह विचार

किया गया था कि तपोपूत और ज्ञानवृद्ध सन्तों को यदि एक ही स्थल पर लम्बे समय तक निवास करने का अवसर मिले तो बहुत-सी सैद्धांतिक, आगमिक गुत्थियों को सुलझाया जा सकता है, विवादास्पद विषयों पर तथ्यसंगत समाधान खोजा जा सकता है तथा सन्तों में भावात्मक एकता की प्रतिष्ठा की जा सकती है। समाज में एकता का शीतल समीरण प्रवाहित होगा। महान सन्तों का विशुद्ध प्रेम समाज की धमनियों में अमृत का सञ्चार करने में सहायक होगा। इन्हीं सब दृष्टिकोणों को ध्यान में रखते हुए सं० २०१० का चातुर्मास संयुक्त रूप में करने की योजना निश्चित की गई थी।

इस प्रकार के आयोजन के सम्बन्ध में पूज्य आचार्य श्रीजी के विचारों का पहले ही संकेत किया जा चुका है कि यह कल्पना अच्छी है, किन्तु जब तक इसके लिये कोई ठोस योजना तैयार नहीं कर ली जाती; तब तक उससे पूरा लाभ नहीं उठाया जा सकता है। चातुर्मास के लिये तो योजना बनी लेकिन विचारणीय विषयों की सूची अभी तक नहीं बनी थी और प्रायः सभी ने कहा कि चातुर्मास-स्थल पर पहुंचने के बाद बना ली जायेगी।

संयुक्त-चातुर्मास सम्बन्धी पूर्व तैयारी हो चुकी थी। अब सिर्फ योग्य स्थान का निश्चय होना शेष रहा था। चतुर्विध संघ संयुक्त-चातुर्मास के बारे में आतुरता से प्रतीक्षा कर रहा था कि चातुर्मास किस स्थान पर होता है। राजस्थान के सभी संघ इस अवसर का लाभ उठाने के लिये उत्सुक थे, लेकिन सुविधाजनक स्थान कौन-सा होगा; बस यही विचारणीय रह गया था, जिससे सभी सन्त उक्त स्थान पर पधार सकें।

ब्यावर से विहार करते-करते पूज्य आचार्य श्रीजी म. सा. ग्राम-ग्राम में उपदेशामृत की वर्षा करते हुए जब मेड़ता पधारे तो जोधपुर श्रावक संघ सं २०१० का संयुक्त चातुर्मास करने की प्रार्थना लेकर सेवा में उपस्थित हुआ। पूर्व में अपने द्वारा की गई कार्रवाई को पूज्यश्री के समक्ष निवेदन किया और आपने परिस्थिति को जानकर जोधपुर

में चातुर्मास करने की स्वीकृति फरमाई ।

पूज्य आचार्य श्री गणेशलाल जी म. सा., प्र. मन्त्री श्री आनंद-ऋषिजी म. सा., वयोवृद्ध स्वामी श्री पूरणमलजी म. सा., व्या. वा. श्री मदनलाल जी म. सा., कविरत्न श्री अमरचन्दजी म. सा., सहमन्त्री श्री हस्तीमलजी म. सा. आदि ठाणा २८ एवं महासतियां जी म. सा. ठा. ६२ का जोधपुर में संयुक्त चातुर्मास हुआ । प. र. बहुश्रुत श्री समर्थमल जी म. सा. का भी चातुर्मास वहीं करवाया गया ।

इस चातुर्मासकाल में शास्त्रीय चर्चा हुई । विवादास्पद विषयों का मंथन हुआ । सादड़ी व सोजत में किये गये निर्णयों का पर्यवेक्षण हुआ । सामाजिक एकता का आधार सुदृढ़ बनाने के विषय में मंत्रणा हुई । फिर भी जितने लाभ की आशा थी, उतना लाभ समाज को नहीं हुआ । चतुर्विध श्रीसंघ ने वृहत्साधुसम्मेलन सादड़ी के अवसर पर जिस उत्साह और दृढ़ता का परिचय दिया था, वह सोजत-सम्मेलन के अवसर पर परिलक्षित नहीं हुआ और जो सोजत में था, वैसा यहां दृष्टिगत नहीं हुआ था । ऐसा प्रतीत हो रहा था कि औपचारिकता का निर्वाह करने के लिये ही यह सब हो रहा हो । संयुक्त-चातुर्मास में सम्मिलित होने वाले मुनिवरों में भी उत्साह मन्द था । जिस उद्देश्य को लेकर यह आयोजन किया गया था, उसमें उलझनें सुलझने के बजाय उलझती ही गईं और किसी प्रकार की निर्णयात्मक भूमिका नहीं बन सकी ।

लेकिन इसका आशय यह भी नहीं कि चातुर्मास असफल रहा । इस समय में पूज्य आचार्य श्रीजी के तलस्पर्शी शास्त्रीय दृष्टिकोण, संघ-नेतृत्व की कुशलता के दर्शन हुए । आपकी सूझबूझ और हार्दिक उदारता ने सन्तों में साम्य बनाये रखने के लिये कड़ी का काम किया । सन्तों में पारस्परिक प्रीतिभाव में जो वृद्धि हुई, वह कोई साधारण बात नहीं थी । सबने पारस्परिक दृष्टिकोण पर उदारता पूर्वक विचार किया । दृष्टिकोणों के प्रति मतभेद था किन्तु मनभेद नहीं था । सभी सन्त यह चाहते थे कि आगम के आलोक में अनिर्णीत को निर्णीत बनायें एवं

बृहत्साधुसम्मेलन में स्वीकृत संघऐक्य के आदर्श को प्रतिफलित करें।

पुनः साधुसम्मेलन का निश्चय

चातुर्मास काल में कुछ निर्णय किये भी गये। फिर भी कुछ ऐसे प्रश्न थे, जिनके समाधान के लिये समस्त साधु-सन्तों की राय लेना उचित प्रतीत हुआ और पुनः बृहत्साधुसम्मेलन किया जाना उपयुक्त समझा गया। इसके लिये काफी विचार-विमर्श के बाद अन्ततोगत्वा निश्चय किया गया कि अभी तक व्यवस्थापकमंडल ने जो भी कार्रवाई की है, उसकी संपुष्टि के लिये बृहत् सम्मेलन किया जाना चाहिये।

चातुर्मास काल में श्री अ. भा. श्वे. स्था. जैन कान्फरन्स की जनरल कमेटी की बैठक जोधपुर श्रावकसंघ द्वारा जोधपुर में बुलाई गई। जिसमें समाज के प्रमुख अग्रणी श्रावकों ने भाग लिया एवं संघ-संगठन बनने के बाद श्रावकसंघों में जो परिवर्तन हुए अथवा नहीं हुए, उन सबकी समीक्षा कर संगठन को सुदृढ़ बनाने के निश्चय किये गये।

जोधपुर का यह चातुर्मास ऐतिहासिक था। देश के कोने-कोने से आगत स्वधर्मी बन्धुओं की व्यवस्था बहुत ही उत्तम और सुविधापूर्ण थी। सैकड़ों की संख्या में प्रतिदिन दर्शनार्थी आते परन्तु उनका प्रबंध इस रीति से होता था कि उन्हें यह अनुभव ही नहीं हो पाता कि हम परदेश में आये हैं। संघ के अग्रणी प्रमुख श्री कानमल जी नाहटा आदि सज्जनों की प्रबन्ध–व्यवस्था सराहनीय थी।

इस काल में श्रावक-श्राविकाओं और महारथी सन्तों और सतियों ने पूज्य आचार्य श्रीजी की महानता के निकट से दर्शन किये, उनके हृदय की कोमलता, परहितवृत्ति, परदुःखकातरता और सेवा-भावना आदि विशिष्टताओं का साक्षात्कार किया। संयम की साधना, ज्ञान की गम्भीरता, तात्त्विक विवेचनाशक्ति को परखा। दैदीप्यमान प्रभामण्डल से दमकते मुखमण्डल की मनोहर छटा मानवीय मनों को आकृष्ट कर लेती थी।

इन्हीं सब विशेषताओं की अभिव्यक्ति करते हुए कविवर्य

श्री अमरचन्द जी म. सा. ने कहा था— पूज्यश्री का व्यक्तित्व भले ही ऊपर से लोहवत् कठोर दिखाई देता हो, किन्तु जिन्होंने उन्हें निकट से देखा है, उन्हें तो अन्तर् में कोमलता ही दिखलाई दी है। किसी ने ठीक ही कहा है— लोकोत्तर पुरुषों के चित्त को पहचानना बड़ा कठिन कार्य है। एक ओर उनमें वज्र से भी अधिक कठोरता प्रतीत होती है तो दूसरी ओर उनमें फूल से भी अधिक कोमलता के दर्शन होते हैं। यह कठोरता और कोमलता का अपूर्व संगम महापुरुषों की लोकोत्तर महिमा का द्योतक है।

संयुक्त चातुर्मास के पश्चात

चातुर्मास-समाप्ति के पश्चात मगसिर कृष्णा १ को आचार्य श्रीजी का नागौर आदि क्षेत्रों की ओर विहार हुआ। इस क्षेत्र के गोगालाव, ब्यावर, कुचेरा, बीकानेर आदि सभी संघ अभी से आगामी वर्ष के चातुर्मास के लिये कुछ-न-कुछ आश्वासनात्मक संकेत प्राप्त करने के लिये विनती करने लगे। लेकिन अभी चातुर्मास पूर्ण ही हुआ था और भविष्य की स्थिति भावी के अधीन थी, अतः अभी से किसी को भी संकेत देने की स्थिति नहीं बन सकी।

लेकिन कुचेरा श्रीसंघ के अग्रणी श्रावक स्व. सेठ श्री इन्द्रचन्दजी गेलड़ा की धर्मपत्नी की हार्दिक इच्छा थी कि पूज्य श्रीजी का आगामी चातुर्मास कुचेरा हो। उक्त आग्रह को लेकर समय-समय पर कुचेरा श्रीसंघ के अग्रणी सेठ श्री मोहनमल जी चोरड़िया, श्री भागचन्द जी गेलड़ा आदि प्रमुख सज्जन पूज्यश्री की सेवा में उपस्थित होते रहे थे।

स्थिति और समयादि को देखते हुए पूज्य आचार्य श्रीजी म. सा. ने सं० २०११ का चातुर्मास कुचेरा करने की स्वीकृति फरमाई और यथावसर पूज्य श्रीजी ने चातुर्मास हेतु पदार्पण किया। आपश्री के साथ ही स्थविरपदविभूषित मुनिश्री हजारीमल जी म. सा. जो पूज्यश्री जयमलजी म. सा. की सम्प्रदाय के थे, का भी कुचेरा चातुर्मास हुआ।

अधिकारी मुनिवरों के सोजत-सम्मेलन और जोधपुर-चातुर्मास

में हुई कार्रवाई चतुर्विध संघ को ज्ञात हो चुकी थी। संघ-ऐक्य योजना पर एक आवरण-सा पड़ता जा रहा था। अपने विचारों से आगे कोई बढ़ना नहीं चाहता था और एक प्रकार से गतिरोध की स्थिति बन चुकी थी।

चातुर्मास काल में ही कान्फरन्स की जनरल कमेटी की बैठक कुचेरा में हुई। पुनः बृहत्साधु-सम्मेलन का आयोजन करने के लिये कान्फरन्स की ओर से प्रयत्न हो रहे थे। श्रमणसंघ की प्रगति में उत्पन्न अवरोधों का निराकरण ऐसे सम्मेलन द्वारा ही हो सकता है। अतः जोधपुर चातुर्मास के अवसर पर सम्मेलन होने की भूमिका बन चुकी थी, लेकिन अब सिर्फ उपयुक्त स्थान के चयन का ही प्रश्न था कि सम्मेलन कहां किया जाये ? कान्फरन्स का शिष्टमण्डल एतद्विषयक विनती लेकर पूज्य आचार्य श्रीजी की सेवा में उपस्थित हुआ और निवेदन किया— भगवन् ! आगामी बृहत्साधु-सम्मेलन के लिये कौन-सा स्थान उपयुक्त रहेगा ?

पूज्य आचार्य श्रीजी ने फरमाया— जोधपुर में सम्मेलन के स्थान के बारे में भी विचार-विनिमय हुआ था। उस समय मैंने अपने विचार व्यक्त किये थे कि मेरे सान्निध्य में सम्मेलन सम्बन्धी तीन कार्य हो चुके हैं, इसलिये आगामी बृहत्साधु-सम्मेलन लुधियाना आदि क्षेत्रों में पूज्यश्री आत्माराम जी म. के सान्निध्य में होना उपयुक्त रहेगा। आज भी मेरे यही भाव हैं।

पूज्य आचार्य श्रीजी के विचारानुसार कान्फरन्स की जनरल कमेटी ने लुधियाना में बृहत्साधु-सम्मेलन होने का निश्चय कर वहां के संघ को सम्बन्धित जानकारी दी। लुधियाना संघ ने सम्मेलन के लिये कान्फरन्स को आमन्त्रण भेज दिया और वहां बृहत्साधु-सम्मेलन होना निश्चित हो गया।

इन्हीं दिनों के आसपास कान्फरन्स के तत्कालीन अध्यक्ष सेठ श्री चम्पालाल जी बांठिया पूज्य आचार्य श्रीजी के दर्शनार्थ पुनः कुचेरा पहुंचे। वार्तालाप के प्रसंग में सम्मेलन-सम्बन्धी चर्चा भी हुई। अध्यक्ष

महोदय ने कहा कि वर्षावास के पश्चात आपश्री का विहार लुधियाना की ओर होगा ? इस पर आचार्य श्रीजी ने फरमाया कि मैं चाहता हूँ कि लुधियाना पहुंचूं, लेकिन यह भावी के अधीन है, उस समय तक कौन जाने क्या बने। पहुंचना तो इस शरीर से होगा। यह शरीर कुछ शिथिल हो रहा है। घुटनों और पैरों में पीड़ा रहती है। इस अशक्ति-वश यथासमय लुधियाना, पहुंच सकूं या न पहुंच सकूं, कुछ निश्चित कह नहीं सकता। मैं न भी पहुंच सकूं, किन्तु मेरी ओर से कुछ सन्त लुधियाना पहुंच ही जायेंगे। अन्य प्रमुख मुनिवर वहां पहुंचेंगे ही, उन्हें समस्त कारवाई और विचारणीय विषय ज्ञात हैं। सादड़ी-सम्मेलन में उद्देश्य निश्चित हो चुका है और अब तो उसमें रही हुई कमियों को दूर कर अमली रूप देना है।

अध्यक्ष महोदय को यह परिस्थिति विचारणीय प्रतीत हुई। उन्होंने मन्त्री मुनिवरों की सेवा में सूचना भेजी और समस्त स्थिति सामने रखी। साथ ही पथ-प्रदर्शन के लिये प्रार्थना की कि हमें क्या करना चाहिये और सम्मेलन कहां करना चाहिये। कान्फरन्स-कार्यालय को भी सम्बन्धित जानकारी दी कि आचार्य श्रीजी लुधियाना-सम्मेलन में पहुंच सकेंगे या नहीं, यह सन्देहास्पद है।

समाज के प्रमुख-प्रमुख श्रावकों, कार्यकर्ताओं का एक शिष्ट-मण्डल इस परिवर्तित परिस्थिति पर मार्गदर्शन प्राप्त करने हेतु पूज्यश्री आत्माराम म. सा. की सेवा में उपस्थित हुआ और प्रार्थना की—भगवन् ! आचार्य श्री गणेशलाल जी म. सा. शरीर के कारण आपकी सेवा में उपस्थित होने में असमर्थ हैं। वह सम्मेलन में सम्मिलित न हो सकें तो क्या करना उचित होगा ?

पूज्य श्री आत्माराम जी म. सा. भद्र, सरलस्वभावी थे। उन्होंने फरमाया— आज तक सम्मेलन का संचालन सफलता के साथ आचार्य श्री गणेशलाल जी म. सा. करते आये हैं। उन्हें सम्पूर्ण कार्र-वाई का प्रत्यक्ष अनुभव है और किसी भी परिस्थिति से अपरिचित

नहीं हैं, अतएव सम्मेलन में उनकी उपस्थिति आवश्यक है। साधु-सम्मेलन होना गुरुतर कार्य है। अतएव संघ-नेतृत्व के सर्वाधिकार सम्पन्न अधिकारी जहां भी सुगमता पूर्वक पहुंच सकते हों, वहीं सम्मेलन होना चाहिये। मैं स्वयं नहीं पहुंच सकूंगा तो मेरी सद्भावनायें अवश्य वहां रहेंगी। संघ-संगठन का आदर्श फलित हो, यही मेरी आकांक्षा है।

इस प्रकार दोनों महापुरुषों ने विचार व्यक्त किये थे। यद्यपि दोनों महापुरुषों की उपस्थिति सम्मेलन में नूतन चेतना का संचार करती और संगठन को अपूर्व बल प्राप्त होता, मगर दोनों की वृद्धावस्था और शारीरिक दुर्बलता से ऐसा होना सम्भव नहीं दिख रहा था। अतः सम्मेलन के आयोजकों के समक्ष एक जटिल समस्या उत्पन्न हो गई। सम्मेलन होना आवश्यक था, किन्तु करें तो करें कहां ?

मन्त्री मुनिवरों से इसके समाधान के लिये राय पूछी गई। उनकी राय हुई कि दोनों पूज्यश्री सम्मेलन के अवसर पर उपस्थित हों तो सर्वोत्तम है। लेकिन ऐसी परिस्थिति नहीं बनती हो तो आचार्यश्री गणेशलालजी म. सा. की उपस्थिति तो सर्वांशतः आवश्यक है ही। पूज्यश्री आत्माराम जी म. सा. अपने संघ में सम्माननीय स्थिति के स्वामी हैं और आचार्य श्री गणेशलाल जी म. सा. का संघ-संचालन एवं अनुशासन पालन करवाने आदि का दायित्व व श्रमणसंघ सम्बन्धी अनुभव मूल्य रखता है। ऐसी स्थिति में पूज्यश्री का आशीर्वाद प्राप्त करके आचार्य श्रीजी के सान्निध्य में सम्मेलन करना ही उपयुक्त होगा।

इन विचारों को साथ लेकर कान्फरन्स का शिष्टमण्डल कुचेरा में पूज्य आचार्य श्रीजी की सेवा में उपस्थित हुआ और प्रार्थना की कि पूज्यश्री आत्माराम जी म. सा. ने फरमाया है कि आपश्री जहां पर उपस्थित हो सकें, वहीं पर सम्मेलन करना उपयुक्त होगा। अतः आपश्री कितनी दूर और कितने समय में पधार सकेंगे, इसका कुछ आभास हो जाये तो उसी स्थान पर सम्मेलन करने का सोचा जाये।

आचार्यश्री ने प्रत्युत्तर में फरमाया कि मैं इस समय क्या कहूँ,

मेरे शरीर की स्थिति प्रत्यक्ष है। घुटनों में दर्द और कमजोरी विशेष प्रतीत होती है। इसलिये इस स्थिति में निश्चित स्थान का निर्णयात्मक उत्तर कैसे दे दूं ?

शिष्टमण्डल ने निवेदन किया कि आपश्री यहां से शनैः शनैः विहार कर भीनासर तक तो पधार ही जायेंगे। उपचार की दृष्टि से भीनासर, बीकानेर आदि क्षेत्रों की अपेक्षा अन्य कोई स्थान योग्य प्रतीत नहीं होता है। उधर का सूखा जलवायु स्वास्थ्य की दृष्टि से अच्छा है और भीनासर, बीकानेर आदि क्षेत्रों का इसके लिये आग्रह भी अधिक है। अतः आगामी बृहत्साधु-सम्मेलन भीनासर में हो, ऐसी हम लोगों की भी राय है। इसलिये आपश्री भीनासर में बृहत्साधु-सम्मेलन होने की घोषणा फरमाकर साधु-मुनिराजों को सूचना करवाने की कृपा करें।

पूज्य आचार्यश्री ने प्रत्युत्तर में फरमाया कि बृहत्साधु-सम्मेलन आचार्यश्री आत्माराम जी म. के समीप हो आदि इस विषयक अपने विचार मैं पहले व्यक्त कर चुका हूँ। इस समय भी वैसे ही विचार रखता हूँ। फिर भी आप आचार्यश्री आत्माराम जी म. व अन्य अधिकारी मुनिवरों के अभिप्राय को लेकर पुनः यहां उपस्थित हुए हैं और अधिकारी मुनिवर भी मेरी उपस्थिति अनिवार्य समझते हैं, सो ज्ञात हुआ। लेकिन मैं अपने पूर्व के विचारानुसार मेरे सान्निध्य में बृहत्साधु सम्मेलन होने की घोषणा करना उपयुक्त नहीं समझता। पर यह अवश्य कहता हूँ कि संत-संगठन सर्वतोभावेन सुदृढ़ बने। उसके निर्णयों का उसी रूप में अनुपालन हो। प्रत्येक सन्त संयम-तप-त्याग का स्वयं पालन करे और इसी प्रकार दूसरों से पालन कराने का ध्यान रखवाये। तभी संघ-संगठन सबल, प्राणवान और सफल हो सकेगा। अतः यह विषय अधिकारी मुनिवरों के उत्सा; पर निर्भर है।

शिष्टमण्डल भी इस स्थिति को समझता था। साथ ही स्थिति की गम्भीरता का तकाजा था कि वर्तमान परिस्थिति के समाधान के लिये पुनः साधु-सम्मेलन का आयोजन हो जाना चाहिये। शिष्टमण्डल

ने पुनः मन्त्री मुनिवरों आदि से विचार-परामर्श कर प्रधानमन्त्री श्री आनन्दऋषिजी म. सा. द्वारा भीनासर में वृहत्साधु-सम्मेलन करने की घोषणा करवाई।

आचार्यश्री की शारीरिक स्थिति

इन दिनों आचार्य श्रीजी म. सा. की शारीरिक दुर्वलता इतनी अधिक बढ़ गई थी कि दो-ढाई मील पैदल चलते ही सर्वांग में पसीना हो जाता था। घुटनों में दर्द बना ही रहता था। लेकिन इतना सब होने पर साध्वोचित आचार-विचार में किसी प्रकार की शिथिलता, उदासीनता या उपेक्षा नही थी। साधना के प्रति सतत जागृति पूर्ववत थी।

बीकानेर क्षेत्र की ओर विहार

चातुर्मास-समाप्ति के पश्चात कुचेरा से बीकानेर क्षेत्र की ओर पूज्य आचार्य श्रीजी का विहार हुआ। विहार बहुत ही धीमी गति से होता था। कुचेरा से फिरोद पधारे। यहां के श्रावकसंघ की विशेष अभिलाषा थी कि पूज्य आचार्य श्रीजी म. सा. कुछ दिन यहां विराजें। कुचेरा में इसके लिये सेवा में विनती की थी। फिरोद पधारते ही वहां के श्रीसंघ में विशेष उत्साह व्याप्त हो गया। जहां पर सन्तों का पदार्पण होता है वहां सद्भावना, सद्विचार और सद्गुणों का वातावरण स्वयमेव निर्मित हो जाता है। फिरोद में ज्ञान-साधना के साथ संयम साधना का विशेष उद्योत हुआ। स्थानीय संघ की ओर से दो अठाइयां एवं अनेक बेला, तेला, चौला आदि तपस्यायें शक्त्यनुसार हुईं।

फिरोद से आप डेह पधारे। किन्तु आपके पदार्पण से पूर्व ही आपकी यशःकीर्ति का आगमन हो चुका था। वहां के दिगम्बर जैन बन्धुओं ने आपके पदार्पण के अवसर पर मंगल महोत्सव मनाया। साधु किसी वर्गविशेष के नहीं होते हैं, उनके सभी पूजक होते हैं। गुण पूजा के योग्य होते हैं अतः पूज्य आचार्य श्रीजी के शुभागमन पर समस्त जैन बन्धुओं ने श्रद्धा व्यक्त की तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। डेह में भी अच्छी धर्म प्रभावना हुई। डेह से नागौर आदि क्षेत्रों को पवित्र

करते हुए देशनोक पदार्पण किया ।

चातुर्मास-हेतु बीकानेर संघ की विनती

बीकानेर श्रावकसंघ वर्षों से पूज्य आचार्य श्रीजी का चातुर्मास अपने यहां होने के लिये लालायित था । इसके लिये पहले भी अनेक स्थानों पर एतदर्थ विनती कर चुका था और कुचेरा में तो संघ के सभी प्रमुख श्रावकों ने उपस्थित होकर सं० २०१२ का चातुर्मास बीकानेर में ही करने के लिये कुछ-न-कुछ आश्वासन प्राप्त करने के लिये आग्रहपूर्ण विनती की थी । लेकिन अभी समय दूर था, अतः ऐसी स्थिति नहीं बन सकी थी कि तत्काल उत्तर दिया जा सके ।

पूज्य आचार्य श्रीजी के देशनोक पधारने पर स्थानीय संघ के आबालवृद्ध नरनारी आगामी चातुर्मास की स्वीकृति फरमाने के लिये सेवा में उपस्थित हुए । नोखामण्डी, देशनोक, भीनासर, गंगाशहर आदि सभी क्षेत्र इसका लाभ प्राप्त करने के लिये इच्छुक थे और इस अलभ्य अवसर से चूकना नहीं चाहते थे ।

लेकिन सभी क्षेत्रों के केन्द्र में बीकानेर था और बीकानेर में चातुर्मास होने से स्थानीय एवं आसपास के क्षेत्रों में विशेष धर्मप्रभावना होने की संभावना होने से पूज्य आचार्य श्रीजी म. सा. ने सं० २०१२ का चातुर्मास संभवित आगारों के साथ साधु-मर्यादानुसार बीकानेर में करने की स्वीकृति फरमाई ।

गरलपान

जैसे-जैसे चातुर्मासकाल निकट आ रहा था कि उसी समय बीकानेर के कतिपय मूढ़जनों ने कलुषित वातावरण बनाने के प्रयत्न प्रारम्भ कर दिये । उस वातावरण का सम्बन्ध स्थानीय श्रावकसंघ से था । फिर भी प्रकारान्तर से उसमें आचार्य श्रीजी को संबद्ध करने का प्रयास किया गया । आपसी विचारभिन्नता एवं मनमुटाव को सम्पूर्ण संघ पर लादने के प्रयत्न हुए और उनके इस कार्य में प्रत्यक्ष रूप से तो बीकानेर के एक-दो व्यक्ति शामिल थे, लेकिन अप्रत्यक्ष में और भी

थे ऐसी कल्पनायें चलती थीं।

इस वातावरण की जानकारी पूज्य आचार्य श्रीजी को भी हुई और वे अपने आगारों के साथ अन्यत्र चातुर्मास करने के लिये स्वतन्त्र थे। लेकिन स्थानीय संघ के वयस्क सदस्यों ने सामूहिक रूप में अपने हस्ताक्षरों से युक्त लिखित प्रार्थना-पत्र सेवा में प्रस्तुत कर चातुर्मास करने की स्वीकृति प्राप्त कर ली थी।

यथासमय पूज्य आचार्य श्रीजी का चातुर्मास हेतु बीकानेर पदार्पण हुआ। नगरप्रवेश के समय जो जुलूस निकला और भव्य वातावरण बना, वह न र के इतिहास में अनूठा था। शाही जुलूसों में विविधता हो सकती है और दर्शनीय वस्तुओं को जुटाया जा सकता है, लेकिन मानसिक उल्लास का भी उसमें समन्वय हो, ऐसा निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है। लेकिन इस संत-स्वागत-जुलूस में मानवीय मनों की उत्साह, श्रद्धा, विनम्रता का विकसित रूप था और इनके विकास के कारण थे वंदनीय संत और उनमें भी प्रमुख पूज्य आचार्य श्रीजी म. सा.। राजमार्ग पर बढ़ते चरणों में सहस्रों मस्तक झुक जाते थे, अतृप्त नेत्र एकटक लगाये बहुत दूर से ही पलक-पांवड़े बिछा देते थे और जयघोषों का समवेत स्वर चतुर्दिक् को गुंजायमान कर देता था।

आचार्य श्रीजी चातुर्मास हेतु श्री अगरचन्द भैरोंदान सेठिया पारमार्थिक ट्रस्ट भवन में विराजे। बीकानेर की आबाल-वृद्ध जनता आपकी प्रवचन-गंगा में डुबकियां लगा रही थी। प्रतिदिन सहस्रों नर-नारी आपकी व्याख्यान-वाणी-पीयूष का पान करके अपने जीवन को धन्य मान रहे थे। जिज्ञासु-जन सिद्धान्तों की गूढ़ गुत्थियों को सुलझा रहे थे। सर्वत्र शान्ति का संचार हो रहा था। आसपास के क्षेत्रों के भव्यजन भी सैकड़ों की संख्या में उपस्थित होते थे। प्रतिदिन नये-नये क्षेत्रों के दर्शनार्थी आते और सहज प्राप्त अवसर से लाभ उठाते थे।

पहले जो विषाक्त वातावरण बना था, शांत हो चुका था।

लेकिन विघ्नसंतोषी व्यक्ति कुमन्त्रणायें कर रहे थे कि यह शांति किस प्रकार भंग की जाये ? यह बना-बनाया खेल किस प्रकार बिगाड़ा जाये ? कुमन्त्रणाओं का जोर था। जगत में सर्वत्र, सर्वदा इस प्रकार के लोगों की न कमी रही है और न रहेगी। मनुष्य के मन का पाप पुण्य का परिधान धारण करके सदा मानवजाति को धोखा देता आया है। इस पाप का विस्फोट जिस रूप में हुआ उससे समाज में रोष व्याप्त हो गया। यह मन का पाप वाचनिक न रहकर लिखित रूप में फैलने लगा। प्रतिदिन नये-नये आरोपों के साथ पर्चे प्रकाशित होने लगे कि किसी-न-किसी प्रकार बीकानेर संघ में आपसी मनमुटाव बढ़े, उसकी एकवाक्यता छिन्न-भिन्न हो। लेकिन बीकानेर श्रावकसंघ में सूझबूझ-वालों की कमी नहीं थी।

पूज्य आचार्य श्रीजी पर प्रायः प्रतिदिन पर्चे रूपी पुष्पवर्षा होती। चार माह तक विघ्नसंतोषियों, परनिन्दकों की जितनी कलुषता हो सकती थी, वह उभर रही थी। अन्तर् की मलिनता बाहर आ रही थी और धीरे-धीरे अन्तरंग साफ होता जा रहा था। इसके लिये संतों के पास एक ही अमोघ औषधि थी — क्षमा। क्षमा, समता, सहिष्णुता के समक्ष पाप, बुराई, निन्दा, चुगली एवं आरोप-प्रत्यारोप टिक नहीं सकते। निन्दकों ने पूज्यश्री की निन्दा की, उपसर्ग किये, घृणित आरोप लगाये। निन्दा के रोग से आक्रान्त व्यक्तियों के द्वारा जो कुछ भी किया जा सकता था, सब किया गया, करने में किसी प्रकार की कसर नहीं छोड़ी, फिर भी आप सागरवत् गम्भीर, हिमालयवत् सुस्थिर महादेव की तरह इस गरल का पान करते रहे। इससे जनता में बहुत रोषयुक्त वातावरण बन गया और उससे वह उत्तेजना कभी-कभी बाहर व्यक्त होने को तत्पर-सी परिलक्षित होती थी। लेकिन आचार्यवर की शांत, सुधारसमय वाणी उस उत्तेजना को प्रशान्त बना देती थी। आचार्यश्री फरमाते थे कि आप लोग मेरे ऊपर होने वाली अनुचित बातों से उत्तेजित न होवें। ऐसे व्यक्तियों से जीवन में प्रेरणा लेना चाहिये कि

सदा ही साधकों को सावधानी दिलाते हैं।

भगवान महावीर का क्षमाधर्म कितना जीवन में उतर पाया है ? इस बात की एक तरह से परीक्षा है। अतः उनको शत्रु न समझ कर जीवन-साधना में जागृत करने वाले सहायक समझो। नीतिकारों ने भी कहा है कि— जीवन्तु मे शत्रुगणाः सदैव, एषां प्रसादात्सु-विचक्षणोहम्— आदि आशय के भावों को सुनकर जनता मन्त्रमुग्ध सी हो जाती। दूध के उफान में पानी का छींटा पड़ जाने से जैसे दूध शान्त हो जाता है, वैसे ही आचार्य श्रीजी म. सा. के वचनामृत-जल से जनता का उफान शान्त हो जाता था। इस प्रकार की आपश्री की वृत्ति को देख मानो कवि की वाणी मुखरित हो उठी कि ये गणेश हैं या महादेव—

तन पर है धर्म धूलि खासी,
मृगछाल महाव्रत ओढ़े हैं।
जिन–वृष पर हैं आरूढ़, उमा—
अनुभूति से प्रीति जोड़े हैं।
तिरसूल सदा रत्नत्रय ले,
मानस-सर नित तीर बसें।
गुरुवर तुम सच्चे महादेव,
तुमको गणेश हम कैसे कहें ?
पुरुषार्थ चतुष्टय भुजा चार,
शशिकला कीर्ति छवि छायी है।
उपदेशामृत पावन गंगा भी
वसुधा पर आज बहाई है।
पी लिया कषाय कठिन विष को,
शल्यत्रय त्रिपुर भी धू-धू दहे।
गुरुवर तुम सच्चे महादेव
तुमको गणेश हम कैसे कहें ?

अन्त में उन सन्त-निन्दकों को निन्दाजनित अवहेलना, जनता की घृणा और अन्तःकरण के पश्चात्ताप की प्राप्ति हुई। अधिक आवेश में किये गये कृत्य का परिणाम सदैव दुखद, दुस्सह होता है।

लेकिन इस वातावरण से पूज्य आचार्य श्रीजी को अक्षय यश और जनता की अटूट श्रद्धा की प्राप्ति हुई। इसका एकमात्र कारण थी अनुपम सहिष्णुता की शीतल छाया, संयम के प्रति सतत चेतना और आत्मालोचन के स्वतःप्राप्त अवसर का सदुपयोग करने की सहज, स्वाभाविक वृत्ति। आचार्य श्रीजी म. सा. की इस प्रकार की अनुपम सहिष्णुता, गम्भीरता एवं उदारता आदि अन्य सन्तों के लिए भी अनुकरणीय है।

चातुर्मास के चार माह छिन में व्यतीत हो गये। चार माह के दिन, चार दिन जैसे ही प्रतीत हुए। ऐसा मालूम पड़ता था कि अभी कल ही तो चातुर्मास प्रारम्भ हुआ था। पूज्य आचार्य श्रीजी की दिव्य देशना कल ही तो प्रारम्भ हुई थी और आज पूरी भी हो गई। श्रोताओं को होश तब आया जब सुना कि चातुर्मास समाप्त हो गया और कल आचार्य श्रीजी का विहार होगा। सन्त तो अपने कल्पकाल तक ही एक स्थान पर विराज सकते थे, अतः जनता का मोह उन्हें रोक नहीं सकता था।

सं. २०१२, मगसिर कृष्णा १ का प्रभात हुका। पक्षियों के कलरव के साथ जनता में भी कलरव प्रारम्भ हो गया। आज मन भारी थे। सदगुरु के सदुपदेश-श्रवण का अन्तिम दिवस जो था। सुबह से ही सेठिया कोटड़ी का सभामंडप श्रोताओं की समुपस्थिति से संपूर्ण होने लगा। विशाल सभामण्डप संकुचित हो गया हो, ऐसा प्रतीत होता था। यथासमय सन्तशिरोमणि पधारे और वीतराग वाणी की अभिव्यंजना से भव्यजनों को प्रबोध देने लगे। हजारों-हजारों नेत्र अपलक अपने श्रद्धेय पर केन्द्रित थे। नीरवता में सिर्फ श्रद्धेय की गिरा गूंज रही थी। यथासमय प्रवचन समाप्त हुआ।

अनन्तर विरागियों के विहार की वेला सन्निकट आ पहुंची थी।

मध्याह्न होते-होते विहार-पथ पर पूज्यश्री ने पदार्पण किया। सहस्रों विनम्र मस्तक चरणरज प्राप्ति के लिये चरणारविन्दों में नत हो रहे थे और सहस्रों साश्रुनेत्र पादपद्मों को पखार रहे थे।

आखिर सन्तों ने गंतव्यमार्ग पर गमन किया। जनमेदनी के बीच घिरे हुए जनमान्य मंथरगति से गमन करने लगे। छज्जों और अट्टालिकाओं से जय-जय के वाक्पुष्पों की बरसा होना प्रारम्भ हो गई। सन्त-मण्डली ने देशनोक, नोखा-मण्डी की ओर गमन किया। सैकड़ों व्यक्ति तो साथ-साथ चल पड़े।

साधु-सम्मेलन से पूर्व की स्थिति

यद्यपि सादड़ी में बृहत्साधुसम्मेलन होकर एक श्रमणसंघ का ऊपरी ढांचा बन चुका था। लेकिन कुछ प्रश्न ऐसे थे, जिनका निर्णय पारस्परिक विचार-विमर्श और शास्त्रीय आधार से हो सकता था। इसी बात को लक्ष्य में रखकर सोजत में मन्त्री मुनिवरों का सम्मेलन हुआ और उसके पश्चात जोधपुर में संयुक्त चातुर्मास भी हुआ था। उक्त दोनों अवसरों पर प्रत्येक अनिर्णीत विषय पर काफी विचार-चर्चा हुई, लेकिन निष्कर्ष कुछ भी नहीं निकल सका।

यद्यपि एक आचार्य के नेश्राय में समस्त साधु-साध्वी वर्ग ने निष्ठा व्यक्त भी की थी, लेकिन पूर्ववत् अलग-अलग सिंघाड़ों की परिपाटी चालू थी। अधिकांश इस परम्परा का उन्मूलन करने का साहस नहीं दिखा सके। सचित्ताचित्त, ध्वनिवधक यंत्र, एक संवत्सरी आदि प्रश्न ऐसे जटिल बन गये कि जिनका निर्णय सर्वमान्य होना संभव नहीं रहा था। कोई भी अपने विचारों से किंचिन्मात्र भी डिगने को तैयार नहीं था। ध्वनिवर्धक यन्त्र के प्रश्न को लेकर तो कुछ श्रावकों ने आन्दोलन-सा चालू कर दिया था। उनके रुख से ऐसा मालूम पड़ता था, मानो कोई निश्चित योजनानुसार समस्त कार्रवाई हो रही है और कुछ मुनिवरों एवं अग्रणी श्रावकों का पीठबल हो। अभी तक मुनियों की स्खलनासम्बन्धी जो कुछ भी घटनायें होती थीं, उन्हें उन-उन

सम्प्रदायों के श्रावकगण और साधुवृन्द अन्दर-अन्दर ढांकने का प्रयत्न करते थे। लेकिन एक श्रमणसंघ बनने से और सबल नेतृत्व के कारण स्खलना की घटनायें चतुर्विध संघ के समक्ष प्रगट होने लगीं। इस कारण शिथिलाचारी साधु किसी-न-किसी प्रकार से अपनी मान-प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिये अपनी-अपनी पूर्व सम्प्रदाय के श्रावकों को भड़काने के प्रयत्न करते थे। इन सब कारणों से सादड़ी में निर्मित श्रमण-संघ दिनोंदिन निर्बल होता जा रहा था।

पूज्य आचार्य श्रीजी इस स्थिति से बहुत कुछ अवगत होते जा रहे थे। आपश्री को यह स्पष्ट दिख रहा था कि सादड़ी-सम्मेलन में स्वीकृत उद्देश्य की पूर्ति के लिये प्रयत्न न होकर दलबन्दी के द्वारा अपने-अपने स्वार्थ सिद्ध करने की भावना मुनियों में बढ़ती जा रही है। साधुवर्ग में सादड़ी-सम्मेलन के समय उत्पन्न उत्साह, विवेक और लगन लुप्तप्राय: है और उसके स्थान पर औपचारिकता का पालन अथवा दिखावा किया जा रहा है। इस स्थिति में सम्मेलन की सफलता संदेहास्पद थी।

समाज के अग्रणी श्रावकों को भी इस प्रकार के वातावरण से सम्मेलन की सफलता के बारे में शंका थी। श्रमणसंघ के गठन की जो प्रतिक्रिया होना चाहिये थी, उसके अनुकूल वातावरण समाज में नहीं बन सका था। साधु-सन्तों में कुछ साधु और श्रावक समुदाय में कुछ श्रावक ऊपर से अच्छा बर्ताव दिखाते थे लेकिन अन्तरंग में कुछ सन्तों के प्रति ईर्षाभाव रखते हैं ऐसा प्रतीत होता था। यद्यपि ऊपरी तौर से एक संगठन का रूप दिखता अवश्य था, लेकिन अन्तर् में ऐसे प्रपंच चल रहे थे कि किसी-न-किसी प्रकार यह संगठन छिन्न-भिन्न हो जाये और इसके लिये दूसरों पर दोषारोपण किया जाये।

यद्यपि सम्मेलन की सफलता की दृष्टि से इस प्रकार का वातावरण उपयोगी-सा नहीं था। किन्तु सम्मेलन होने की घोषणा हो गई थी और चातुर्मास की समाप्ति के पश्चात कुछ एक साधु-सन्तों का सम्मेलन के निमित्त भीनासर की ओर विहार भी हो चुका था। अतः

सम्मेलन को स्थगित करना उपयुक्त नहीं समझा गया।

साधु-सम्मेलन की तैयारियां

चातुर्मास-समाप्ति के पश्चात भीनासर में होने वाले बृहत्साधु-सम्मेलन की तैयारियां प्रारम्भ हो गईं। साधु सन्तों ने भी सम्मेलन को लक्ष्य मानकर भीनासर की दिशा में विहार कर दिया था। सम्मेलन प्रारम्भ होने में काफी समय था अतः पूज्य आचार्य श्रीजी म. सा. भी धीरे-धीरे बीकानेर से विहार करते हुए नोखामण्डी पधार गये।

आचार्य श्रीजी म. सा. के नोखामण्डी पदार्पण के समय और भी कतिपय प्रमुख सन्त वहां पधार गये थे और अनौपचारिक रूप से सम्मेलन के विषय में विचारों के आदान-प्रदान का क्रम चालू हो गया और सभी ने अपने-अपने दृष्टिकोणों को प्रस्तुत किया। इसी वार्तालाप के प्रसंग में यह सुझाव रखा गया कि सं० २०१२, मिती चैत्र कृष्णा ३, गुरुवार से सम्मेलन प्रारम्भ होगा, लेकिन उसके पूर्व कुछ औपचारिक कार्यविधि को इन्हीं दिनों में कर लिया जाये तो ठीक रहेगा।

इस सुझाव के लिये सभी उपस्थित मुनिराजों ने अपनी सहमति दर्शाई। अतः माघ शुक्ला ५ से १२ तक सात दिन मुनिवरों ने जोधपुर संयुक्त चातुर्मास की कार्रवाई, प्रधानमन्त्री जी एवं मन्त्रिमंडल के प्रतिवेदन पर विचार-विमर्श किया तथा प्रायश्चित्तविधि के निर्माण के बारे में भी कुछ कार्रवाई हुई।

नोखामण्डी में सात दिन विराजने के अनन्तर सभी सन्त जो वहां थे और विहार करते हुए पधार गये थे, सामूहिक रूप में विहार कर देशनोक पधारे। देशनोक में साधु-मुनिराज काफी बड़ी संख्या में पधार गये थे और जो पधारने वाले थे उनकी भी जानकारी प्राप्त हो चुकी थी, अतः विचार किया गया कि यहीं पर सम्मेलन की कार्रवाई में भाग लेने वाले मुनिराजों के प्रतिनिधियों का चुनाव कर लेना चाहिये। सुझाव सर्वानुमति से स्वीकार किया गया।

अतः दि० ३-२-५६ को मध्यान्ह २। बजे प्रतिनिधियों के चुनाव

के लिये श्री भीकमचन्द जी भूरा के मकान पर उपस्थित सभी मुनिराज एवं महासतियांजी म. सा. एकत्रित हुए और पूज्य आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. की अध्यक्षता में कारंवाई प्रारम्भ हुई।

सर्वप्रथम आचार्य श्रीजी म. सा. ने नवकारमन्त्र का घोष करते हुए भगवान विमलनाथ की प्रार्थना की और प्रासंगिक व्याख्यान फरमाया। आपश्री ने सादड़ी-सम्मेलन से लेकर अभी तक की स्थिति पर संक्षिप्त प्रकाश डालते हुए जो भाव फरमाये उनका सारांश यह है—

जिस आयोजन के लिये तयारियां हो रही हैं, उसका समय निकट आ गया है। सम्मेलन में सम्मिलित होने के लिये भीनासर की ओर विहार कर बहुत से मुनिराज तो यहां आपके समक्ष विराज रहे हैं और कुछ विहार में हैं। वे भी यथाशीघ्र सम्मेलन से पूर्व भीनासर पधारने के भाव रखते हैं।

सम्मेलन में सम्मिलित होना किसी तरह के मान-सम्मान के लिये नहीं है, किन्तु सम्यक् ज्ञान-दर्शन-चारित्र आदि की शुद्धि और वृद्धि में लिये है इसमें सभी को निष्पक्ष और परस्पर प्रेमपूर्वक मिलकर एक समाचारी के लिये अपनी-अपनी राय व्यक्त करना चाहिये और जिस पर साधु सम्मेलन शास्त्रीय दृष्टि से विचार कर किसी निर्णय पर पहुंचे। इसी में साधु-सम्मेलन की सफलता है और इसी ध्येय से सभी इसमें सम्मिलित हो रहे हैं। शास्त्रीय प्रमाणपूर्वक सच्चे हृदय से अपने विचार प्रगट करने के लिये सम्मेलन में प्रत्येक मुनि को भाग लेना चाहिये। धर्म-चर्चा द्वारा धार्मिक उन्नति करने के लिये एक स्थान पर सम्मिलित होना सभी के लिये योग्य और लाभदायक हैं।

वर्तमान परिस्थिति को देखते हुए समाज के अग्रणी इस बात का अनुभव कर रहे थे कि साधुओं में ज्ञान-दर्शन और चारित्र की उन्नति के लिये तथा संगठन के लिये एक साधुसम्मेलन करने की आवश्यकता है। इसी को लक्ष्य में रखते हुए सादड़ी में एक सम्मेलन हो चुका है और उसके निर्णयों को अमली रूप देने के लिये सोजत व

जोधपुर में चर्चा हुई और कुछ निर्णय भी किये गये हैं। लेकिन कुछ प्रश्न ऐसे हैं, जिनका समाधान व निर्णय पुनः बृहत्साधुसम्मेलन होने से हो सकता है। इसी को ध्यान में रखते हुए भीनासर में बृहत्साधुसम्मेलन का आयोजन किया जा रहा है।

यद्यपि इस सम्मेलन में सभी साधु-संत समान रूप से उपस्थित होकर कार्रवाई में भाग लेंगे, फिर भी व्यवस्था की दृष्टि से उनके प्रतिनिधियों का चुनाव हो जाना सुविधाजनक होगा। कार्रवाई भी सुचारूरूप में चल सकेगी और प्रत्येक विषय में विचार-विमर्श करने के लिये काफी समय भी मिलेगा। इस सुविधा को ध्यान में रखते हुए प्रतिनिधियों का चुनाव किया जा रहा है।

इस प्रासंगिक वक्तव्य के पश्चात प्रतिनिधियों का चुनाव इस प्रकार हुआ—

	सिंघाड़ा नाम	प्रतिनिधि संख्या
१	आचार्यश्री आत्माराम जी म. सा.	५
२	उपाचार्य श्री गणेशलाल जी म. सा.	५
३	प्र. मन्त्री श्री आनन्दऋषि जी म. सा.	५
४	सहमन्त्री श्री प्यारचन्द जी म. सा.	५
५	सहमन्त्री श्री हस्तीमल जी म. सा.	१
६	मन्त्री श्री मोतीलाल जी म. सा.	२
७	मन्त्री श्री पृथ्वीचन्द जी म. सा.	१
८	मन्त्री श्री मिश्रीमल जी म. सा.	२
९	मन्त्री श्री फूलचन्द जी म. सा.	१
१०	स्था. मुनि श्री हजारीमल जी म. सा.	४
११	स्थ. श्री शार्दूलसिंह जी म. सा.	१
१२	स्थ. श्री रामकुमार जी म. सा.	१
१३	मुनि श्री जीवराज जी म. सा.	२
१४	मन्त्री मुनि श्री पन्नालाल जी म. सा.	१

१५	स्थ. श्री भूरालाल जी म. सा.	१
१६	स्थ. श्री ताराचन्द जी म. सा.	३
१७	मुनि श्री जीवनराम जी म. सा.	१
१८	मन्त्री श्री किशनलाल जी म. सा.	५
१९	स्थ. श्री पूरणमल जी म. सा.	१
२०	स्थ. श्री फतेहचन्द जी म. सा.	१
२१	मुनि श्री छोटेलाल जी म. सा.	१
२२	स्थ. श्री कपूरचन्द जी म. सा.	१

इस प्रकार बाईस सिघाड़ों के साधु-साध्वी वृन्द की ओर से ५२ प्रतिनिधियों का चुनाव हुआ।

अनन्तर अन्यान्य सम्बन्धित विषयों पर विचार-विमर्श होता रहा। निर्णयात्मक रूप तो सम्मेलन के अवसर पर ही दिया जा सकता था अतः करीब ४ बजे सभा की कार्रवाई समाप्त हुई।

देशनोक से विहार कर सभी सन्त-सतियां जी बीकानेर पधारे और वहां भी पहले की तरह प्रातः एवं मध्याह्न अनौपचारिक विचार-गोष्ठियों का आयोजन होता रहा। इस समय बीकानेर में १३५ सन्त एवं १४७ सतियां जी विराज रहे थे और इन बैठकों में प्रतिनिधि मुनियों के अतिरिक्त अन्य सन्त-सतियां जी को दर्शक के रूप में विराजने की व्यवस्था की गई थी।

साधु-सम्मेलन के अवसर पर ही श्री अ. भा. श्वे. स्थानकवासी जैन कान्फरन्स का स्वर्णजयन्ती अधिवेशन दि० ४, ५, ६ अप्रैल '५६ को श्री विनयचन्दभाई दुर्लभजीभाई जवेरी जयपुर की अध्यक्षता में होने वाला था।

इन दोनों महत्त्वपूर्ण समारोहों पर उपस्थित होने वाले स्वधर्मी बन्धुओं की आवास-व्यवस्था के लिये शामियाने आदि लगाकर नगर का निर्माण किया गया था।

बीकानेर श्रावक-संघ की ओर से भी बीकानेर में बाहर से

आने वाले दर्शनार्थी श्रावक-श्राविकाओं के आवास, भोजनादि का सुन्दर और उचित प्रबन्ध किया गया था, जो साधुसम्मेलन एवं कान्फरन्स का अधिवेशन सम्पन्न होने के बाद तक भी चलता रहा।

साधुसम्मेलन सं० २०१२, मिती चैत्र कृष्णा ३, दि० २९-३-५६ से भीनासर में विधिवत् प्रारम्भ होने वाला था। अतः चैत्र कृष्णा २, दि. २८-३-५६ को बीकानेर में विराजित समस्त सन्त-सतियां जी विहार कर भीनासर पधार गये और चैत्र कृष्णा ३ के प्रातः ८ बजे बृहत्साधुसम्मेलन की कार्रवाई प्रारम्भ हुई और उसमें सभी उपस्थित सन्त सतियां जी म. सा. ने भाग लिया।

पहले सादड़ी में सम्पन्न बृहत्साधुसम्मेलन के अवसर पर साधु-सन्तों ने मिलकर जिन अंशों में हृदय की सरलता से संघश्रेय की भावना व्यक्त की थी, तदनुरूप कार्य को प्रायः सफलता मिल चुकी थी। अनन्तर उस भावना को यथार्थता की कसौटी पर परखने और सतत गतिशील बनाये रखने के प्रयत्नों की अपेक्षा थी, इसीलिये सोजत में मन्त्रिमण्डल के मुनिवरों का सम्मेलन हुआ और उसमें उपस्थित प्रश्नों, व्यवस्था आदि के बारे में कुछ निर्णय किये गये। उक्त निर्णयों के सम्बन्ध में भी अन्यान्य सन्तों के विचारों को जानने और परामर्श करने की दृष्टि से जोधपुर में संयुक्त चातुर्मास का आयोजन किया गया था।

लेकिन इन दोनों आयोजनों की कार्यप्रणाली से यह स्पष्ट हो गया था कि संगठन के प्रति जितनी सदाशयता होना चाहिये, नहीं है। अतः संगठन को सबल बनाने की दृष्टि से समग्र स्थिति का पुनर्निरीक्षण करने, समस्याओं का समाधान खोजने के लिये यह सम्मेलन हो रहा था।

मंगलाचरण और प्रारम्भिक वक्तव्य के अनन्तर चतुर्विध संघ से सम्बन्धित प्रश्नों पर विचार-विमर्श प्रारंभ हुआ। लेकिन वातावरण में उत्साह नहीं था। अधिकांश मुनियों में शास्त्रीय दृष्टिकोण की अपेक्षा अपने-अपने दृष्टिकोण के लिये भी आग्रही बने रहने का रुख विशेष रूप से परिलक्षित होता था। अतः सम्मेलन के समक्ष विचारणीय प्रश्नों के

स्पष्ट होते हुए भी समाधान नहीं हो पा रहा था। इसका परिणाम समाज को भुगतना भी पड़ा। जो समय-समय पर होने वाली प्रवृत्तियों से स्पष्ट हो जायेगा।

सम्मेलन की कार्रवाई का संक्षिप्त दिग्दर्शन

सम्मेलन में एकलविहारी साधु-साध्वी को संघ में सम्मिलित करने, प्रतिक्रमण की आज्ञाविषयक, मकान संबन्धी, सुत्तागमे के बारे में और ध्वनि-वर्धक यन्त्र विषयक प्रश्नों पर शास्त्रप्रमाण, परम्परा, साध्वाचार की अनुकूलता-प्रतिकूलता आदि की दृष्टि से विशेष रूप में चर्चा-वार्ता हुई। साथ ही व्यवस्थापक मण्डल में भी हेरफेर किया गया। उसमें से कुछ एक निर्णयों को अविकल रूप से यहां उपस्थित किया जा रहा है—

(१) सचित्ताचित्त विषयक निर्णय

बादाम, पिस्ता, नोजा (चिलगोजा), चारोली की मज्जा, सफेद और काली मिर्च अखण्ड नहीं लेंगे और पीपल वगैरह पीसी नहीं लेंगे। पानी का वर्फ नहीं लेंगे।

डोचरा, काकड़ी, एरण्ड काकड़ी (पपीता), खरबूजा, तरबूज, आम्रफल, नारंगी, सतरा की फांकें, केला, किसमिस आदि वस्तुओं के लिये मतभेद बहुत अर्से से चला आ रहा था, उसके लिए एकमत होकर प्रेम, ऐक्यता एवं संगठन हेतु इस निश्चय पर पहुंचे कि आचार्यश्री उपाचार्यश्री की आज्ञानुसार श्री वर्द्ध. स्था. जैन श्रमणसंघ ने मर्यादा स्थापित की है कि बिना शस्त्रपरिणत इनको नहीं लेंगे। किन्तु उसके संघट्टे के लिए किसी को कुछ कहने का अधिकार नहीं होगा।

इसी प्रसंग में ध्वनि-वर्धक-यन्त्र के उपयोग का प्रश्न भी उपस्थित हो गया। इसके सम्बन्ध में आगे संकेत किया जा रहा है।

(२) संवत्सरी सम्बन्धी

स्थानकवासी समाज में संवत्सरी के बारे में तीन विचार-मान्यतायें प्रचलित हैं। एक है— दो श्रावण हों तो दूसरे श्रावण में और

दो भाद्रपद हों तो प्रथम भाद्रपद में संवत्सरी करना। दूसरी विचारधारा है— दो श्रावण हों तो भाद्रपद में और दो भाद्रपद हों तो प्रथम भाद्रपद मास में संवत्सरी करना। तीसरी विचारधारा है—दो श्रावण हों तो भाद्रपद में और दो भाद्रपद हों तो द्वितीय भाद्रपद में संवत्सरी करना चाहिये।

सादड़ी सम्मेलन में संवत्सरी के प्रश्न का समाधान करने के लिये गम्भीरतापूर्वक प्रयास किया गया था। किन्तु आधार के बारे में मतैक्य नहीं हो सका था। इसलिये प्रेम और सम्पूर्ण संगठन को लक्ष्य में रखते हुए दो श्रावण हों तो भाद्रपद में और दो भाद्रपद हों तो दूसरे भाद्रपद में संवत्सरी करना चाहिये, ऐसा प्रस्ताव स्वीकृत किया गया था। यद्यपि बहुमत इस पक्ष में नहीं था, किन्तु अल्पसंख्यक वर्ग के साथ प्रेम एवं सद्भावना रखने के लिये यह प्रस्ताव सर्वानुमति से स्वीकार किया गया था।

उक्त प्रस्ताव पारित होने पर भी संवत्सरी की समस्या का समाधान हुआ नहीं और जो ध्येय था वह भी सफल नहीं हो सका। परन्तु सादड़ी-सम्मेलन के संवत्सरी सम्बन्धी प्रस्ताव के क्रियान्वित होने से सौराष्ट्र स्थानकवासी जैनसंघ एक प्रकार-से पृथक्-सा हो गया। अतः उसे संयुक्त करने के लिये इस प्रश्न को पुनर्विचारणा हेतु उपस्थित करना पड़ा। इसके लिये निम्नलिखित सन्तों व श्रावकों की एक समिति नियुक्त की गई है। यह समिति आगामी संवत्सरी तक उचित निर्णय देने का प्रयत्न करे। निर्णय करने में सुविधा हो, इसके लिये हमारी सूचना है कि लोकमान्यता की ओर दृष्टि न रखते हुए शास्त्रीय मान्यता को महत्त्व दिया जाये। यदि श्रावण, भाद्रपद और आसोज दो आते हैं तो दो आषाढ़ मास माने जायें। ऐसा करने से प्रत्येक मान्यता वाले को सन्तोष हो सकेगा।

समिति— १. पं. मुनिश्री कस्तूरचन्द जी म., २. श्री सूर्यमुनिजी म. ३. पं. समर्थमल जी म., ४. मन्त्री श्री शुक्लचन्द जी म., ५. मरुधर-

केसरी मन्त्री श्री मिश्रीमल जी म., ६. उपाध्याय कविश्री अमरचन्द जी म, ७. प. श्री जीतमल जी म., ८. पं. श्री कुन्दनमल जी म., ९. पं. पद्म-मुनिजी म., १०. श्री सदानन्दी छोटेलाल जी म., ११. उमरशी कानजी-भाई १२. लोंकागच्छीय श्री पूज्य जी का मत लिया जाये, १३. श्री कुन्दनमल जी फिरोदिया, १४. श्री दुर्लभजी केशवजी खेताणी, १५. श्री मणिलाल वनमालीदासभाइ, १६. श्री वेलशी लखमशी नप्पु, १७ श्री गिरधरलाल दफ्तरी।

इस समिति का यथाशक्य सर्वानुमति के किया गया निर्णय सभी को मान्य होगा। इस समिति के संयोजक मरुधरकेशरी मन्त्री मुनिश्री मिश्रीमल जी म. होंगे।

उदय और अस्त तिथि का निर्णय भी इस समिति के साथ ही सम्बद्ध किया जाता है।

नोट— श्वेताम्बर मूर्तिपूजक, स्थानकवासी और तेरहपंथी वगैरह विभिन्न परम्पराओं के श्वेताम्बर संघ यदि संवत्सरी की एकता के लिये कोई एक निर्णय कर सकते हों तो उसके लिये श्री व. स्था. जैन श्रमणसघ उदारतापूर्वक अपना उचित सहकार देने के लिये तैयार हैं।

यह प्रस्ताव और आचार्यश्री की मान्यता

सम्मेलन में जब संवत्सरी विषयक प्रश्न चल रहा था तब आचार्य श्री गणेशलाल जी म. सा. ने दीर्घदृष्टिपूर्वक अपने उदात्त विचार सभी के सम्मुख रखे और फरमाया कि संवत्सरी का प्रकरण मुख्यतया परम्पराओं की दृष्टि से उलझ-सा रहा है और समस्त जैन समाज में विभिन्न तरीकों से संवत्सरी पर्व मनाया जा रहा है। यद्यपि श्रमणसघ ने स्थानकवासी समाज के तत्त्व को सामने रख कर कुछ सोचा है, लेकिन मैं इतने मात्र से ही इस विषय में संतुष्टि मानने की स्थिति में नहीं हूँ। मेरा अन्तःकरण तो यह चाहता है कि कम-से-कम संवत्सरी जैसे महापर्व के विषय में एक ही दिन पर्व मानने की सोचना चाहिये। यदि समग्र जैनसमाज संवत्सरी विषयक अपनी-अपनी परम्पराओं के

आग्रह की स्थिति को ढ़ीला कर एक ही रोज संवत्सरी पर्व (चाहे वह दूसरे श्रावण में हो या भादवे में हो) मनाने को तत्पर हो जाये तो श्रमणसंघ को भी पूरी उदारता के साथ संवत्सरी-विषयक एकता में सहयोग देना चाहिए आदि। उक्त आशय के वक्तव्य के पश्चात् श्रमणसंघ ने संवत्सरी-विषयक प्रस्ताव के नीचे उपर्युक्त नोट लगाया जो कि यहां यथास्थान उद्‌धृत कर दिया गया है।

आचार्य श्रीजी म. सा. के संवत्सरी के सम्बन्ध में स्पष्ट विचार थे कि मेरी भूतपूर्व मान्यता द्वितीय श्रावण की ही थी परन्तु जब अल्प-संख्यक संप्रदाय के मुनिवरों को प्रेम एवं सद्‌भावना के नाते वचन देकर सादड़ी में प्रस्ताव बनाया गया तो जब तक सौराष्ट्र संघ नहीं मिले या ऐसी कोई बड़ी बात न हो तब तक दिये गये वचनों से श्रमणसंघ में रहते फिरना उन मुनिवरों के प्रति हमारा विश्वासघात जैसा होगा।

इन्हीं सब दृष्टिकोणों को लक्ष्य में रखते हुए और संगठन के सूत्र को सुदृढ़ बनाने के लिये संवत्सरी विषयक प्रस्ताव पुनर्विचारणा के लिये संम्मेलन के समक्ष उपस्थित किया गया था। लेकिन प्रस्ताव कहां तक सफल हो सका, यह यथाप्रसंग बतलाया जायेगा।

आचार्य श्रीजी प्रत्येक विवादास्पद प्रश्न पर अपनी एक प्रबल और शास्त्रीय प्रमाणों से पुष्ट दृढ़ राय रखते थे, फिर भी आपश्री ने अपनी सम्मति को आग्रह का रूप कदापि नहीं दिया। आपश्री एक ही बात जानते थे कि तर्क की कसौटी पर कसने योग्य प्रत्येक विषय को तर्क की कसौटी पर कसो, जो विचार हों उन्हें निस्संकोच व्यक्त करो और मंथन करो। लेकिन जो सर्वमान्य निर्णय हो जायें, उन पर दृढ़ रहना चाहिये। वाक्छल या सुविधा के नाम पर स्वच्छन्द प्रवृत्ति नहीं होना चाहिये। तभी संगठन को बल मिलेगा और उसकी भावना से श्रावक-श्राविकाओं में संगठन की शक्ति व्याप्त होगी।

(३) उपाध्यायमण्डल की स्थापना व मन्त्रिमण्डल का पुनर्गठन

यद्यपि सादड़ी में मन्त्रिमण्डल की व्यवस्था की गई थी, लेकिन

यह मन्त्रिमण्डल की व्यवस्था सदा के लिये चलेगी, इस भावना से नहीं किन्तु यह अभिप्राय व्यक्त हो रहा था कि श्रमणसंघ में स्वीकृत उद्देश्य की पूर्णरूपेण पूर्ति होने में कुछ समय लग सकता है, अतः जब तक उद्देश्य का पूर्ण अमली रूप न हो जाये, तब तक जो कुछ बना है उसकी व्यवस्था बनी रहे, इसके लिये मन्त्रिमण्डल का गठन किया गया था। लेकिन उपाध्याय पद अवशेष रह गया था। अतः उसकी पूर्ति बृहत्साधुसम्मेलन में करना आवश्यक था ही। तदनुसार चार उपाध्यायों का चुनाव कर लिया गया। साथ ही उद्देश्य के अनुरूप एक ही की नेश्राय में दीक्षा, शिक्षा, प्रायश्चित्त, विहार आदि व्यवस्थित करने के लिए भी सोचा जा रहा था। लेकिन सादड़ी-सम्मेलन के अन्दर उद्देश्यपूर्ति की जो उदात्त भावना परिलक्षित हो रही थी वह इस बृहत्साधुसम्मेलन तक प्रायः मन्द-सी हो गई थी। समय-समय पर प्रसंगोपात्त सावधानी भी दिखलाई जाती रही लेकिन अधिकांश संत-मानस में उद्देश्य के प्रतिकूल ही कुछ क्रियायें चल रही थीं। इसका नतीजा यह हुआ कि कुछ खास अधिकार जो प्रधानमंत्री आदि के लिये ऊपर की स्थिति में सुरक्षित थे, वे भी सम्पूर्णरूप में मन्त्रिमण्डल बांटना चाहता था यानि सादड़ी सम्मेलन के लक्ष्य के प्रतिकूल ही व्यवस्था सोची जा रही थी और बहुमत की बातों को मुख्य रखकर मन्त्रिमण्डल बनाया गया।

उपाध्याय-मण्डल और मन्त्रिमण्डल के बारे में निम्नलिखित प्रस्ताव सर्वानुमति से स्वीकृत हुआ—

श्रमणसंघ निम्नलिखित चार उपाध्याय स्वीकार करता है—
१ पं. आनन्दऋषिजी म., २ पं. प्यारचन्दजी म., ३ कविश्री अमरचन्दजी म., ४ पं. श्री हस्तीमलजी म.।

मन्त्रिमण्डल की नामावली व क्षेत्रविभाग

प्रधानमन्त्री— व्याख्यानवाचस्पति श्री मदनलालजी म.

मन्त्री— मुनिश्री पृथ्वीचन्दजी म.—अलवर, भरतपुर, उ. प्र.

„ „ शुक्लचन्दजी म.—पंजाब, पेप्सू

मन्त्री—मुनिश्री— प्रेमचन्दजी म. —दिल्ली, बांगड़, हरियाणा, जंगलप्रदेश

" " सहस्रमलजी म. —मध्यभारत, ग्वालियर, कोटा राज्य

" " पूर्णमलजी म. —थलीप्रदेश

" " मिश्रीमलजी म. —मारवाड़-बिलाड़ा, जयतारण, सोजत, देसूरी, पाली, सिवाना, जोधपुर, जालौर क्षेत्र

" " हजारीमलजी म.— डेगाना, पर्वतसर, नागौर, डीडवाना, फलौदी, सांभर, शेरगढ़, साकड़ा, मेड़तापट्टी रेल्वे लाइन से उत्तर दिशा तरफ

" " पन्नालालजी म.—जयपुर, टोंक, माधोपुर, अजमेर राज्य

" " किशनलालजी म.—खानदेश, बरार, सी. पी., बम्बई

" " विनयऋषिजी म.—महाराष्ट्र, मद्रास, मैसूर

" " फूलचन्दजी म. —बंगाल, बिहार, आसाम, उड़ीसा

" " मोतीलालजी म. —मेवाड़, पंचमहाल

" " पुष्करमुनिजी म.— " "

इस प्रकार क्षेत्रीय वर्गीकरण करने से चतुर्विध संघ की धर्म-करिणी-सम्बन्धी व्यवस्था मन्त्रिमण्डल के अधीन हो गई और उपाध्याय-मण्डल की नियुक्ति से मुनियों के शिक्षण, साहित्य-सर्जन और आगम-प्रकाशन के बारे में संभावना व्यक्त की गई और शास्त्रीय दृष्टि से शंका-समाधान का अवसर आने पर उपाध्याय-मंडल को उसका निराकरण करने का भार सौंपा गया।

(४) ध्वनिवर्धक यन्त्र विषयक

ध्वनिवर्धक-यन्त्र में बोलने या न बोलने के बारे में साधु-सन्तों में दो विचारधारायें विद्यमान थीं। एक विचारधारा थी कि श्रमण-

वर्ग का चरित्रबल बना रहना आवश्यक है। शास्त्रानुसार उसकी क्रियायें हों। स्वच्छन्द और अवैधानिक प्रवृत्तियों के लिये सुविधा न दी जाये। ध्वनिवर्धक-यन्त्र के प्रयोग में विद्युत का उपयोग होता है और विद्युत तेजस्काय है और जो सचित्त है। अतः उसकी विराधना करना श्रमणधर्म की परम्परा नहीं है। सैद्धान्तिक भ्रान्तियों के साथ ध्वनिवर्धक-यन्त्र की स्वच्छन्द प्रवृत्ति से समाज की स्थिति डांवाडोल और अस्थिर हो जायेगी। अतः साधुजीवन के उत्सर्ग की दृष्टि से श्रमणवर्ग के लिये ध्वनिवर्धक-यन्त्र का उपयोग उचित नहीं है। यदि ध्वनिवर्धक-यन्त्र के उपयोग करने की सुविधा दी जाती है तो उस सुविधा के नाम पर बिजली के पंखे, रोशनी, टेपरिकार्डर और वातानुकूलित गृह के उपयोग की परम्परा भी चल पड़ेगी और इसके जो परिणाम निकलेंगे, धर्मानुरागियों को इसके कुपरिणाम भुगतने के लिये तैयार रहना चाहिये। दूसरी विचारधारा थी कि ध्वनिवर्धक-यन्त्र का उपयोग आवश्यकतानुसार किया जाये तो कोई हानि नहीं है, उससे मुनिधर्म के पालन में दोष नहीं लगता और उसके उपयोग के लिये प्रायश्चित्त लेने की जरूरत नहीं है। ध्वनिवर्धक यन्त्र का उपयोग साधु अपनी सुविधा के लिये नहीं करते वरन् श्रावक अपने लिये करते हैं। इसलिये मुनिचर्या में मुनि के निमित्त यह कार्य न होने से मुनि को दण्ड-प्रायश्चित्त लेने का प्रश्न ही नहीं उठता है। दूसरी बात—विद्युत अचित्त है और जब वह अचित्त है तो उसके उपयोग से साधु को जीवों की विराधना का दोष नहीं लगता है। साथ ही जब हम जैनधर्म के प्रचार की बात करते हैं तो समयानुकूल प्रचार-साधनों को जुटाना आवश्यक हो जाता है तथा पहले इतने बड़े-बड़े नगर देश में नहीं थे, जितने आज हैं। उस स्थिति में जैन गृहसंख्या नगरों में बढ़ी है और वे सभी एक स्थान पर प्रवचन आदि का लाभ प्राप्त करने के लिये एकत्रित होते हैं। संख्या की बहुलता के कारण सभी श्रोताओं तक आवाज पहुंच सके, यह संभव नहीं है। इसलिये उस स्थिति में ध्वनिवर्धक-यन्त्र का उपयोग होता

है तो करना चाहिये ।

इस बात का उत्तर शास्त्रीय परम्परा वाले यह देते थे कि इससे बहुत बड़ी हानि हो सकती है। क्योंकि ध्वनि-यन्त्र में विद्युत का प्रयोग होता है और विद्युत अग्निकाय के अन्दर है। इसके लिए उत्तराध्ययन सूत्र के ३६ वें अध्ययन में जहां बादर तेऊकाय का प्रकारण चला है वहां तेऊकाय के भेद गिनाते हुए शास्त्रकार ने 'इंगलि' (अंगार) आदि के साथ 'विज्जू' (विद्युत) अर्थात् अंगार अग्नि की तरह विद्युत अग्नि को भी तेऊकाय में स्पष्ट गिनाया है। इसी तरह अन्य शास्त्र में भी अग्नि के भेद गिनाते हुए 'संघर्ष समुत्थिय' अर्थात् संघर्ष से पैदा होने वाली को भी अग्नि कहा है, आदि कई शास्त्रीय प्रमाणों से विद्युत को तेऊकाय के अन्दर प्रतिपादन किया है और कहा है कि यदि इसको काम में लिया जाता है तो तेऊकाय (अग्निकाय) की विराधना होने से साधु के पहले महाव्रत की खण्डना होती । महाव्रत की खण्डना की स्थिति के साथ यदि प्रचार का कार्य चालू किया गया तो अन्य महाव्रतों के खण्डन का भी प्रसंग आ सकता है और यह सिलसिला आगे चलते हुए समग्र श्रमणसंस्कृति का घात करने वाला भी बन सकता है। अतः इसको काम में लेना बहुत हानि का कार्य है।

इन दोनों विचारधाराओं का संघर्ष सम्मेलन में स्पष्ट रूप से सभी के समक्ष आ गया था। ऐसा मालूम पड़ता था कि ध्वनिवर्धक-यन्त्र में बोलने में प्रतिष्ठा और न बोलने में अप्रतिष्ठा हो। जहां आदर्श को सुरक्षित रखने की भावना गौण और अहम् की भावना मुख्य हो जाती है, वहां शुद्धता के लिये अवकाश नही रह जाता है। 'स्वार्थी दोषं न पश्यति' की उक्ति बात-बात में व्यक्त होने लगती है। सम्मेलन में भी यही बात हुई। यहां तक दिखने लगा कि यदि साधुओं को ध्वनिवर्धक-यन्त्र के उपयोग करने की अनुमति न मिली तो श्रमण-संगठन को खंड-खंड करने में भी झिझक नहीं होगी।

वातावरण बड़ा क्षुब्ध था। अतः स्वाभाविक था कि ऐसे वाता-

वरण में कोई निर्णय नहीं किया जा सकता था और हुआ भी वैसा ही। चर्चा-विचारणा के पश्चात् जो प्रस्ताव हुआ, वह इस प्रकार है—

'ध्वनिवर्धक यन्त्र में बोलना मुनिधर्म की परम्परा नहीं है। यदि अपवाद में बोलना पड़े तो उसका प्रायश्चित्त लेना होगा। किन्तु स्वच्छन्दरूप से ध्वनिवर्धक-यन्त्र का उपयोग नहीं करना चाहिये।'

इस प्रस्ताव पर उपाध्याय श्री हस्तीमल जी म. सा., पं. मुनिश्री पन्नालाल जी म. सा., पं. मुनिश्री नानालालजी म. सा. (वर्तमान आचार्यश्री) तटस्थ रहे और प. मुनिश्री लालचन्दजी म. सा. ने विरोध में मत दिया। प्रस्ताव सर्वानुमति से न होकर एकमत के विरोध से स्वीकृत हुआ।

प्रस्ताव पारित होने के बाद जो ध्वनि-यन्त्र में बोलने के पक्ष में थे, उन्होंने प्रस्ताव के शब्दों पर गहराई से विचार न कर अपने मन में संतुष्टि मान ली कि हमारे लिए प्रायश्चित्त के साथ अपवाद में ध्वनि-यन्त्र खुल गया है। लेकिन जो शास्त्रानुसार ध्वनि-यन्त्र में नहीं बोलने के पक्ष में थे, उन्होंने गहराई से सोचा कि प्रस्ताव की भाषा में ध्वनि-यन्त्र खुलने जैसी कोई बात नहीं है। प्रस्ताव में सिर्फ शास्त्रीय शब्दों का संकलन मात्र है। 'मुनिधर्म की परम्परा नहीं है' इन शब्दों से मुनिधर्म जो महाव्रतादि हैं उनमें यह चीज आ नहीं सकती और 'अपवाद में बोलना पड़े तो' इन शब्दों में भी 'तो' शब्द से अपवाद भी साधारण नहीं, लेकिन अत्यन्त विवशता की स्थिति का द्योतन करता है। अर्थात् जहां साधु का संयमी जीवन खतरे में पड़ने की स्थिति में हो, वहां साधु की अत्यन्त विवशता की स्थिति आती है। जन समुदाय के एकत्र होने मात्र से अधिक को सुनाने की स्थिति में साधु की विवशता नहीं आती। क्योंकि साधु ऐसी स्थिति में अधिक को नहीं सुनाता है तो साधु का जीवन खतरे में नहीं पड़ता है। प्रस्ताव में जो प्रायश्चित्त अनिवार्य रूप से रखा गया है, इससे विद्युत को अचित्त मानना स्वतः निरस्त हो जाता है और अनिवार्य प्रायश्चित्त से विद्युत स्वयं सचित्त सिद्ध हो जाता है।

इस प्रकार उपर्युक्त ध्वनियन्त्र विषयक प्रस्ताव में उल्लिखित शब्दों द्वारा शास्त्रीय सिद्धान्त और श्रमण सस्कृति की सुरक्षा की स्थिति दृढ़ बन गई। अतः शास्त्रानुसार ध्वनि-यन्त्र में नहीं बोलने वाला पक्ष अपनी स्थिति को सुरक्षित समझकर चुप हो गया। क्योंकि प्रस्ताव में उल्लिखित शास्त्रीय शब्दों की शास्त्रीय दृष्टि से जिस समय व्याख्या की जायेगी, उस समय ध्वनि-यन्त्र का अधिक संख्या में सुनाने का अपवाद बन ही नहीं सकेगा और न कोई बोल सकेगा। यदि उसके पहले कोई बोल देगा तो वह श्रमणसंघ के नियमानुसार नियम को तोड़ने वाला माना जायेगा। अतः इस प्रस्ताव से ध्वनि-यन्त्र में नहीं बोलने वाले पक्ष को भी संतुष्टि हो गई। यही कारण है कि भीनासर साधु-सम्मेलन में जनता की पर्याप्त संख्या होते हुए भी, वहां कोई भी साधु ध्वनि-यन्त्र में न बोल सका।

इन प्रस्तावों के अतिरिक्त अन्य भी कई प्रस्ताव पारित हुए। लेकिन उनका यहां कोई खास प्रसंग न होने से उद्धृत नहीं किये जा रहे हैं। सिर्फ एक प्रस्ताव जिसका पूर्व में संकेत किया गया, यहां दिया जा रहा है :—

'श्री वर्द्ध० स्था० जैन श्रमणसंघ के श्रद्धेय उपाचार्यश्री (आचार्यश्री) पर जो अनर्गल मिथ्या एवं अशोभन आक्षेप किये गये हैं, उनको उपाचार्य श्रीजी म. ने जिस गम्भीरता, शांति एवं उदारता से सहन किया एवं विष को अमृत में बदलने के लिये जो निरन्तर प्रयत्न किया, इसके लिये समस्त प्रतिनिधि मुनिमण्डल अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पण करता है और इस आदर्श कार्य को अनुकरणीय समझता है।'

साधु-सम्मेलन में पारित प्रस्तावों के साथ अन्यान्य औपचारिक कार्रवाई के पश्चात् वृहत्साधु-सम्मेलन दि. ४ अप्रेल '५६ को समाप्त हुआ।

आचार्यश्री का दृष्टिकोण

बृहत्साधु-सम्मेलन सादड़ी में मुनिमण्डल द्वारा प्रदर्शित मनःस्थिति इस सम्मेलन के पूर्व से ही लुप्तप्रायः होने लगी थी। शुद्ध,

संगठन, प्रवेशपत्रों में व्यक्त भावनायें तिरोहित हो चुकी थीं, किन्तु व्यक्तिगत प्रभाव प्रदर्शित करने एवं शास्त्रीय मर्यादाओं का सुविधानुसार उपयोग करने की प्रवृत्ति वृद्धिगत थी। एक आचार्य के नेतृत्व में एक श्रमणसघ का ध्येय अवश्य घोषित किया था किन्तु उस घोषणा को साकार करने की प्रायः किसी में आकांक्षा नहीं थी। वही ढाक के तीन पात जैसी बात चल रही थी।

लेकिन पूज्य आचार्य श्रीजी इस स्थिति को संघ के लिये, श्रमण-परम्परा के लिये एवं संघ के उद्देश्य के लिये श्रेयस्कर नहीं मानते थे। चर्चा-वार्ता के प्रसंग में मुनिमण्डल के समक्ष भी इन्हीं विचारों को व्यक्त किया था कि इस सम्मेलन में हमें सादड़ी-सम्मेलन का अवशिष्ट कार्य पूर्ण करना चाहिये, जिससे हम संगठन की दिशा में बढ़ें और संगठन सुदृढ़ बने तथा सम्मेलन होने का उद्देश्य सार्थक हो।

लेकिन हो रहा था इस भावना के प्रतिकूल ही। आचार्यश्री के विचारों में अन्तर्द्वन्द्व चल रहा था कि इससे अपने को निर्लिप्त रखते हुए कर्तव्यदृष्टि से यथावसर योग्य सलाह सूचना के संकेत के साथ तटस्थ रहना ही उपयुक्त है। यदि ये मुनिवर सादड़ी-सम्मेलन में दिये गये सोत्साह आश्वासन के अनुसार अपने वचन पर दृढ़ रहे एवं संघ-ऐक्य योजना को कार्यान्वित करेंगे तो संगठन पल्लवित-पुष्पित होगा और यदि उद्देश्य को गौण कर अथवा दलबन्दी के रूप में छिन्न-भिन्न कर दिया तो मैं अपने प्रवेश-पत्र में लिखित संकेत के अनुसार अलग हो सकता हूँ। निर्ग्रन्थ श्रमण-संस्कृति की सुरक्षा के सिवाय मेरा व्यक्तिगत स्वार्थ नहीं है और सिर्फ सुरक्षा का प्रयास कर रहा हूँ। इतना होने पर भी श्रमण-संस्कृति की शुद्धता खंडित हुई तो सहयोग देना योग्य नहीं है। वार्तमानिक कार्यावस्था साधारण रूप की है। अतः इस स्थिति में मूकदर्शक के रूप में रहना चाहिये, अन्यथा हितावह कहना भी प्रच्छन्न दलबन्दी दूसरा ही आशय लगायेगी।

ऐसा विचार कर पूज्य आचार्य श्रीजी सम्मेलन में मुनिवृन्द

की प्रक्रिया देखते-सुनते रहे और सन्तोषजनक न होते हुए भी भविष्य की सुखद कल्पना से कि आज नहीं तो कल इनमें सद्बुद्धि पैदा होगी, दलबन्दी का परित्याग कर लक्ष्य के अनुरूप संगठन को बनायेंगे, सम्मेलन की कार्रवाई में योग देते रहे।

लेकिन सन्तों की मनोवृत्ति में सादड़ी-सम्मेलन जैसा परिवर्तन नहीं आया, सो नहीं आया। इसका परिणाम यह हुआ कि भविष्य में श्रमणसंघ कूटनीति का अखाड़ा बना और उद्देश्य तिरोहित हो गया। इस सम्मेलन से समाज को जो आशायें थी, निर्मूल सिद्ध हुईं।

स्वर्णजयन्ती-महोत्सव

इसी अवसर पर श्री अ. भा. श्वे. स्थानकवासी जैन कान्फरन्स का स्वर्णजयन्ती अधिवेशन दि ४, ५, ६ अप्रैल '५६ को श्री विनयचन्दभाई दुर्लभजी जवेरी की अध्यक्षता में किया गया। समारोह का उद्घाटन भारत के तत्कालीन माननीय गृहमन्त्री श्री गोविन्दवल्लभ पंत ने किया। वृहत्साधु-सम्मेलन और यह अधिवेशन होने से देश के कोने-कोने से श्रावक-श्राविकाओं की उपस्थिति आशातीत हुई थी। बीकानेर, गंगाशहर, भीनासर संघों ने सामूहिक रूप से इस अधिवेशन में योग दिया। महिला-सम्मेलन, युवक-सम्मेलन, पत्रकार-परिषद आदि विविध कार्यक्रमों से अधिवेशन में समाज की सभी समस्याओं पर विचार किया गया।

इसी अवसर पर दि. ५-४-५६ को आचार्य श्री आत्मारामजी म. सा. एवं आचार्यश्री गणेशलालजी म. सा. की दीक्षा के ५० वर्ष पूर्ण होने के उपलक्ष्य में दीक्षा-स्वर्णजयन्ती महोत्सव त्याग-प्रत्याख्यान व व्याख्यान आदि के रूप में मनाया गया। उपस्थित मुनिवर्यों, महासतियांजी म. एवं श्रावक-श्राविकाओं ने अपनी-अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए भाव व्यक्त किये थे।

इसी प्रकार से देश के विभिन्न श्रीसंघों ने भी अपने-अपने यहां दीक्षा-स्वर्णजयन्ती मनाई और अपनी-अपनी श्रद्धा व्यक्त की—आपकी साधना हमारा मार्गदर्शक बने।

कान्फरन्स-अधिवेशन का अनोखा प्रस्ताव

श्री अ. भा. श्वे. स्थानकवासी जैन कान्फरन्स के अधिवेशन में राष्ट्र, समाज से सम्बन्धित प्रश्नों पर विचार-विमर्श कर कुछ निर्णय किये गये। उनके साथ ही ध्वनिवधक-यन्त्र के वारे में एक ऐसा प्रस्ताव भी पारित कर दिया, जिसके वारे में वृहत्साधु-सम्मेलन भी अनिश्चयात्मक प्रस्ताव बहुमत के आधार पर पारित कर सका था। प्रस्ताव इस प्रकार है—

> 'वर्तमान युग में बहु जनसंख्या के कारण ध्वनिवर्धक-यन्त्र का उपयोग आवश्यक हो जाता है। इस सम्बन्ध में श्रमणसंघ ने जो प्रस्ताव किया है, वह निम्नानुसार है—
>
> ध्वनिवर्धक यन्त्र में बोलना मुनिधर्म की परम्परा नहीं है। यदि अपवाद में वोलना पड़े तो उसका प्रायश्चित्त लेना होगा। किन्तु स्वच्छन्द रूप से ध्वनिवर्धक यन्त्र का उपयोग नहीं करना चाहिये।
>
> इस प्रस्ताव को लक्ष्य में लेकर जिन संघों को ध्वनि-वर्धक-यन्त्र का प्रबन्ध करना आवश्यक हो, वे कर सकते हैं।'

इस प्रकार के प्रस्ताव से अधिवेशन में उपस्थित बंधुओं में रोष का वातावरण व्याप्त हो गया, क्योंकि यह प्रस्ताव कान्फरन्स के कतिपय नेताओं का था। श्रमणसंघ ने जो प्रस्ताव पास किया, वह भी बहुमत का है और उसमें भी शब्दों का जो संकलन हुआ, उन शब्दों की वास्तविक शास्त्रीय व्याख्या हुए विना ध्वनियन्त्र के लिए श्रावकों को प्रस्ताव करने की कतई आवश्यकता न थी। फिर भी प्रस्ताव घड़कर अनधिकार चेष्टा की, उसका नतीजा अशुद्धता के रूप में तत्काल ही परिलक्षित हो गया। मानो संगठन रूपी महल को छिन्न-भिन्न करने के लिए उसकी ईंट खिसकाना प्रारम्भ कर दिया गया हो। विषय निर्वाचनी समिति में भी मतैक्य नहीं था, फिर भी इस प्रस्ताव को खुले अधिवेशन में स्वीकृत्यर्थ उपस्थित किया गया। प्रस्तावक महोदय ने सोचा होगा कि सम्मेलन में तो बहुमत से प्रस्ताव स्वीकृत हो चुका है अतः यहां तो

व्यक्तिगत प्रभाव से स्वीकृत हो ही जायेगा। लेकिन उपस्थिति में जब रोष का वातावरण बना तो उसका निराकरण करने में स्वयं समर्थ नहीं हो सके और परिस्थिति को शांत करने के लिये मुनि-राजों का सहारा लिया गया। उनके पधारने से विरोध ऊपरी तौर पर शांत हो गया, लेकिन मनों में अस्वस्थ वातावरण की कसक अवश्य ही छोड़ गया। परिणाम यह हुआ कि कान्फरन्स के समस्त समाज के प्रतिनिधित्व रूप को आघात पहुंचा और वह कुछ एक व्यक्तियों की संस्था-मात्र रह गई। इसके कारण श्रमण-संगठन का ढांचा भी लड़खड़ाया और समाज की आशायें भी निर्मूल सिद्ध हुईं।

सम्मेलन और अधिवेशन के पश्चात

भीनासर में चतुर्विध-संघ का जमघट हुआ और समाजोन्नति के लिये योजनाबद्ध कार्य करने के निश्चय भी हुए। लेकिन कार्य के लिये प्रेरक शक्ति के विद्यमान होते हुए भी प्रायः साधुओं में राजनीति-जैसी कुत्सित गुटबंदी के कारण निराशा दृष्टिगोचर होती थी। संक्षेप में कहें तो सभी अनेक आशंकाओं को लिये अपने-अपने क्षेत्रों की ओर जा रहे थे। मनों में एक प्रकार का अन्तर्द्वन्द्व चल रहा था कि आगे क्या होता है ? यह संगठन टिकेगा या नहीं ? किन्हीं-किन्हीं को आशंका थी कि संगठन से पहले जो व्यवस्था थी, वह तो अब नष्टप्रायः है और नया संगठन सबल बनने के पूर्व ही छिन्नभिन्न होता दिखाई देता है। अस्तु अब जो हो चुका है, उसके परिणाम देखने की ही अपने को प्रतीक्षा करना चाहिये।

इसप्रकार की विचारधारा का ही परिणाम था कि श्रमणसंघ के अधिकारी मुनिराजों की ओर से समय-समय पर संगठन के निश्चयों, प्रस्तावों के क्रियान्वित कराने के लिये प्रेरणा तो दी जाती थी और श्रावकों के द्वारा भी संगठन को मजबूत बनाने के लिये बार-बार घोष-णायें होती रहती थीं, लेकिन शक्ति का अपव्यय हो रहा था और समाज की अस्मिता क्षीण होती जा रही थी।

सम्मेलन के पश्चात साधु-सन्तों का विभिन्न क्षेत्रों की ओर विहार हुआ। संगठन की सुदृढ़ता के लिये साधु एवं श्रावकवर्ग यह अनुभव करता था कि विभिन्न सिंघाड़ों के साधु-सन्तों की पारस्परिक अदला-बदली हो और एक-दूसरे के विशेष सम्पर्क में आयें तो संगठन को बल मिल सकता है। पूज्य आचार्य श्रीजी म. सा. भी स्वयं इस बात को फरमाते थे कि श्रमणसंघ को सबल बनाने एवं उसमें आगत विकृतियों का उन्मूलन करने के लिये एक-दूसरे सिंघाड़े के सन्तों को एक-दूसरे सिंघाड़े के साथ रखना आवश्यक है। इस बात को सम्मेलन की विचारणीय विषयसूची में भी रखा गया और सन्तों ने इसके लिये काफी विचार-विमर्श कर उपयोगी माना और तदनुकूल कार्य करने की भावना भी व्यक्त की थी। लेकिन हृदय की दुर्बलता या मन-वचन-काया की अन्यथा प्रवृत्ति के कारण यह विचार मूर्तरूप नहीं ले सका। इतना प्रबल शिष्यमोह परिलक्षित हुआ कि विरागी और रागी में भेद करना भी कठिन-सा दिखता था।

आचार्य श्रीजी द्वारा निर्णयों का कार्यान्वयन

आचार्य श्रीजी श्रमणसंघ को अखण्ड, एक, सुदृढ़ संगठन के रूप में देखना चाहते थे और इसके लिये जो उचित समझते थे, सदैव करने के लिये उत्सुक थे। सम्मेलन में तो एक-दूसरे के सन्तों की अदला-बदली का निर्णय अभी हुआ था किन्तु सादड़ी-सम्मेलन के समय से ही आचार्य श्रीजी ने इस परम्परा का सूत्रपात कर दिया था। सह-मन्त्री मुनिश्री प्यारचन्दजी म. सा. आदि का अपने साथ ही उदयपुर में चातुर्मास कराया था और अपने सन्तों को दूसरे-दूसरे सिंघाड़ों में रहने की अनुमति प्रदान की थी।

संयुक्त चातुर्मास के समय स्थविरपद विभूषित मुनिश्री पूरणमलजी म. सा. जोधपुर में स्थिरावास में विराजमान थे। आपके साथ एक शिष्य था जो साथ रहने के लिये तैयार नहीं था और उचित वैयावृत्ति करने में भी प्रमाद कर देता था। यह स्थिति मुनिश्री पूरण-

मलजी म. ने आचार्य श्री एवं उपस्थित अन्य सन्तों के समक्ष रखी और कहा कि संयम-साधना के अनुकूल मेरी व्यवस्था करा दी जाये, जिससे मेरी आत्म-साधना में व्यवधान न आये। यहां विराजित शास्त्रज्ञ मुनिश्री समर्थमलजी म. के समक्ष भी यही संकेत किया है तो कहते हैं कि श्रमणसंघ छोड़ो तो मैं सन्त दूं। यद्यपि श्रमणसंघ में अभी कई बातें सन्तोषकारक नहीं हैं और आपश्री उनके उचित समाधान के लिये प्रयत्नशील हैं। मैं भी उनके समाधान में अपना योग देने के तैयार हूँ। लेकिन श्रमणसंघ में मेरी योग्य व्यवस्था न हो सकी और साधना में व्याघात आया तो आत्महित और इतने समय की संयम-साधना के फलितार्थ को पूर्ण करने के लिये श्रमणसंघ को छोड़ने के लिये भी मुझे विवश होना पड़ेगा।

आचार्य श्रीजी म. सा. ने इस स्थिति को समझा। इस चातुर्मास काल में श्रमणसघ के तत्कालीन प्रधानमन्त्री मुनिश्री आनन्दऋषिजी म. सा. भी साथ में थे। उनसे आपश्री ने कहा कि मुनिश्री पूरणमलजी म. की स्थिति की व्यवस्था करना अपना कर्तव्य है। एक सन्त आप दीजिये और एक सन्त मैं दूं, जिससे इनकी सेवा भी हो और आत्म-साधना में किसी प्रकार का व्यवधान न आये। लेकिन प्रधानमन्त्री म. ने इस उचित कार्य के लिये अपनी अनिच्छा व्यक्त की और सन्त देने से इन्कार कर दिया।

आचार्य श्रीजी म. सा. ने श्री हस्तीमलजी म. सा. आदि के समक्ष भी इसी प्रकार का प्रस्ताव रखा, लेकिन कोई भी अपने शिष्य को सेवा में रखना नहीं चाहते थे। सभी को परखा लेकिन किसी में भी इस बात के लिये विवेक जागृत नहीं हुआ। अन्त में आचार्य श्रीजी म. सा. ने अपने दो प्रमुख शिष्यों— कर्मठ सेवाभावी, शांत, दांत मुनिश्री करणीदानजी म. सा. एवं नवदीक्षित सरलस्वभावी मुनिश्री घेवरचन्दजी म. सा.— को मुनिश्री पूरणमलजी म. सा. की सेवा के लिये दिया।

इन दोनों मुनिवरों ने पूर्ण मनोयोग और तत्परता से वयोवृद्ध

मुनिश्री पूरणमलजी म. सा. की वैयावच्च की और समाधिमरण को सफल बनाया । इसका प्रभाव जोधपुर श्रीसंघ पर तो पड़ा ही, लेकिन समस्त श्रावकसंघों को भी सोचने का मौका मिला कि योग्य गुरु के सुयोग्य शिष्यों ने गुरु-परम्परा, श्रमणधर्म के गौरव को द्विगुणित किया है । साथ ही यह भी स्पष्ट हो गया कि श्रमणसंघ का संगठन सिर्फ कागजों में लिखा रहने वाला है । उसमें रहने वाले मुनिवरों में न तो एक दूसरे के प्रति किंचिन्मात्र भी सहयोग की भावना है और न अपने दायरे के आगे बढ़ने के लिये तैयार हैं । केवल ऊपर-ऊपर की चिकनी-चुपड़ी बातें हो रही हैं ।

आचार्य श्रीजी म. सा. का लक्ष्य था कि जब हमने आत्म-साक्षीपूर्वक निर्णयों को स्वीकार किया है तो तदनुकूल कार्य करने के लिये भी उतना ही साहस दिखाना चाहिये । इसके लिये दूसरे क्या सोचते हैं और क्या करते है, यह हमें विचारने का नहीं है, किन्तु कार्यान्वित करने की ओर अपना लक्ष्य होना चाहिये । इसीलिये आचार्य श्रीजी ने उसे अपने जीवनकाल में साकार रूप दिया ।

पूरणबाबा के उद्गार

वयोवृद्ध मुनिश्री पूरणमलजी म. सा. जिन्हें श्रद्धा और आत्मीयता से चतुर्विध संघ पूरणबाबा के नाम से सम्मानित करता था, को योग्य व्यवस्था हो जाने से पूर्ण सन्तोष हुआ और आत्महित में तल्लीन रहने लगे । जप-तप में समय का सदुपयोग होने से मानसिक उत्साह में एक अनोखापन दृष्टिगत होता था । अपनी साधना में सहायक आचार्य श्रीजी के गुण-गान करते हुए उच्च स्वर में घोष करते थे कि मेरा अन्त समय सुधर गया । जीवन भर की साधना का सुफल प्राप्त कराने वाले महापुरुष को वारंवार वन्दना है । मुझे तो गणेशनारायण ने सुखी और शल्यरहित बना दिया है ।

अनुशासन के सजग प्रहरी

सम्मेलन की समाप्ति के पश्चात् आचार्य श्रीजी म. सा. ग्रामानु-

ग्राम विचरण करते हुए और सम्मेलन की कार्रवाई की चतुर्विध संघ को जानकारी देते हुए सं० २०१३ के चातुर्मासार्थ गोगोलाव पधारे। गोगोलाव में अधिकतर कांकरिया परिवार की गृहसंख्या है। इस परिवार की श्रमणधर्म के प्रति निष्ठा और चारित्रवान क्रियापात्र सन्तों के प्रति श्रद्धाभक्ति अपूर्व है। इसी परिवार की विशेष भक्ति और चातुर्मास के लिये अनेक वर्षों से होने वाली प्रार्थना के फलस्वरूप सं० २०१३ का चातुर्मास गोगोलाव होने का अवसर आया था। गांव छोटा-सा है किन्तु आचार्य श्रीजी के विराजने से विशाल नगर का रूप धारण कर लिया था। देश के कोने-कोने से प्रतिदिन आने वाले हजारों दर्शनार्थियों का अपूर्व जमघट लगा रहता था।

भीनासर सम्मेलन के पश्चात आचार्य श्रीजी ने अपने दो सन्तों—प. र. मुनिश्री सिरेमलजी म. एवं मुनिश्री आईदानजी म. को उपाध्याय मुनिश्री अमरचन्दजी म. सा. के साथ कुचेरा चातुर्मास में साथ रखा। जिससे सम्मेलन के आशय को सबल बनाने तथा उद्देश्य को सिद्ध करने में सफलता मिले।

मुनिश्री आईदानजी म. सम्मेलन की कार्रवाई को अंकित करते थे। उन्हें सम्मेलन में हुए विचार-विमर्श की पूर्ण जानकारी थी। चतुर्विध संघ के जानने योग्य कार्रवाई को तो प्रकाशित कर दिया गया था और साधु-साध्वी वर्ग से सम्बन्धित निर्णयों को प्रकाशित नहीं करने का निश्चय किया गया था। परन्तु मुनिश्री आईदानजी म. ने उस विवरण को कुछ मुनियों पर आक्षेप लगाते हुए और शास्त्रीय मर्यादाओं के विपरीत बातों का समावेश करते हुए 'श्रमण' में लेख प्रकाशित करवाया। मुनिश्री सुरेशमुनिजी ने भी 'महान चुनौती' नामक पुस्तक लिखकर श्रमणसंघ पर आक्षेप लगाये।

इस अतिशयोक्तिपूर्ण लेख और पुस्तक से समाज में कटुता का वातावरण व्याप्त हो गया और कई अधिकारी मुनिवरों ने आचार्य श्रीजी म. सा. की सेवा में लिखवाया कि सन्तों की इस प्रकार की अन-

धिकार चेष्टा से समाज में दूषित वातावरण बन रहा है तथा अनुशासन की दृष्टि से भी यह कार्य अयोग्य है।

आचार्य श्रीजी ने उक्त लेख का अवलोकन किया और श्रमण-संघीय चारों उपाध्याय— १. मुनिश्री आनन्दऋषिजी म. सा., २. मुनिश्री प्यारचन्दजी म. सा., ३. कवि मुनिश्री अमरचन्दजी म. सा., ४. मुनिश्री हस्तीमलजी म. सा.— को सन्देश भिजवाया कि श्री आईदानजी का जो लेख प्रकाशित हुआ है, उसमें कौन-कौनसी बातें अनुचित हैं और उनका सुधार करना व लेखक मुनिवरों को सावधानी दिलाना सम्मेलन में किये गये निर्णयानुसार उपाध्याय-मण्डल का अधिकार है। अतः इस विषय पर योग्य कार्रवाई करने के बारे में जानकारी करावें।

उपाध्याय मुनिश्री अमरचन्दजी म. को विशेष रूप से यह भी लिखाया गया था कि मुनिश्री आईदानजी आपके पास हैं। अतः आप उनसे सभी जानकारी कर योग्य कार्रवाई करने के बारे में सूचित करें। जिससे दूषित वातावरण शांत हो सके।

इस सन्देश के प्रत्युत्तर में उपाध्याय श्री अमरचन्दजी म. के अतिरिक्त अन्य तीनों उपाध्याय मुनियों ने लेख के अनुचित अंशों का संकेत किया किन्तु उपाध्याय श्री अमरचन्दजी म. की ओर से सन्तोष-जनक उत्तर नहीं आया और न अनुचित अंश के बारे में भी संकेत मिला। इस पर पुनः उनको स्पष्ट उत्तर देने के लिये सूचना भिजवाई। लेकिन कोई उत्तर नहीं मिला।

इसी चातुर्मास काल के बीच दि. २०, २१ अक्टूबर ५६ को लुधियाना में श्री अ. भा. श्वे. स्थानकवासी जैन कान्फरन्स की जनरल कमेटी की बैठक अध्यक्ष श्री विनयचन्दभाई जवेरी की अध्यक्षता में हुई। उस समय भी इसके बारे में काफी ऊहापोह हुआ। जिसका समाधान करने और स्थिति को स्पष्ट करने के लिये अध्यक्ष महोदय की ओर से निम्नलिखित प्रस्तावात्मक स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया गया—

पं. मुनिश्री आईदानजी म. ने 'श्रमण' मासिक में तथा पं. मुनि श्री

सुरेशचन्दजी म. ने 'महान चुनौती' नामक पुस्तिका में जो विचार प्रगट किये हैं, उनको पढ़कर श्रमणसंघ और श्रावकसघ को हार्दिक खेद हुआ है। यह जनरल कमेटी भी दुखानुभव कर रही है। पूज्य उपाचार्य जी म. सा. से व उपाध्याय श्री अमरचन्दजी म. सा. से प्रार्थना करती है कि उन्हें यथाशीघ्र प्रायश्चित्त देने की कृपा कर चतुर्विध श्रीसघ को संतुष्ट करें, अन्यथा इसके विरोध की भावना बढेगी ऐसा अनुभव किया जा रहा है। भविष्य में स्थानकवासी जैन समाज की धार्मिक भावना को ठेस पहुंचे ऐसी लेखन-प्रवृत्ति न करने की श्री श्रमणसंघ के पूज्य मुनिवर्यों से प्रार्थना है।'

पूज्य आचार्य श्रीजी म. सा. मुनिश्री आईदानजी म. की उक्त अन्यथा प्रवृत्ति को उचित नहीं मानते थे और सम्बन्धित कार्य के लिये कार्रवाई करने का विचार भी कर चुके थे।

चातुर्मास-समाप्ति के पश्चात आचार्य श्रीजी म. सा. आदि सन्तों ने गोगोलाव से विहार किया। रास्ते में वासनी गांव में जहां अधिकतर मुसलमानों की बस्ती है, हिन्दुओं की बहुत ही कम, आचार्य श्रीजी म. आदि सन्तों को देखकर मुसलमान भाई हंसी-मजाक उड़ाने लगे। लेकिन जब उस गांव में बाजार के बीच आचार्य श्रीजी म. सा. का प्रवचन हुआ तो सुनकर वे अवाक रह गये और उन मुसलमान भाइयों के दिलों में जैन मुनियों के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हो गई और सोचा कि महात्मा लोग प्रत्येक मानव के लिए हितकारी हैं। मुसलमान भाइयों ने मिलकर आचार्य श्रीजी के चरणों में प्रार्थना की कि आप हमारी मसजिद में व्याख्यान दें। इधर अन्य लोगों ने निवेदन किया कि व्याख्यान ऐसे स्थान पर होना चाहिए जहां सब लोग लाभ ले सकें। अतः मसजिद के निकट ही सड़क पर व्याख्यान हुआ। व्याख्यान के पश्चात मुसलमान भाइयों के मुंह से ऐसा सुना गया—ये महात्मा हमारे मौलवी सा. व पीर सा. हैं। अधिक दिन विराजना चाहिये। लेकिन वहां निरामिष भोजी व्यक्तियों के घर बहुत कम होने से आहार-पानी का

संयोग बैठना कठिन था तथा आगे भी बढ़ना था अतः अधिक न विराजे और वहां से विहारकर आचार्य श्रीजी म. सा. कडलू ग्राम के निकट पधारे । उधर मुनिश्री आईदानजी म. और पं. मुनिश्री सिरेमलजी म. ने भी आचार्य श्रीजी के दर्शनार्थ कुचेरा से विहार किया । उपाध्याय श्री प्यारचन्दजी म. सा. ने भी अपनी शिष्यमण्डली सहित नागौर से कडलू की ओर विहार किया । यथासमय सन्तमण्डल का कडलू ग्राम में पदार्पण हुआ । जब आचार्य श्रीजी म. सा. कडलू ग्राम से एक मंजिल दूर विराज रहे थे तब पं. मुनिश्री सिरेमलजी म. व मुनिश्री आईदानजी म. कडलू से विहार कर आचार्य श्रीजी की सेवा में उपस्थित हुए ।

आचार्य श्रीजी म. सा. ने मुनिश्री आईदानजी म. से पूछा कि आपने जो लेख श्रमण में लिखा है, उसके बारे में बहुत-सी शिकायतें आ रही हैं । ऐसे लेख विसंवाद बढ़ाने वाले होते हैं, सो आपने ऐसा लेख क्यों लिखा ? मैंने पहले भी आपको मना कर दिया था कि कोई भी लेख शास्त्रमर्यादा और श्रमणसंघ की मर्यादा के विपरीत नहीं लिखना । इसको आपने स्वीकार करते हुए कहा था कि मैं ऐसा कोई भी विचार व्यक्त नहीं करूंगा या नही लिखूंगा जिससे श्रमणसंघ की मर्यादाओं को ठेस पहुंचे । लेकिन आपने ध्यान नहीं रखा । अतः इस भूल का प्रायश्चित्त लो और भविष्य में पुनः भूल को न दुहराने का दृढ़ संकल्प कर लो ।

आचार्य श्रीजी म. सा. की इस सरल, सीधी-सादी बात को मानने के लिये मुनिश्री आईदानजी म. तैयार न हुए और अपने पक्ष के समर्थन और बचाव के लिये कहा कि समाज के अन्दर कई एक ऐसी प्रवृत्तियां हो रही हैं, जिनका श्रमणसंघीय दृष्टि से अधिकारी मुनिराजों को परिमार्जन करना चाहिये, लेकिन वे ऐसा नहीं कर रहे हैं । अतः आपश्री गुरु-शिष्य के सम्बन्ध से जो भी दंड, प्रायश्चित्त, आदेश आदि देंगे, उसे अंगीकार करने को तैयार हूँ किन्तु श्रमणसंघ के सर्वोच्च अधिकारी के नाते दिये गये आदेश शिरोधार्य नहीं होंगे ।

आचार्य श्रीजी म. सा. ने प्रत्युत्तर में भाव व्यक्त किये कि मैं

अभी श्रमणसंघ में हूँ और श्रमणसंघ का उत्तरदायित्व भी मुझ पर है। अतः सरलता के साथ श्रमणसंघीय नियमों का पालन करूंगा। अन्य अधिकारी सन्त क्या, कैसा, कुछ कर रहे हैं और क्या नहीं कर रहे हैं, आदि बातें जब प्रमाण सहित मेरे समक्ष आयेंगी तो उनसे भी यथा-योग्य, यथास्थान शुद्धिकरण कराने की भावना रखता हूँ। अतः उनका उदाहरण देकर अपनी गलती को छिपाने में लाभ नहीं है।

यह तो आपको मालूम ही है कि भीनासर-सम्मेलन में हम-आप सभी ने निर्णय किया है— "नियमभंग का सब साधु-साध्वियों को दंड लेना होगा। यदि कोई कहेगा कि मैं दण्ड नहीं लूंगा या वह दण्ड नहीं लेगा तो उसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं रहेगा।" इस धारा के अनुसार यदि आप प्रायश्चित्त लेकर शुद्धि नहीं कर लेते हैं तो संबंध कैसे रह सकता है ?

पं. मुनिश्री सिरेमलजी म. ने भी मुनिश्री आईदानजी म. को समझाया कि या तो आप अपनी सम्पूर्ण स्थिति पूज्यश्री को समझाओ और अपने भाव स्पष्ट करो, अन्यथा विधानानुसार प्रायश्चित्त लो। लेकिन मुनिश्री आईदानजी म. ने न तो प्रायश्चित्त लेने की भावना व्यक्त की और न पूज्यश्री का समाधान ही किया। आचार्यश्रीजी ने एकान्त में बैठकर सोच-विचार करने का मौका भी दिया, किन्तु उनके परिणामों में सरलता नहीं आई। अन्त में आचायश्रीजी म. सा. को मुनिश्री आईदानजी म. से सम्बन्ध-विच्छेद करने का निर्णय लेना पड़ा। मुनिश्री आईदानजी म. एकाकी विहार कर वापस कडलू पहुंचे। वहां पर उपाध्याय मुनिश्री प्यारचन्दजी म. सा. ने काफी सम-झाया और स्थिति की गम्भीरता का भी दिग्दर्शन कराया, लेकिन उनके सत्परामर्श की अवहेलना कर वहां से भी अकेले चले गये।

निर्णय की सराहना

दूसरे दिन विहार कर आचार्यश्रीजी म. स. ने कडलू ग्राम में पदार्पण किया तो उपाध्याय मुनिश्री प्यारचन्दजी म. सा. आदि सन्त

अपना सम्मान व्यक्त करने के लिये अगवानी हेतु सामने पधारे और वापस ग्राम में आये। सन्तों का यह सम्मिलन एक अनोखी छटा बिखेर रहा था। ग्रामनिवासियों में सन्तों के पधारने से अपूर्व उत्साह था और अपने आपको धन्य मान रहे थे। इन्हीं दिनों कान्फरन्स के अध्यक्ष श्री विनयचन्दभाई, श्री कानमलजी नाहटा आदि २०-२५ अग्रणी श्रावक आचार्यश्रीजी के दर्शनार्थ उपस्थित हुए।

प्रासंगिक प्रवचन-श्रवण के पश्चात श्रमणसंघ की स्थिति, शिथिलाचार आदि के बारे में श्रावकों ने चर्चा प्रारम्भ की तो पूज्यश्री ने प्रसंगोपात्त फरमाया— समाज की स्थिति बड़ी विचित्र हो रही है। कई अधिकारी सन्त अपने द्वारा ही स्वीकृत श्रमणसंघीय नियमोपनियमों की उपेक्षा कर रहे हैं। जिससे संगठन में शिथिलता और स्वच्छन्दता को बढ़ावा मिल रहा है। यही कारण है कि कल मैंने मुनि आईदानजी को नियमविरुद्ध प्रवृत्ति के लिये प्रायश्चित्त लेने का संकेत किया था, लेकिन उनके ऐसा न करने पर मैंने सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया है। वे मेरे शिष्य थे, लेकिन मैं आत्मसाक्षी पूर्वक नियमोपनियमों का स्वयं भी पालन करने के लिये बद्ध हूँ और दूसरों को भी इसी प्रकार पालन करते देखना चाहता हूँ।

आचार्य श्रीजी म. सा. के इन उद्‌गारों का अभिनन्दन करते हुए उपाध्याय मुनिश्री प्यारचन्दजी म. सा. ने कहा कि आपश्री जैसे महापुरुष ही समाज-सुधार और संघ-संगठन को सुदृढ़ बनाने में सफल हो सकते हैं। आपने सर्वप्रथम अपने शिष्य के प्रति सुधार के लिये प्रयोग कर एक आदर्श उपस्थित किया है। इससे आपश्री के प्रति हमारी श्रद्धा सुदृढ़ हुई है। हमारा विश्वास है कि संगठन का उद्देश्य और समाज का भविष्य दिनोंदिन सफल होगा।

उपस्थित अग्रणी सज्जनों ने भी आचार्य श्रीजी के निर्णय की भूरि-भूरि प्रशंसा की और उसे उचित माना तथा हृदयोद्‌गार व्यक्त करते हुए निवेदन किया कि जिनके मन में सुधार की सच्ची भावना

होती है, वे अपने-पराये के भेद से ऊपर उठकर सबसे पहले सुधार का प्रयोग अपने या अपने परिकर से प्रारम्भ करते हैं। आपश्री के निर्णय का समाज पर गम्भीर प्रभाव पड़ेगा। ऐसे स्वच्छन्द व्यक्ति समाज में रहें भी तो कोई लाभ नहीं और इसके लिये परवाह करने की आवश्यकता अनुभव नहीं होती है।

इसके अतिरिक्त अन्यान्य समाजस्पर्शी प्रश्नों पर भी गंभीरता के साथ विचारों का आदान प्रदान हुआ। जिसका विवरण यथास्थान दिया जायेगा। मांगलिक-श्रवण करने के पश्चात प्रमुख श्रावक अपने-अपने स्थानों को रवाना हो गये।

उपाध्यायजी का आत्मनिवेदन

कडलू में उपाध्याय पं. र. मुनिश्री प्यारचन्द जी म. ने आचार्य श्रीजी म सा. से मालवा की ओर विहार करने की अनुमति चाही और साथ ही अर्ज की कि मुझे मालवा में अन्यान्य सन्त-सतियां मिलेंगे, उनके लिये आपश्री का क्या आदेश है? आचार्य श्रीजी ने फरमाया कि श्रमणसघ के नियमोपनियमों का पूरी तरह से पालन होना चाहिये। इस बात का ध्यान आप मिलने वाले प्रत्येक सन्त को दिला दें। यदि किसी भी नियमोपनियम के भग होने की बात सुनी तो अब सहन करने की स्थिति में नहीं हूँ। क्योंकि पूर्व में तो सम्प्रदाय विभिन्न थे अतः सुनकर चुप रह जाता था, किन्तु अब हम सब एक हो गये हैं, इसलिये किसी के द्वारा किसी भी सन्त तथा सती के विषय में नियमोपनियम भंग होने की बात सुनी गई तो फिर वही स्थिति होगी जो आईदानजी के साथ बरती गई। इस पर उपाध्याय श्रीजी ने बड़े हर्ष के साथ फरमाया—आपश्री ने जो आदेश फरमाया, वह आपश्री के महत्त्वपूर्ण पद के अनुरूप ही है। इस आदेश को मैं आपश्री के आदेशानुसार प्रसारित करता हुआ विचरण करने का भाव रखता हूँ।

एकदिन बडलू गांव में जब आचार्य श्रीजी म. सा. बाहर जगल गये, उस समय एकान्त के प्रसंग से उपाध्याय श्रीजी म. सा. ने

दिल खोलकर अपनी बात आचार्य श्रीजी के सन्मुख रखी कि श्रमणसंघ बनने के पहले मैं बहुत भ्रम में था और सोचता था कि आचार्य श्रीजी म. सा. अपने शिष्यों का बचाव करते हैं और अन्य को बदनाम करते हैं। इसी प्रकार की और भी कई भ्रान्तियां हमारे मस्तिष्क में घूम रही थीं। लेकिन अब मैं देखता हूँ कि यह सब हमारे भ्रम के कारण हुआ। उदयपुर चातुर्मास के बाद आज तक की प्रवृत्ति से बिल्कुल स्पष्ट हो गया है कि आपश्री की वृत्ति अपने-पराये के भेद से ऊपर उठकर शुद्ध साधुवृत्ति को देखने की है। किसी को दबाने की या किसी को बदनाम करने की भावना आपके अन्तःकरण में जरा भी नहीं है। शुद्ध स्फटिक के समान आपश्री के हृदय का हमने निकट से दर्शन किया है।

कडलू से विहार कर आचार्य श्रीजी म. सा. आदि सन्त मेड़तारोड पधारे और एक धर्मशाला में विश्राम किया। उसी धर्मशाला में एक मूर्तिपूजक संप्रदाय के सन्त भी विराज रहे थे। सायंकाल प्रतिक्रमण के पश्चात वे आचार्य श्रीजी म. सा. के पास तत्त्व-चर्चा के उद्देश्य से आये। प्रासंगिक रूप में संवत्सरी विषयक चर्चा-वार्ता भी हुई और कई प्रश्न पूछे तथा ४९, ५० वे दिन ही संवत्सरी क्यों करना चाहिए— इस विषय में भी जानकारी चाही। आचार्य श्रीजी म. सा. ने विशद विवेचना करते हुए आगमिक दृष्टि से उन सब प्रश्नों का समाधान किया और फरमाया कि वर्तमान में श्रमणसंघ ने जो संवत्सरी विषयक प्रस्ताव स्वीकार किया, वह प्रेम और एकता की दृष्टि से है। क्योंकि श्रमणसंघ निर्ग्रन्थ श्रमणसंस्कृति के आधारभूत पंचमहाव्रतों की सुरक्षा के साथ सामाजिक एकता को भी महत्त्व देता है और समन्वयात्मक एकसूत्र में आबद्ध होने में जैन समाज की भलाई मानता है और इसी दृष्टिकोण को लक्ष्य में रखते हुए उक्त निर्णय किया गया है।

आचार्य श्रीजी के सप्रमाण समाधान और समाज के विशाल-हितों के प्रति जागरूकता के दर्शन कर उक्त सन्तश्री ने अपनी हार्दिक

प्रसन्नता व्यक्त की और बोले— इसप्रकार के स्पष्ट समाधान को आज मैं प्रथमवार ही सुन रहा हूँ। विभिन्न विचारकों के विचारों को जानने का अवसर भी मिला, लेकिन इतनी स्पष्टता से किसी ने समाधान नहीं किया है। ऐसे महापुरुष की सेवा को छोड़कर मुनि आईदानजी चले गये। इसको उनका दुर्भाग्य ही समझना चाहिये।

इस पर उनसे पूछा कि आप आईदानजी को कैसे जानते हैं? प्रत्युत्तर में संतश्री ने कहा कि कुछ दिन पहले आईदानजी यहां आये थे और इसी धर्मशाला में ठहरे थे। वार्तालाप के प्रसंग में मालूम हुआ कि वे आपके सभोग में नहीं हैं। श्रमणसंघ विषयक बातचीत भी हुई तो बोले— श्रमणसंघ में है क्या, सिर्फ ऊपरी दिखावा है। अभी मैं उपाध्याय मुनिश्री अमरचन्दजी म. की सेवा में जयपुर जा रहा हूँ और श्रमणसंघ को तहस-नहस कर देंगे, आदि।

आचार्य श्रीजी म. ने उक्त बातों को सुन लिया किन्तु किसी प्रकार की टीका-टिप्पणी न करते हुए फरमाया कि जिसको जैसा अनुकूल प्रतीत हो, वैसा सोचे। ऐसे राग-द्वेष पूर्ण वातावरण से साधु-संतों को दूर रहना ही शोभा देता है।

विघटन का पहला कारण

संयम के प्रति उदासीनता अथवा स्वेच्छाचार साधु-मर्यादा के लिये घुन है। लेकिन जब साधुओं द्वारा ही अपने पद के विपरीत प्रवृत्तियां प्रारम्भ हो जाती हैं तो उद्देश्य की सफलता के लिये आशा करना व्यर्थ है।

यद्यपि सादड़ी में बृहत्साधु-सम्मेलन होने के पश्चात् सभी संप्रदायों के साधु-सन्त एक बड़े सगठन में आबद्ध जरूर हो गये थे, लेकिन अधिकांश की वृत्तियां पूर्ववत चल रही थीं और उनमें से कितनेक साधुवेशधारियों का यह कार्य बड़ी चतुराई से गुप्तरूप में चल रहा था कि पता लगना ही दुसाध्य था। लेकिन यह निश्चित है कि कलंक स्वयमेव प्रगट हो जाता है।

भीनासर-सम्मेलन की समाप्ति के पश्चात राजस्थान के विभिन्न क्षेत्रों में साधु-सन्तों के चातुर्मास हो रहे थे । इस शुभावसर से आशा थी कि श्रमणसंघ के निश्चय क्रियान्वित होकर संगठन को बलशाली बनायेंगे । समाज की यह आकांक्षा उचित भी थी कि पाली में शिथिलाचार के कुत्सित कांड का भण्डाफोड़ हुआ ।

संवत २०१३ में कतिपय साधुवेशधारियों का पाली में चातुर्मास हुआ । उनमें प्रमुख नाम वड़े मुनि रूपचन्दजी का है और इनसे सम्बन्धित पूर्णचन्द आदि तीन मुनि, दो साध्वियां, हीरामुनि एवं मरुधर-केसरी के पास रहने वाला दूसरा रूपचन्दजी आदि प्रगट रूप में थे और अप्रगटरूप में इस दल से सम्बन्धित अन्य भी कई मुनि थे । जिनका सम्बन्ध पंजाब तक पहुंच चुका था । इनके पापाचार की लीलायें सीमा लांघ चुकी थीं कि अक्टूबर ५६ में इसका भण्डा फूटा । इनके द्वारा किये गये पत्रव्यवहार तथा साजसमान को देखकर समाज में रोष की लहर व्याप्त हो गई । समाज का प्रत्येक सदस्य ऐसे घृणित कांड को जानकर लज्जित हुआ और इन छद्मवेशियों का साधुवेश छीनकर दण्डित करने की जोरदार मांग होने लगी । समाज का रोष दिनोंदिन उग्र होता जा रहा था और चाहता था कि ऐसे अनाचारियों से समाज को शीघ्र ही मुक्ति मिले ।

समाज के अग्रणी सज्जनों ने पाली जाकर इस कांड से संबंधित सभी पत्रों, पास में मिले समान आदि की सूची बनाकर तथा सम्बन्धित व्यक्तियों की साक्षी लेकर विवरण तैयार किया । इस विवरण को श्री अ. भा. श्वे. स्थानकवासी जैन कान्फरन्स के अध्यक्ष आदि पदाधिकारियों और आचार्य श्रीजी म. सा. की सेवा में निर्णय के लिये प्रेषित किया तथा कान्फरन्स की ओर से आचार्य श्रीजी म. सा. की सेवा में इस कांड से सम्बन्धित वेशधारी व्यक्तियों का निर्णय करने का निवेदन किया गया ।

आचार्य श्रीजी म. सा. ने इस कांड के समस्त विवरण को

देखा और गम्भीरता को समझा। इस कलंक से श्रमणसंघ को बचाने के लिये आवश्यक था कि दोषी व्यक्तियों को दोष के अनुसार दण्ड दिया जाये। आचार्य श्रीजी म. सा. जब कडलू से ग्रामानुग्राम विहार कर थांवला-पी ग्राम की ओर बढ़ रहे थे तब उससे पहले उपाध्याय मुनिश्री हस्तीमलजी म. आकर मिले और पाली में घटित कांड के बारे में विचारविनिमय हुआ।

आचार्य श्रीजी म. सा. ने परिस्थिति की गम्भीरता को स्पष्ट करते हुए उपाध्यायश्री से कहा कि आपके पहले भी समाचार थे कि शिथिलाचार का उन्मूलन होना चाहिये और श्रमणसंघ सुव्यवस्थित हो। इस सम्बन्ध में आपने कुछ सुझाव भी दिये थे। साथ ही यह भाव भी दर्शाये थे कि यदि सुव्यवस्था न बनी तो मैं ऐच्छिक संभोग रखना चाहूँगा। दूसरे पत्र में यह भी लिखाया था कि श्रमण-सघ की उचित व्यवस्था नहीं बनती है तो मैं उपाध्याय पद पर रहने को भी तैयार नहीं हूँ। स्थिति को देखते हुए आपके विचार ठीक हैं। मैं भी इस प्रकार की प्रवृत्ति और अव्यवस्था को उचित नहीं मानता हूँ और चाहता हूँ कि हम स्थिति को सुधारने के प्रयत्न करें। प्रयत्न करने पर भी यदि व्यवस्था न बन सके तो अन्य मार्ग को सोचना उपयुक्त रहेगा। फिलहाल अपने को स्थिति के सम्भालने का प्रयत्न करना ही चाहिये। इन्हीं विचारों को दृष्टि में रखते हुए मैंने आपको पहले सन्देश भिजवाया था।

आपका यहां पधारना हो गया, यह अच्छा ही रहा। एक बात और सोचने की है कि यहां से विहार कर पी की ओर चल रहे हैं तो वहां मरुधरकेसरी मिश्रीमलजी व उनके साथ पालीकाण्ड से सम्बन्धित एक सूत्रधार श्री रूपचन्दजी भी मिलेंगे। संभव है अगवानी के लिये वे सामने भी आयें तो उनके साथ अपने को कैसा सांभोगिक व्यवहार रखना चाहिये ?

उपाध्यायजी ने प्रत्युत्तर दिया कि रूपचन्दजी ने घृणित कार्य

किया है, अतः उनसे किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रखा जा सकता है और यदि मरुधरकेशरीजी ने भी उनसे संभोग विच्छेद नहीं किया है तो उनके साथ भी सम्बन्ध नहीं रहेगा। यह शास्त्रीय मर्यादा है कि दोषी और उससे सम्बन्धित व्यक्तियों से संभोग सम्बन्ध विच्छेद होना चाहिये।

आचार्य श्रीजी म. सा. को उपाध्याय श्री हस्तीमलजी म. सा. का उक्त सुझाव उचित जंचा और कहा कि आप साथ के सभी सन्तों को सम्बन्धित जानकारी करा देवें। सायंकाल प्रतिक्रमण समाप्ति के पश्चात उपाध्यायश्री ने अपने निर्णय की जानकारी सन्तों को करा दी।

तत्पश्चात् उपाध्यायश्री आदि सन्तों सहित आचार्य श्रीजी म. सा. पी ग्राम में पधारे। अगवानी के लिये मरुधरकेशरीजी सामने भी आये किन्तु आदेशानुसार सन्तों ने उनके साथ वंदनाव्यवहार आदि नहीं रखा और स्पष्टता की प्रतीक्षा करते हुए स्थानक में पदार्पण किया। स्थानक के द्वार पर ही उपस्थित दर्शनार्थियों को मांगलिक श्रवण करा दिया और व्यवस्थित जानकारी के लिये मरुधरकेशरीजी को बुलाया गया। उनसे श्री रूपचन्दजी के साथ के सम्बन्ध की बात को सुनकर उपाध्याय श्री हस्तीमलजी म. सा. ने कहा कि आपके सम्बन्ध-विच्छेद न करने की बात सुनी थी लेकिन अब स्वयं आपके द्वारा भी इसकी पुष्टि हो चुकी है, अतः अगर आप रूपचन्दजी से सम्बन्ध-विच्छेद कर लेते हैं और अपनी स्थिति स्पष्ट कर देते हैं तो सम्बन्ध बने रहेंगे अन्यथा आपके साथ भी सम्बन्ध नहीं रहेगा। लेकिन इसके लिये मरुधरकेशरीजी तैयार नहीं हुए। अतः उनके साथ सम्बन्ध-विच्छेद कर दिया गया।

इस निश्चय से मरुधरकेशरीजी को अपनी स्थिति का भान हुआ और चर्चा-विचारणा के पश्चात श्री रूपचन्दजी आलोचना सुनाने के लिये तैयार भी हुए। लेकिन उस आलोचना में सरलता और स्पष्टता का अभाव था। इस स्थिति में आचार्य श्रीजी म. सा. व उपाध्याय श्री हस्तीमलजी म. सा. ने निश्चय किया कि अधूरी अस्पष्ट आलोचना

चतुर्विध संघ को लाभदायक नहीं है और न स्वयं रूपचन्दजी के लिये हितकर है। अतः जबतक शुद्ध हृदय से आलोचना की स्थिति पूर्वक दंड-प्रायश्चित्त नहीं हो जाता है तबतक सम्बन्ध-विच्छेद रखना ही उपयुक्त रहेगा।

लेकिन यह स्थिति कभी नहीं बनी। श्रावकों की ओर से प्रयत्न भी किये गये, किन्तु मरुधरकेशरी मिश्रीमलजी व रूपचन्दजी ने अधिक-से-अधिक उलझनें ही पैदा कीं। परिणामतः इन उलझनों से श्रमणसंघ में विघटन का सूत्रपात हो गया।

संघ-विघटन का दूसरा कारण

ध्वनिवर्धक-यन्त्र के प्रयोग को लेकर भीनासर साधु-सम्मेलन में ही संघ-विघटन के लक्षण दिखने लगे थे। किन्तु तत्कालीन स्थिति को संभालने की दृष्टि से एक अस्पष्ट और अधूरा प्रस्ताव बहुमत से पारित तो कर दिया गया किन्तु उसकी व्याख्या नहीं की गई थी। इसी अवसर पर श्री अ. भा. श्वे. स्थानकवासी जैन कान्फरन्स के अधिवेशन ने भी ध्वनिवर्धक-यन्त्र के उपयोग करने की दृष्टि से श्रावकों को छूट दे दी थी। लेकिन प्रस्ताव के लिये उपस्थित जनसमूह ने अपना रोष व्यक्त किया था। अतः समाधान के लिये सम्मेलन में आगत कई एक मुनिराजों को स्थिति का स्पष्टीकरण करने के लिये सभामंच पर लाया गया था।

उस समय तो स्थिति शांत-जैसी हो गई। किन्तु ध्वनि-यन्त्र विषयक प्रस्ताव की श्रमणसंघ के द्वारा व्याख्या हुए बिना ही लुधियाना में आचार्यश्री आत्मारामजी म. के विराजते हुए भी उनके ही शिष्यों ने ध्वनिवर्धक-यन्त्र का प्रयोग कर श्रमणसंघ के प्रस्ताव को तोड़ा। यह श्रमणसंघ के विघटन का दूसरा कारण बना। इससे श्रमणसंघ और संयमप्रेमी चतुर्विध संघ में हलचल मच गई और श्रमणसंघ के प्रधानमन्त्री व्याख्यानवाचस्पति श्री मदनलालजी म. सा. के पास इसका स्पष्टीकरण करने के लिये शिकायतें आने लगीं।

इस सम्बन्ध में प्रधानमन्त्री श्री व्याख्यानवाचस्पतिजी म. सा. ने आचार्य श्री आत्मारामजी म. सा. से पत्रव्यवहार किया। लेकिन सम्बन्धित पत्रव्यवहार के प्रसंग में निर्मित कटुता के वातावरण से व्याख्यानवाचस्पति जी म. ने प्रधानमन्त्री पद का त्यागपत्र आचार्यश्री आत्मारामजी म. सा. की सेवा में भेज दिया।

इसी वातावरण के बीच दि० २०, २१ अक्टूबर ५६ को लुधियाना में श्री अ. भा. श्वे. स्थानकवासी जैन कान्फरन्स की साधारण सभा की बैठक हुई। जिसमें अधिकारी मुनिवरों को जानकारी कराये बिना ही आचार्यश्री आत्मारामजी म. सा. ने ध्वनिवर्धक-यन्त्र के उपयोग के सम्बन्ध में निम्नलिखित निर्णय फरमा दिया—

'शास्त्रों के परिशीलन से पता चलता है कि अपवादिक स्थिति में किसी दंड का विधान नहीं किया गया है। उदाहरण के लिये व्यवहारसूत्र के प्रथम उद्देश्य, सूत्र ३२ में लिखा है कि साधु संयम-रक्षा के लिये कारणवश वेश-परिवर्तन कर ले तो भी उसको कोई प्रायश्चित्त का विधान नहीं है।

'इसके अतिरिक्त स्थानांगसूत्र के प्रथम स्थान, उद्देश्य दूसरे में लिखा है— साध्वी नदी आदि में गिर रही हो, तब साधु उसकी भुजा पकड़कर निकाल ले तो भी उसके लिये प्रायश्चित्त नहीं। ध्वनियन्त्र का प्रयोग अपवादिक स्थिति में स्वीकार किया गया है। अतः इसके लिये शास्त्रीय दृष्टि से कोई प्रायश्चित्त नहीं आता। तथापि संघैक्य को ध्यान में रखकर इस प्रायश्चित्त की कल्पना की जा रही है। अग्नि का स्पर्श हो जाने पर शास्त्रों में प्रायश्चित्त का विधान आता है। किन्तु ध्वनिवर्धक-यन्त्र का तेजस्कायिक होना अभी विवादास्पद है, तथापि संघैक्य को ध्यान में रखकर लघु चौमासी प्रायश्चित्त दिया जाता है।

उत्सर्ग और अपवाद

जिन पर सदा चला जाय, जिनका सदा पालन किया

जाय वह उत्सर्ग मार्ग है।

किसी विशेष कारण से जिसका प्रयोग किया जाय, वह अपवाद है।

'ध्वनियन्त्र में जो अपवाद शब्द है उसका अभिप्राय महावीर-जयन्ती महोत्सव, पर्यूषणपर्व, संवत्सरीपर्व, दीक्षा-महोत्सव और सार्वजनिक व्याख्यान, इन प्रसंगों से है, जहां कि हजारों की संख्या हो।

'आपवादिक स्थिति की उपेक्षा कर उल्लंघन करना ही स्वच्छन्दता है। कोई भी साधु-साध्वी ध्वनियन्त्र की व्यवस्था करने की प्रेरणा कदापि न करे और न स्वच्छन्दता से ही काम ले। स्वच्छन्दता से जितने दिन लाउडस्पीकर का प्रयोग होगा, उतने दिन का दीक्षाछेद किया जा सकेगा।

'मौखिक या लिखित आलोचना होने पर आचार्यश्री, उपाचार्य श्री मौखिक या लिखित दण्ड दिया करेंगे।'

जब यह निर्णय दि. १-११-५६ के जैनप्रकाश में छपकर समाज के सामने आया तो विरोध ने उग्र रूप धारण कर लिया और कहा गया कि आचार्यश्री आत्मारामजी म. सा. अपनी दि. १-२-५६ की घोषणा में ध्वनिवर्धक-यन्त्र का उपयोग करने वाले साधुसाध्वियों को प्रायश्चित्त देने का विधान करते हैं तो इस निर्णय में अपवाद का प्रायश्चित्त नहीं आता, ऐसी परस्पर विरुद्ध बातें क्यों?

इसी निर्णय के अन्तिम अंश में जहां दण्ड का कथन किया गया है, आचार्य श्रीजी म. के साथ उपाचार्य श्रीजी म. के नाम का भी उल्लेख किया गया है, इससे समाज में यह भ्रांति फैली कि पूज्य आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. भी इस निर्णय से सहमत हैं। जब इस निर्णय की जानकारी आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. को मिली तो उन्होंने फरमाया कि इस निर्णय से न तो मेरा कोई सम्बन्ध ही है, न मेरा मत है, न मुझसे पूछा गया, आदि।

कई अधिकारी मुनिवरों एवं अन्य संत-सतियों की ओर से आचार्य श्रीजी की सेवा में इस निर्णय के विरोध में पत्र आने लगे। उनमें निवेदन किया गया कि आचार्यश्री आत्मारामजी म. अपनी पूर्व की घोषणा के अनुसार अधिकारी मुनियों की प्रार्थना के बिना कदापि निर्णय नहीं दे सकते, फिर भी अधिकारी मुनियों की प्रार्थना के बिना ही निर्णय देकर अपने पूर्व के वचन से स्खलित हुए हैं।

दूसरी बात, आचार्यश्री का यह निर्णय श्रमणसंघ की व्यवस्था के प्रतिकूल भी है और उत्सूत्रप्ररूपणा के साथ आगे चलकर श्रमण-संस्कृति को तहस-नहस करने वाला भी सिद्ध हो सकता है, अतः आचार्यश्री आत्मारामजी म. सा. के उक्त निर्णय को अमान्य घोषित कर दें आदि। तब उत्तर में आचार्य श्रीजी म. सा. ने लिखवाया कि मैं आचार्यश्री आत्मारामजी म. की सेवा में पत्रव्यवहार करा रहा हूँ। उत्तर आने पर चतुर्विध संघ को जानकारी दी जायेगी।

तदनुसार आचार्यश्री आत्मारामजी म. सा. को निर्णय के बारे में जानकारी देने के लिये पत्र लिखा गया। लेकिन टालमटूल उत्तरों की परम्परा चलती रही। इधर चतुर्विध संघ में दिनोंदिन रोष और अधिक बढ़ता जा रहा था। जिससे यह स्थिति दिखने लगी कि श्रमण-संघ के सन्त आचार्यश्री आत्मारामजी म. सा. से असहयोग करने के लिये तत्पर हो जायेंगे। अन्त में दि० २१-१-५७ को पत्र आया—

> '.........कान्फ्रेंस के अधिकारियों ने आचार्य श्रीजी से सहमति लिये बिना ही आचार्यश्री के अभिमत को निर्णय का रूप देकर जैनप्रकाश में प्रकाशित कर दिया। आचार्यश्री को इसका हार्दिक खेद है आदि।'

इस महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर विचार करने के लिये कान्फरन्स की जनरल कमेटी की विशेष बैठक जयपुर में बुलाई गई और उसमें सम्बन्धित विषय का उल्लेख करते हुए प्रस्ताव पारित किया गया। प्रस्ताव में उक्त विषय पर शीघ्र निर्णय प्रगट करने के लिये श्रमणसंघ के

दोनों आचार्यों से प्रार्थना की गई थी।

इसके बाद भी ध्वनिवर्धक यन्त्र के उपयोग-विषयक निर्णय के लिये अधिकारी मुनिराजों की ओर से आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. के पास अनेक पत्र आये तथा श्रावकों ने भी इस प्रश्न के बारे में शीघ्र निर्णय के लिये प्रार्थनायें कीं। आचार्य श्रीजी म. सा. भी स्थिति स्पष्ट करने के लिये उत्सुक थे। अतः आचार्य श्री आत्माराम जी म. सा. को पुष्ट प्रमाणों सहित उत्तर दिलाने के लिये कईएक पत्र भेजे गये। लेकिन उनकी ओर से कोई संतोषजनक पत्र नहीं आया, जिससे ध्वनिवर्धक-यन्त्र सम्बन्धी प्रश्न का हल निकल सके।

अन्त में दिनांक १६-१०-५७ को आचार्य श्रीजी म. सा. ने चतुर्विध संघ को सूचित किया। जिसमें लिखा गया था कि अनिर्णीत अवस्था में किसी भी चीज का प्रयोग होना वैधानिक नहीं माना जा सकता है। इस बात का ध्यान संगठन प्रेमी चतुर्विध संघ के प्रत्येक सदस्य को रखना आवश्यक है।

यह सूचनापत्र लुधियाना पूज्य श्री आत्माराम जी म. सा. की जानकारी के लिये भी भेजा गया था। जिसकी पहुंच आ गई थी और यह प्रसंग एक प्रकार से सुलझ गया प्रतीत होने लगा था कि आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. को कान्फरन्स कार्यालय का दि० १०-१२-५७ का एक पत्र प्राप्त हुआ। जिसमें लिखा था कि आचार्यश्री आत्मारामजी म. सा. इस सूचना को अवैधानिक मानते हैं। लेकिन उसमें अवैधानिकता के कारणों का उल्लेख नहीं किया गया था। जबकि स्वयं पूज्यश्री आत्मारामजी म. सा. ने आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. को सर्व सत्ता-सम्पन्न अधिकारी मानते हुए इस प्रश्न का निर्णय करने के लिये अधिकारी माना था।

इस प्रकार यह प्रश्न भी अधिक-से-अधिक उलझता गया और श्रमणसंघ के संगठन को निर्बल बनाने में ही अधिक योग दिया, स्वच्छन्दता फैली और अनुशासनभंग की घटनायें आये दिन होने लगीं।

संघ-विघटन का तीसरा कारण

प्रमाणों के बिना आगमों में परिवर्तन करना योग्य नहीं है। लेकिन पं० मुनिश्री फूलचन्दजी म. (पुप्फभिक्खू) ने 'सुत्तागमे' में बिना प्रमाणों के कहीं-कहीं मूल पाठों में परिवर्तन कर दिया था। इसके बारे में बृहत्साधु-सम्मेलन में चर्चा भी हुई, परन्तु यह विषय शास्त्रों से सम्बन्धित था और कई शास्त्रों का गहन अवलोकन करना जरूरी था। इसलिये समयाभाव से सम्मेलन में विचार नहीं हो सका और निर्णय के लिये पूज्यश्री आत्मारामजी म. सा. को सौंप देने का निश्चय किया गया। पारित प्रस्ताव इस प्रकार है—

> 'पं० फूलचन्दजी म. (पुप्फभिक्खु) द्वारा संपादित 'सुत्तागमे' विषय में निर्णय किया गया कि सूत्रपाठ में पुष्टावलम्बन एवं खास प्रमाण बिना परिवर्तन करना इष्ट नहीं है अतः वे अपने विचार आचार्यश्री की सेवा में भेज दें। फिर आचार्य श्रीजी जो निर्णय देंगे, वह श्रमणसंघ को स्वीकार होगा।'

उक्त प्रस्तावानुसार सुत्तागमे विषयक निर्णय का पूर्ण उत्तरदायित्व पूज्यश्री आत्मारामजी म. सा. पर रखा गया था, किन्तु करीब छह महिने व्यतीत हो जाने पर भी पूज्यश्री आत्मारामजी म. सा. की ओर से सुत्तागमे विषयक निर्णय समाज के समक्ष नहीं आया तो समाज में कुछ हलचल हुई कि अभी तक सुत्तागमे का निर्णय क्यों नहीं हो रहा है? श्री अ. भा. श्वे. स्थानकवासी जैन कान्फरन्स की ओर से भी कहा जाने लगा कि सुत्तागमे का निर्णय शीघ्र ही जाना चाहिये। इस सम्बन्ध में पूज्यश्री आत्मारामजी म. सा. की ओर से दिनांक २१-११-५६ को श्री सीतारामजी द्वारा लिखा गया एक पत्र कान्फरन्स के प्रधानमन्त्री श्री आनन्दराजजी सुराना की मार्फत दि० ८-१२-५६ को मेड़ता में आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. को प्राप्त हुआ। उसमें लिखा था कि—

'सुत्तागमे के निर्णय का उत्तरदायित्व भीनासर-सम्मेलन द्वारा

आचार्य श्रीजी म. पर डाला गया है, उसके आधार पर श्री फूलचन्दजी म. ने सुत्तागमे सम्बन्धी अपना अभिमत अभी-अभी आचार्य श्रीजी म. के पास भेजा है। किन्तु कुछ दिनों से आचार्य श्रीजी अस्वस्थ चल रहे हैं। अतः आचार्यश्री फरमाते हैं— मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं चल रहा है अतः सुत्तागमे की प्रामाणिकता, अप्रामाणिकता का निर्णय उपाचार्यश्री करें। उपाचार्यश्री इस सम्बन्ध में जो करेंगे, वह मुझे स्वीकार होगा।'

इस पत्र के उत्तर में उसी दिन आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. की ओर से पूज्यश्री आत्मारामजी म. की सेवा में श्री सीतारामजी को सम्बोधित करते हुए पत्र लिखाया गया तथा जानकारी के लिये उसकी प्रतिलिपि श्री आनन्दराजजी सुराना को दिलाई गई। वह पत्र इस प्रकार है—

'भीनासर-सम्मेलन में श्री उपाचार्य श्रीजी स्वयं उपस्थित थे ही। लेकिन एतद्विषयक (सुत्तागमे विषयक) उत्तरदायित्व आचार्य श्रीजी म. पर छोड़ा है, अतः आचार्य श्रीजी म. का स्वास्थ्य ठीक होने पर सुत्तागमे विषयक निर्णय आचार्य श्रीजी म. द्वारा ही होना चाहिये। अथवा ऐसे विषय उपाध्यायों के अधिकारान्तर्गत आ जाते हैं। जैसा कि भीनासर-सम्मेलन में उपाध्यायों के अधिकार नम्बर १ में लिखा है—

'साहित्य-सर्जन एवं संशोधन करना, आगम-साहित्य संबंधी आक्षेपों का निवारण करना आदि।'

लेकिन इस पत्र के पहुंचने के बाद न तो पूज्य श्री आत्मारामजी म. सा. ने सुत्तागमे का कोई निर्णय ही दिया और न इस विषय को उपाध्याय मण्डल को ही सौंपा और न इसके बाद आचार्य श्री गणेश-लालजी म. सा. के पास भी कोई सूचना आई।

इस प्रकार इस प्रश्न को भी अनिर्णीत ही रहने दिया गया। इससे यह शंका सुदृढ़ होती है कि ध्वनिवर्धक यन्त्र, रूपचन्द विषयक कांड की तरह इसको भी अधिक-से-अधिक उलझाने का अवसर दिया गया। फलस्वरूप सुत्तागमे में आगम पाठों का इच्छानुकूल परिवर्तन आदि

चलता रहा। यद्यपि बाद में श्रमणसंघीय कार्यवाहक समिति ने सुत्तागमे के प्रकाशन को अप्रमाणित घोषित किया है, लेकिन अप्रमाणित पाठों के शुद्ध एवं प्रमाणित पाठों की जानकारी आज तक भी किसी को नहीं हो सकी है।

सुत्तागमे के सम्बन्ध में कान्फरन्स का प्रस्ताव

दि० २०, २१ अक्टूबर '५६ को लुधियाना में श्री अ. भा. श्वे. स्थानकवासी जैन कान्फरन्स की साधारण सभा की बैठक हुई। जिसमें सुत्तागमे के सम्बन्ध में निम्नलिखित प्रस्ताव पारित किया गया था—

'सुत्तागमे' सूत्र में (मन्त्री मुनिश्री फूलचन्दजी म. सा. द्वारा संपादित) पाठ-परिवर्तन के कारण पूज्य आचार्यश्री ने अध्यादेश द्वारा प्रकाशन, विक्रय पर प्रतिबन्ध लगाया और भीनासर-साधु-सम्मेलन में पाठपरिवर्तन के कारण पूज्य आचार्यश्री को लिख भेजने का आदेश दिया गया था, लेकिन दुःख है कि अप्रमाणित सुत्तागमे का प्रकाशन व विक्रय वेरोकटोक अभी तक चालू है, जो श्री वर्धमान स्था. जैन श्रमणसंघ व श्रावकसंघ दोनों के लिये अप्रतिष्ठा का कारण बना हुआ है। अतः यह जनरल कमेटी यह निश्चय करती है कि सुत्तागमे के प्रकाशन व विक्रय पर तत्काल प्रतिबन्ध करने व मन्त्री मुनिश्री फूलचन्दजी म. सा. द्वारा जो अनुशासन भंग हुआ है और हो रहा है, इस सम्बन्ध में भी श्रमणसंघ कठोर कदम उठाकर अनुशासन-प्रणाली की रक्षा करे, ऐसी श्रमणसंघ से प्रार्थना है।'

यहां श्रमणसंघ के विघटन के कारणों में से कुछ एक का संकेत किया है। ऐसे ही और भी दूसरे-दूसरे अनेक कारण हैं जो संगठन को निर्बल बनाने में सहायक बनते रहे।

इन सभी प्रश्नों एवं श्रमणसंघ के मूल उद्देश्यों के अन्तर्गत स्वीकृत—एक आचार्य के नेश्राय में शिक्षा-दीक्षा, प्रायश्चित्त, चातुर्मास-व्यवस्था आदि के केन्द्रीयकरण करने के लिये लुधियाना, जयपुर में हुई कान्फरन्स की साधारण सभा की बैठकों में भी विशेष रूप से प्रस्ताव

पारित किये गये थे। लेकिन श्रमणसंघ के अधिकारी मुनियों में वह उदारता नहीं दिखी जो श्रावकवर्ग की भावना का मूल्यांकन करती। इसके फलस्वरूप संगठन की नींव दिनोंदिन कमजोर होती गई।

अजमेर की ओर विहार और चतुर्विध संघ द्वारा स्वागत

गोगोलाव चातुर्मास समाप्ति के पश्चात पूज्य आचार्य श्रीजी ने आसपास के कडलू, मेड़ता आदि क्षेत्रों को फरसते हुए अजमेर की ओर विहार किया। रास्ते में पी गांव पहुंचने के पूर्व ही विहार करते हुए उपाध्याय श्री हस्तीमलजी म. आदि ठा० आचार्य श्रीजी म. सा. से मिल गये और फिर वहां से साथ-साथ तथा आगे पीछे विहार करते हुए पुष्कर के समीप पधारने पर मन्त्री मुनिश्री पुष्करमुनिजी म. आदि संत भी अगवानी के लिये पधार गये थे। लेकिन इसके पूर्व ही यह मालूम हो चुका था कि आईदानजी जिनका कि नियमविरुद्ध प्रवृत्तियों के कारण श्रमणसंघीय धारा के अनुसार सम्बन्धविच्छेद कर दिया गया था, के साथ मन्त्री श्री पुष्करमुनिजी ने सबंध रखा है। अतः मन्त्रीश्री पुष्करमुनिजी के साथ कैसे क्या सम्बन्ध रखना? एतद्‌विषयक विचारणा आचार्य श्रीजी म. सा. और उपाध्यायश्री हस्तीमलजी म. के बीच पुष्कर के पूर्व ही हो चुकी थी। उसमें यह सोचा गया था कि मन्त्री श्री पुष्करमुनिजी के साथ वंदन-व्यवहार आदि होने के पूर्व उनसे पूछ लिया जाये कि आपने आईदानजी के साथ सम्बन्ध रखा, उसका आप प्रायश्चित्त लेना स्वीकार करते हैं तो आपके साथ सम्बन्ध रह सकता है, अन्यथा नहीं। तदनुसार मन्त्रीश्री पुष्करमुनिजी के पधारते ही उनसे कहा गया कि आपने आईदानजी से जो सम्बन्ध रखा है उसका आपको प्रायश्चित्त लेना होगा। प्रायश्चित्त लिये बिना आपके साथ सम्बन्ध नहीं रह सकता। इस पर मन्त्री श्री पुष्करमुनिजी ने प्रायश्चित्त ले लिया। तब उनके साथ सम्बन्ध रहा और वंदन-व्यवहारादि हुआ। इसके बाद पुष्कर में प्रवेश हुआ। पुष्कर और अजमेर के बीच तो दर्शनार्थी जनों के आवागमन का तांता-सा लग गया था।

जैसे ही आपश्री अजमेर के निकट पहुंचे, सन्त-सतीवृन्द और श्रावक-श्राविकाओं के समूह स्वागत के लिये उमड़ पड़े ।

चतुर्विध संघ के जुलूस के साथ सं० २०१३, माघ शुक्ला ४ को आचार्य श्रीजी म. सा. का लाखनकोटड़ी स्थित एक बड़े मकान में पदार्पण हुआ । यहां पर करीब १५-१६ दिन विराजना हुआ । प्रति-दिन व्याख्यान पंचायती भवन में होते थे, जिनका स्थानीय और आस-पास के नगरों के भाई-बहिनों ने लाभ उठाया । कानोड़, बालेसर, व्यावर, अजमेर आदि क्षत्रों की ओर से सं० २०१४ के चातुर्मास की स्वीकृति के लिये विनतियां हुईं किन्तु चातुर्मास के लिये काफी समय होने से आपश्री ने किसी भी स्थान का आश्वासन नहीं दिया ।

दि. २१-३-५७ को अजमेर में कान्फरन्स की ओर से एक शिष्टमण्डल सेवा में उपस्थित हुआ । जिसमें समाज के अग्रणी कार्य-कर्ता सर्वश्री कुन्दनमलजी फिरोदिया, सेठ मोहनमलजी चोरडिया, आनन्दराजजी सुराना, कानमलजी नाहटा, रतनलालजी चोरडिया और धीरजलालभाई तुरखिया आदि आदि थे । शिष्टमण्डल ने समाज की वर्तमान स्थिति और उससे सम्बन्धित प्रश्नों पर आचार्य श्रीजी से वार्तालाप किया । आचार्य श्रीजी ने अपने विचार व्यक्त करते हुए फरमाया कि श्रमणसंघ की शुद्धता और अखंडता के लिये मेरी शुभ भावना है और श्रमण व श्रावक सघ के परस्पर सम्बन्ध व अपनी-अपनी मर्यादानुसार एक-दूसरे के पारस्परिक सहयोग की आवश्यकता व जागरूकता के बारे में बतलाया ।

इसी संदर्भ में कान्फरन्स के प्रमुख नेताओं ने आचार्य श्रीजी म. सा. के चरणों में मार्मिक प्रार्थना करते हुए सकेत किया कि पाली-कांड आदि की परिस्थितियों के कारण हम सब को नीचा देखना पड़ रहा है । यद्यपि भीनासर सम्मेलन में अधिकारी मुनियों को अलग-अलग अधिकार दिये गये हैं, लेकिन न तो वे अधिकारों का दायित्व समझ रहे हैं और न इन कांडों को मिटाकर समाज के अन्दर शुद्धि-

करण का वातावरण तैयार कर रहे हैं। कुछ एक अधिकारी भी कांडों में अपने शिष्यों के फंसे होने से इन कांड से सम्बन्धित मालूम हो रहे हैं और दंड देने में हिचकिचाते हैं। हम लोगों में से कुछ व्यक्ति पहले लुधियाना भी गये थे। वहां पर भी हमने आचार्य श्री आत्मारामजी म. के समक्ष यह परिस्थिति रखी तो उन्होंने फरमाया कि ये सब मामले उपाचार्य श्री गणेशलालजी म. को निपटाना चाहिये और वे निपटायेंगे ही। क्योंकि वर्तमान विधान के अनुसार भी उनको सब अधिकार प्राप्त हैं, आदि। इन्हीं भावों का एक पत्र भी कान्फरन्स आफिस के माफत आपश्री के पास पहुंचा दिया गया है। इसी तरह हम सब की एवं शुद्धिकरण प्रेमी सन्तों की भी यह हार्दिक अभिलाषा है कि इन मामलों को आपश्री निपटायें। ये मामले दूसरों से निपटने वाले नहीं हैं। आपश्री सक्षम है। अतः इस विषय में शीघ्रातिशीघ्र कदम उठाकर हम सबका मुख उज्ज्वल करें, ऐसी हमारी साग्रह सानुरोध प्रार्थना है।

इस पर आचार्य श्रीजी म. सा. ने फरमाया कि आप लोगों को इन घटनाओं से दुःख है वैसी ही मुझे भी इस गन्दे वातावरण से खिन्नता है। मैंने अपने जीवन में ऐसे घृणित कांड तो दूर रहे इससे भी हल्की स्थिति को सहन नहीं किया है। भूतपूर्व संप्रदाय की दृष्टि से एक साधु का किसी बाई को दिया गया पत्र पकड़ा गया। जिसमें कोई अश्लील बात नहीं थी। फिर भी बाई के नाम पत्र होने से मैंने साधुमर्यादा की सुरक्षा के लिये उस साधु को सम्प्रदाय से निष्कासित कर दिया और श्रावकों ने उसका वेष भी ले लिया था। मुझे इस तरह के कांड कितने कष्टदायी हैं, आप इसका अनुमान लगा सकते हैं।

आपने जो अपनी व शुद्धिकरण प्रेमी सन्तों की भावना रखी और मेरे से ही यह कार्य निपटवाना चाहते है तो मुझे कोई एतराज नहीं है। लेकिन मैं जो कदम उठाऊं, उसमें सबका दृढ़ विश्वास हो तथा आप सब लोगों की दृष्टि में जो व्यक्ति शुद्ध मालूम हो और

शास्त्रीय मर्यादा एवं श्रमणसंघीय नियमोपनियम को ध्यान में रखते हुए मेरी दृष्टि में अशुद्ध मालूम पड़े और मैं उसको जो भी दंड दूं, उसको अमली रूप देने दिलाने की आप महानुभावों की तैयारी हो तो यह निर्णय मेरे से कराइये। अन्यथा इस विषय को मैं किसी अन्य अनुभवी मुनि पर भी छोड़ सकता हूँ।

इस पर उन कान्फरन्स के नेताओं ने कहा कि आप जो भी फरमावेंगे उसको हम सहर्ष अमली रूप देंगे, दिलायेंगे। इस विषय को आपश्री अन्य किसी पर मत छोड़िये। उनमें ऐसे विषयों को गौरवतापूर्ण तरीके से निपटाने की क्षमता हमको मालूम नहीं होती है। यदि होती तो कम-से-कम ऐसे दूषित व्यक्तियों का सम्बन्ध-विच्छेद तो वे उसी समय कर देते।

वार्तालाप के पश्चात् आचार्य श्रीजी म. सा. ने इस विषय को पूर्णरूपेण हाथ में लिया और अन्यान्य अधिकारी मुनिवरों के परामर्श पूर्वक शुद्धिकरण के साथ संगठन को ध्यान में रखते हुए पूरी छानबीन करके निर्णय दिया और निर्णय की सूचना सम्बन्धित व्यक्तियों के पास पहुंचा दी। जिसकी स्वीकृति की सूचना भी प्राप्त हो गई और निर्णय के क्रियान्वयन की प्रतीक्षा करते हुए अजमेर से विजयनगर तरफ विहार किया।

आसपास के छोटे-छोटे गांवों को स्पर्श करते हुए विजयनगर पधारे। विजयनगर में प्रान्तमन्त्री मुनिश्री पन्नालालजी म., उपाध्याय श्री हस्तीमलजी म., प्रान्तमन्त्री मुनिश्री सँसमलजी म., वयोवृद्ध मुनिश्री रामकुमारजी म. आदि सन्तों का संयोग मिला। दर्शनार्थी बंधु तो आते ही रहते थे। त्याग प्रत्याख्यान अच्छी संख्या में हुए तथा वहां विराजित मुनिवरों से श्रमणसंघ की वर्तमान स्थिति एवं अन्यान्य विषयों पर विशद रूप से चर्चा वार्ता हुई।

उनमें एक समस्या पाली में विराजित स्थानापति वयोवृद्ध श्री शार्दूलसिंहजी म. की सेवा-सम्बन्धी थी। ये शार्दूलसिंहजी म.

भूतपूर्व सम्प्रदाय की दृष्टि से आचार्य श्री जयमलजी म. की संप्रदाय के अन्तर् पेटे में थे और श्रमणसंघ बनने के पश्चात वृहत्साधु सम्मेलन भीनासर में प्रान्तीय मन्त्रियों ने जो अधिकार अपने पास रखे थे, उनमें प्रान्त में विचरने वाले वृद्ध सन्त-सतियों की सेवा का अधिकार भी था। तदनुसार प्रान्त के मन्त्रियों को उनकी सेवा का पूर्ण उत्तरदायित्व समझते हुए व्यवस्था करने की नितान्त आवश्यकता थी। लेकिन प्रान्तमन्त्रियों ने कोई ध्यान नहीं दिया। वे वृद्ध सन्त कष्ट पा रहे थे। ये समाचार आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. के पास पहुंचे तब वहां विराजित सन्तों से भी आचार्य श्रीजी म. सा. ने परामर्श किया और फरमाया कि कुछ सन्त मैं भेजूं और कुछ आप (मन्त्री श्री पन्नालालजी म. व उपाध्याय श्री हस्तीमलजी म.) भेजें। ताकि पाली में विराजित शार्दूलसिंहजी म. को ब्यावर विराजित ठाणापति संतों के पास अथवा बीकानेर विराजित ठाणापति सन्तों के पास पहुंचा सकें। जिससे वहां के ठाणापति सन्तों के साथ इनकी सेवा भी अच्छी तरह से हो सके। इस पर दोनों अधिकारी मुनिवरों ने फरमाया कि आपश्री की आज्ञा शिरोधार्य है लेकिन यह कार्य तो उस प्रान्त के अधिकारी मुनियों का है। अतः उनको इस विषय में पहल करनी चाहिये, लेकिन वे प्रान्तीय अधिकारी मुनि इस तरफ ध्यान नहीं दे रहे हैं। आपश्री की यह महानता है कि आप उनकी सुव्यवस्था के लिये सोच रहे हैं। हम आपश्री की आज्ञा को न टालते हुए सेवा में सन्त भेजने के लिये तैयार हैं, बशर्तें कि उस प्रान्त के अधिकारी मुनि भी सेवा में अपनी ओर से सन्त भेजने को तैयार हों।

इस पर उपर्युक्त वार्तालाप के आशय की सूचना प्रान्तमन्त्रियों को दिलाई गई लेकिन उनका उत्तर आशाजनक नहीं था। अतः पाली से वृद्ध सन्तों को उठाकर ब्यावर या बीकानेर पहुंचाने की स्थिति नहीं बनी। फिर भी आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. ने अपनी उदारता का परिचय देते हुए अपने सन्तों में से तपस्वी श्री चांदमलजी म. को

एक वर्ष के लिये पाली भेजा और उस प्रान्त के मन्त्रियों को सूचना दिला दी कि इस वर्ष के लिये तो मैंने सन्त भेजा है, आगे के लिए आपको पूरी व्यवस्था कर लेनी चाहिये । लेकिन उस प्रान्त के मन्त्रियों ने व्यवस्था नहीं की ।

इसी तरह जोधपुर में विराजित वयोवृद्ध बाबाजी श्री पूर्णमलजी म. की सेवा में भी सन्त भेजना आवश्यक था लेकिन सयुक्त चातुर्मास में जोधपुर में विराजित प्रमुख सन्तों में से किसी ने ध्यान नहीं दिया तो फिर आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. ने अपने पास रहने वाले सेवाभावी मुनिश्री करणीदानजी म. को और नवदीक्षित मुनिश्री घेवरचन्दजी म. को सेवा में भेजा और दोनों मुनियों ने बाबाजी म. की अन्त तक सेवा की । इस सेवा की जोधपुर संघ आज भी भूरि-भूरि प्रशंसा कर रहा है और स्वयं बाबाजी म. कहा करते थे कि मेरी सेवा में महान सेवाभावी सन्तों को गणेशनारायण (आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा.) ने भेजकर मेरी जिन्दगी सुधार दी ।

विजयनगर से विहार कर आचार्य श्रीजी म. सा. गुलाबपुरा पधारे । यहां पर मन्त्री मुनिश्री कस्तूरचन्दजी म. आदि सन्त विराज रहे थे । स्थानीय संघ की ओर से आचार्य श्रीजी के दर्शनार्थ आने वालों की उत्तम व्यवस्था की गई थी । महावीर-जयन्ती के अवसर पर श्रावक-श्राविकाओं द्वारा विविध प्रकार की तपस्यायें व त्याग-प्रत्याख्यान हुए । श्री कस्तूरचन्दजी कोठारी ब्यावर निवासी ने सजोड़े ब्रह्मचर्यव्रत अंगीकार किया एवं अनेकों ने चर्बी लगे वस्त्रों के पहनने व दूसरे के यहां मिष्टान्न भोजन जीमने का त्याग किया ।

चैत्र शुक्ला १४ का शाम को जोधपुर में विराजित स्थविरपद विभूषित तपस्वी मुनिश्री पूर्णमलजी म. सा. (बाबाजी म. सा.) के कालधर्म को प्राप्त होने के समाचार मालूम होने से चैत्र शुक्ला १५ को व्याख्यान बंद रखा गया और आचार्य श्रीजी म. सा. एवं अन्यान्य सन्त मुनिराजों ने बाबाजी म. के जीवन एवं उनकी विशेषताओं पर

प्रकाश डालते हुए गुणानुवाद किया और उनके गुणों का अनुकरण करने के लिये चतुर्विध संघ का ध्यान आकर्षित किया। श्रावक-श्राविकाओं में आयंबिल आदि की तपस्यायें हुईं।

आगामी चातुर्मास की स्वीकृति

आचार्य श्रीजी म. सा. ने कईएक परिस्थितियों को लक्ष्य में रखते हुए चैत्र शुक्ला पूर्णिमा से पहले सं० २०१४ का चातुर्मास घोषित नहीं करने का फरमाया था। अतः जैसे-जैसे उक्त तिथि निकट आ रही थी कि चातुर्मास की विनती के लिये विभिन्न श्री संघों के सैकड़ों भाई-बहिन गुलाबपुरा में उपस्थित हो गये। अजमेर और कानौड़ संघ के श्रावकों में तो अपने यहां ही चातुर्मास कराने की होड़-सी लग गई थी।

कानौड़ श्रीसंघ ने भावभीनी आकर्षक भाषा में अपने क्षेत्र की स्थिति आदि का दिग्दर्शन कराया तो अजमेर संघ के अध्यक्ष, मंत्री आदि अग्रणी श्रावकों ने अपनी लगन, श्रद्धा-भक्ति का परिचय दिया। दोनों संघों का धर्मप्रेम और उत्साह श्लाघनीय था। कोई भी अपने अधिकार को छोड़ने के लिये टस-से-मस नहीं होना चाहता था और सिर्फ यही चाहता था कि आचार्य श्रीजी म. सा. का सं० २०१४ का चातुर्मास हमारे यहां ही हो।

ऐसी स्थिति में आचार्य श्रीजी म. सा. ने परामर्श दिया कि आप सभी का धर्मप्रेम सराहनीय है। मैं एक हूँ और चातुर्मास के क्षेत्र अनेक हैं, अतः चातुर्मास तो कहीं एक ही स्थान पर होगा। अतः आप लोग आपस में विचार-विमर्श करके एक निष्कर्ष पर पहुंच जायें तो मेरे सोचने में सुविधा रहेगी। इस पर परस्पर में दोनों संघ आपस में विचार-विमर्श करते हुए एक-दूसरे सघ से चातुर्मास की याचना करने लगे कि इस वर्ष का चातुर्मास हमको दे दो। कानौड़ संघ की धार्मिक भावना प्रबल थी और अजमेर संघ की भी धार्मिक भावना कम न थी। अजमेर के सेठ श्री सौभागमलजी लोढ़ा, श्री गणेशमलजी बोहरा आदि कानौड़ सघ को समझाने में भाग ले रहे थे। कानौड़ संघ

के सदस्य कहने लगे कि आप लोग तो सम्पन्न हैं, शिक्षित हैं, बड़े शहर में रहने वाले हैं सो आप लोग तो कभी भी चातुर्मास का लाभ प्राप्त कर सकते हैं लेकिन हम गांव के रहने वाले हैं, अतः यह मौका हमें दीजिये। हम आपके चरणों में झोली बिछाते हैं और पगड़ियां रखते हैं आदि कहते हुए धड़ाधड़ अपनी पगड़ियां रख दीं। तब अजमेर वाले कहने लगे कि हम बड़े शहर में रहते हुए भी आचार्य श्रीजी का चातुर्मास अब तक नहीं करा सके हैं, अतः यह मौका तो हमें ही दीजिए और उपस्थित प्रायः सभी अजमेर निवासियों ने अपनी-अपनी पगड़ियां और टोपियां कानोड़ वालों के चरणों में रख दीं। लेकिन कोई समझौता नहीं हो पाया और अन्त में कहने लगे कि अब तो आचार्य श्रीजी म. सा. को ही कुछ फरमाना होगा। परन्तु अभी आचार्य श्रीजी म. सा. को फरमाने का अवसर नहीं था। शाम को आचार्य श्रीजी म. सा, ध्यान करके पौढ़ गये तो आचार्य श्रीजी म. के पाट के आसपास अजमेर के कुछ व्यक्ति माला लेकर जाप करने लगे। तब वर्तमान आचार्य श्री नानालालजी म. सा. आदि सन्तों ने संकेत किया कि आचार्य श्रीजी म. सा. के पास आवाज न करें, निद्रा भंग हो जायेगी। निद्रा न आयी तो स्वास्थ्य के लिये अच्छा न होगा। आपका धर्मप्रेम सराहनीय है। लेकिन वे पूर्ववत् जाप करते रहे। इस तरह अजमेर और कानोड़ संघ का यह दृश्य दर्शनीय, अलौकिक था।

ऐसी स्थिति में वैशाख कृष्णा १ को आचार्य श्रीजी म. सा. ने अपने प्रवचन में फरमाया कि कानोड़ और अजमेर दोनों संघों की चातुर्मास हेतु विनती जोरदार है। लेकिन मैंने पहले ही इस सम्बन्ध में संकेत कर दिया था कि चातुर्मास-स्वीकृति को निमित्त बनाकर आप लोग आने-जाने का कष्ट न करें। परन्तु आप लोगों ने इस बात पर ध्यान न देकर आने-जाने की क्रिया चालू रखी। परिस्थितिवश पहले मैंने चैत्र शुक्ला १५ तक आगामी चातुर्मास के स्थान संबंधी निश्चय के बारे में कहा था। लेकिन चैत्र शुक्ला १५ के बाद अब मैं चातु-

मास का निश्चय करने के लिये स्वतंत्र हूँ। वर्तमान में जो परिस्थितियां चल रही हैं, उनको देखते हुए अभी कुछ समय और चातुर्मास का निश्चय नहीं करने की स्थिति मेरे ध्यान में आ रही है। आप दोनों संघों को कहीं पर आने की आवश्यकता नहीं है। चातुर्मास-काल में कहां रहना उपयुक्त प्रतीत होगा, वहां की सूचना दोनों संघों के मंत्रियों को यथासमय किसी-न-किसी स्थान के संघ के मन्त्री द्वारा मिल जायेगी।

इसके पश्चात दोनों संघ अपने-अपने स्थानों को रवाना हो गये और कुछ दिन बाद दोनों संघों के मन्त्रियों को कुछ आगार रखकर सुखेसमाधे सं २०१४ का चातुर्मास-काल कानौड़ में बिताने की स्वीकृति के समाचार मालूम हुए। ये समाचार सुनते ही कानौड़ संघ के हर्ष का पार नहीं रहा और सुना गया कि इस खुशी में कानौड़ संघ ने सारे गांव में गुड़ बांटा था।

मेवाड़प्रदेश में विहार और समाजवैमनस्य की शांति

कानौड़ में आगामी चातुर्मास होने की खबर से मेवाड़प्रदेश में अभूतपूर्व आनन्द का वातावरण व्याप्त हो गया था और कानौड़ पदार्पण होने के पूर्व आसपास के क्षेत्रों के भाई-बहिन अपने-अपने यहां पधारने की विनतियां कर रहे थे।

आचार्य श्रीजी म. सा. का गुलाबपुरा से मेवाड़ प्रदेश की ओर विहार हुआ। आसपास के क्षेत्रों को फरसते हुए भीलवाड़ा पधारे और अन्यान्य श्रीसंघों की तरह भीलवाड़ा श्री संघ भी इस अभूतपूर्व अवसर का अधिक-से-अधिक लाभ प्राप्त करने के लिये उत्सुक था। लेकिन विभिन्न क्षेत्र भी उत्सुकता से ऐसे अवसर की बाट जोह रहे थे अतः अधिक विराजना न हो सका और भीलवाड़ा के निकटस्थ क्षेत्रों को परसने के पश्चात आचार्य श्रीजी का कपासन नगर में पदार्पण हुआ और पांच प्रवचन हुए। जिनका स्थानीय जनता के अतिरिक्त बाहर से पधारे हुए श्रोताओं ने लाभ उठाया तथा अनेक प्रकार के त्याग प्रत्याख्यान हुए।

कुछ समय से कपासन के ओसवाल और माहेश्वरी भाइयों

का अपनी-अपनी समाज में पारस्परिक मनमुटाव था। दोनों अनेक धड़ों में विभक्त हो गई थीं और वे धड़े एक दूसरे को अपमानित करने के लिये प्रयत्न करते रहते थे। पूज्य आचार्य श्रीजी म. सा. व्यक्ति और समूह के लिये किसी भी रूप में इस प्रकार की धड़ेबंदी को उचित नहीं मानते थे और अपने प्रवचनों में संगठन के बारे में संकेत करते रहे। आपश्री के प्रभावोत्पादक एवं हृदयस्पर्शी उपदेशों का ऐसा अपूर्व असर हुआ कि ओसवाल समाज में दलबन्दी की होड़ समाप्त हो गई और प्रेम का वातावरण छा गया। माहेश्वरी समाज के भाइयों ने भी आपके उपदेशों का लाभ उठाया और उन्होंने भी अपने आपसी संघर्ष को शांत करने के प्रयत्न प्रारम्भ कर दिये।

शान्ति के उपासक और शांति के संदेशवाहक पूज्य पुरुषों के पदार्पण का प्रभाव पारस्परिक संघर्षों को समाप्त करने का अमोघ उपाय है। उनके समीप जब जन्मजात विरोधी भी अविरोधी हो शांति का अनुभव करते हैं तो इन क्षणिक मतभेदों के समाधान में आश्चर्य भी कैसे हो सकता है ?

कपासन से विहार कर आचार्य श्रीजी म. सा. ताराखेड़ी, दांता स्पर्शते हुए कनूकड़ा पधारे। कपासन के आसपास के क्षेत्र में दो-दो, तीन-तीन मील की दूरी पर छोटे-छोटे सैकड़ों गांव हैं। उन सभी गांवों में बसने वाले श्रावक-श्राविकाओं के समूह पूज्यश्री के दर्शनार्थ कनूकड़ा आये और व्याख्यानवाणी का लाभ उठाया। पूज्य आचार्य श्रीजी उन सभी क्षेत्रों को फरसने का लक्ष्य रखते थे किन्तु शारीरिक स्थिति ऐसी नहीं थी कि सभी को स्पर्श कर सकें, लेकिन मार्ग में पड़ने वाले गांवों को तो अपने पदार्पण से पवित्र कर ही देते थे। अनेकों ने तम्बाकू, भांग, गांजा, मांस, मदिरा आदि अभक्ष्य वस्तुओं का त्याग किया और जहां आपसी मनोमालिन्य था, वह भी दूर हुआ।

दांता और कनूकड़ा में करीब १०-१२ घर हैं। इन दोनों गांवों के भाइयों में करीब २५ वर्ष से आपसी वैमनस्य था और बढ़ते-

बढ़ते यह विकट स्थिति बन गई थी कि यदि आपस में समझौता न हुआ तो आसपास के गांवों में भी फूट-कलह की स्थिति बन सकती है। आचार्य श्रीजी का दोनों गांवों में एक-एक दिन विराजना हुआ और प्रवचन में दोनों गांवों के निवासी भी एक-दूसरे गांव में उपस्थित हुए और आपश्री के उपदेशों से आपसी वैमनस्य दूर होकर उनमें संगठन हो गया। कनूकड़ा से विहार कर उमेड़ गांव में पधारे। यहां भी दो व्यक्तियों में एक लम्बे समय से आपस में मनमुटाव था। वह भी दूर होकर आपस में प्रेम का वातावरण बन गया।

उमेड से चाकुड़ा होते हुए आकोला पधारे। यहां के श्रावकों में भी जबरदस्त फूट थी। इस कारण समय-समय पर तूतू-मैंमैं होती रहती थी और दिनोंदिन झगड़ा उग्र रूप धारण करता जा रहा था। परन्तु गांव के भाग्योदय से आचार्य श्रीजी का पदार्पण हुआ और सदुपदेश से यह झगड़ा भी शांत हुआ। वर्षों का मनोमालिन्य धुल गया।

आकोला से विहार कर ताणा, करजेड़ी, संगेसरा उम्मेदपुरा स्पर्शते हुए भादसोड़ा पधारे। यहां आसपास के सैकड़ों व्यक्तियों ने दर्शनार्थ उपस्थित होकर व्याख्यानवाणी का लाभ उठाया। यहां से विहार कर मंडलिया होते हुए करोली पधारे। यहां पर राजपूतों की बस्ती है। राजपूतों के अत्याग्रह से एक व्याख्यान हुआ। जिससे व्याख्यान-समाप्ति के पश्चात अनेक व्यक्तियों ने मद्य-मांस आदि अभक्ष्य पदार्थों के सेवन का त्याग किया एवं शिकार न करने की प्रतिज्ञा ली। करोली से विहार कर चिकारड़ा, मोरवण, सुजाखेड़ा आदि-आदि क्षेत्रों को स्पर्श करते हुए भंगलवाड़ पधारे।

चातुर्मास-काल निकट होने से कुछ सन्तों का विलोदा और कुछ का उदयपुर की ओर विहार कराकर आपश्री ने अनेड की ओर विहार किया। अनेड में भी ओसवाल समाज के सिर्फ ४ घर हैं और उनमें भी आपसी मनमुटाव था। आपश्री के संकेतमात्र से उनमें एकता हो गई। अनेड से डूंगला होते हुए भींडर पधारे। भींडर के समस्त

निवासियों ने स्वागत किया। भींडर में भी दो दल थे और आपस में लड़ाई-झगडा चलता रहता था जो आपश्री के एक ही प्रवचन से समाप्त हो गया और पारस्परिक सुमधुर सम्बन्ध पुनः स्थापित हो गये। भींडर से कानौड़ की ओर विहार हुआ।

भींडर के सभी निवासियों ने प्रवचनों का लाभ उठाया लेकिन बोहरा समाज के जो सबसे बड़े मौलवी थे, वे अत्यन्त प्रभावित हुए और वहां अपनी मस्जिद में आचार्य श्रीजी को पदार्पण कराने के लिए प्रार्थना की तथा विहार के समय भींडर से आचार्य श्रीजी म. सा. के साथ कानौड़ तक आये। कानौड़ में भी कुछ दिन व्याख्यान सुने और मौलवीजी का यह इरादा था कि चातुर्मास में यहां ही रह कर सब व्याख्यान सुनूं लेकिन बंबई से उनको बुलाने बाबत तार आ गया था, इसलिए कुछ दिन बाद वे चले गये।

चातुर्मास हेतु कानौड़ में पदार्पण

पहाड़ी प्रदेश और इधर के निवासियों को साधु की आहार-विधि की जानकारी न होने से विविध परिषहों को सहन करना पड़ा। लेकिन आचार्य श्रीजी का विशेष लक्ष्य छोटे-छोटे गांवों में विहार करने का रहता था। इससे गांवों में काफी उपकार हुए और वहां के निवासियों ने दुर्व्यसनों का त्याग कर अपना नैतिक आचारण सबल बनाया।

सं. २०१४ के चातुर्मास हेतु दी गई स्वीकृति के अनुसार पूज्य आचार्य श्रीजी म. सा. ठा. ९ का आषाढ़ शुक्ला १० दि. ६-७-५७ को प्रातः सवा आठ बजे कानौड़ में पदार्पण हुआ। ग्राम के सभी निवासियों ने भव्य स्वागत के साथ अगवानी करते हुए जुलूस के रूप में गांव में प्रवेश कराया। महासती श्री गट्टूकंवरजी म. सा. श्री चंपाकंवरजी म. सा. आदि ठा. ७ का भी यहीं पर चातुर्मास होने से श्रावक-श्राविकाओं में अपूर्व उत्साह परिलक्षित होता था।

स्वागत-जुलूस गांव के विभिन्न मार्गों से होता हुआ स्थानक आया और सभा के रूप में परिणत हो गया। करीब १॥ घंटे तक

श्रावक-श्राविकाओं की ओर से स्वागत भाषण, गायन आदि होने के अनंतर पूज्य आचार्य श्रीजी म. सा. का प्रवचन हुआ।

पूज्य आचार्य श्रीजी का चातुर्मास काल के चार मास तक यहां ही विराजने का यह प्रथम दिवस था और इस प्रथम दिवस का लाभ प्राप्त करने के लिये आसपास के गांवों से सैकड़ों की सख्या में श्रावक श्राविकाओं का आगमन हुआ था। स्थानीय श्रावक सघ में आतिथ्य सत्कार के प्रति अपूर्व उत्साह था और समस्त आगत बंधुओं के लिये आवास-भोजन आदि की अच्छी-से-अच्छी व्यवस्था की गई थी। यह एक दिन के लिये ही नहीं थी किन्तु चातुर्मास काल के पूरे समय तक यही क्रम चालू रहा। संघ के छोटे-बड़े, अमीर-गरीब सभी सदस्य अतिथियों की सुव्यवस्था करते, स्वयं रसोई बनाते, कुओं से पानी लाते और आवश्यकतानुसार बाहर से आने वालों को ठहरने के स्थान पर पहुंचाते थे। ऐसा करने में वे किसी प्रकार की झिझक या लज्जा अनुभव नहीं करते थे किन्तु अपना सौभाग्य मानते थे कि पूज्यश्री के पदार्पण से हमें अपने स्वधर्मी बंधुओं की सेवा का अवसर मिला है। इस अवसर का लाभ लेने की आपस में होड़-सी चलती थी। जिस काम के लिये एक की जरूरत होती थी उसको करने के लिये चार-चार व्यक्ति तैयार रहते थे।

यह चातुर्मास सहयोग, सहकार और एकवाक्यता का अपूर्व प्रतीक था। एक छोटा-सा कस्बा और यातायात के साधन भी कम, लेकिन मानवीय श्रम के समक्ष ये सब बाधायें नगण्य थीं। हजारों की संख्या में दर्शनार्थियों का आना और तत्काल उनके लिये योग्य आवास आदि की समुचित व्यवस्था हो जाना जादू का खेल-सा लगता था।

जन्मजयन्ती

श्रावण कृष्णा द्वितीया को पूज्य आचार्य श्रीजी म. सा. की अड़सठवीं जन्मजयन्ती तप-त्याग पूर्ण वातावरण में सम्पन्न हुई। अन्य दिनों की अपेक्षा उक्त अवसर पर उपस्थिति विशेष थी। सर्वप्रथम

पं. मुनिश्री लालचन्दजी म. सा., श्री ईश्वरचन्दजी म. सा., श्री तोलारामजी म. सा. एवं महासती श्री मनोहरकवरजी म. सा. ने आचार्य श्रीजी म. सा. के जीवन की विशेषताओं और संयम-तप-त्याग साधना आदि का संकेत करते हुए गुणानुवाद किया और अपनी-अपनी भावांजलि अर्पित की। पं. र. मुनिश्री नानालालजी म. सा. (वर्तमान आचार्यश्री) ने गुणानुवाद पूर्वक अपनी विनम्र भावांजलि अर्पित करते हुए फरमाया कि प्रत्येक व्यक्ति प्रतिदिन कुछ समय निकाल कर समभाव चिन्तन की परिपाटी प्रारम्भ करे। जिससे व्यक्ति आत्मदर्शन करते हुए विश्व के प्राणिमात्र के लिये मत्रीभावना एवं समभाव का विकास कर सके। विषमता का कारण व्यक्ति की अपनी-अपनी भावना है। व्यक्ति का स्वार्थ ही दूसरे के अधिकार को हड़पने की कोशिश करता है।

इस संकेत पर अनेक व्यक्तियों ने वैसा चिन्तन-मनन और अभ्यास करने की प्रतिज्ञा ली। श्रावक-श्राविकाओं में से भी कुछ भाई-वहिनों ने गुणगान करते हुए कहा कि आपश्री के वैराग्यमय जीवन से प्रेरणा लेकर अपनी आत्मिक उन्नति के लिये प्रयत्नशील होना ही सही मायने में हमारा भावांजलि का समर्पण माना जायेगा।

अन्त में पूज्य आचार्य श्रीजी म. सा. ने अपने समस्त गुणानुवादों को अतिशयोक्तिपूर्ण बतलाते हुए फरमाया कि सूत्रों में श्रावक-श्राविकाओं को साधुओं का अम्माणिया बताया है। इस दृष्टि से गुणानुवाद रूपी जो भी उपहार आपने मुझे दिये हैं, उनकी रक्षा का उत्तरदायित्व भी आप पर है। आप हमारी ज्ञान-दर्शन-चारित्र की साधना में सहायक बनें और स्वयं भी आत्मकल्याण के मार्ग पर अग्रसर होवें।

जयन्ती के उपलक्ष्य में श्रावक-श्राविकाओं ने उपवास, आयंविल आदि अनेक प्रकार की तपस्यायें कीं और जीवदया एवं लोकोपकारी कार्यों के सहायतार्थ मुक्तहस्त से दान दिया।

चातुर्मास का संक्षिप्त विहंगावलोकन

पूज्य आचार्य श्रीजी म. सा. का चातुर्मास होने से कानोड़-

वासियों के उत्साह, उमंग, स्वधर्मी वात्सल्य एवं आतिथ्य-सत्कार की भावना का संकेत यथाप्रसंग किया गया है और उतने ही उत्साह, उमंग से व्याख्यान, तत्त्वचर्चा प्रार्थना आदि के अवसरों पर उपस्थित होते थे। यद्यपि प्रवचन प्रारम्भ होने का समय तो प्रातः ६ बजे का था लेकिन सूर्योदय से ही आबालवृद्ध नगरजन प्रवचन श्रवण के लिये एकत्रित हो जाते थे। साधारणतया प्रवचन सुनने के लिये प्रतिदिन करीब दो-ढाई हजार श्रोताओं की उपस्थिति हो जाती थी, लेकिन पर्यूषणपर्व जैसे पुण्य अवसरों पर पांच-सात हजार से भी अधिक श्रोताओं की उपस्थिति हो जाना एक साधारण-सी बात थी।

चातुर्मास-काल में पूज्य आचार्य श्रीजी म. सा. एकान्तर तप करते रहे। मुनिश्री मोहनमुनिजी म. सा. ने ४६ दिन की तपस्या की तथा मुनिश्री पारसमुनिजी म. सा. ने २५ दिन की तपस्या का पारणा कर पुनः ६ चौविहार उपवास किये। सन्तों की ज्ञानसाधना का दृश्य तो अलौकिक ही था। पं. मुनिश्री लालचन्दजी म. सा. शास्त्रों के अध्ययन में दत्तचित्त रहते थे तो पं. र. मुनिश्री नानालालजी म. सा. (वर्तमान आचार्यश्री) जिज्ञासुओं, विद्वन्मंडल के प्रश्नों, शंकाओं का शास्त्रानुमोदित तार्किक शैली से सप्रमाण समाधान करके जैनधर्म और दर्शन के सिद्धांतों का विशदरूपेण दिग्दर्शन कराते रहते थे। कर्मठ सेवाभावी मुनिश्री इन्द्रचन्दजी म. सा. जब देखो, तब सन्तों की सेवा में व्यस्त रहते थे।

पूज्य आचार्य श्रीजी म. सा. का स्वास्थ्य साधारणतया ठीक ही रहा। घुटनों में दर्द, मधुमेह का रोग और पेशाब की तकलीफ तो चलती रहती थी लेकिन आसन प्राणायाम, उपवास आदि द्वारा उनका शमन करते हुए आचार्य श्रीजी म. सा. साधना में तत्पर रहते थे और मुमुक्षुजनों को शाश्वत सुख-शांति-प्राप्ति का मार्ग निर्देशित करते रहते थे।

संक्षेप में कहें तो ज्ञानी, ध्यानी, तपस्वी संतजनों के विराजने

से कानोड़ नगर तपोवन की उपमा को सार्थक कर रहा था। यहां के कण-कण में उत्साह था, जीवन था और उससे भी बढ़कर एक प्राणवती चेतना के दर्शन होते थे।

कुछ उल्लेखनीय प्रसंग

चातुर्मास काल में धार्मिक प्रभावना के लिये विविधप्रकार के आयोजन होने के साथ-साथ अनेक समाजोपयोगी कार्य भी सम्पन्न हुए थे। उनमें से कुछएक उल्लेखनीय प्रसंगों का यहां संकेत कर रहे हैं।

कानोड़ के आसपास के गांवों में काफी बड़ी संख्या में खटीकों की बस्ती है। जो अधिकतर मूक प्राणियों का वध करके मांस बेचने का धंधा करते हैं और मांसभोजी हैं। समय-समय पर वे भी आचार्य श्रीजी म. सा. के दर्शन और व्याख्यान श्रवण के लिये आते रहते थे। उनमें से कुछ एक व्यक्तियों ने आपश्री के अहिंसा-करुणा-दया-मैत्री-भावना से ओतप्रोत हृदयस्पर्शी प्रवचनों से प्रभावित होकर जीवन-पर्यन्त के लिये प्राणिवध का त्याग कर दिया और अपने जीवन को सुसंस्कारी बनाने के लिये जैनधर्म अंगीकार करके गुरुमन्त्र ले लिया। इसी प्रकार कई आदिवासियों ने भी मांस-मदिरा आदि दुर्व्यसनों का त्याग कर दिया।

कानोड़ की बोहरा समाज (मुसलमान) के भाइयों की निःस्वार्थ सेवायें सदैव स्मरणीय रहेंगी। दर्शनार्थ आगत व्यक्तियों के लिये उन्होंने अपने घर तक खोल दिये थे और प्रबन्ध-व्यवस्था में भी अपना पूरा-पूरा सहयोग दिया था।

एक बोहरा भाई के मकान में श्री अमृतलालभाई जवेरी बंबई की धर्मपत्नी श्रीमती केशरबेन आदि ठहरे हुए थे। एकदिन मकान मालिक बोहराजी ने उनसे कहा कि आप लोगों को मकान का किराया देना होगा। इस बात को सुनकर श्रीमती केशरबेन ने कहा कि आप जो किराया बतायेंगे, देने को तैयार हैं। तब बोहराजी ने कहा कि मुझे किराया रुपयों में नहीं चाहिये है, लेकिन यह किराया

चाहूँगा कि आचार्य श्रीजी म. सा. का हमारे मकान में पदार्पण हो। अकस्मात एक दिन ऐसा सुयोग मिला कि आचार्य श्रीजी म. सा. श्रीमती केसरबेन के ठहरने के स्थान पर गोचरी के लिये पधार गये। जिससे उन बोहराजी के हर्ष का पार न रहा।

यह भी सुना गया है कि आचार्य श्रीजी म सा. का कानोड़ में चातुर्मास होने की खबर सुनकर वैष्णव समाज के पंडितों ने अपनी अलग व्याख्यानमाला इस हेतु चालू कर दी थी कि वैष्णव समाज के व्यक्ति आचार्य श्रीजी म. सा. के व्याख्यानों में नहीं जायें। लेकिन आचार्य श्रीजी म. सा. के प्रवचन प्रारम्भ होने के पश्चात उन पंडितों पर ऐसा अद्भुत प्रभाव पड़ा कि वे स्वय अपनी व्याख्यानमाला बन्द करके आचार्य श्रीजी म. सा. के प्रवचन सुनने के लिये आने लगे। कानोड़ के मुख्य राजपंडित ने आचार्य श्रीजी म. सा. की स्तुति में कई श्लोक बनाकर चतुर्विध संघ को सुनाये थे।

इन कतिपय उद्धरणों से यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि आचार्य श्रीजी म. सा. का कानोड़ चातुर्मास कितना प्रभावक और गौरवणीय था। जिसकी स्मृतियां आज भी हृदय को हर्ष-विभोर बना देती हैं।

इसी चातुर्मास में अनेकबार श्रमणसंघीय समस्याओं को सुलझाने के लिये कान्फरन्स के शिष्टमंडल उपस्थित होते रहे थे। उन दिनों अन्यान्य समस्याओं के साथ संवत्सरी का प्रश्न भी काफी महत्त्वपूर्ण बना हुआ था। सादड़ी-सम्मेलन में बहुसंख्यक संप्रदायों ने अल्पसंख्यक संप्रदायों के लिये प्रेमभावना प्रदर्शित करने के लिये द्वितीय भाद्रपद में संवत्सरी करना स्वीकार कर लिया था, लेकिन अब उसी संवत्सरी को पुनः द्वितीय श्रावण में करने के लिये अधिकांशतः उन्हीं बहुसंख्यक संप्रदायों एवं कान्फरन्स ने आचार्य श्रीजी म. सा. पर दबाव डालने की चेष्टा की कि आपश्री की भूतपूर्व सम्प्रदाय की परम्परा दूसरे श्रावण की है और शास्त्रीय दृष्टि से भी आप उसका समर्थन करते हैं एवं

श्रमणसंव की पूर्ण सत्ता भी आपके पास है, अतः आपश्री दूसरे श्रावण की संवत्सरी श्रमणसंघ के लिये घोषित कर दीजिये।

इस पर आचार्य श्रीजी म. सा. ने फरमाया कि आप लोगों का कथन मेरी भूतपूर्व परम्परा और शास्त्रीय दृष्टि के अनुकूल होने पर भी जिन अल्पसख्यक संप्रदायों को विश्वास में लेकर प्रेम प्रदर्शित किया गया है और उनके व्यवस्थित रूप से श्रमण संघ में रहते हुए तथा श्रमणसंघ को आगे बढ़ाने के प्रयत्नों की आशा से सवत्सरी के बारे में सहसा कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता है।

इस उत्तर से कान्फरन्स के कुछ प्रमुख नेता और बहुसख्यक श्रमणवर्ग नाराज-सा भी हुआ। लेकिन आचार्य श्रीजी म. सा. उनकी राजी-नाराजी की परवाह न करते हुए नियम की सुरक्षा की स्थिति को लेकर चलते रहे।

विद्वानों, जन नेताओं, कार्यकर्ताओं और दूसरे-दूसरे प्रमुख सज्जनों का समय-समय पर आचार्य श्रीजी म. सा. के दर्शनार्थ कानोड़ आगमन होता रहता था। राजस्थान के माननीय मुख्यमन्त्री श्री मोहन-लालजी सुखाडिया भी आपश्री के दर्शनार्थ कानोड़ पधारे थे और सेवा में उपस्थित होकर तात्त्विक चर्चा करते रहे।

चातुर्मास-समाप्ति और विहार

चातुर्मास धार्मिक प्रभावना के सफल आयोजनों के साथ सम्पन्न हुआ। अनेक श्रीसघ चातुर्मास-समाप्ति के अनंतर अपने-अपने क्षेत्रों को स्पर्श करने के लिये विनती कर रहे थे। उदयपुर श्रीसंघ द्वारा तो उदयपुर स्पर्शने के लिये चातुर्मास प्रारम्भ होने के समय से ही वारम्वार आग्रहभरी विनती हो रही थी। लेकिन आचार्य श्रीजी म. सा. की ओर से कोई आश्वासनात्मक स्थिति नहीं बन सकी। चातुर्मास के पश्चात विहार कर गांव के बाहर जवाहर विद्यापीठ में पधारे और वहां से विहार कर आसपास के गांवों में धर्मदेशना देते हुए बम्बोरा पधारे। इसी समय कान्फरन्स के अध्यक्ष श्री विनयचन्दभाई जवेरी, मंत्री श्री

आनन्दराज जी सुराना आदि के नेतृत्व में कान्फरन्स का एक शिष्ट-मण्डल श्रमणसंघ की समस्याओं के बारे में विचार-विमर्श करने के लिये सेवा में उपस्थित हुआ था।

बम्बोरा के निकटस्थ गांवों में विराजने के समय किसी गांव में दिगम्बर समाज के एक मुनिश्री भी आचार्य श्रीजी म. सा. के पास आये और काफी समय तक तत्त्वचर्चा होती रही। यहां पर भी उदयपुर श्रीसंघ के भाई-बहिन उदयपुर पधारने की विनती लेकर सेवा में उपस्थित हुए और आचार्य श्रीजी म. सा. ने यथावसर सुविधानुसार उदयपुर पधारने की स्वीकृति फरमाई। अनन्तर क्रम-क्रम से ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए आचार्य श्रीजी म. सा. अपने शिष्य सन्तों के साथ उदयपुर पधारे और पहले से ही वहां विराजित प्रान्तमन्त्री मुनिश्री पुष्करमुनिजी म. से मिलना हुआ।

संवत्सरी : कान्फरन्स का प्रस्ताव

इन दिनों श्रमणसंघ की स्थिति और समस्याओं को लेकर चतुर्विध संघ में काफी ऊहापोह चल रहा था। संवत्सरी की एकरूपता के लिये साधुसम्मेलन द्वारा किये गये निर्णय को भी विवादास्पद प्रश्न बना दिया गया था। एतद्विषयक चर्चा करने के लिये जब कान्फरन्स की ओर से एक शिष्टमंडल कानोड़ चातुर्मास के समय आचार्य श्रीजी म. सा. की सेवा में उपस्थित हुआ था, तब वार्तालाप के प्रसंग में आचार्य श्रीजी म. सा. ने श्रमणसंघीय सगठन की तथा साथ ही उसकी सुरक्षा की दृष्टि से जो भी वैधानिक स्थिति थी, उसे उपस्थिति सदस्यों को समझा दी थी कि गुजरात, सौराष्ट्र आदि समस्त स्थानकवासी समाज के श्रमणसंघीय पद्धति के अनुसार श्रमणसंघ में संमिलित होने आदि प्रबलतर कारण के बिना अविधिपूर्वक बृहत् साधुसम्मेलन सादड़ी के सर्वानुमत के प्रस्ताव में फेरफार करना श्रमणसंघ की प्रतिष्ठा व समाज के लिये हितावह प्रतीत नहीं होता है। इसके सिवाय दि. १६-१०-५७ के पत्र द्वारा भी आचार्य श्रीजी म. सा. के इन्हीं विचारों की जानकारी

कान्फरन्स कार्यालय को करा दी थी।

लेकिन कान्फरन्स के नेता तो सामाजिक हितों की उपेक्षा करके भी मनचाहा करने में विश्वास करते थे। अतः इतना सब होने पर भी उन्होंने दि. १६, १७, १८ नवम्बर '५७ को दिल्ली में सम्पन्न श्री अ. भा. श्वे. स्थानकवासी जैन कान्फरन्स की व्यवस्था-समिति तथा श्रमण सपर्क-समिति की बैठक में सवत्सरी विषयक निम्नलिखित प्रस्ताव पारित किया—

'श्रमणसघीय साधुसम्मेलन भीनासर के प्र. नं. ८ द्वारा नियुक्त सवत्सरी-निर्णय-समिति के सयोजक मंत्री मुनिश्री मिश्रीमलजी म. ने सभी सदस्यों से पत्र-व्यवहार के पश्चात संवत्सरी-निर्णय संवन्धी प्रश्न कान्फरन्स को सौंप दिया है। इस पर से कान्फरन्स आफिस ने पुनः समिति के सदस्यों से पत्र-व्यवहार किया। समिति के १७ सदस्यों में से १४ सदस्य इस मत के हैं कि चातुर्मास प्रारम्भ होने से ४९ या ५० वें दिन सवत्सरी मानी जाय। शेष ३ सदस्य सादड़ी-सम्मेलन के प्रस्ताव के अनुसार सवत्सरी मानने के पक्ष में हैं। चूंकि सादड़ी-सम्मेलन के प्रस्ताव के पश्चात प्रस्ताव के पालन के सम्बन्ध में सन् १९५५ में जो परिस्थिति उत्पन्न हुई थी, उस दृष्टि से इस प्रश्न पर पुनः विचार करने हेतु भीनासर साधुसम्मेलन में समिति नियुक्त की गई थी।

'उक्त समिति के सदस्यों का अत्यधिक बहुमत चातुर्मासादिक (आषाढ़ शु० १५) पक्खी से ४९ या ५०वें दिन संवत्सरी मनाये जाने के पक्ष में है। अतः कान्फरन्स की व्यवस्था समिति और श्रमण-संपर्क-समिति उपरोक्तानुसार चउमासी पक्खी (आषाढ़ शु० १५) से ४९ या ५०वें दिन संवत्सरी मनाने का निर्णय देती है तथा समस्त स्था० जैनों से अपील करती है कि संवत्सरी जैसे महापर्व भारत में एक ही दिन मनावें। ताकि समस्त स्था० जैनों में सांवत्सरिक एकता बनी रहे।'

जैनप्रकाश दि० २२ नवम्बर '५७ में उक्त प्रस्ताव के प्रकाशित होने पर चतुर्विध संघ में भ्रम फैलने लगा कि आचार्यश्री गणेश-

लालजी म. सा. व बहुसंख्यक संप्रदायों ने अपनी पूर्व परम्परा के अनुसार अधिक मास होने की स्थिति में आषाढ़ी पक्खी से ४६--५०वें दिन संवत्सरी करने की घोषणा करा कर बृहत्साधुसम्मेलन सादड़ी के प्रस्ताव और अल्पमत को दिये गये विश्वास की उपेक्षा, अवहेलना की है।

लेकिन आचार्य श्रीजी म. सा. का श्रमणसंघ को विघटन करने वाले प्रयत्नों व प्रस्तावों से कुछ भी सम्बन्ध नहीं था और उनका स्पष्ट मत था कि अवैधानिक प्रवृत्तियों के कारण श्रमणसंघ सबल होने की बजाय विशृंखल ही होगा, जो कान्फरन्स के दि० २५-११-५७ के पत्र के उत्तर में व्यक्त भावों से पूर्णरूपेण स्पष्ट हो जाता है—

'कान्फरन्स की तरफ से दि. २५ नवम्बर का पत्र मिला। कान्फरन्स की व्यवस्था-समिति और श्रमण-सम्पर्क-समिति के नाम से ध्वनियंत्र और संवत्सरी विषयक जो प्रस्ताव यहां भेजे, वे जैनप्रकाश के २२-११-५७ के अंक में भी देखे गये। उन्हें पढ़कर बड़ा आश्चर्य-सा हो रहा है कि श्रमणसंघ की ध्वनियंत्र व संवत्सरी आदि समस्याओं के सम्बन्ध में विधिपूर्वक जानकारी कानोड़ चातुर्मास में लिखित रूप में करा देने पर भी श्रमणसंघीय पद्धति की दृष्टि से अविधिपूर्वक प्रस्ताव जैनप्रकाश में प्रकाशित होना विभेद के अंकुर पैदा करना नही है क्या ? और सुव्यवस्था एवं नीतिसंमत है क्या ? इस प्रकार प्रस्तावों के प्रकाशन आदि से समाज एवं बने-बनाये संगठन की क्या अवस्था बन सकती है ? यह आप सरीखे समझदार व्यक्तियों को बहुत ही गम्भीरता से सोचने की आवश्यकता है।

'श्रमणसंघ की अखंडता के साथ संवत्सरी परिवर्तन के प्रबलतर कारण (गुजरात, सौराष्ट्र आदि समस्त स्थानकवासी समाज के श्रमणसंघ में सम्मिलित होने आदि) की स्थिति विधिपूर्वक जब तक सुस्पष्ट न हो जाय, तब तक सादड़ी-सम्मेलन के संवत्सरी विषयक प्रस्ताव के प्रतिकूल पाक्षिकपत्र व तिथिपत्र आदि प्रकाशित करना श्रमणसंघ की प्रतिष्ठा को भारी धक्का पहुंचाने की एवं बने-बनाये

संगठन में विभेद पड़ने की पूरी सम्भावना मालूम दे रही है। अतः कान्फरन्स व उसके द्वारा नियुक्त समिति श्रमणसंघ को विघटित करने वाले अवंध तरीके से वचे और वैध तरीके से सगठन को शुद्धरूप से अखंडता के साथ आगे बढ़ाने में अपनी शक्ति लगावे— यही हार्दिक भावना एवं शासनदेव से प्रार्थना है।'

कान्फरन्स कार्यालय में उक्त पत्र के पहुंच जाने के वाद भी कान्फरन्स के नेताओं और श्रमण-सम्पर्क-समिति के सदस्यों ने समाज के सामने सही स्थिति प्रगट नहीं की एवं अपनी प्रवृत्ति को ही सही वताने के प्रयत्न चालू रखे। परिणामतः समाज यह समझने के लिये मजवूर हो गई कि आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. सादड़ी-सम्मेलन के संवत्सरी विषयक प्रस्ताव की उपेक्षा करके श्रमणसंघ को विघटित करने के लिये तत्पर हो रहे हैं।

समाज की इस रोषमिश्रित प्रतिक्रिया को देखकर भी आचार्य श्रीजी म. सा. मौन रहे कि कान्फरन्स अपनी ओर से सही स्थिति की जानकारी समाज को देती है, या नहीं। लेकिन अन्य समस्याओं के लिये अपनाये गये रुख की तरह ही संवत्सरी विषयक प्रस्ताव के बारे में भी कान्फरन्स ने उदारता का परिचय नहीं दिया। चतुर्विध संघ की ओर से जब वार-वार स्पष्टीकरण करने के लिये मौखिक और पत्रों के माध्यम से समाचार प्राप्त हुए और कान्फरन्स द्वारा भी सही स्थिति नहीं वताई गई तब आचार्य श्रीजी म. सा. की ओर से निम्नलिखित स्पष्टीकरण प्रकाशित किया गया—

'उपाचार्य श्रीजी म. के कानोड़ चातुर्मास में श्रमण सम्पर्क-समिति के सदस्यगण— श्री वनेचन्द भाई, श्री मोहनमलजी चोरडिया, श्री कानमलजी नाहटा आदि उपस्थित हुए थे। श्रमण संघीय समस्याओं के विषय में काफी विस्तार पूर्वक वार्तालाप एवं विचार-विमर्श हुआ और श्रमणसंघीय संगठन की तथा साथ ही सुरक्षा की दृष्टि से जो भी वैधानिक स्थिति थी, वह सभी उपस्थित सदस्यों को समझा दी

गई थी। अनन्तर दि. १६-१०-५७ को लिखित रूप में भी विचार दिये गये थे, उनमें से संवत्सरी विषयक विचार निम्नप्रकार थे—

"श्रमणसंघ की अखंडता के साथ गुजरात, सौराष्ट्र आदि समस्त स्थानकवासी समाज श्रमणसंघीय पद्धति अनुसार श्रमणसंघ में सम्मिलित होने आदि प्रबलतर कारण के बिना अविधि पूर्वक बृहत्साधु सम्मेलन सादड़ी के सर्वानुमत के प्रस्ताव में फिलहाल फेरफार करना श्रमणसंघ की प्रतिष्ठा व समाज के लिये हितावह प्रतीत नहीं होता।

"श्रमणसंघ ने उदारता दिखाकर समस्त समाज की एकता के लिये प्रयत्न का जो संकेत किया, तदनुसार एकता के विषय में जितने प्रयत्न होने चाहिये, उतने हो गये या अवशेष रहे? यदि हो गये हों तो किन-किन की क्या विचारधारायें आईं? वे सारी विचारधारायें यहां भी आने की आवश्यकता है और यदि प्रयत्न पूरे नहीं हुए हों तो भरसक प्रयत्न करने की आवश्यकता है।"

'उपर्युक्त वक्तव्य पर से जनता समझ सकती है कि उपाचार्य श्रीजी महाराज के अपने क्या विचार थे? श्रमणसंघ की विधिवत अखंडता को ध्यान में रखते हुए इस सम्बन्ध में उनकी अपनी क्या धारणायें हैं? उस वक्तव्य के बाद भी स्थिति में कोई नया परिवर्तन नहीं आया है और न परिवर्तन के योग्य कोई वैधानिक महत्त्वपूर्ण अत्यावश्यक प्रश्न ही उपस्थित हुआ है।

'सादड़ी में बहुलपक्ष ने उदारता दिखाकर अपनी पूर्व परम्परा छोड़ी थी तो अब ऐसा कोई प्रबल कारण सामने नहीं है कि उस उदारता की उपेक्षा कर पुनः पुरानी परम्परा पर आया जाये।

'संवत्सरी के विषय में भीनासर बृहत्साधुसम्मेलन ने जिस समिति की नियुक्ति की थी, उसको भी ऐसा अधिकार नहीं दिया गया था कि वह इस प्रश्न को निर्णय के लिये कान्फरन्स को सौंप दे।

'अतः भीनासर-सम्मेलन में निर्मित समिति द्वारा प्रस्तावानुसार व्यवस्था के साथ निर्णय न होने से सादड़ी-सम्मेलन के प्रस्ताव

(भाद्रपद में संवत्सरी करने) का पालन होना मैं वैधानिक समझता हूँ और उसी के अनुसार श्रमणसंघ, श्रावकसंघ संवत्सरी करे, यही अभीष्ट है।'

उपर्युक्तस्पष्टीकरण से यह भलीभांति जाना जा सकता है कि कान्फरन्स की समितियों का निर्णय विधानानुसार नहीं था और सादड़ी-सम्मेलन का सर्व-सम्मत मूल प्रस्ताव निर्विवाद ज्यों-का-त्यों रहता है तथा उसका पालन करना ही श्रमण-संगठन की दृष्टि से आवश्यक हो जाता है। इसी में श्रमणसंघ की प्रतिष्ठा और शोभा थी। लेकिन उक्त निर्णय में भी परिवर्तन करने की अनधिकार चेष्टा करके कान्फरन्स ने श्रमणसंघ के विघटन में और तीव्रता ला दी।

शारीरिक अस्वस्थता : पूर्ववत विहार

आचार्य श्रीजी म. सा. का शारीरिक स्वास्थ्य अच्छा नहीं था। एकान्तर की तपस्या चालू रहने पर भी स्वास्थ्य में कुछ भी सुधार न होने और उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही कमजोरी से चतुर्विध संघ चिन्तित था। अतः उदयपुर श्रीसंघ के प्रमुख-प्रमुख श्रावकों और सन्तों ने उदयपुर में योग्य निदान कराके उपचार कराने की प्रार्थना की। लेकिन आचार्य श्रीजी म. सा. मनोबल के धनी थे और औषधोपचार की बजाय संयम, तप-साधना को स्वास्थ्यसुधार का अमोघ उपचार मानते थे। अतः उत्तर में फरमाया कि अभी मैं तपस्या करके शारीरिक स्वास्थ्य सुधारना चाहता हूँ और औषधि-उपचार न कराकर पूर्ववत् एकान्तर तप चालू रखा।

उदयपुर से विहार कर जब आचार्य श्रीजी म. सा. ग्रामानुग्राम धर्मजागृति करते हुए चित्तौड़गढ़ के आस-पास पधारे तब स्वास्थ्य में और अधिक गिरावट आ गई। विहार-क्षेत्रों में विश्राम का अवसर न मिलने से बुखार भी आने लगा। कमजोरी तो थी ही और बुखार आने से कमजोरी विशेष महसूस होने लगी।

चित्तौडगढ़ श्रीसंघ के सदस्यों को जब यह समाचार ज्ञात हुए तो एक अनुभवी वैद्य को लेकर सेवा में उपस्थित हुए। लेकिन

आचार्य श्रीजी म. सा. ने दवाई लेना स्वीकार नहीं किया और उसी स्थिति में धीरे-धीरे विहार करते हुए चित्तौड़गढ़ पधार गये। लेकिन स्थिति को देखते हुए यहां भी डाक्टरों को दिखाने के लिये प्रार्थना की और बहुत अधिक जोर देने पर देशी औषधि लेना स्वीकार कर लिया। किन्तु बिना निदान के औषधोचार से कुछ लाभ नहीं हुआ।

आगामी चातुर्मास का समय निकट आ रहा था। चातुर्मास-स्वीकृति के लिये मालवा के श्रीसंघों और विशेषतया जावरा श्रीसंघ की ओर से बार-बार विनतियां हो रही थीं। अतः समयानुसार आगारों को रखते हुए आचार्य श्रीजी म. सा. ने सं० २०१५ के चातुर्मास में जावरा विराजने की स्वीकृति फरमाई और शारीरिक स्थिति की परवाह न करते हुए चित्तौड़गढ़ से बेगूं, सिंगोली की ओर विहार कर दिया।

बेगूं आदि ग्रामों का स्पर्श करने के बाद जब सिंगोली में पदार्पण हुआ तो कमजोरी इतनी अधिक हो गई कि एक दिन शौचादि से निवृत्त होकर वापस गांव में पधारने पर बहुत घबराहट बढ़ गई। शरीर में काफी शिथिलता आ गई। ऐसा प्रतीत होने लगा कि इस स्थिति में चातुर्मास के निमित्त जावरा पदार्पण भी हो सकेगा या नहीं। सिंगोली श्रीसंघ के सदस्यों ने अपने यहां ही विराजने और निरोग होने के बाद ही विहार करने की बार-बार विनती की। शारीरिक स्थिति और सिंगोली श्रीसंघ के अत्याग्रह को देखते हुए आचार्य श्रीजी म. सा. कुछ दिन सिंगोली विराजे और वहीं के डाक्टर को दिखाया। स्वास्थ्य-स्थिति में साधारण-सा सुधार दिखाई देने पर थोड़ा-थोड़ा विहार चालू किया। घबराहट के कारण बीच-बीच में विश्राम करते हुए कंजार्डा आदि ग्रामों का स्पर्श करते हुए एक जंगल में पहुंचे। वहां एक मन्दिर बना हुआ था और पास में नाला बहता था। मंदिर का पुजारी पूजा आदि करके सूर्यास्त होने के पहले-पहले गांव लौट जाता था। गांव मन्दिर से करीब २ मील दूर था और रात्रि को नाले में जंगली जानवर पानी पीने आते थे। मन्दिर भी जीर्ण शीर्ण था और

कीड़े-मकोड़ों, डांस, मच्छर की अधिकता से रात्रिविश्राम-योग्य स्थान न दिखने से मन्दिर के बाहर वृक्षों के नीचे पड़ी शिला पर आचार्य श्रीजी म. सा. एवं अन्य सन्तों ने विश्राम कर रात्रि व्यतीत की।

प्रातः काल होने पर आचार्य श्रीजी म. सा. आदि सन्त वहां से विहार कर कुकड़ेश्वर पधारे और रामपुरा, संजीत होते हुए आंतरी गांव में पदार्पण हुआ। यहां कुछ भाइयों में वर्षों से आपसी मनमुटाव चल रहा था। आचार्य श्रीजी के सदुपदेश से दूर होने पर स्थानीय श्रीसंघ और आस-पास के क्षेत्रों में हर्ष का वातावरण छा गया।

आंतरी से विहार कर जब आचार्य श्रीजी म. सा. महागढ़, पीपल्यामंडी, मंदसौर आदि क्षेत्रों को धर्मदेशना से पवित्र बनाते हुए जावरा की ओर गमन कर रहे थे, तब जावरा श्रीसंघ के कुछ सदस्य सेवा में उपस्थित हुए और उन्होंने आपश्री से निवेदन किया कि आपश्री का जावरा पदार्पण कब तक हो जायेगा। लेकिन आचार्य श्रीजी म. सा. को मुहूर्त आदि देखकर चातुर्माससार्थ नगरप्रवेश करना कभी भी इष्ट नहीं रहा था, अतः आपश्री ने फरमाया कि मेरे लिये सभी मुहूर्त अच्छे हैं। विहार करते हुए यथावसर जावरा पहुंचने के भाव हैं।

यथासमय आचार्य श्रीजी म. सा. का चातुर्मास हेतु जावरा में पदार्पण हुआ। स्थानीय श्रावकसंघ और आसपास के क्षेत्रों से आगत भाई-बहिनों ने नगर से ३-४ मील सामने जाकर अगवानी की। चातुर्मास के समय में आपश्री के प्रवचन सुनने के लिये प्रायः सभी नागरिक उपस्थित होते थे। आपश्री की सरल तथा हृदयस्पर्शी वाणी ने श्रोताओं का हृदय इतना आकर्षित कर लिया कि दिनोंदिन प्रवचन सुनने वालों की संख्या बढ़ती गई।

मध्याह्न व सायंकाल तात्त्विक चर्चा वार्ता, शंका-समाधान के समय राज्य-अधिकारी, विद्वान उपस्थित होते और आचार्य श्रीजी म. सा. की अनुभव भरी विवेचनाओं का लाभ उठाते थे।

जावरा पूर्व में नवाबी राज्य था। वहां के नवाब विद्वानों का

आदर और साधु-सन्तों का सम्मान करने के लिये उत्सुक रहते थे। समय समय पर वे भी व्याख्यानों का लाभ लेने के लिये आते और आचार्य श्रीजी के प्रति अपनी श्रद्धा-भक्ति व्यक्त करते थे। आपश्री के व्याख्यान समाज, राष्ट्र, धर्म से सम्बन्धित विषयों पर होते थे। परिणाम यह हुआ कि बहुत-सी सामाजिक कुरीतियां समाज में बंद हुईं तथा कई एक सज्जनों ने व्रत-नियम ग्रहण किये।

इस प्रकार यह चातुर्मास आध्यात्मिक विकास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो रहा था और समाज एवं श्रमणसंघ की व्यवस्था की दृष्टि से भी इस चातुर्मास काल में कई एक महत्त्वपूर्ण कार्य हुए।

श्रमणसंघीय स्थिति और आचार्य श्रीजी का निवेदन

श्रमणसंघ को सबल बनाने एवं शुद्ध सांस्कृतिक धरातल पर टिकाये रखने के लिये आचार्य श्रीजी द्वारा किये गये प्रयत्नों की गंभीरता को न समझकर समाज में एक प्रकार की अनिश्चियात्मक स्थिति का निर्माण किया जा रहा था। श्री अ. भा श्वे. स्थानकवासी जैन कान्फरन्स के प्रयत्न संगठन के उद्देश्य को सफल बनाने में सहकारी नहीं हो सके थे। इसके लिये पहले बंबई, लुधियाना व जयपुर आदि में कान्फरन्स की साधारण सभा की बैठकें भी हुईं और विभिन्न अधिकारी मुनिवरों के पास श्रावकों के शिष्टमंडल भी गये, लेकिन स्थिति जैसी की तैसी बनी रही। इस जटिलता को देखते हुए कान्फरन्स के तत्कालीन अध्यक्ष श्री विनयचन्दभाई जवेरी ने अपना निवेदन प्रकाशित करते हुए अध्यक्ष पद से त्यागपत्र दे दिया। किन्तु समाज के सभी वर्गों के अनुरोध एवं श्रमणसंघीय समस्याओं के निराकरण में अपना पूरा-पूरा सहयोग देने के आश्वासनों को ध्यान रखते हुए उन्होंने अपना त्यागपत्र वापस ले लिया।

इसके अनन्तर समस्याओं को सुलझाने के लिये पुनः प्रयत्न शुरू हुए और विभिन्न मुनिराजों की सेवा में शिष्टमंडल भी भेजे गये। लेकिन खेद है कि शिष्टमंडलों को आश्वासन देने पर भी साधु-

सन्तों की पूर्ववत् प्रवृतियां चलती रहीं । इस स्थिति को लक्ष्य में रखते हुए आचार्य श्रीजी म. सा. ने १५-६-५८ को एक वक्तव्य दिया । वक्तव्य इस प्रकार है—

'श्रमणसंघ की स्थापना से लेकर आज तक सत्य, न्याय, सिद्धान्त एवं श्रमणसंघीय समाचारी आदि को लक्ष्य में रखते हुए ज्ञान, दर्शन, चारित्र की अभिवृद्धि हेतु शुद्धिकरण सहित श्रमणसंघ को दृढ़ बनाने की भावना से जैसा मुझे उपयुक्त जान पड़ा, तदनुसार यथाशक्ति कार्य करता रहा ।

'मगर कुछ समय से कतिपय विषयों को लेकर समाज में कुछ भ्रामक वातावरण परिलक्षित हो रहा है । ऐसे भ्रामक वातावरण को दूर करने के प्रयत्न किये गये और किये जा रहे हैं, पर खेद है कि वस्तुस्थिति को सही रूप में न लेकर वातावरण को और भ्रामक बनाया जा रहा है । अतः वस्तुस्थिति के दिग्दर्शन पूर्वक अपना निवेदन संघ के सामने रख देना चाहता हूँ—

'१– भीनासर सम्मेलन में सुत्तागमे विषयक निर्णय आचार्य श्रीजी म. (आतमारामजी म. सा.) पर छोड़ा गया । उस प्रस्ताव की पक्तियां निम्नप्रकार हैं—

> 'प. मुनिश्री फूलचन्दजी म. (पुप्फभिक्खु) द्वारा संपादित "सुत्तागमे" विषय में निर्णय किया गया कि— सूत्रपाठ में पुष्टावलम्बन एव खास प्रमाण विना परिवर्तन करना इष्ट नहीं है । अतः वे अपने विचार आचार्य श्रीजी की सेवा में भेज दें । फिर वे (आचार्य श्रीजी म.) जो निर्णय देंगे, वह श्रमणसघ को स्वीकार होगा ।'

'पर आचार्य श्रीजी म. की तरफ से निर्णय आज दिन तक समाज के सामने नहीं आया ।

'२-- प्रधानमन्त्री व्याख्यानवाचस्पति श्री मदनलालजी म. श्रमणसंघ का कार्य सुचारू रूप से कर रहे थे, लेकिन आचार्य श्रीजी

म. व प्रधानमन्त्रीजी म. के बीच में पत्र-व्यवहार आदि के प्रसंग से कुछ ऐसा वातावरण बना, जिस पर प्रधानमन्त्रीजी म. ने प्रधानमन्त्री पद का त्यागपत्र आचार्य श्रीजी म. की सेवा में पेश कर दिया।

'इस मामले को निपटाने के लिये कान्फ्रेंस की ओर से भी प्रयत्न हुए और प्रधानमन्त्रीजी म. ने कान्फ्रेंस को स्पष्ट लिखवा दिया था कि—

'मैं अब तक मौन हूँ तब तक मौन ही रहूँगा, जब तक आचार्य श्रीजी से मुझे सीधा समाधान नहीं होता।'

'यह समस्या भी अभी तक अस्पष्ट ही बनी हुई है।

'३—भीनासर-सम्मेलन में ध्वनियन्त्र-विषयक जो कुछ हुआ, वह प्रस्ताव के रूप में विद्यमान है। लेकिन अपवाद क्या है? प्रायश्चित्त क्या लेना? और स्वच्छन्दता क्या है? इन तीनों बातों का निर्णय भीनासर-सम्मेलन में नहीं किया गया। इस विषयक स्पष्ट घोषणा ता० १-८-५६ को आचार्य श्रीजी म. की तरफ से हो चुकी थी। इसके पश्चात तीनों शब्दों के विषय में आचार्य श्री म. और मेरे (उपाचार्य श्रीजी म. के) संयुक्त निर्णय की बात सामने आई और वह विषय दोनों के ऊपर छोड़ दिया गया। लेकिन यह विषय निम्न पंक्तियों-अनुसार दोनों में से एक के ऊपर ही आ गया। इस सिलसिले में एक पत्र की वे पंक्तियां इस प्रकार हैं—

'लाउडस्पीकर का पूरा निर्णय आचार्यश्री ने उपाचार्यश्री को सौंपा है। उपाचार्यश्री उपाध्यायमंडल और मन्त्रिमण्डल के परामर्श से जो कुछ निर्णय करेंगे आचार्यश्री को स्वीकार होगा।'

'इसका भी ध्यान रखते हुए मैंने व्यवस्था करने की दृष्टि से ध्वनियन्त्र के विषय को हाथ में लिया है और जो प्रयत्न हुए, उसके परिणामस्वरूप अधिकारी मुनियों के अभिप्राय पूर्वक जो स्थिति थी वह 'ध्वनियन्त्र विषयक सूचना' पत्र के रूप में ता० १६ अक्टूबर १९५७ को सभी अधिकारी मुनियों के पास भिजवा दी। इसके बाद इस विषय

में किसी को कुछ कहने का अवकाश ही नहीं रह जाता। तथापि आचार्य श्रीजी म. की तरफ से ता० १०-१२-५७ का पत्र देहली कान्फ्रेंस को पहुंचा। जिसमें आचार्य श्रीजी म. ने यन्त्रविषयक सूचना-पत्र पर असहमति प्रकट की और अवैधानिक बतलाया। जिसकी नकल कान्फ्रेंस आफिस से यहां आई। उसका उत्तर ता० २५-१२-५७ को दिलाया गया। इस बीच ता० १६-१२-५७ का आचार्य श्रीजी म. की तरफ से सीधा भी पत्र आया। उसका उत्तर ता० २१-१२-५७ को लिखाते हुए आचार्य श्रीजी म. को यह अर्ज करवाई कि—

'ध्वनियन्त्र विषयक सूचनापत्र में आचार्य श्रीजी म. को कौनसी पंक्ति अवधानिक मालूम देती है ? लिखवाने की कृपा करावें, ताकि उस विषय में लिखवाया जा सके।'

'इसके पश्चात भी उस विषय की तरफ कई वक्त आचार्य श्रीजी म. का ध्यान आकर्षित किया गया, पर आज दिन तक उत्तर नहीं आया और आचार्य श्रीजी म. ने ध्वनियन्त्र विषयक सूचनापत्र पर जो असहमति प्रकट की तथा अवैधानिक बतलाया, जिसके परिणाम-स्वरूप ध्वनियन्त्र के प्रयोगकर्ताओं में से कई मुनिवरों ने प्रायश्चित्त नहीं लिया, जो कि श्रमणसंघ की व्यवस्थानुसार प्रायश्चित्त हर हालत में लेना अनिवार्य था। पर प्रायश्चित्त नहीं लेने से संतवर्ग के सांभोगिक सम्बन्ध में बाधा आई, जो प्रयत्न करने पर भी आज दिन तक ठीक नहीं हो पाई।

४– पाली-प्रकरण आदि की घटनायें भी समाज के सामने आईं, तब पता चला कि कई व्यक्तियों के संयम विघातक पत्र-व्यवहार लम्बे अर्से से चालू हैं। वे पत्र सहसा पाली-कांड में पकड़े गये, जिससे जनमानस में अत्यधिक दूषित वायुमडल हो गया और आवाज आ रही थी कि ऐसे व्यक्ति साधुवेश के योग्य नहीं रहते आदि काफी विक्षुब्धता का वातावरण चल रहा था। अन्य मतावलंबियों में हंसी होने का प्रसंग आ रहा था और शिथिलाचार के विषय को हाथ में लेने के

लिये कान्फ्रेंस के अधिकारियों के भी पत्र आ रहे थे। उनमें एक पत्र में ता. १४-१-५७ को श्री श्वे. स्था. जैन कान्फ्रेंस के भूतपूर्व अध्यक्ष स्वर्गीय श्री विनयचन्दभाई ने लिखा था कि—

'आप आज श्रमणसंघ के उपाचार्य हैं और आचार्य की भी सर्व सत्ता आपके पास है। इस हालत में अगर भ्रष्टाचार न रोकोगे तो श्रावकसंघ तो अपना कार्य करेगा।'

'इधर संगठन में कुछ विघटन का वातावरण भी परिलक्षित हो रहा था, तब यह मामला मेरे पास पहुंचा। आचार्य श्रीजी म. तथा कतिपय अधिकारी मुनियों ने भी शिथिलाचार के विषय को निपटाने के लिये कहलवाया। इस कथन पर भी ध्यान देकर मैंने इस विषय की छानबीन की और समग्र स्थिति का अध्ययन कर शिथिलाचारियों के विषय में फैसले दिये और जिनके साथ श्रमणोचित व्यवहार विच्छेद किया गया, उसकी सूचना ता. ५-३-५७ के पत्र द्वारा कान्फ्रेंस के मार्फत सभी अधिकारी मुनियों के पास पहुंचवाने के लिये भिजवा दी। इसके उत्तर में कान्फ्रेंस का भी यहां के निर्देशानुसार उक्त सूचना अधिकारी मुनियों के पास भेजने का पत्र आ गया।

'इस प्रकार शुद्धिकरण की व्यवस्था चल रही थी कि अजमेर मेरवाड़ा तथा उसके आसपास के कुछ क्षेत्रों में रूपचन्दजी आदि विषयक भ्रामक वातावरण कर्णगोचर होने लगा। इस पर विचार हुआ कि समाज इससे सावधान रहे और भ्रामक वातावरण और न फैले, इसके लिये रूपचन्दजी, लक्षमाजी, नगीनाजी आदि व्यक्तियों के विषय में अजमेर में दिये गये फैसले को (जिस पर आचार्य श्रीजी म. भी ता० १५-३-५७ को हर्ष व्यक्त फरमा चुके थे) मद्देनजर रखते हुए पुनः जो ताजी सूचना की वह भी अधिकारी मुनिवरों एवं समाज के प्रमुख व्यक्तियों द्वारा समाज के पास पहुंचाने के लिये कान्फ्रेंस के पास भिजवा दी। इसके पूर्व आचार्य श्रीजी म. की सेवा में भी भिजवा दी गई थी।

'इसके बाद लुधियाना से आचार्य श्रीजी म. भी यहां से की

गई व्यवस्था की उपेक्षा कर शुद्धिकरण का पालन नहीं करने में प्रयत्नशील व्यक्तियों के द्वारा उत्पन्न किये गये वातावरण में रस लेते हुए प्रतीत हो रहे हैं, जिससे ऐसे व्यक्तियों को प्रोत्साहन मिल रहा है। इस प्रकार एक के बाद एक परिस्थिति उत्पन्न होते रहना शोभास्पद नहीं है।

'मैंने समाजसेवक के नाते श्रमण संगठन को शुद्धिकरण पूर्वक टिकाये रखने के लिये मेरी बुद्धि अनुसार वस्तु स्थिति को समझकर जो कुछ भी बन पड़ा, किया। परन्तु उसमें कतिपय व्यक्तियों की तरफ से सहयोग की अपेक्षा बाधायें अधिक सामने लाई गईं और अब भी अपेक्षित सहयोग का अभाव भी सामने आ रहा है। अस्तु।

'समाज का कार्य सभी प्रमुख व्यक्तियों के हार्दिक सहयोग पर विशेष अवलंबित रहता है। इसमें कौन किस कार्य में कितना सहयोग प्रदान कर रहे हैं, यह समाज के सामने है। शिथिलाचार और वह भी अनैतिक जीवन स्वरूप जो साधु-संस्था पर एक कलंक है, उसमें व सैद्धान्तिक विषय में गोलमाल की स्थिति सहन नहीं की जा सकती। अतः मैं गोलमाल की स्थिति में उलझे रहना पसंद नहीं करता।

'आज समाज के कुछ जिम्मेदार व्यक्ति भी हर बात में गोलमाल करना चाहते हैं और उनकी इच्छानुसार कार्य न होने पर वे संघ तोड़ने की आवाज उठाने लग जाते हैं।

'इतना ही नहीं आचार्य श्रीजी म. भी निर्णीत मामलों को उलझाने वाले व्यक्तियों की बातों में आकर यहां से की गई व्यवस्था के प्रतिकूल अध्यादेश तक निकाल देते हैं, जिसके परिणामस्वरूप बड़े परिश्रम के बने बनाये संगठन में विभेद हो जाता है।

'ऐसी परिस्थिति में फिलहाल यह निवेदन करना आवश्यक हो गया है कि जो श्रमणवर्ग शास्त्रीय एवं श्रमणसंघीय समाचारी का तथा उसके संरक्षणार्थ यहां से की गई व्यवस्था का पालन करेगा, उसी श्रमणवर्ग के साथ श्रमणसंघीय सांभोगिक व्यवहार आदि रह सकेगा।'

सर्वप्रथम उक्त निवेदन को मुनिवरों तथा कान्फरन्स के पास भिज-

वाया गया था । परन्तु जब किसी ने भी इस वक्तव्य पर ध्यान न दिया तो चतुर्विध संघ को श्रमणसंघीय समस्याओं के सम्बन्ध में आचार्य श्रीजी म. सा. के प्रयत्नों और सही स्थिति से अवगत कराने के लिये जावरा श्रीसंघ ने वक्तव्य को मुद्रित करवाकर यथास्थान सभी श्रीसंघों को भेज दिया गया ।

निवेदन की प्रतिक्रिया

इस निवेदन के प्रकाशित होने से श्रमणसंघ की वर्तमान स्थिति, आचार्य श्रीजी के दृष्टिकोण एवं संघ को निर्बल बनाने वाले कार्यों के प्रति श्रमणसंघीय अधिकारी मुनिवरों के कार्यकलापों का वास्तविक चित्रण समाज के समक्ष आ चुका था । अभी तक समाज अनुमानित आधारों पर ही श्रमणसघ की स्थिति का मूल्यांकन करती रही थी, लेकिन निवेदन से उसके अनुमान सुदृढ़ हुए । सघ-सगठन के लिये ऊपरी तौर पर उपाय करने वाले समाज के नेताओं को भी अपनी स्थिति का आभास हुआ । उनके द्वारा अब वास्तविकता को छिपाना संभव नहीं रहा था और न वे ऐसा कोई कारण बतला सकते थे, जिससे समाज को अधिक समय तक भुलावे में रखा जा सके । अतः उससे उबरने के लिये उनके सामने सिर्फ एक ही रास्ता रह गया था कि वे अभी तक की स्थिति और उसके लिये किये गये कार्यों की जानकारी समाज के सामने रख दें ।

इस बात को ध्यान में रखते हुए आचार्य श्रीजी से समस्याओं के समाधान के बारे में विचार-विमर्श करने के लिये श्री अ. भा. श्वे. स्थानकवासी जैन कान्फरन्स की साधारण सभा का अधिवेशन जावरा में दि. १६-१०-५८ को किया गया । इस अधिवेशन का विशेष महत्त्व था कि यदि स्थिति की गम्भीरता को न समझकर पूर्ववत कार्य चलता रहा तो श्रमणसंघ का नाम शेष रह जायेगा । अधिवेशन के समय कान्फरन्स के नेताओं ने संगठन को निर्बल बनाने वाले ज्वलंत प्रश्नों के बारे में यथार्थ स्थिति समझने में पूरा मनोयोग लगाया और आचार्य

श्री गणेशलालजी म. सा. से भी चर्चा-वार्ता की।

चर्चा में भाग लेने वाले भूतपूर्व बंबई धारासभा के अध्यक्ष श्री कुन्दनमलजी फिरोदिया, श्री आनन्दराजजी सुराणा, श्री जवाहरलालजी मुणोत आदि कान्फरन्स के प्रमुख अग्रणी थे। उन्होंने आचार्य श्रीजी म. सा. से प्रार्थना की कि श्रमणसंघ को सुदृढ़, स्थायी बनाने के लिए मार्ग-दर्शन देने की कृपा करें। इस पर आचार्य श्रीजी म. सा. ने फरमाया कि मैंने श्रमणसंघ को ज्ञान-दर्शन-चारित्र की सुरक्षा के साथ सुदृढ़, स्थायी बनाने के लिए यथाशक्ति प्रयास किया और कर रहा हूँ। लेकिन अपेक्षित सहयोग के अभाव में उस प्रयास में बाधा उपस्थित हो रही है। एतदर्थ समाज के प्रमुख वर्ग को इस बात की सावधानी दिलाने की दृष्टि से भी दि. १५-६-५८ को निवेदन समाज के सामने रख दिया। समाज के आप प्रमुख हैं अतः इसका आप भलीभांति अवलोकन करें और सम्बन्धित पत्र-व्यवहार भी आप देखें। उसमें तटस्थ दृष्टि से आप चिन्तन करके बतावें कि मैंने जो प्रयास किये हैं, उनमें कोई त्रुटि रही हो तो उसका परिमार्जन मैं पहले करने को तैयार हूँ और यदि आपको त्रुटि मालूम न हो और सम्बन्धित श्रमणवर्ग की त्रुटि मालूम होती हो तो उस श्रमणवर्ग को विनय पूर्वक निष्पक्ष दृष्टि से कुछ कहें और त्रुटि का परिमार्जन करायें, जिससे श्रमणसंघ की सुरक्षा ज्ञान-दर्शन-चारित्र की भूमिका पर भलीभांति हो सके। यह कार्य सबके हार्दिक सहयोग पर अवलम्बित है। अतः आप पहले निवेदन और उससे सम्बन्धित प्रमाण भलीभांति देख लें।

तदनन्तर श्रावक समाज के उन प्रमुख कर्णधारों ने श्रमणसंघ में व्याप्त शिथिलाचार सम्बन्धी, ध्वनियन्त्र-विषयक, सुत्तागमे आदि जटिल समस्या विषयक पत्र व्यवहार, आचार्यश्री आत्मारामजी म. सा. से लेकर श्रमणसंघ के अधिकारी व प्रमुख मुनिवरों के द्वारा समय-समय पर दिलवाये गये पत्र और पत्रस्थ विषयों को एवं शास्त्रीय दृष्टिकोण को, श्रमणसंघीय नियमों को ध्यान में रखकर आचार्यश्री गणेशलालजी

म. सा. के द्वारा की गई व्यवस्था आदि विषयक पत्र अवलोकन किये और अवलोकन करने के पश्चात् वे जिस निष्कर्ष पर पहुंचे उसको आचार्यश्री गणेशलालजी म. सा. के समक्ष प्रस्तुत किया और अर्ज की कि हमने सभी दृष्टि से पत्रव्यवहार का भलीभांति अवलोकन किया और समझ पाये हैं कि यहां कोई त्रुटि नहीं है। जहां त्रुटि है वहां हम प्रयास करना चाहते हैं, इसलिए हमको कुछ समय मिलना चाहिए और कुछ पत्रों की प्रतिलिपियां भी हम चाहते हैं।

इस पर आचार्यश्री गणेशलालजी म. सा. ने फरमाया कि आप मुझसे समय ले सकते हैं और ज्ञान-दर्शन-चारित्र की सुरक्षा के साथ संगठन के प्रयास के लिए जिन भी पत्रों की आप प्रतिलिपियां चाहते हों, लें लीजिये। पत्रों की प्रतिलिपि लेने के बाद उन्होंने कहा कि आचार्य श्री आत्मारामजी म. सा. को तो सन्मान की दृष्टि से पद दिया गया है, उन्होंने बीच ही में ऐसी बातें क्यों कीं ? एतद्विषयक हम यहां कुछ निर्णय भी करें तो उपयुक्त नहीं रहेगा। लुधियाना जाकर फिर कुछ करें तो ठीक रहेगा।

आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. भी यही चाहते थे कि श्रमणसंस्कृति की सुरक्षा के लिये चतुर्विध संघ को अपनी जिम्मेदारी समझना चाहिये। स्थिति की गम्भीरता को समझते हुए अधिवेशन में एक प्रस्ताव पारित किया गया। जिसमें उल्लेख था कि मन्त्री मुनिश्री मिश्रीमलजी म. के शिष्य के लिये जो फैसला उपाचार्य श्रीजी म. ने फरमाया है, उसके लिये आचार्य श्रीजी म. ने हर्ष प्रकट किया व मन्त्री मुनिश्री मिश्रीमलजी म. व श्री रूपचन्दजी ने भी सहर्ष स्वीकार किया। इसके लिये उसके विपरीत जाने का प्रश्न नहीं रहता। तथापि आचार्य श्री आतमारामजी म. सा. कागजात देखना चाहते हैं तो वे कागजात कान्फरन्स की कमेटी उनके पास जाकर बतला दे आदि।

इस प्रस्ताव के परिपालनार्थ एवं समाज की आकांक्षाओं के समाधानार्थ श्री कुन्दनमलजी फिरोदिया के नेतृत्व में एक शिष्टमंडल

का गठन हुआ और जिन पत्रों की प्रतिलिपि लीं तथा जिस स्थिति को उन्होंने समझा, उसका कमेटी समाप्त होने के बाद लगभग एक महीने तक अध्ययन किया और सम्बन्धित व्यक्तियों से पूछताछ व जांच-पड़ताल भी की। अनन्तर यह सोचा कि श्री कुन्दनमलजी फिरोदिया की वृद्धावस्था और स्वास्थ्य को देखते हुए बार-बार लंबी यात्रा होना सभव नहीं है और उनके बिना शिष्टमडल प्रभावहीन रहेगा। इसलिये भूतकालीन समस्याओं को सुलझाने के साथ-साथ भविष्य के विषय में भी सुव्यवस्थित स्थिति बनाने के लिए शिष्टमंडल सबसे पहले आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. की सेवा में उपस्थित होकर भविष्य के विषय में मार्गदर्शन ले, ताकि सभी स्थिति एक ही बार के प्रयत्न से स्पष्ट हो जाये।

इस विचार को ध्यान में रखकर शिष्टमण्डल दि. २७-११-५८ को जावरा आचार्य श्रीजी की सेवा में उपस्थित हुआ और उसने दो-दिन तक सारे तथ्यों का पूर्णरूपेण गहराई से अध्ययन किया। प्रायः सब समस्याओं का हल और मार्गदर्शन आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. से प्राप्त किया लेकिन एकाध विषय में कुछ बात अटक-सी गई थी। इस पर शिष्टमंडल के सदस्य सोचने लगे कि इस छोटी समस्या का भी समाधान हमको यहां पर सतोषजनक तरीके से प्राप्त हो जाता है तो शिष्टमण्डल उत्साह के साथ आगे बढ़ सकता है और यदि ऐसा नहीं बनता है तो जरा-सी कमी के कारण हमारी स्थिति अधूरी रह जाती है। इस स्थिति में फिलहाल शिष्टमण्डल अन्यत्र नहीं जाकर यहां से ही वापस लौटना चाहता है। ऐसा सोचकर लुधियाना के लिए गये टिकटों को वापस करने के लिए किसी व्यक्ति को स्टेशन भेज दिया। इसी बीच आचाय श्री गणेशलालजी म. सा. ने फरमाया कि आप लोग यहीं पर ज्यादा जोर लगाते हो, लेकिन कोई बात नहीं। यदि मूल महाव्रतों में और शास्त्रीय मौलिक स्थिति में किसी भी प्रकार की मोड़ न आये तो इस स्थिति के साथ मैं अपनी सप्रदाय की परम्परा को भी

सुसंगठन के हक में गौण करने को तैयार हूँ। आचार्य श्रीजी म. सा. के इतना फरमाते ही शिष्टमण्डल के सदस्यों में उत्साह आ गया और जयनाद करने लगा तथा कहने लगा कि हमें यहां पर पूरी सफलता मिली है, अब हम यहां से लुधियाना जाना चाहते है। फिर हम संबंधित अन्य स्थानों पर जायेंगे और श्रमणसंघीय स्थिति को सुदृढ़ करने भरसक प्रयत्न करेंगे आदि भाव व्यक्त करके शिष्टमण्डल ने मांगलिक पाठ सुनकर दि. २६-११-५८ को लुधियाना के लिये प्रस्थान किया। वहां शिष्टमंडल दि. १-१२-५८ को पहुंचा और उसी दिन अपना वक्तव्य दे दिया कि शिष्टमंडल असफल रहा। किन्तु शिष्टमडल की असफलता के बारे में किसी प्रकार की जानकारी नहीं दी गई कि अमुक कारण से शिष्टमंडल असफल रहा। इसके बारे में समाज ने स्पष्टीकरण की मांग भी की लेकिन नेतागण मौन ही रहे और आज तक भी अपनी असफलता के कारणों को बताने में मौन धारण किये हुए हैं। इस मौन का परिणाम यह हुआ कि श्रमणसघ की स्थिति सुदृढ़ होने की अपेक्षा दिनोंदिन निर्बल बनती गई और शनैः-शनैः नाममात्र का संघ रह गया।

असफलता के सूत्रधार

शिष्टमडल की लुधियाना में वार्ता यद्यपि सीमित थी। जिन बातों के बारे में बातचीत करनी थी, वे सब आचार्य श्री आत्मारामजी म. सा. के पास पहले ही पत्रों द्वारा भेजी जा चुकी थीं। शिष्टमडल को तो सिर्फ इतना बतलाना था कि आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. द्वारा की गई कार्रवाई संघ-सुदृढ़ता की दृष्टि से योग्य और आवश्यक थी। इसके बारे में कोई गुप्त मंत्रणा करने का भी अवकाश नहीं था, जिसे समाज के समक्ष प्रकट करने में विवशता प्रतीत होती थी।

फिर भी वार्ता को असफल बनाने के मुख्य सूत्रधार लुधियाना में आचार्य श्री आत्मारामजी म. सा. के पास रहने वाले श्री ज्ञानमुनिजी थे। उक्त मुनि ही विशेषकर आचार्य श्री आत्मारामजी म. सा. के

पत्रों को पढ़ने-पढ़ाने का कार्य करते थे। पाली शिथिलाचार कांड में ज्ञानमुनिजी भी सम्बन्धित थे और ध्वनिवर्धक यन्त्र में भी बोल चुके थे। शिष्टमंडल आचार्य श्रीजी से उन पत्रों के बारे में वार्तालाप करना चाहता था जिन्हें ज्ञानमुनिजी अपने अनाचार-प्रकाशन की दृष्टि से अच्छा नहीं मानते थे। अतः उन्होंने वार्ता आगे चलने ही नहीं दी और यह कहकर इन्कार करवा दिया कि असल पत्र साथ क्यों नहीं लाये? इस पर श्री कुन्दनमलजी फिरोदिया ने कहा कि असली पत्रों में और इनमें कोई अन्तर नहीं है। मैं विश्वास दिलाता हूँ कि यह उन्हीं पत्रों की प्रतिलिपि हैं। लेकिन ज्ञानमुनिजी तो इस बात को आगे बढ़ने ही नहीं देते थे और ऐसे शब्दों का प्रयोग किया जिससे फिरोदियाजी आदि शिष्टमंडल के सदस्यों को मानसिक ग्लानि हुई और शिष्टमंडल का अन्यत्र जाना रोक करके सब अपने-अपने स्थान लौट गये।

यदि शिष्टमंडल के सज्जन इस अनुचित बात का विरोध कर, व्यक्तिविशेष की उपेक्षा कर दृढ़ता का परिचय देते और तुष्टिकरण की नीति न अपनाई जाती तो यह निश्चित है कि श्रमणसंघ की जटिल समस्याओं का समाधान होकर अनुशासन को बल मिलता। लेकिन शिष्टमंडल की इस असफलता का परिणाम यह हुआ कि ध्वनिवर्धक-यन्त्र प्रयोग तथा पालीकांड के कारण श्रमणवर्ग के परस्पर टूटे हुए संभोगों की दरार और चौड़ी होती गई।

इस स्थिति के पश्चात्

शिष्टमंडल की असफलता चतुर्विध संघ को ज्ञात हो चुकी थी और दिनोंदिन श्रमणसंघ की स्थिति में बिगाड़ होता जा रहा था। इसके बारे में श्रमणसंपर्क समिति के संयोजक श्री कानमलजी नाहटा ने रूपचन्दजी के विषय में एक विस्तृत स्पष्टीकरण श्री अ. भा. श्वे. स्था. जैन कान्फरन्स को प्रकाशनार्थ भेजा। जिसमें पालीकांड से संबंधित साधु-साध्वियों के बारे में अभी तक हुई कार्रवाई एवं श्रमणसंघ में आचार्य, उपाचार्य की वैधानिक स्थिति आदि का सविस्तृत वर्णन किया

गया था। लेकिन खेद है कि स्पष्टीकरण के तथ्यपूर्ण और युक्तियुक्त होने पर भी उसे प्रकाशित नहीं किया गया। यद्यपि श्री आनन्दऋषिजी म. ने भी इस स्थिति के ज्ञात होने पर अपना मंतव्य प्रकट करते हुए बतलाया था कि उपाचार्य श्रीजी का मुनि रूपचन्दजी आदि के बारे में दिया गया निर्णय युक्तियुक्त एवं संयमपालन की भूमिका बनाने की दृष्टि से आवश्यक है।

शिष्टमंडल को पालीकांड की पूरी जानकारी थी तथा श्रमण-संपर्क-समिति के संयोजक ने भी अन्य तथ्यों को समाज के सामने रखने का प्रयत्न किया एवं श्रमणसंघ के मूर्धन्य सन्त पालीकांड के लिये आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. के निर्णय से सहमत थे। फिर भी व्यक्तिगत दुराग्रह के समक्ष चतुर्विध संघ के प्रमुख अपना साहस नहीं बतला सके और अपने कर्तव्य-पालन से च्युत हुए तथा श्रमणसंघ का आदर्श सदा सदा के लिये समाप्त हो गया।

आचार्य श्रीजी की भावना का दिग्दर्शन

आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. ने सं० २००९ के सादड़ी-सम्मेलन के अवसर पर उपस्थित मुनिवरों के निवेदन, अनुरोध और आग्रह को लक्ष्य में लेते हुए श्रमणसंघ का नेतृत्व अंगीकार किया था। उनकी इच्छा नहीं थी कि पद प्राप्त कर अपने प्रभाव का प्रदर्शन करें। लेकिन यह भावना अवश्य थी कि श्रमण भगवान महावीर की श्रमण-परम्परा अपने आदर्श, साधना और मार्ग को शुद्ध और शास्त्रीय मर्यादानुकूल बनाये। उन्होंने श्रमणसंघ के महत्त्व को भलीभांति समझा था, लेकिन जैसे-तैसे श्रमणसंघ को टिकाये रखने के पक्ष में नहीं थे। वे चाहते थे कि श्रमणसघ की नींव ठोस आधार पर हो और इसी लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए उन्होंने सदैव शास्त्रसम्मत आज्ञाओं के पालन करने और समस्याओं के बारे में सही दृष्टिकोण अपनाने पर भार दिया था।

शास्त्र-साक्षी के समक्ष उन्होंने न तो अपने के प्रति पक्षपात दिखलाया और न दूसरों को प्रभावित करने की चेष्टा ही की थी।

उन्हें जो सत्य, तथ्य, हित और पथ्य प्रतीत हुआ, उसके अनुसार कार्रवाई की। यही कारण है कि आज आचार्य श्रीजी द्वारा दी गई व्यवस्थाओं के विरुद्ध किसी को बोलने की गुंजाइश नहीं है। सभी उनके कार्यों को सही मानते हैं और पूर्ण श्रद्धा भक्ति रखते हैं।

यद्यपि श्रमणसंघ के सबल समर्थक आचार्य श्रीजी आज हमारे समक्ष नहीं हैं। लेकिन उनके आदर्श, उनके विचार, उनके आचार-विचार की परम्परा का प्रकाश विद्यमान है और आशा है कि उनकी भावना को बलवती बनाने के लिये चतुर्विध संघ के प्रयत्न यथार्थ भूमिका पर प्रारम्भ होंगे।

सांध्यवेला

स्थिरावास के लिये श्रीसंघों की विनती

आचार्य श्रीजी के जीवन की संध्यावेला के प्रारम्भ होने के लिये समय की कोई लक्ष्मणरेखा नहीं खींचीं जा सकती है। लेकिन पूर्व में हुई भयंकर मूत्रकृच्छ्र रोग की वेदना से शारीरिक स्थिति दिन-प्रतिदिन निर्बल होती जा रही थी। अब तो शारीरिक स्थिति ऐसी हो चुकी थी कि किसी एक शांत, संयमसाधना में सहायक और उत्तम जलवायु वाले स्थान में स्थिरावास होना उपयुक्त है।

अलवर में हुई शल्य-चिकित्सा के पश्चात आचार्य श्रीजी उत्तरोत्तर अशक्त होते गये, लेकिन अपने संयमित भोजनपान और आत्मबल की प्रबलता के कारण ही दूर-दूर के क्षेत्रों में विहार करने में समर्थ हो सके थे। रोग के साथ वृद्धावस्था और वृद्धावस्था के कारण रोग का प्रबल वेग विहार-क्रिया में भी रुकावट डालने लगा था।

आपश्री मुनि-जीवन के प्रारम्भिक समय से ही जन-जन के श्रद्धेय और संयम के सजग प्रहरी बन चुके थे। मेवाड़, मारवाड़, मालवा, महाराष्ट्र, पूर्वी उत्तरप्रदेश और दिल्ली प्रान्त को आपने अपनी उत्कृष्ट प्रतिभा से प्रभावित तो किया ही था किन्तु साथ ही थली के रजकणों में आपने अपनी विद्वत्ता, चारित्रशुद्धि और दूरदर्शिता की अमर छाप लगाई थी। जो आज भी उन प्रदेशों के निवासियों द्वारा स्मरणीय है। यदि समूचे धार्मिक इतिहास पर दृष्टिपात किया जाये तो ऐसे महापुरुष उंगलियों पर गिनने योग्य मिलेंगे जो अपने आचार-विचार की शुद्धि एवं विद्वत्ता से जनसाधारण को प्रभावित कर सदा-सदा के लिये उनके श्रद्धेय बने हों।

आचार्य श्रीजी की शारीरिक स्थिति को देखकर अनेक क्षेत्रों के श्रीसंघों की भावना थी कि इस समय आपश्री हमारे क्षेत्र में

स्थिरावास कर हमें सेवा का अवसर दें। विशेषकर रतलाम, बीकानेर, ब्यावर, उदयपुर आदि प्रमुख श्रीसंघ अपने-अपने क्षेत्र में पदार्पण करने के लिये बारम्बार विनती कर रहे थे।

यद्यपि जावरा चातुर्मास होने के पूर्व से ही रोग-स्थिति दिनों-दिन चिन्तनीय बनती जा रही थी, लेकिन सुदृढ़ मनोबल के धनी होने से आपश्री चातुर्मास के निमित्त यथासमय जावरा पधार गये थे। लेकिन चातुर्मासकाल में रोग ने उग्र रूप धारण कर लिया।

यहां पर भी सन्तों और श्रावकों ने प्रार्थना की कि आपश्री के शरीर में अशक्ति आ रही है, अतः यहां पर स्थायीरूप से उपचार करा लिया जाये। सुयोग्य चिकित्सकों का सुयोग भी यहां प्राप्त है। लेकिन आचार्य श्रीजी म. सा. ने पुनः यही फरमाया कि मैं प्राकृतिक उपचार करना चाहता हूँ और उसमें यदि सफलता मिली तो ठीक है, अन्यथा बाद में किसी चिकित्सक की राय ले ली जाये। तब संघ ने विनती की कि आपश्री ने प्राकृतिक तौर पर तो बहुत कुछ कर लिया है, लेकिन अब हमारी बात पर भी गौर फरमाया जाये।

संघ के बारम्वार निवेदन करने पर भी आपश्री ने अभी विशेष ध्यान न देकर एकान्तर तप चालू रखा। इस स्थिति में भी व्याख्यान देना, सत-सतियों को वांचणी देना, जिज्ञासुओं के प्रश्नों का उत्तर देना, आदि क्रम पूर्ववत् चलता रहता था। व्याख्यान-श्रवण आदि प्रसंगों पर स्थानीय और आगत सज्जनों की उपस्थिति आशातीत हो जाती थी। एक दिन मध्यप्रदेश के मुख्यमन्त्री डाक्टर कैलाशनाथ काटजू भी व्याख्यान में उपस्थित हुए और व्याख्यान सुना। अनन्तर मुख्यमन्त्री महोदय ने भी अपना वक्तव्य दिया और अपनी भक्ति प्रदर्शित की। जनता धार्मिक लाभ प्राप्त कर रही थी, लेकिन शारीरिकबल शिथिल होता जा रहा है। यहां तक स्थिति आ गई कि व्याख्यान भी बन्द करना पड़ा। डाक्टर श्री गोयल एवं डाक्टर श्री दिनकर ने आचार्यश्री का निरीक्षण किया और बुखार आने के कारण का पता लगाने की चेष्टा

की, किन्तु ज्ञात नहीं हो रहा था ।

यह समाचार डाक्टर श्री बोरदिया यक्ष्मारोग विशेषज्ञ को मालूम हुए । उस समय वे इन्दौर थे और डाक्टर श्री मुकर्जी भी इन्दौर थे । डाक्टर श्री मुकर्जी मध्यप्रदेश के प्रसिद्ध डाक्टरों में से हैं । इन दोनों डाक्टरों का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध था । आप दोनों डाक्टर भंडारी के साथ आचार्य श्रीजी की सेवा में उपस्थित हुए और उन्होंने परीक्षण कर आचार्यश्री के बुखार आने के कारण का पता लगाने की चेष्टा की । निश्चयात्मकरूप से पता तो नहीं लग पाया, फिर भी उन्होंने अपनी दृष्टि से कुछ औषधियां स्थानीय डाक्टर गोयल आदि को बतलाईं । जिससे बुखार उतर गया और साथ ही यह भी निर्णय किया कि आचार्यश्री के हृदयरोग है, अतः किसी भी प्रकार का श्रम न किया जाये । आचार्यश्री ने जैसा कहा उससे भी अधिक पथ्य का ख्याल रखा, फलतः कमजोरी में अत्यधिक वृद्धि हो गई । उठना-बैठना भी मुश्किल हो गया । बुखार भी कुछ समय के लिए कम हुआ । किन्तु औषधियों का असर हटते ही पुनः पूर्ववत् बुखार आने लगा ।

चातुर्मास-समाप्ति का समय आ गया था । आचार्य श्रीजी म. सा. विहार करने की सोचने लगे । डाक्टरों ने दृढ़ता के साथ मना कर दिया कि इस कमजोरी और बीमारी की स्थिति में आपका विहार होना कतई उपयुक्त नहीं है । रतलाम संघ का आग्रह था कि आचार्य श्रीजी रतलाम पधारकर वहां विराजें । आचार्य श्रीजी भी चातुर्मास-समाप्ति के पश्चात् धीरे-धीरे विहार करने की सोच रहे थे । इसी बीच सुप्रसिद्ध हृदयरोग विशेषज्ञ डाक्टर श्री भंसाली बबई जो श्रीमती केसरबहिन जौहरी धर्मपत्नी सेठ अमृतलालजी के सम्बन्धी थे, को आचार्य श्रीजी की स्वास्थ्य-स्थिति ज्ञात हुई तो वे भी जावरा आये और उन्होंने भी आचार्य श्रीजी को देखकर के कहा कि मैं डाक्टर के नाते दावे के साथ कहना चाहूँगा कि आचार्यश्री के हृदय की तकलीफ कतई नहीं है । तीन साल पहले हुई हृदय की तकलीफ का भी मैं

पता लगा सकता हूँ। आज तो क्या, तीन साल पहले भी आपश्री को हृदय की कोई तकलीफ नहीं थी। अतः आपको अभी जो पथ्य चल रहा है, उसकी आवश्यकता नहीं है। आप अपनी स्वाभाविक खुराक लीजिये और कुछ ताकत आने पर चलना-फिरना भी प्रारम्भ कीजिये। तदनुसार सारी प्रक्रियायें परिवर्तित हुई और शरीर में भी अपेक्षाकृत शक्ति का संचार हुआ, लेकिन विहार करें ऐसी स्थिति अब भी न बन पाई। स्थानीय डाक्टरों का कहना रहा कि आचार्यश्री पैदल नहीं चलें। आचार्यश्री का कहना था कि संत गृहस्थों के कंधों पर अपने को उठाना नहीं चाहते। तब सन्तों ने कहा कि हम उठाकर ले जा सकते हैं और मजबूत कपड़े की पालकी में बिठाकर रतलाम की ओर विहार किया और रतलाम के पास ही स्टेशन पर आचार्यश्री विराजे। यहां के डाक्टर श्री प्रेमसिंहजी जो पहले मध्यप्रदेश में स्वास्थ्य विभाग के मन्त्री रह चुके थे, ने आचार्य श्रीजी का निरीक्षण किया। इनका भी कहना था कि आचार्य श्रीजी को अधिक बाधित नहीं करना चाहिए।

रतलाम में पूज्यश्री धर्मदासजी म. की सप्रदाय के मुनिश्री सागरमलजी भी थे। जिनके विषय में संयमविरोधी, ब्रह्मचर्य सम्बन्धी बातें प्रमाणिकरूप से आचार्य श्रीजी के कानों में आ चुकी थीं। वे आचार्य श्रीजी की सेवा में दर्शनार्थ उपस्थित हुए और वंदना करने लगे तो आचार्य श्रीजी म. सा. ने कहा कि आपके सम्बन्ध में कुछ सयम-विघातक बातें सुनी गई हैं, अतः आलोचना पूर्वक जबतक यथायोग्य निर्णीत स्थिति न बन जाये, तब तक आपके साथ वंदन-व्यवहार आदि सांभोगिक स्थिति नहीं हो सकती। अतः आपके वंदन करने पर इधर के छोटे सन्तों द्वारा वंदना नहीं करने पर आपका दिल दुखित हो तो आप भी वंदना न करें।

इस पर श्री सागरमुनिजी ने कहा कि जैसा भी आप योग्य समझें, करें। मैं आपश्री के चरणों में आलोचना कर सकता हूँ। आचार्य श्रीजी ने कहा कि मैं नगर में आ ही रहा हूँ, कुछ स्वस्थ होते

ही आलोचना सुनकर यथारीति इस विषय को निपटाने का प्रयत्न करूंगा। वहां तक परस्पर वंदन-व्यवहार न होने की स्थिति को गृहस्थों के सामने न रखें। इस बात को स्वीकार करके श्री सागरमुनिजी वापस नगर में आ गये किन्तु वहां पहुंचकर अपने संप्रदाय के मुख्य-मुख्य श्रावकों को बुलाकर कहा कि आचार्य श्रीजी म. ने तो धर्मदासजी म. की संप्रदाय से सम्बन्ध तोड़ दिया है और मेरे साथ सम्बन्ध नहीं रखा आदि झूठमूठ कई बातें बनाकर सांप्रदायिकता के विष को प्रज्ज्वलित किया। जिससे पूज्यश्री धर्मदासजी म. की सप्रदाय के कुछ श्रावक श्री सागरमुनिजी की सब करतूतों को जानते हुए भी इधर-उधर की बातें करने लगे। आचार्य श्रीजी स्टेशन पर विराजते थे और यदि वे चाहते तो आचार्य श्रीजी की सेवा में उपस्थित होकर सब बातों का स्पष्टीकरण कर सकते थे। लेकिन ऐसा न करके उन्होंने भी श्री सागरमुनिजी की तरह साम्प्रदायिक विष फैलाना चालू रखा। यह बात जब कर्ण-परम्परा से आचार्य श्रीजी को ज्ञात हुई तो उन्हें आश्चर्य हुआ कि इस प्रकार का प्रचार होना साधु-जीवन के लिए कलंक ही है।

दूसरे दिन आचार्य श्रीजी के रतलाम नगर में पधारने का प्रसंग था। यहां भूतपूर्व संप्रदाय की दृष्टि से पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी म., पूज्यश्री धर्मदासजी म. और श्री दिवाकरजी म. के श्रावकों के पृथक्-पृथक् तीन स्थानक थे। जब आचार्य श्रीजी नगर की ओर पधार रहे थे तो भूतपूर्व पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी म. की संप्रदाय के श्रावकों ने अर्ज की कि आप इस सम्प्रदाय के श्रावकों के स्थानक में पधारिये। स्थानक भी विशाल है। अतः अन्यत्र न पधार कर इसी स्थानक में पधारिये। तब आचार्य श्रीजी म. सा. ने कहा कि श्रमणसंघ का यह नियम है कि जहां वृद्ध ठाणापति संत विराजते हों वहां विश्रामार्थ जाना चाहिए। भूतपूर्व दिवाकरजी म. की संप्रदाय के श्रावकों के स्थानक में वृद्ध संत विराजते हैं, अतः वहीं पर ठहरना उपयुक्त है। श्रावकों ने कहा कि आप श्रीजी तो निष्पक्ष दृष्टि से चल रहे हैं, पर उन लोगों में

प्राय: करके साम्प्रदायिकता कूट-कूट कर अब भी भरी हुई है। इस लिए वहां जाना हमें नहीं जंचता है। आचार्य श्रीजी ने कहा श्रमणसंघ में रहते श्रमणसंघीय नियमों का ईमानदारी से पालन करना हरएक का कर्त्तव्य हो जाता है, वे लोग नहीं पालें तो वे जानें। मैं तो अपने कर्त्तव्य का पालन करूंगा और आचार्य श्रीजी म. सा. रतलाम में विराजने के समय श्री दिवाकरजी म. के सन्तों के पास नीमचौक स्थानक में ही विराजे।

यहां के चिकित्सकों ने रोग का पता लगाने की चेष्टा भी की, लेकिन कुछ पता नहीं लग पाया। कभी-कभी पेशाब के साथ खून भी आने लग गया था। जब चिकित्सकों को कुछ पता नहीं लग रहा था तो इन्दौर, उदयपुर, उज्जैन आदि के श्रावक संघों ने अत्यधिक आग्रह किया कि हमारे क्षेत्र में आपश्री का पदार्पण हो। वहां पर चिकित्सकों की स्थिति अच्छी है और रोग का निदान भलीभांति हो सकेगा। यद्यपि रतलाम संघ अन्त:करण से चाहता था कि आचार्य श्रीजी का रतलाम से विहार न हो। परन्तु साथ ही यह भी सोच रहा था कि आचार्यश्री के रोग का सही निदान होना चाहिए। रतलाम, इन्दौर, उज्जैन आदि मध्यप्रदेश के क्षेत्रों में कुछ नमीयुक्त हवा होने से इस कमजोर अवस्था में सर्दी, जुखाम आदि जल्दी-जल्दी होने की संभावना रहती थी। अत: चिकित्सकों का मंतव्य था कि जलवायु की दृष्टि से उदयपुर क्षेत्र अत्यधिक उपयुक्त रहेगा।

तदनुसार जब रतलाम से विहार का प्रसंग आया तब रतलामवासियों के दु:ख का पार न रहा। विहारवेला का दृश्य इतना मार्मिक बन गया कि प्रव्रज्या अंगीकार करने के अवसर पर पारिवारिक जनों के रुदन विलाप-जन्य करुणाजनक दृश्य को देखकर मन में ग्लानिभाव नहीं लाने वाले सन्त-मुनिराज भी द्रवीभूत हो गये। उनके हृदय भर आये। आबालवृद्ध जनसाधारण की आंखों से आंसू बहने लगे और कई एक तो चौधार आंसू बहाते हुए फूट-फूट कर रो पड़े। फिर भी हृदय

का वेग शांत नहीं हो रहा था।

सन्तों के सहारे रतलाम स्टेशन से शनैः-शनैः विहार कर आचार्य श्रीजी म. सा. फरीदगंज पधारे और श्री भीमराजजी नाथूलालजी सेठिया के मकान में विराजे। दूसरे दिन वहां से नामली गांव की ओर विहार हुआ तब रतलाम श्रीसंघ के सैकड़ों भाई-बहिन उपस्थित थे। नामली और उसके आगे के क्षेत्रों में आहार-पानी आदि की परिषहों को सहन करते हुए क्रम-क्रम से विहार कर पुनः जावरा पधार गये।

जावरा में एकाध दिन विश्राम करने के अनन्तर जब वहां से विहार कर करीब तीन-चार मील आगे आये होंगे कि पेशाब होना बिल्कुल बंद हो गया। शारीरिक कमजोरी इतनी बढ़ गई कि जीवन रहने में भी शंका दिखने लगी। लेकिन चतुर्विध संघ के पुण्योदय से तात्कालिक उपचार द्वारा रोग शांत-सा हो गया। इस विकट स्थिति से देश के समस्त श्रीसंघों और उनके प्रमुख-प्रमुख कार्यकर्ताओं में चिन्ता व्याप्त हो गई। सभी की आकांक्षा थी कि आचार्य श्रीजी म. सा. तत्काल किसी एक स्थान पर विराज जायें और वहां रोगोन्मूलन के लिये उपचार का प्रबन्ध किया जाये।

श्रावक संघों की भावना योग्य थी। लेकिन आत्म-साधना में ही जीवन की सफलता है—मानने वाले आचार्य श्रीजी म. सा. परहेज आदि से शरीर के बने रहने की स्थिति में किसी एक स्थान पर स्थिरावास करना योग्य नहीं समझते थे। अतः कुछ स्वस्थ होने पर मेवाड़ की ओर विहार चालू रखा।

आगामी चातुर्मास की स्वीकृति

सं० २०१६ के वर्षावास का समय निकट आ रहा था और मालवा मेवाड़ के अधिकांश श्रीसंघों की भावना थी कि चातुर्मास हमारे यहां हो। लेकिन शारीरिक स्थिति को देखते हुए पहले से ही किसी स्थान-विशेष के बारे में निश्चय करना शक्य नहीं था। इस स्थिति में विहार करते हुए आचार्य श्रीजी म. सा. मंदसौर और फिर वहां से

विहार कर मदसौर के उपनगर नयापुरा में पधारे। मंदसौर श्रीसंघ की उत्कट भावना थी कि आचार्य श्रीजी म. सा. का चातुर्मास यहां नया-पुरा में हो। यहां पर प्राकृतिक चिकित्सा का अच्छा संयोग मिल सकता है और मंदसौर संघ की वर्षों की भावना भी सफल होगी। लेकिन आचार्य श्रीजी म. सा. के स्वास्थ्य को देखते हुए कई दृष्टियों से मंदसौर उपयुक्त नहीं जान पड़ा। अजमेर संघ के प्रमुख-प्रमुख व्यक्ति भी वहां पर उपस्थित हो गये थे और विनती की कि अब हमारे पर मेहरबानी हो जाना चाहिए। अजमेर में सब तरह के उप-चार-साधनों का संयोग है आदि। लेकिन अभी चातुर्मास की स्वीकृति देने का समय नहीं था अतः फरमाया कि मैं आगे बढ़ रहा हूं, कहां की स्पर्शना बने, कह नहीं सकता। वहां से सन्तों के सहारे विहार कर नीमच सीटी, नीमच छावनी होते हुए बघाना पधारे। छोटीसादड़ी जावद आदि सभी संघों का अपने-अपने क्षेत्र में पधारने का अत्यधिक आग्रह था। जावद श्रीसघ के सदस्यों ने अपनी भावना दर्शाते हुए कहा कि आप चाहे एक रात्रि विराजकर ही छोटीसादड़ी पधार जायें, परन्तु जावद अवश्य पधारें। आपको पधारे बहुत समय हो गया है।

आचार्य श्रीजी म. सा. ने जावद संघ की प्रार्थना को ध्यान में रखकर बघाना से जावद की ओर विहार किया। पहली मंजिल पर जिस गांव में रहे, उस गांव में शाम होते समय आचार्य श्रीजी के बीमारी का घोर प्रकोप हो गया। यहां तक स्थिति बन गई कि आचार्य श्रीजी म. सा. ने स्वयं सागारी संथारा पचख लिया और फिर सन्तों से कहा कि अब मुझे स्थायी संथारा पचखा दो। लेकिन स्थायी सथारा पचखाने जैसी स्थिति नहीं थी। नीमच से डाक्टर आ गये और उन्होंने जोर देकर कहा कि वापस नीमच की ओर पधार जायें। दूसरे दिन प्रातः-काल जावद की ओर विहार स्थगित रहा और पुनः लौटकर नीमच छावनी पधारे और डाक्टर सा. के मकान में विराजे। आचार्य श्रीजी म. सा. के स्वास्थ्य विषयक ये समाचार सभी श्रीसंघों को ज्ञात हुए। रतलाम,

जावरा, मंदसौर के डाक्टर तथा उदयपुर के डाक्टर शूरवीरसिंहजी, डा. त्याती व डाक्टर माथुर आदि श्रावकों के साथ उपस्थित हुए एव और भी आसपास के काफी श्रावक आ गये।

मालवा के श्रीसघों का आग्रह था कि हम मालवा के बाहर नहीं जाने देंगे। नीमच छावनी श्रीसघ का तो अपने यहां ही चातुर्मास होने के लिये विशेष आग्रह था। सभी चिकित्सकों ने गंभीरता से विचार किया और बीमारी के चिह्नों को देखते हुए रोग की ओर कुछ झुकाव हुआ। सभी डाक्टरों का यह मत हुआ कि जिस बीमारी का अनुमान लग रहा है, उसको देखते हुए आचार्य श्रीजी को किसी तरह उदयपुर पहुंच जाना चाहिए। चिकित्सा आदि सभी दृष्टियों से उदयपुर क्षेत्र उपयुक्त है। चातुर्मास के विनत्यर्थ २१ सघ आये हुए थे और चाहते थे कि आगामी चातुर्मास के लिये हमारे यहां की स्वीकृति मिल जाये। लेकिन आचार्य श्रीजी म. सा. ने द्रव्य क्षेत्र-काल-भाव आदि दृष्टियों को ध्यान में रखकर स.२०१६ के चातुर्मास के लिये उदयपुर की स्वीकृति फरमाई।

नीमच छावनी से सन्तों के सहारे विहार कर छोटीसादड़ी, बड़ीसादड़ी, कानौड़, भींडर आदि क्षेत्रों को स्पर्शते हुए आचार्य श्रीजी म. सा. डबोक पधारे। यहां पर पुनः डा. शूरवीरसिंह जी आदि चिकित्सक आ गये और कहा कि आपश्री जल्दी उदयपुर पधार जायें, जिससे अच्छी तरह रोग का निदान हो सके।

उदयपुर पदार्पण एवं भागवती दीक्षा

डबोक से विहार कर आचार्य श्रीजी म. सा. आयड़ पधारे और छतरियों के पास श्री गिरधारीसिंहजी के बगले में विराजे। उस समय आचार्य श्रीजी म. सा. को काफी थकावट व कमजोरी आ गई। अगवानी के लिये उदयपुर, आयड़ आदि से आये हुए दर्शनार्थियों को मंगलपाठ भी नहीं सुना पाये। अन्य सन्तों ने मांगलिक सुनाया। दर्शनार्थियों के आवागमन का क्रम निरतर चलते रहने से आचार्य श्रीजी

को विश्राम नहीं मिल रहा था अतः आयड़ गांव में श्री केशूलालजी ताकड़िया के मकान पर एकान्त विश्राम करने योग्य स्थान होने से कोठारीजी के बंगले से वहां पधार गये।

दूसरे रोज वहां से विहार करके श्री किशनसिंहजी सरूपरिया के बंगले में जो बड़ी होस्पिटल के सामने था, पधारे। वहां पर डाक्टरों ने आचार्य श्रीजी के रोग के निदान करने के प्रयत्न प्रारम्भ कर दिये। डाक्टरों को पूरा निदान करने में समय लग रहा था और आपस में मन्त्रणा करके बंबई के प्रसिद्ध डाक्टरों से भी परामर्श ले रहे थे। इधर चातुर्मास का समय निकट आ जाने से, वहां से विहार कर उदयपुर शहर में ओसवाल पंचायती नोहरे में पधार गये।

उदयपुर में इससे भी पूर्व आचार्य श्रीजी म. सा. के कई चातुर्मास हो चुके थे, लेकिन यह चातुर्मास एक गंभीर वातावरण में हो रहा था। उदयपुर संघ अपनी जिम्मेदारी के प्रति पूर्ण सजग था और उसने अपने सब प्रयत्न चातुर्मास को सफल बनाने में लगा दिये।

चातुर्मास काल में समयानुसार धर्म-ध्यान त्याग-तपस्यायें अच्छी हुईं। दर्शनार्थियों का भी आशातीत आगमन हुआ। लेकिन आचार्य श्रीजी का स्वास्थ्य दिनोंदिन निर्बल होता जा रहा था। शरीर इतना जर्जर हो चुका था कि अच्छे-से-अच्छा उपचार भी अब कार्यकारी सिद्ध नहीं हो रहा था।

इसी चातुर्मास समय में वैराग्यभावना से अनुप्राणित कतिपय भाई-बहिन दीक्षा अंगीकार करने के लिये उत्सुक थे। लेकिन पूज्य आचार्य श्रीजी म. सा. की स्वास्थ्य-स्थिति के कारण दीक्षा-तिथि निश्चित नहीं की जा सकी थी। चातुर्मास के अन्तिम दिनों में कुछ स्वास्थ्य सुधार पर था। अतः कार्तिक कृष्णा ८, रविवार, दि. २५-१०-५९ को वैरागी श्री बाबूलालजी तथा वैरागिन बहिन श्री अनोखीबाई, बहिनश्री धीरजकुमारी की दीक्षायें होने का निश्चय हो गया।

यथासमय आचार्य श्रीजी म. सा. के नेतृत्व में यह दीक्षायें

बड़े समारोह के साथ सम्पन्न हुईं । उदयपुर श्रीसंघ के इतिहास में एक साथ तीन दीक्षायें होने का यह अपूर्व अवसर था । उदयपुर संघ ने इस समारोह को बहुत ही उत्साह और भव्यता के साथ आयोजित किया था । इस अवसर पर स्थानीय व बाहर से आगत हजारों भाई-बहिन उपस्थित थे ।

चिकित्सकों का परामर्श

चातुर्मास काल में दीक्षा के बाद चिकित्सक अपने परीक्षण से कुछ परिणाम पर पहुंचे । उन्होंने बताया कि आचार्य श्रीजी म. सा. के शरीर में जो कमजोरी व्याप्त है और विभिन्न रोगों के चिह्न दिखते हैं, उनकी जड़ गहरी है और वह शल्य-चिकित्सा द्वारा ही निकाली जा सकती है । अतः हमारी राय है कि शल्य-चिकित्सा यथाशीघ्र करवा लेनी चाहिए । नहीं तो रोग के फैलने का अंदेशा है । यदि शीघ्र ही रोग की जड़ निकल जाती है तो फिर उसके फैलने का प्रसग नहीं आता है ।

आचार्य श्रीजी म. सा. ने फरमाया कि बिना शल्य चिकित्सा के प्राकृतिक नियमों द्वारा अथवा बेला, तेला आदि तपस्या द्वारा यदि रोग का शमन हो सकता हो तो पहले मैं प्राकृतिक चिकित्सा आदि से रोग-शमन करने का प्रयत्न करना चाहता हूँ । डाक्टरों ने कहा कि प्राकृतिक चिकित्सा के लिये हमारा कोई एतराज नहीं है, लेकिन रोग की जो स्थिति निश्चित हुई है, उसका शमन सिवाय शल्य-चिकित्सा के अन्य कोई नहीं है । यह हमारा दृढ़ विचार है। जितना इसमें विलंब करेंगे उतना ही रोग-प्रकोप बढ़ने की सभावना है और अधिक बढ़ जाने के बाद फिर शल्यचिकित्सा भी नहीं हो सकेगी एवं आपके शरीर में शान्ति भी नहीं रह सकेगी । अतः आपको इस विषय में जरा भी विलंब नहीं करना चाहिए । तब आचार्य श्रीजी म. सा. ने फरमाया कि रोग अधिक फैल गया है और उसका अन्तिम परिणाम मृत्यु है, तो भी भयभीत होने की जरूरत नहीं । मृत्यु का सहर्ष सत्कार

करने के लिए ही हमने साधु जीवन लिया है। एक दिन इस शरीर को छोड़ना ही होगा तो क्यों मैं आपरेशन के झंझट में पड़ूं ? शरीर रहना होगा तो रहेगा और जाना होगा तो समाधिमरण के साथ जायेगा। मैं तो अभी से तैयारी कर सकता हूँ।

इस पर डाक्टरों ने कहा कि आपका साधु-जीवन लेने का खास उद्देश्य क्या है ? आचार्य श्रीजी ने संयमी जीवन की महत्ता का दिग्दर्शन कराते हुए फरमाया कि ज्ञान-दर्शन-चारित्र की आराधना पूर्वक शत्रु-मित्र पर समभाव और आत्मा के चरम विकास को सन्मुख रखते हुए समाधिमरण द्वारा इस भौतिक शरीर को छोड़ना है।

डाक्टरों ने पुनः प्रश्न किया कि क्या आयुष्य के पूर्व ही शरीर को इस प्रकार छोड़ना उपयुक्त रह सकता है ? आचार्य श्रीजी म. सा. ने फरमाया कि आयुष्य रहते हुए समाधिभाव पूर्वक ज्ञान-दर्शन-चारित्र की आराधना करते रहना चाहिए। लेकिन जब यह मालूम हो जाये कि शरीर से ज्ञान-दर्शन चारित्र की आराधना नहीं हो सकती और अनुमान व चिकित्सकों आदि से यह मालूम हो जाये कि अब आयुष्य अधिक नहीं है तो फिर उस स्थिति में संलेखना संथारा आदि करके पंडित-मरण पूर्वक शरीर को छोड़ देना चाहिये। अतः आप अपने चिकित्सा-शास्त्र की दृष्टि से बताइये कि इस शरीर का टिकाव कितने समय का है ? यदि इसकी स्थिति ज्यादा न हो तो मैं अभी से आपरेशन आदि की प्रक्रिया में न पड़ कर संलेखना आदि करके अपने संयमी-जीवन के उद्देश्य को सफल बनाने का प्रयास करूं। डाक्टरों ने कहा कि आचार्य श्री ! हम लोगों ने शरीर-विज्ञान सम्बन्धी जो कुछ अध्ययन किया है, उसके अनुसार यदि रोग की चिकित्सा हो जाती है तो इस शरीर से आप अपने ज्ञान-दर्शन-चारित्र की अभिवृद्धि कर सकते हैं और अन्य कोई उपद्रव न हो तो वर्षों तक इस शरीर का कुछ भी बिगड़ने वाला नहीं है। यदि आपने शल्य-चिकित्सा नहीं करवाई तो शरीर किसी-न-किसी रोग के चिह्न परिलक्षित होते रहेंगे और दिनोंदिन

शरीर भी कमजोर होता जायेगा तथा रोग का अत्यधिक प्रकोप होने पर न तो आप ज्ञान-दर्शन-चारित्र की अभिवृद्धि कर सकेंगे और न समाधिभाव रह सकेगा और न इस शरीर से जल्दी ही छूटने का प्रसग आयेगा। ऐसी परिस्थिति में आप अपने संयमी-जीवन के उद्देश्य को पूरा नहीं कर पायेंगे और शरीर छूटने के अन्तिम समय में न तो समाधिभाव रह सकेगा और न आप आत्मा और परमात्मा का ही चिन्तन कर पायेंगे। ऐसी दशा में आपका उद्देश्य सिद्ध नहीं होगा। लेकिन आप शल्यचिकित्सा करवा लेंगे तो आनन्द पूर्वक अपने उद्देश्य को सिद्ध करेंगे और कदाचित् शल्यचिकित्सा में आपके नियमानुसार कुछ दोष लगे तो उसकी शुद्धि कर लेना।

इस पर आचार्य श्रीजी म. सा. ने फरमाया कि आपने शल्य-चिकित्सा विषयक जो स्थिति समझाई वह मैंने सुन ली है, लेकिन अभी तो चातुर्मास का समय है। दूसरी बात यह कि अन्य निर्दोष चिकित्सा से यह कार्य संभव हो तो मैं पहले उसको भी अजमा लेना चाहता हूँ। मेरी अन्तरात्मा अभी दोषयुक्त चिकित्सा पसंद नहीं कर रही है। इस पर डाक्टरों ने कहा—आप महात्मा हैं, आप निर्दोष स्थिति पसंद करते हैं, लेकिन जो स्थिति हमें ज्ञात हुई, वह आप से अर्ज की है।

अनन्तर आचार्य श्रीजी ने रोग-निवारण करने के लिए होमयोपेथिक उपचार चालू किया। लेकिन किडनी के अन्दर पैदा हुई गांठ पर उसका कोई असर नहीं हुआ। जब इस गांठ से निकला खून पेशाब की थैली में आकर पेशाब के रास्ते को रोक लेता था तब आचार्य श्रीजी को बहुत वेदना होती थी। एक रोज ऐसी भयंकर वेदना हो गई थी कि यदि एलोपैथिक डाक्टर नहीं संभालते तो परिणाम स्पष्ट था।

चतुर्विध संघ की विनती : आपरेशन का निश्चय

जब ये समाचार चतुर्विध सघ को ज्ञात हुए तो दु:ख का पार नहीं रहा और साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका, और मुख्य चिकित्सक

आदि सबने साधु-जीवन और शास्त्र की जानकारी के माध्यम से आचार्य श्रीजी म. सा. पर जोर डाला कि आप इस शरीर को अपना ही न समझें, यह संघ का है और चतुर्विध सघ की धरोहर को आप इस तरह से रख रहे हैं, जिसमें हम सबको अत्यधिक वेदना होती है। इस पर हम सबका अधिकार है। आप अपनी आत्मा से तटस्थ हो जाइये। हम इस शरीर को ठीक करना चाहते हैं और अनुभवी चिकित्सकों की राय हमको भी ठीक लग रही है। हम आपरेशन कराना चाहते हैं। आपरेशन सम्बन्धी क्रिया से निवृत्त होने पर जो भी दोष की स्थिति हो, शास्त्रीय दृष्टि से प्रायश्चित्त लेना आपका अधिकार है। लेकिन ऐसी स्थिति में भी चिकित्सा नहीं कराना आपके अधिकार की बात नहीं है। शास्त्र में शल्यचिकित्सा, औषध, भैषज आदि का विधान है। उत्सर्ग और अपवाद की स्थिति भी प्रतिपादित की गई है। भगवान महावीर ने भी केवलज्ञान होने के बाद खून की दस्तें लगने पर शिष्य की प्रार्थना पर औषध-सेवन किया था। आप तटस्थ रहिये। किन्तु चतुर्विध संघ की भावना को ठेस मत पहुंचाइये आदि। तब चतुर्विध संघ द्वारा सामूहिक रूप में अर्ज की गई इस विनती पर आचार्य श्रीजी म. सा. को ध्यान देना पड़ा।

अनन्तर उदयपुर श्रीसंघ के मन्त्री महोदय ने चिकित्सकों से परामर्श करके आपरेशन होने की तिथि २४-११-५६ घोषित कर दी।

आपरेशन होने की तिथि की जानकारी मिलते ही देश के कोने-कोने से हजारों भाई-बहिनों का उदयपुर आना चालू हो गया। दि. २२-११-५६ तक तो उदयपुर में करीब ५-६ हजार भाई-बहिनों की उपस्थिति हो चुकी थी।

आपरेशन दि. २४-११-५६ को होने वाला था, लेकिन उसकी पूर्व तैयारी के लिये आचार्य श्रीजी म. सा. का दि. २३-११-५६ को अस्पताल के अन्तर्गत एक स्वतन्त्र स्थान में पदार्पण हुआ। आपरेशन करने वाले डाक्टरों में प्रमुख डाक्टर बी. एन शर्मा डायरेक्टर मेडीकल

एवं पब्लिक हेल्थ विभाग राजस्थान सरकार ने आचार्य श्रीजी के शरीर की आवश्यक परीक्षा की ।

चतुर्विध संघ को संदेश :

अस्पताल में प्रवेश करने के पूर्व आचार्य श्रीजी म. सा. ने चतुर्विध संघ से क्षमत-क्षमापना करके उपदेश के दो शब्द फरमाये। जिनमें सर्व प्रथम अनंत सिद्धों को नमस्कार करके वीतराग भगवन्त अरिहन्तों को नमस्कार किया और आज दिन तक कोई अविनय आसातना हुई हो तो क्षमा करने तथा भव-भव में अरिहन्त, सिद्धों का शरण होने का भावना दर्शाई गई थी ।

पश्चात चतुर्विध संघ को सम्बोधित कर आचार्य श्रीजी म. सा. ने अपने आज तक के जीवन पर थोड़े से शब्दों में प्रकाश डाला कि पूज्य आचार्य श्री श्रीलालजी म. सा. ने संसारी अवस्था से उभार कर मुझ पर महान उपकार किया और पूज्य आचार्य श्री जवाहरलालजी म. सा. की असीम कृपा से साधना के मार्ग पर अग्रसर होने का योग मिला । इन महापुरुषों के अनन्त उपकार के लिये कृतज्ञ हूँ ।

पश्चात शास्त्रीय पाठ से समस्त जीवयोनि से क्षमायाचना करते हुए फरमाया कि संयमी जीवन के रक्षार्थ मेरा आज अपवाद-मार्ग मे गमन करने का प्रसंग आ रहा है । अतः मेरी इच्छा है कि जब तक शल्य-चिकित्सा सम्बन्धी दोषों का प्रायश्चित न कर लूं, तब तक मुझे वंदन न करें ।

इन शब्दों को सुनकर उपस्थित जनसमूह गद्‌गद् हो गया । हृदय का आवेग आँखों से बहने लगा और जय-जय, धन्य-धन्य के घोष से आकाशमंडल गूंज उठा ।

आचार्य श्रीजी द्वारा व्यक्त किये गये उद्‌गारों के पश्चात पं. र. मुनिश्री नानालालजी म. सा. (वर्तमान आचार्यश्री) ने संक्षेप में उत्सर्ग और अपवाद मार्ग की व्याख्या करते हुए फरमाया कि संयम रक्षणार्थ पूज्यश्री का अपवाद मार्ग में गमन करने का प्रसंग उपस्थित

हो रहा है। फिर भी आपश्री ने जो शल्य-चिकित्सा सम्बन्धी दोषों का प्रायश्चित्त न कर लेने तक वंदन न करने का फरमाया है वह पूज्यश्री जैसे महापुरुषों की महानता का द्योतक है।

अनन्तर आपने प्रार्थना करते हुए आचार्य श्रीजी म. सा. की सेवा में निवेदन किया कि मैं सदा ही आपश्री की आज्ञा एवं आदेश का पालन करता रहा हूँ, और भविष्य में भी इसी प्रकार आपकी आज्ञाओं का पालन करता रहूँगा।

श्रावक समुदाय की ओर से श्री जवाहरलालजी मुणोत ने पूज्य आचार्य श्रीजी की सेवा में निवेदन किया कि विश्वास दिलाते हैं कि हम सब एकमत होकर आपके आदेशों का पालन करते रहेंगे और आपके जीवनकाल में ही वह समय निश्चित आयेगा जब शिथिलाचार के उन्मूलन हेतु आपश्री द्वारा किये गये प्रयत्न सफल होकर रहेंगे। समाज को आपश्री के नेतृत्व की जरूरत है और हमें विश्वास है कि आपरेशन सफल होगा एवं आपश्री का वरद नेतृत्व हम लोगों को बराबर प्राप्त रहेगा।

आचार्य श्रीजी के व्याख्यान के अविकलभाव इस प्रकार हैं—

'सर्वप्रथम मैं मेरे अन्तःकरण से अनन्त सिद्धों को नमस्कार करके उनके प्रति अपने अन्तस्थभाव व्यक्त करता हूँ कि भगवन्तो, मैं आपके यथार्थ स्वरूप को अपनी अल्पमति के कारण पूरा समझ नहीं पाया हूँ और किसी भी प्रकार से अनन्तभवों से लेकर आज दिन तक मेरी आत्मा द्वारा कोई भी अविनय, आसातना हुई हो तो क्षमा प्रदान करें। मैं मनसा, वाचा, कर्मणा अन्तरात्मा द्वारा अनन्त सिद्ध भगवतों से माफी चाहता हूँ, आपका सदा काल शरण हो।

'इसके पश्चात अरिहन्त भगवन्तों से अत्यन्त विनय-भावपूर्वक हार्दिक प्रार्थना है कि— वीतराग भगवन्तो आप द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों को समझने में, प्ररूपणा में, स्पर्शना आदि में किसी

भी प्रकार की त्रुटि हुई हो, एवं अनन्त तीर्थंकरों के शासन की प्रकारान्तर से भी जरा भी अविनय, असातना, अपराध आज दिन तक मेरी आत्मा द्वारा हुआ हो, उसके लिये मैं बारम्बार मनसा, वाचा, कर्मणा क्षमा मांगता हूँ। आपका भव-भव में शरण हो।

'तदनन्तर चतुर्विध संघ से कहना चाहता हूँ कि मेरे जन्म का यह ७०वां वर्ष चल रहा है। दीक्षा लिये भी ५४वां वर्ष चल रहा है। दीक्षा लेने के बाद मेरा चतुर्विध सघ से विशेष सपर्क रहा है।

'जब श्रीसघ ने व परमप्रतापी आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. ने स्व. पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी म. की सम्प्रदाय के शासन का भार मेरे कन्धों पर रख दिया था तब प्रतापी तेजस्वी महापुरुषों के आसन पर बठते हुए उन महापुरुषों की अपेक्षा अपनी कमजोर स्थिति का अनुभव हुआ था। फिर भी आचार्य श्री जवाहरलालजी म. की आज्ञा को स्वीकार करना और श्रीसघ के आग्रह पर ध्यान देना अपना कर्तव्य समझकर मैंने भार को ग्रहण किया।

'इसके पश्चात सादड़ी में बृहत्साधु सम्मेलन ने भी मेरी सेवा लेनी चाही। मेरी इच्छा नहीं होने पर भी श्रमणवग के आग्रह को मैं टाल नहीं सका।

'मैंने शासनोन्नति के लिये सम्यक् ज्ञान-दर्शन-चारित्र की रक्षा के साथ जो भी उचित जान पड़ा वह आज दिन तक कर्तव्य-दृष्टि को सामने रखकर किया, जिस पर मुझे आज भी सात्विक गौरवानुभूति है। यथोपयोग कर्तव्यदृष्टि पूर्वक आत्मसाक्षी से सघ-हितार्थ किये गये कार्यों से भी यदि किसी को चोट पहुंची हो तो उस सम्बन्ध में मेरा इतना ही कहना है कि मेरी भावना किसी के हृदय को चोट पहुंचाने की नहीं रही है, बल्कि वीतराग देव की पवित्र साधु-संस्कृति की शुद्धता सदा अक्षुण्ण रहे, इसी शुद्ध दृष्टि से व्यवस्था आदि कार्य किये हैं।

'श्रमणसंघीय या शास्त्रीय समाचारी तथा उसके संरक्षणार्थ शिथिलाचार व ध्वनियन्त्र आदि विषयक व्यवस्थायें यहां से दी गईं और निवेदन प्रसारित किया गया। उन व्यवस्थाओं और निवेदन को मेरा अन्तरात्मा आज भी सबहितार्थ उचित मानता है अतः पुनः चतुर्विध संघ को सावधानी दिलाता हूँ कि दी गई व्यवस्था और निवेदन को अमली रूप देता-दिलाता हुआ रत्नत्रय की अभिवृद्धि के साथ आत्मोन्नति व शासनोन्नति में किंचदपि असावधानी एवं प्रमाद न करे और निम्न अभिप्रायों को सदा ध्यान में रखे—

१. शुद्ध सिद्धान्त व शुद्ध जीवन के आधार पर ही विश्वशांति संभवित है। इस आधार के बिना व्यक्ति, समाज, राष्ट्र एवं विश्व की शांति संभवित नहीं।

२. गुण और कर्म के अनुसार वर्ग विभाग विकास और शांति के वातावरण में सहायक सिद्ध हो सकता है।

३. भगवान महावीर की निर्ग्रंथ श्रमणसंस्कृति का उसके लक्ष्यानुरूप शुद्ध रखने के लिये सदा अप्रमत्त रहने की आवश्यकता है।

४. वीतराग प्ररूपित सिद्धान्तों का जहां हनन होता हो, परिवर्तन किया जाता हो, समय के नाम से पंचमहाव्रतधारी मुनिजीवन के लक्ष्य के प्रतिकूल प्रवृत्ति की जाती हो, वहां किंचदपि सहयोग न दिया जाये।

५. शुद्ध चारित्रनिष्ठ मुनिवरों के प्रति शुद्ध श्रद्धा भक्ति रहे। शिथिलाचार, मुनि जीवन तो दूर, मानव जीवन के लिये भी कलंक स्वरूप है। अतः कभी किसी भी प्रकार से शिथिलाचार को न छुपाना, न बचाव करना, न प्रश्रय देना और न पोषण ही करना।

६. शुद्ध आत्मीय समता के चरमविकास का लक्ष्यबिन्दु अन्तःकरण में सदा बना रहे एवं तदनुरूप सम्यक्ज्ञान और शुद्ध श्रद्धा के साथ समता साधन को यथाशक्ति जीवन में उतारना यानी

कार्यान्वित करना ।

७. श्रमणवर्ग अपने लक्ष्यानुरूप स्वयं की भूमिका पर सरलतापूर्वक महाव्रतों का भलीभांति पालन करे और श्रावक के लिये श्रावकोचित मार्ग का निर्भयता से प्रतिपादन करता रहे ।

८. श्रावकवर्ग भी अपने ज्ञान-दर्शन-चारित्र की आराधना में उत्तरोत्तर वृद्धि करता हुआ बाह्याडम्बरों से अपने आपको दूर रखने में तथा प्रत्येक कार्य सादगी से सम्पन्न करने में अपना व समाज का हित समझे । साथ ही अपनी भूमिका व श्रमणवर्ग की भूमिका का पूरा-पूरा ज्ञान रखे । जिससे कि वह श्रावक और श्रमण का अन्तर अच्छी तरह समझ सके और श्रमण को श्रमणोचित कर्तव्य पलवाने में तथा स्वयं अपने श्रावकोचित कर्तव्य पालन करने में भलोभांति सफल हो सके ।

९. निर्ग्रन्थ श्रमणसंस्कृति की महत्ता संख्या को विपुलता में नहीं किन्तु चारित्र की उत्कृष्ट दिव्यता और त्याग की महानता में है । उच्च चारित्रनिष्ठ त्यागी श्रमण, चाहे अल्प मात्रा में भी क्यों न हों, उन्हीं से निग्रन्थ श्रमणसंस्कृति का स·क्षण हो सकता है । अतः स्वग्रहीत प्रतिज्ञाओं को भलीभांति सुरक्षित रखता हुआ निर्ग्रन्थ श्रमणवर्ग स्वकल्याण के साथ-साथ वीतराग प्रभु की वाणी का प्रसार जनकल्याणार्थ भी करता रहे ।

'जहां सच्चे श्रमण नहीं पहुंच सकते हैं और श्रावकवर्ग की स्थिति भी वैसी न हो तो वहां पर वीतराग प्रभु के प्रवचन की प्रभावना के लिये एक मध्यम श्रेणी के साधकवर्ग की आवश्यकता है, ताकि वह (साधकवर्ग) इन्द्रियजनित विषय की आसक्ति से ऊपर उठकर पूर्णरूपेण ब्रह्मचर्य के साथ-साथ अहिंसादि मर्यादाओं का पालन करता हुआ वीतराग प्रभु की शासनसेवा में अपनी शक्ति का सदुपयोग कर सके ।

'मैं जिसको हृदय से सत्य मानता हूँ, उसका आदेश, उप-

देश आदि के रूप में व्यवहार करता रहा हूँ। कई व्यक्तियों से मेरा सैद्धान्तिक मतभेद भी रहा है। सत्य तथा न्याय का अन्वेषण करने आदि की दृष्टि से उनके साथ विचार-विमर्श, चर्चा आदि का प्रसग भी आया है। उस समय भी जहां तक उपयोग रहा है, वहां तक मेरा व्यक्तियों के साथ केवल आचार-विचार सम्बन्धी भेद रहा है पर आत्मिक दृष्टि से मैंने उनको अपना मित्र समझा है और अब भी समझता हूँ।

'फिर भी मैं तो आत्मा की विशेष शुद्धयर्थ चतुर्विध सघ को तथा ८४ लक्षयोनि जीवराशि को—

खामेमि सव्वे जीवा, सव्वे जीवा खमन्तु मे।
मित्ति मे सव्वभूयेसु, बैरं मज्झ न केणई॥

इस शास्त्रीय पाठ से क्षमत-क्षमापना करता हुआ—

सत्वेषु मैत्री गुणिषु प्रमोदं क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम्।
माध्यस्थभावं विपरीतवृत्तौ सदा ममात्मा विदधातु देव॥

'इसके साथ मेरी आत्मा को जोड़ने के लिये वीतराग प्रभु से प्रार्थना करता हूँ।

'मैंने संसार त्याग करके अनन्त आनन्दघन स्वरूप तथा स्वपरप्रकाश स्वरूप आत्मा के चरमविकास की अखंड ज्योति की परम साधना के लिये जो भागवती दीक्षा अगीकार की, उस भागवती दीक्षा के मुख्य अंग सम्यक् ज्ञान दर्शन-चारित्र रूप सयम है। संयम-आराधना में यह शरीर सहायक रूप है। एतदर्थ इसको स्वस्थ रखना भी आवश्यक है।

'जावरा चातुर्मास में मेरे शरीर में असाता वेदनीय का उदय हुआ और उस असाता ने आज तक कई रूप दिखाये। व्याधि के उग्र आक्रमण को भी मैं अपनी पूरी शक्ति से शान्त रहकर सहन करने का आज दिन तक प्रयत्न करता रहा हूँ। औषधोपचार भी किया गया मगर औषधि का कोई स्थायी परिणाम

नहीं हुआ, बल्कि अब तो इस असाता का आक्रमण पहले से अधिक उग्रतापूर्वक होने लगा है। जिससे कभी-कभी संयमाराधना में बाधा हो जाती है।

'यद्यपि डाक्टर लोग कई महिने पूर्व ही इस निर्णय पर पहुंच चुके थे कि मेरे शरीर में वतमान रोग निवारण का एकमात्र स्थायी उपाय शल्य-चिकित्सा है, परन्तु मेरी अन्तरात्मा शल्य-चिकित्सा के प्रति न पहले राजी थी और न आज है। इसलिये अन्य-अन्य ओषधोपचार से ही काम लिया गया।

'मैंने डाक्टर साहब से यह भी कहा कि यदि इस व्याधि के आक्रमण से होने वाली असमाधि तपस्या द्वारा रुक सकती हो, चाहे उसमें थोड़ा कष्ट भी सहन करना पड़े तो भी मैं दृढ़तापूर्वक एकान्तर व बेला-बेला की तपस्या करते हुए एक स्थान पर रहकर अपना शेष जीवन समाधिपूर्वक भगवत भजन में व्यतीत करना श्रेय समझता हूँ। मगर डाक्टरों का कहना है कि यह व्याधि रही तो असमाधि होने की विशेष संभावना है। जिससे आपकी शांति-साधना में बाधा ही उपस्थित होगी।

'डाक्टर लोग अब तो दृढ़तापूर्वक सम्मति ही नहीं देते हैं बल्कि आग्रहपूर्वक विनती भी करते हैं कि यदि इस रोग का यथाशीघ्र निवारण नहीं हुआ तो यह रोग अपना उग्ररूप धारण करेगा और समय बीत जाने पर फिर शल्य-चिकित्सा भी उपयोगी नहीं रहेगी।

'इधर उदयपुर आदि श्रावक संघों ने गंभीरता से विचार करने के बाद एक मत होकर तथा समाज के अन्य प्रमुख श्रावक-गणों ने आग्रहपूर्वक विनती की है कि 'डाक्टरों के अभिमत को स्वीकार किया जाये। यह शरीर केवल आपका ही नहीं, संघ का भी है। स्वस्थ शरीर से ही आपकी साधना और जनहित दोनों संभव हैं।' साथ ही मेरे समीपस्थ साधु एवं साध्वियों ने भी

श्रावक समुदाय के अभिप्राय को दोहराते हुए शास्त्रोचित भाषा में रोग निवृत्त होने की भावभरी विनती की है।

'श्रमणवर्ग एवं श्रावक समुदाय तथा विशिष्ट चिकित्सकों के अभिप्राय पर चिन्तन-मनन करने के पश्चात संयमी जीवन की रक्षार्थ मेरा अपवाद मार्ग में गमन करने का प्रसंग आ रहा है। अब तक औषधि आदि के प्रयोग से जो भी प्रायश्चित्त लगा है उसकी तो मैंने आलोचना कर ली है और भावी शल्य-चिकित्सा में जो भी दोष लगेंगे उनका भी प्रायश्चित्त लेने के लिये मेरी आत्मा सदा तत्पर है। फिर भी मेरी यह इच्छा है कि जब तक शल्य चिकित्सा सम्बन्धी लगे दोषों का प्रायश्चित्त न कर लूं तब तक मुझे वंदन न करें।

'वीतराग प्रभु के सिद्धान्तानुसार पांडित्यमरण पूर्वक आत्मसमाधि के सत्संकल्प अन्तःकरण में पूर्णरूपेण परिणत हो यही भावना निरन्तर बनी हुई है और भविष्य में भी इसी तरह सदा बनी रहे, यही अन्तभावना है।'

चतुर्विध संघ के समक्ष अपनी अन्तर्भावना व्यक्त करने के अनन्तर पूज्य आचार्य श्रीजी म. सा. करीब १० बजे सन्तों के सहारे डोली में बैठकर अस्पताल के स्वतन्त्र कमरे में पधार गये।

आपरेशन-दिवस की झांकी

दि. २४-११-५६ को आपरेशन होने के पूर्व डाक्टरों ने एक बार पुनः शरीर परीक्षण कर रोगाक्रान्त अंग के बारे में पूरी तरह से अपना समाधान कर लिया था।

आपरेशन तो करीब ११ बजे से प्रारम्भ होने वाला था, लेकिन प्रातःकाल ही अस्पताल के प्रांगण में हजारों श्रद्धालु बंधु एकत्रित हो चुके थे और वे एक बार पुनः गुरुदेव के दर्शन करने के इच्छुक थे। डाक्टरों ने उनकी भावना का आदर कर पूज्यश्री को पहले मंजिल की चांदनी पर ले जाने की मुनिवरों को अनुमति दे दी। जनता ने

आचार्य श्रीजी म. सा. के दर्शन कर जय-जयकार किया और मांगलिक श्रवण कराकर पुनः आचार्य श्रीजी म. सा. को विश्राम के लिये वापस कक्ष में ले जाया गया।

अब सिर्फ डा. श्री बी. एन शर्मा के आगमन की उत्सुकता से प्रतीक्षा हो रही थी। अपने कौशल की सफलता के प्रति दृढ़ आत्म-विश्वास एवं उल्लास के साथ करीब १०। बजे डा. सा. ने अस्पताल में प्रवेश किया। उनके प्रवेश करते ही 'डा. शर्मा जिन्दाबाद' के घोष से उपस्थिति ने स्वागत किया और डा. सा. ने स्मित हास्य पूर्वक स्वागत के लिये आभार माना।

डा. बी. एन. शर्मा को आपरेशन की गंभीरता, गुरुतर दायित्व और अपने शल्यकौशल की शत प्रतिशत सफलता के लिये आत्म-विश्वास था और इसीलिये इस कार्य को संपन्न करने का भार लिया था। जयपुर में राजस्थान के मुख्यमन्त्री श्री मोहनलाल जी सुखाड़िया से उदयपुर श्रीसंघ के प्रतिनिधियों के समक्ष हुए वार्तालाप के अवसर पर भी इस बात को आपने स्पष्ट कर दिया था। वार्तालाप उल्लास-पूर्ण वातावरण में पूर्ण हुआ था और उसका उपसंहार करते हुए श्री सुखाड़ियाजी ने कहा था कि आप एक महान विभूति का आपरेशन करने जा रहे हैं। आप अपने कौशल में प्रवीण हैं, फिर भी सावधानी रखें। आपरेशन की सफलता से आपको अपरिमित आदर-संमान, यश प्राप्त होगा। आपकी सफलता के लिये मेरी हार्दिक शुभकामना है।

आपरेशन-कक्ष में प्रारम्भिक तैयारियां करने में योग्य व्यक्ति एवं चिकित्सक लगे हुए थे। इधर आचार्य श्रीजी म. सा. भी चतुर्विध संघ की व्यवस्था सम्बन्धी आदेश आदि देकर एवं शास्त्रीय पद्धति के अनुसार ऐसे समय में की जाने वाली विधि करके सागारी संथारा लेकर आपरेशन कक्ष में पधार गये। आपरेशन-कक्ष के बाहर एक-दो संतों और कतिपय प्रमुख श्रावकों के सिवाय अन्य सब अपने-अपने योग्य स्थान पर लौट आये।

करीब ११ बजे आपरेशन प्रारम्भ हुआ। डाक्टर न्याति क्लोरोफार्म सुंघाने के साथ-साथ नाड़ी, हृदय की गति आदि देखने में तत्पर थे। अन्य सहयोगी डाक्टर आवश्यकतानुसार शल्य-उपकरण देने का ध्यान रख रहे थे। डा. बी. एन. शर्मा रोगग्रंथि को विलग करने में दत्तचित्त थे। निस्तब्धता के वातावरण में सिर्फ नेत्र-संकेतों से अवसरानुकूल प्रवृत्ति द्वारा आपरेशन चल रहा था। क्षण-क्षण में आपरेशन की स्थिति की सूचना बाहर उपस्थित जनसमूह को दी जा रही थी।

करीब दो घंटे में आपरेशन सफलता के साथ सम्पन्न हुआ। डाक्टरों को अपने श्रम के प्रति पूर्ण सन्तोष था। यथावश्यक मरहम-पट्टी आदि करने के पश्चात करीब ३ बजे डा. बी. एन. शर्मा ने प्रांगण में उपस्थित जनसमूह के समक्ष आकर आपरेशन के बारे में सभी जानकारी दी कि बांयें गुर्दे में गांठ थी, अतः उसे पूरा-का-पूरा निकाल दिया गया है और परीक्षण के लिये आगरा, जयपुर, बीकानेर, बंबई आदि के अस्पतालों को गांठ के टुकड़े भेजे जायेंगे। आपरेशन सफलता पूर्वक सम्पन्न हुआ है और मेरा विश्वास है कि गुरुदेव शीघ्र स्वास्थ्य-लाभ प्राप्त करेंगे।

आपरेशन की सफलता और स्थिति को जानकर जनता को संतोष हुआ और आचार्य श्रीजी म. सा. के जयघोष के साथ विसर्जित हुई। इस आपरेशन में डा. श्री बी. एन. शर्मा के अतिरिक्त सर्वश्री डा. ऋषि, डा. माथुर, डा. गुप्ता, डा. शूरवीरसिंह, डा. मुरलीमनोहर, डा. न्याति, डा. नाहर आदि के अलावा उनके अन्य सहयोगियों का भी पूरा सहयोग रहा।

आपरेशन के समय शांति जाप आदि होने के अतिरिक्त अनेक व्यक्तियों द्वारा मुक्तहस्त से दान किया गया। जिससे पशुओं को घास, दाना, गरीबों को भोजन आदि दिया गया।

यद्यपि आपरेशन गुरुतर था किन्तु चिकित्सकों के आत्म-विश्वास एवं प्रवीणता से सफल हुआ और सायंकाल तक आचार्य श्रीजी

म. सा. की स्वास्थ्य-स्थिति में काफी सुधार दिखलाई देने लगा था।

चिकित्सकों का सम्मान

इस गुरुतर कार्य की सफलता के लिये डा. शर्मा एव उदयपुर जनरल अस्पताल के अन्य डाक्टरों व उनके सहयोगियों के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने एव धन्यवाद अर्पण करने के लिये उदयपुर श्रीसंघ की ओर से दि. २५-११-५६ को एक सार्वजनिक सभा का आयोजन किया गया। जिसमें समाज के अग्रणी प्रमुख-प्रमुख श्रावकों ने डा. शर्मा का आभार मानते हुए धन्यवाद दिया। अनन्तर आपरेशन की सफलता की स्मृति में उदयपुर की मुख्य अस्पताल में वार्ड निर्माण हेतु समाज की ओर से ११११११·०० की थैली भेंट की गई।

डा. शर्मा ने भेंट को स्वीकार करते हुए कहा कि मैंने अपने कर्तव्य का पालन किया है। मैं तो इसे अपना परम सौभाग्य मानता हूँ कि आप लोगों ने एक उच्च चारित्रवान महात्मा की सेवा का अवसर मुझे दिया। महाराज केवल आपके ही नहीं हैं, वे मेरे व सबके हैं। अन्य डाक्टरों ने भी इसी प्रकार के उद्गार व्यक्त किये।

श्री जवाहरलालजी मुणोत ने डाक्टर साहब को धन्यवाद देते हुए कहा कि हम राजस्थान के मुख्यमन्त्री श्री सुखाड़िया सा. का आभार मानते हैं, जिन्होंने महाराज सा. के आपरेशन के लिये डा शर्मा सा. जैसे सुयोग्य सिद्धहस्त कुशल चिकित्सक की सेवायें उपलब्ध कराने में सहर्ष स्वीकृति दी। डा. शर्मा सा. तो विशेष रूप से धन्यवाद के पात्र है, उन्होंने ऐसे महापुरुष को संयम पालने में योग दिया, जिनका चारित्र आदर्श है और समाज जिनका क्रांतिकारी नेतृत्व चाहती है।

स्वागतसभा उल्लास एवं उत्साहपूर्ण वातावरण में हुई। 'न हि कृतमुपकारं साधवः विस्मरन्ति' की उक्ति में ही सभा की सफलता गर्भित थी। डाक्टरों को अपने प्रति संतोष था कि हम एक महापुरुष की सेवा करने का सुयोग्य प्राप्त कर अपने कौशल को कसौटी पर परखने में सफल हुए हैं एव चतुर्विध संघ को विश्वास हो गया

कि जनता के श्रद्धेय स्वस्थ होकर सन्मार्ग की ओर प्रेरित करने के लिये आदेश, उपदेश और प्रेरणा देकर हमारे मार्गदर्शक बनेंगे। यह उपलब्धि सदैव स्मरणीय रहेगी।

संगठन के लिये प्रयत्न

समाज के सौभाग्य से आपरेशन के बाद आचार्य श्रीजी म. सा. के स्वास्थ्य में दिनोंदिन सुधार होता गया। अतः श्रमणसघ की सुदृढ़ता के लिये पुनः प्रयत्न प्रारम्भ किये जाने के बारे में विचारचर्चा शुरू हुई कि गत्यवरोध के कारणों का उन्मूलन होकर श्रमणसंघ सबल बने। लुधियाना से शिष्टमण्डल के असफल होकर लौट आने के बाद यह धारणा बन चुकी थी कि श्रमणसंघ निष्क्रिय और नाममात्र का रह गया है। उसके नियमोपनियम पालन करने के प्रति श्रमणवर्ग में कोई उत्साह नहीं है। साधुओं द्वारा चतुर्थव्रत के खंडन होने की घटनाओं से तो समस्त श्रमणसंगठन लड़खड़ा गया था।

आचार्य श्रीजी म. सा. के दर्शनार्थ उन दिनों में जो भी विचारक सेवा में आते और श्रमणसघीय चर्चा चलती तो आचार्य श्रीजी म. सा. स्वयं या आपश्री के आदेश से पं. र. मुनिश्री नानलालजी म. सा. सारे तथ्यों को उनके समक्ष रखते थे और वे सपूर्ण स्थिति को समझकर आचार्य श्रीजी म. सा. द्वारा दिये गये व्यवस्था सम्बन्धी निर्णयों के प्रति अपना संतोष व्यक्त करके उन्हें संगठन के लिये आवश्यक मानते थे। लेकिन श्रमणसंघ बनने के बाद भी मेरे-तेरे की भावना साधुओं और उनके अनुयायी वर्ग में विद्यमान थी। जिससे योग्य बात को भी पक्षपात और व्यामोह से उचित मानने की तैयारी नहीं थी। श्रमणसंघ नामक संगठन तो छिन्न-भिन्न था ही लेकिन उसका दायित्व लेने के लिये कोई तैयार नहीं था। इन्हीं दिनों श्रमणसंघ के गत्यवरोध के निराकरण हेतु उपाध्याय श्री हस्तीमलजी म. सा. ने अपनी सप्तसूत्री योजना श्री अ. भा. श्वे. स्थानकवासी जैन कान्फरन्स कार्यालय को भेजी।

कान्फरन्स के नेताओं की स्थिति समाज में बहुत ही आक्षेप-

योग्य बन गई थी। अतः उन्होंने इस सप्तसूत्री योजना के आधार पर श्रमणसंगठन को सबल बनाने के लिये प्रयत्न करना प्रारम्भ किया। दि. २३-२४ जनवरी ६० को कान्फरन्स की साधारण सभा की विशेष बैठक का आयोजन किया गया। उस अवसर पर उपाध्याय श्री की योजना एवं उससे सम्बन्धित उपाध्याय एवं मंत्री मुनियों के अभिप्राय, आचार्य-उपाचार्यश्री से एवं अन्यान्य श्रावक-प्रमुखों से हुए पत्र व्यवहार की जानकारी उपस्थित सदस्यों को दी गई। इसके अनन्तर श्री चिमनलाल चकुभाई शाह ने अपने विचार व्यक्त करते हुए बतलाया कि समाज में सम्बन्धित प्रश्न के बारे में दो विचारधारायें हैं। एक का अभिप्राय है कि आज तक कान्फरन्स ने श्रमणवर्ग के प्रश्नों में अपनी शक्ति लगाई है, इसी कारण कान्फरन्स सामाजिक कार्यों में प्रगति नहीं कर सकी। अतः कान्फरन्स को श्रमणवर्ग के प्रश्न में पड़ना नहीं चाहिये, सिर्फ सामाजिक प्रवृत्तियां ही करनी चाहिये। दूसरा मत यह है कि श्रमणवर्ग में जो-जो प्रश्न उपस्थित हों उनको तय करने में कान्फरन्स को रस लेकर यथाशक्य सब प्रकार से प्रयत्न करना चाहिये। कान्फरन्स यह कार्य नहीं करेगी तो करेगा कौन ? कान्फरन्स ने आज तक श्रमणवर्ग के प्रश्न में रस लिया है और रस लेते रहना चाहिये।

उक्त मंतव्यों के बारे में अपना मत व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा कि श्रमणवर्ग के कितनेक प्रश्न ऐसे होते हैं जो उनके अन्तरंग जीवन को स्पर्शते हैं। जैसे कि श्रमणवर्ग की समाचारी व अन्तरग आचारादि विषय उनके अन्तरंग जीवन को स्पर्शते हैं और इन प्रश्नों का निर्णय श्रमणवर्ग स्वयं करे, यह इच्छनीय है, परन्तु श्रमणवर्ग के कितनेक प्रश्न ऐसे होते हैं जिनका प्रत्याघात श्रावकवर्ग पर भी पड़ता है। ऐसे प्रश्नों में श्रावकवर्ग को भी रस लेना चाहिये और सन्तोषप्रद निर्णय लेने के लिये शक्य प्रयत्न करना चाहिये।

जैनशासन में चतुर्विध सघ की रचना है और चारों ही तीर्थ परस्पर संकलित हैं अतः एक भी वर्ग की उपेक्षा नहीं की जा सकती है।

इसके सिवाय शास्त्रों में तो श्रावकों को अम्मापियरो माना गया है। अतः श्रमणवर्ग के प्रश्नों में श्रावकों को रस लेना चाहिये और श्रावकों की प्रतिनिधि सस्था कान्फरन्स को सक्रिय कारंवाई करना चाहिये।

वर्तमान में श्रमणवर्ग में जो परिस्थिति उत्पन्न हुई है और संगठन टूटने जैसा वातावरण दिख रहा है, उसकी जड़ में श्रमणसंघ में प्रवर्तमान ऊंचनीच के भेदभाव की भावना मुख्य है। 'हमारे आचार ऊंचे, दूसरे हमसे चारित्रपालन में नीचे' ऐसी मान्यता अभी तक कतिपय श्रमणों में चलती है और उसके फलस्वरूप संगठन के दृढ़ होने की अपेक्षा विघटन जैसी परिस्थिति उत्पन्न हो रही है। श्रमणसंघ में अभी जो विवादास्पद प्रश्न पैदा हुए है और अनिर्णीत हैं, इनके मूल में उक्त प्रकार का मानस ही कार्य कर रहा है।

इस द्व्यर्थक वक्तव्य का आशय स्पष्ट था कि श्रमणसघ के समक्ष समाधान के लिये उपस्थित ज्वलंत प्रश्नों और उनके बारे में आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. द्वारा दी गई व्यवस्था से समाज का ध्यान हटाकर उनको मुनिवरों के अपने को ऊंचा और दूसरे को नीचा मानने के रूप में प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई। जिससे शिष्टमंडल की असफलता के प्रति व्याप्त रोष का रुख आचार्यश्री या मुनिवरों की ओर बदल जाये और समाज पुनः संगठन हेतु नये सिरे से प्रयत्न करने के लिये कान्फरन्स से आग्रह करे और आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. द्वारा अभी तक किये गये प्रयत्नों की ओर ध्यान ही न दिया जाये। इसी को ध्यान में रखते हुए उक्त अवसर पर प्रस्ताव भी पारित किया गया। जिसका सारांश यह है— इस कमेटी को यह जानकर गहरा दुःख और खेद होता है कि अधिकारी मुनिराजों के मतभेद के कारण श्रमणसघ की स्थिति निर्बल हो रही है। जिससे समस्त स्थानकवासी जैन समाज को बहुत हानि हो रही है। यह जनरल कमेटी श्रमणसंघ के मुनिवरों से आग्रह पूर्वक विनती करती है कि वे अपने मतभेद मिटाकर श्रमणसंघ की व्यवस्था सगठित और कार्यशील

बनायें। इस पुण्यकार्य में जो मुनिराज और श्रावकगण सहयोग देते हैं उनका यह कमेटी स्वागत करती है।

आज की जनरल कमेटी श्रमणसंघ के, समस्त स्था० जैनों के हित में समाज की एकता चाहती है। इस कार्य के लिये निम्न सज्जनों की एक प्रभावक समिति नियुक्त करती है। यह समिति पुनः भगीरथ पुरुषार्थ करके स्थानकवासी जैन समाज की प्रगति के लिये श्रमणसंघ में ऐक्य दृढ़ करने का प्रयत्न करे। इस समिति के प्रयत्न के बाद, समिति की रिपोर्ट के बाद पुनः यह समग्र प्रश्न आगामी जनरल कमेटी के समक्ष विचारार्थ पेश करे।

१. श्री कुन्दनमलजी फिरोदिया, अहमदनगर
२. चिमनलालभाई चकुभाई शाह, बंबई
३. श्री मोहनमलजी चोरडिया, मद्रास
४. श्री अचलसिंहजी (कान्फरन्स प्रमुख), आगरा
५. श्री गिरधरभाई दफ्तरी, बंबई
६. श्री छगनमलजी मूथा, बेंगलोर
७. केशरबेन जौहरी, पालनपुर

इस प्रस्ताव से स्पष्ट हो जाता है कि श्रमणसंघ में आगत निर्बलता का मुख्य कारण मुनिवरों का आपसी मतभेद है और उसे दूर करने का प्रयत्न करने के लिये समिति कार्रवाई करे। जबकि बात ऐसी नहीं थी। श्रमणसंघ की अपनी व्यवस्था थी और उसके अनुसार ही श्रमणसंघ के उलझे प्रश्नों के निराकरण एवं शिथिलाचार के कांडों से समाज में व्याप्त असंतोष को दूर करने के लिये दी गई व्यवस्थाओं के पालन करवाने, दोषी व्यक्तियों का निर्मूलन कर शुद्ध वातावरण बनाने की आवश्यकता थी। इस प्रस्ताव से यह उद्देश्य सफल नहीं होने वाला था और दोषी व्यक्तियों को संतुष्ट करने का विशेष लक्ष्य रखा गया था।

ऐसे प्रस्ताव तो तभी कार्यकारी हो सकते थे जब निर्दोष को

दोषी घोषित किया गया हो अथवा आगमिक मर्यादाओं के प्रतिकूल किसी प्रकार का निर्णय दिया गया हो। यह दोनों बातें तो थी ही नहीं, अतः ऐसे प्रस्ताव समस्या को उलझाने वाले एवं मूल बात को दूसरे रूप में प्रस्तुत करने वाले सिद्ध होते हैं। जबकि होना यह चाहिये था कि संगठन की शुद्धता के लिये दिये गये आदेशों व व्यवस्थाओं का पालन करवाने के लिये प्रयत्न कर समाज का वातावरण दोषी व्यक्तियों को उच्छृंखल खेलने न देता। लेकिन इससे विपरीत प्रक्रिया ही अपनाई गई।

अगर इसी बात को और स्पष्ट के रूप में कहा जाये तो वस्तुस्थिति यह है कि कुछ साधुओं ने साधुवेष में रहकर ब्रह्मचर्य भंग जैसी हरकतें कीं और उनके गुट्ट का भण्डाफोड़ हुआ, जिससे समाज को नीचा दिखाने का प्रसंग आ रहा था। उस समय कान्फरन्स के वरिष्ठ नेताओं ने आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. के चरणों में प्रार्थना की कि आपश्री इन सबका फैसला देकर समाज के गौरव को संबल बनाईये। तब आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. ने उन दोषी साधुओं के विषय में अधिकारी मुनिवरों के परामर्श पूर्वक निर्णय दिये, जिनको सभी ने स्वीकार किया। लेकिन जब अमली रूप देने का प्रसंग आया तब उन काण्डों से सम्बन्धित कुछ औरों के भी होने से राजनैतिक ढंग से कुत्सित गुटबंदियां बनाकर अमली रूप देने में गोलमाल करने लगे।

इसके अतिरिक्त ध्वनियंत्र आदि की जटिल समस्याओं के विषय में भी आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. ने अधिकारी मुनिवरों के परामर्श से सुलझाने वाली स्थिति का स्पष्टीकरण कर दिया और उसको स्वीकार कर लिया। लेकिन कुछ निहित स्वार्थी तत्त्वों ने उसमें भी गड़बड़ी पैदा कर दी और पुनः समाज को अन्धकार में रखने के लिए अनेक तरह के प्रयत्न किये गये। उनका परिमार्जन करने के लिए कान्फरन्स के नेताओं को पत्र दिखाये। इस पर उन्होंने स्पष्टरूप से आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. के चरणों में स्वीकार किया था कि

यहाँ पर कोई त्रुटि नहीं है। आपश्री ने जो व्यवस्थायें दी हैं, वे समाज के लिए हितावह हैं और इस प्रकार के प्रयास से ही समाज का शिथिलाचार दूर होगा। संगठन मजबूत बन सकेगा। लेकिन जिन व्यक्तियों ने आपश्री की व्यवस्था में गड़बड़ी की है, उन व्यक्तियों को हम समझाने का प्रयास करना चाहते हैं आदि कहकर समझाने का प्रयास करने के लिए शिष्टमंडल भी बनाया गया, लेकिन शिष्टमडल में दृढ़तापूर्वक कार्य करने की क्षमता अति कमजोर बन गई और हतोत्साह होकर शिष्टमण्डल लौट आया। इसलिये कान्फरन्स के प्रति समाज का उपेक्षा भाव दिनोंदिन बढ़ता गया एवं सत्य को स्वीकार करके भी उसे दृढ़तापूर्वक समाज के समक्ष रखने की शक्ति कान्फरन्स के नेताओं में न रही।

तब कान्फरन्स के कुछ नेता लोगों ने किसी तरह से अपनी प्रतिष्ठा बनाने के लिए सत्य स्थिति को तोड़-मरोड़कर ऊंच-नीच आदि के व्यर्थ वाक्यों का प्रयोग किया। जिससे सैद्धान्तिकस्थिति और वस्तुस्थिति से जनता का ध्यान हट जाये और येन-केन-प्रकारेण कान्फरन्स व उसके वरिष्ठ नेताओं की प्रतिष्ठा बनी रहे। लेकिन यह स्थिति समाज भलीभांति समझती थी। इसलिए कान्फरन्स की कमेटी के प्रसंग पर भूमिका के रूप में श्री चिमनलाल चकूभाई शाह आदि के वक्तव्य एवं पारित प्रस्ताव आदि का समाज पर कोई असर नहीं हुआ, बल्कि यह कहने लगी कि अपनी गलती को छिपाने के लिए यह सब कुछ किया जा रहा है। यही कारण है कि उसके पश्चात् कान्फरन्स की प्रतिष्ठा अत्यधिक गिरती गई। कान्फरन्स के नेता अपने अन्तर् में तो प्रायः इसका अनुभव करने लगे थे लेकिन उसको प्रगट करने में सकोच करते रहे। फिर भी समय समय पर कुछ शब्द निकल ही जाते थे। जैसे कि कान्फरन्स की जनवरी ६७ में हुई जनरल कमेटी के अवसर पर कान्फरन्स के उपाध्यक्ष श्री सौभाग्यमलजी जैन ने अपने वक्तव्य में कहा था कि—

'स्थानकवासी जैन समाज में एक दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति यह है कि अ. भा. श्वे. स्था. जैन कान्फ्रेंस की समाज में उतनी मान्यता आज नहीं है कि जितनी स्वर्गीय उपाचार्य श्री गणेशलालजी म. के श्रमणसंघ से पृथक् होने के पूर्व थी।'

कान्फरन्स की जनरल कमेटी ने अपना प्रस्ताव पारित कर लिया था। अब उसके अनुसार कुछ-न-कुछ कार्रवाई करने के लिये दि. १६-२-६० को कान्फरन्स की कार्यकारिणी समिति की बैठक में शिष्टमंडल को प्रयत्न करने की सूचना देने का निश्चय किया गया। कान्फरन्स के अध्यक्ष ने देश के विभिन्न क्षेत्रों का प्रवास कर समाज की भावनाओं को समझने का प्रयास किया। लेकिन शिष्टमंडल ने अभी तक अपने प्रयत्न प्रारम्भ नहीं किये थे। इस प्रकार यह अव्यवस्था की कूटग्रंथि जैसी-की-तैसी बनी हुई थी और उसकी ओर देखने का किसी को समय नहीं था। यह सच है जब सत्य बात भी कूटनीति के चंगुल में फंस जाती है तो उसको लंबे समय तक टालते रहने के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं रह जाता है।

प्रायश्चित्त सम्बन्धी घोषणा

आपरेशन के पश्चात पूज्य आचार्य श्रीजी का स्वास्थ्य पूर्वापेक्षा उत्तरोत्तर सुधार पर था और साध्वोचित क्रियाओं का भी यथापूर्व अप्रमत्तभाव से अनुसरण करने लगे थे तथा यथाशीघ्र आपवादिक स्थिति में लगे दोषों का प्रायश्चित्त कर लेना चाहते थे।

इस विषय में शास्त्रीय दृष्टि से प्रायश्चित्त लेने में आचार्य श्रीजी म. सा. स्वयं स्वतन्त्र थे। लेकिन उनकी यह महानता थी कि अपने से दीक्षा में और पद में छोटे उपाध्याय श्री आनन्दऋषि जी म. व बहुश्रुत पं. रत्न मुनिश्री समर्थमलजी म. को आलोचना भेजकर प्रायश्चित्त लेने के बारे में राय मांगी। उन्होंने प्रायश्चित्त लेने में आप समर्थ होते हुए भी आप छोटे मुनिवरों से जो राय मांग रहे हैं यह आपकी महानता है आदि लिखाते हुए चार मास के तप अर्थात् गुरु

चौमासी की सूचना करवाई। इस गुरु चौमासी में तप और छेद दोनों आते हैं लेकिन उनका इशारा तप की तरफ था। लेकिन आचार्य श्रीजी म. सा. ने चार मास का छेद प्रायश्चित्त लिया, जो तप की अपेक्षा अधिक भारी होता है। तदनुसार ता. ९-४-६० सं. २०१७ महावीर जयन्ती के दिन सघ के समक्ष आपवादिक स्थिति में लगे दोषों का शुद्धिकरण करने के लिए दोनों मुनिवरों की राय बताते हुए छेद प्रायश्चित्त ग्रहण किया और साथ ही सेवा में रहने वाले संतों को भी यथायोग्य प्रायश्चित्त दिया।

प्रायश्चित्त लेने संबंधी घोषणा करने के पूर्व सर्व प्रथम आचार्य श्रीजी म. सा. ने संयमी जीवन के सम्बन्ध में विशद विवेचन किया। पश्चात प्रायश्चित्त के सम्बन्ध में भाव व्यक्त किये—

'मेरे असाता वेदनीयकर्म के उदय से मेरी जो कुछ भी स्थिति बनी, वह समाज के सामने है। जिस परिस्थिति के अन्दर मुझे आपरेशन के लिये बाध्य होकर आपवादिक स्थिति में गमन करना पड़ा, उस प्रसंग पर आपरेशन के एक दिन पूर्व में अपना वक्तव्य आप जनता के समक्ष दे चुका हूँ।

'चतुर्विध संघ की शुभ कामनायें मेरे साथ थीं और साता वेदनीय का उदय हुआ, जिससे मेरा स्वास्थ्य आज पूर्वापेक्षा ठीक है और मैं आज आप लोगों के समक्ष इस अवस्था में बठा हूँ।

'आपरेशन के निमित्त विवशता से कुछ क्रियायें लगीं। फलतः संयमी मर्यादाओं में टंटा लगा। आपरेशन के बाद डाक्टरों के अभिप्रायानुसार डीप एक्सरे भी लेना पड़ा। उस सबका शुद्धिकरण मैं जनता के सामने करना चाहता हूँ।

'आज महावीर स्वामी का जन्म दिन है। जनता की उपस्थिति भी अच्छी है। अतः मैं यह स्पष्ट करता हूँ कि आपवादिक हालत में आपरेशन सम्बन्धी जो भी टंटा लगा उसकी मैं शुद्धि करता हूँ।

'इसके लिये मैंने पं. रत्न उपाध्यायजी आनन्दऋषिजी म. से व बहुश्रुत पं. रत्न समर्थमलजी म. से अभिप्राय मंगवाये। दोनों मुनि-

वर ने गुरु चौमासी के लिये अपना अभिप्राय दिया। गुरु चौमासी का मतलब उत्कृष्ट १२० उपवास अथवा चार मास का छेद होता है।

'मैं समस्त चतुर्विध संघ के सामने अपनी शुद्धि के लिये चार मास का दीक्षाछेद रूप प्रायश्चित्त लेता हूँ। तदनुसार जो संभोगी संत मेरे से मेरी निश्चित दीक्षा तिथि से एक दिन से लेकर चार महिने छोटे हैं, वे मेरे से बड़े गिने जायेंगे। पहले वे मुझे वंदन करते थे, पर अब मैं उनको वंदन करूंगा। क्योंकि अब मैं उनसे छोटा होगया हूँ।

'मेरी इस रुग्ण-अवस्था में मेरे लिये संतों को पथ्य आदि के लिये जो भी लाना पड़ा उसमें कभी उनको निर्दोष नहीं मिला तो परिस्थितिवश आधाकर्मी आदि दोषयुक्त भी लाना पड़ा, उसके लिये मैं उनको १२० उपवास का दण्ड देता हूँ।

'इसके अतिरिक्त जिन्होंने मेरे साथ ऐसी परिस्थिति में केवल संभोग रखा उनको मैं चार-चार उपवास का दड देता हूँ।'

कूटनीतिक प्रयास : विघटन की बढ़ती दरार

श्रमणसघ की स्थिति को सुधारने के प्रयत्न अवश्य चालू किये गये लेकिन वास्तविकता को परे रखने से श्रमणसंघ की स्थिति को और अधिक उलझाने के प्रयत्न किये जा रहे थे।

श्रमणसंघ की अव्यवस्था के मुख्य तीन प्रश्न थे— ध्वनियंत्र विषयक निर्णय, सुत्तागमे में होने वाले सूत्रों के पाठान्तरों को रोकने बावत, पाली शिथिलाचार कांड के निर्णय को कार्यान्वित करना। लेकिन यह तीनों प्रश्न तो अब गौण बना दिये गये और आचार्य उपाचार्य के मतभेदों को मुख्यता दी जा रही थी। मूल प्रश्न से ध्यान बटाने के लिये पहले से ही प्रयत्न चालू हो गये थे। जिनका संकेत दि. २३-जनवरी ६० को बंबई में हुई कान्फरन्स की विशेष साधारण सभा में पारित प्रस्ताव और उनके सम्बन्ध में प्रस्तुत किये गये विचारों से मिलता है।

इसके अनन्तर दिल्ली में २३-२४ अप्रैल ६० को कान्फरन्स की ओर से आयोजित वृहत् जैन कार्यकर्ता सम्मेलन व गोलमेज परिषद

में व्यक्त विचारों से भी इसकी पुष्टि होती है। गोलमेज परिषद में पारित प्रस्ताव का मुख्य अंश इस प्रकार है—

'....श्रमणसंघ के प्रमुख अधिकारियों में और विशेषकर पूज्य आचार्य श्रीजी एवं पूज्य उपाचार्य श्रीजी के बीच कितनी ही बातों में मतभेद हो गया और गलतफहमी बढ़ती गई।

'श्रमणसंघ की व्यवस्था को बनाये रखना तो मुनिराजों और श्रमणसंघ के अधिकारियों का दायित्व है। इस परिषद को हार्दिक खेद और दुःख होता है कि प्रमाण में साधारण-सी दिखने वाली बातों में यह मतभेद तीव्र हुए हैं और परिस्थिति विषम हुई है। यह परिषद दृढ़ता से मानती है कि इन मतभेदों का निराकरण कर श्रमणसंघ के कार्यों में आगत शिथिलता और अवरोध को दूर करने का उत्तरदायित्व मुख्यतया पूज्य आचार्य श्रीजी और पूज्य उपाचार्य श्रीजी पर ही है। श्रमणसंघ के प्रमुख मुनिवरों, उपाध्याय मुनिवरों और मंत्री मुनिराजों को शीघ्र ही इस कार्य में सहायता देना चाहिये।......

'ध्वनिवर्धकयंत्र-प्रयोग के प्रस्ताव संबंधी मतभेदों को दूर करने के लिये तत्काल आवश्यक स्पष्टीकरण करके उत्पन्न विषमता को दूर करना चाहिये।

'यह स्पष्ट है कि शिथिलाचार को कोई भी उत्तरदायित्व पूर्ण मुनि अथवा श्रावक प्रोत्साहित नहीं करना चाहता किन्तु पंच महाव्रतों का पालन और सामान्य नियमों का पालन इन दोनों की वास्तविकता के प्रमाण को भी ध्यान में रखना आवश्यक है।

'इन सबको लक्ष्य में रख पूज्य आचार्य श्रीजी और पूज्य उपाचार्य श्रीजी से अपने मतभेदों को दूर करने के लिये यह परिषद आग्रहपूर्वक अभ्यर्थना करती है और साथ ही इस कार्य में सहयोग देने की प्रमुख मुनिराजों से विनती करती है।......'

इसी प्रस्ताव में यह भी उल्लेख था कि संवत्सरी तक मतभेदों का निराकरण न हो तो आवश्यकता पड़ने पर प्रमुख मुनिराजों और

श्रावकों की मध्यस्थता द्वारा अन्तिम निर्णय ले। इसका आशय यह था कि आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. के वैधानिक आदेशों और वैध उपायों की अवहेलना कर प्रकारान्तर से उनकी अवगणना करके सिद्धान्त और चारित्रहीन थोथे संगठन को टिकाये रखने के लिए एवं समाज में अपनी प्रतिष्ठा कायम रखने का प्रयास हो।

इस प्रकार के वक्तव्य देना और प्रस्ताव पारित करना सिर्फ अपनी गलती को महसूस न करके दूसरों पर उत्तरदायित्व डालने आदि से जनता को गुमराह करने का प्रयास कुटिल राजनैतिक तरीकों से पैंतरा बदलना कहा जा सकता है। इस दृष्टिकोण का परिणाम ही यह हुआ कि शनैः-शनैः श्रमणसंघ का अनुशासन भग होता गया और साधु-सन्तों को यथेच्छा प्रवृत्ति करने का अवसर मिलता रहा। जिससे श्रमणसंघ की विस्फोटक परिस्थिति दिनोंदिन गंभीर बनती गई।

श्रावक और साधुवर्ग यह अच्छी तरह से मानता है कि श्रावक को श्रावकधर्म और साधु को साधुधर्म का पालन करना चाहिये। लेकिन अन्धश्रद्धा और धार्मिक भावुकता की ओट में बढ़ने वाले स्वच्छन्दाचार के कारण श्रमण-जीवन की स्थिति निर्बल होना पूज्य और पूजक दोनों के लिये भयावह है। आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. इस भयावह स्थिति के परिणामों से चतुर्विध सघ को परिचित कराकर निर्ग्रंथ श्रमण-परम्परा की सुरक्षा के साथ श्रमणसंघ को मजबूत बनाने में प्रयत्नशील थे। जबकि समाज के कतिपय कार्यकर्ता इस ओर लक्ष्य न कर नाममात्र के श्रमणसंघ का रट लगाते थे। उनका मंतव्य था कि जैसे-तैसे श्रमणसंघ का नाम बना रहे। इसी विचारधारा को केन्द्रबिन्दु मानने का यह परिणाम हुआ कि वे आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. की विचारधारा के मूल तक नहीं पहुंच पाये और उसका कुछ इस प्रकार का रूप बनाया गया कि मानो श्रमणसंघ को खंडित करने में आचार्य श्रीजी के आदेश कारणरूप हैं।

लेकिन जो साध्वाचार की मर्यादाओं से परिचित हैं तथा जिन्हें श्रमणधर्म का ज्ञान है वे आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. के निर्णयों

को आवश्यक, संवैधानिक एवं उपादेय मानते थे। लेकिन ऐसे मर्मज्ञ संख्या में अल्प थे। बहुमत की दृष्टि में अल्पमत हेय, उपेक्षणीय रहता है और यही बात इनके लिये भी हुई। उनकी सत्य एव तथ्यपूर्ण बात को सुनने का किसी को अवकाश नहीं था और अवकाश भी हो तो अपने पूर्वग्रह से निर्मित विचारों को बदलने का साहस नहीं था।

शिष्टमंडल का परिभ्रमण

आचार्य श्रीजी म. सा. का आपरेशन के पश्चात स्वास्थ्य उत्तरोत्तर सुधरता जा रहा था। थोड़ा-बहुत घूमना भी प्रारम्भ हो चुका था। सं. २०१७ के चातुर्मास के लिये विभिन्न क्षेत्रों के श्रावक-संघों के प्रतिनिधिमंडल विनती के लिये उपस्थित होते थे। लेकिन अभी शारीरिक स्थिति इतनी अच्छी नहीं थी कि शेष काल के लिये भी उन क्षेत्रों की ओर विहार हो सके और उदयपुर श्रीसंघ की बार-बार साग्रह विनती होती रहती थी कि आपश्री उदयपुर विराजकर ही आत्म-साधना करते हुए हमें ज्ञान-ध्यान-तप-साधना का उपदेश देकर कृतार्थ करें। इन दोनों स्थितियों को देखते हुए द्रव्य क्षेत्र-काल-भावानुसार समय-समय पर उदयपुर के उप नगरों में विहार कर पुनः नगर के मध्य स्थित पंचायती नोहरे में पदार्पण करते थे।

सं. २०१७ के चातुर्मास में उदयपुर विराजना हुआ।

श्रमणसंघीय स्थिति जटिल बनी हुई थी। दि. २३, २४ अप्रैल ६० को कान्फरन्स की ओर से आयोजित गोलमेज परिषद के पारित प्रस्तावानुसार सवत्सरी तक श्रमणसंघ के गत्यवरोध का निराकरण संभव नहीं हो सका था।

सवत्सरी तक गत्यवरोध का निराकरण न होने पर उक्त प्रस्ताव में कान्फरन्स की जनरल कमेटी का अधिवेशन करके आवश्यक कार्रवाई करने तथा आवश्यकता पड़ने पर प्रमुख मुनिराजों एवं श्रावकों की मध्यस्थता द्वारा निर्णय लेने का अधिकार जनरल कमेटी को देने का संकेत किया गया था।

अतः इस संकेतानुसार यह आवश्यक हो गया था कि कॉन्फ्रेन्स की जनरल कमेटी शीघ्र बुलाई जाये और प्रमुख मुनिराजों व श्रावकों की मध्यस्थता द्वारा अन्तिम निर्णय लिया जाये। इन कार्यों की पूर्ति हेतु दि. २४, २५ सितम्बर ६० को बबई में कान्फरन्स की जनरल कमेटी की बैठक करने एवं प्रमुख मुनिराजों की सेवा में श्रावकों का शिष्टमडल भेजने का निश्चय किया गया।

शिष्टमडल प्रधानमन्त्री श्री मदनलालजी म. सा. एवं उपाध्याय श्री अमरचन्दजी म. से मिला और आचार्य श्री आत्मारामजी म. की सेवा में भी उपस्थित होना था, लेकिन वहां क्यों नहीं गया, आज तक ज्ञात नहीं हो सका। दिनांक १६-६-६० को दिल्ली में होने वाली कान्फरन्स की कार्यकारिणी समिति की बैठक में शिष्टमडल ने अपना विवरण प्रस्तुत किया।

अवैधानिक घोषणा

समिति की बैठक के बाद शिष्टमंडल पूज्य आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. की सेवा में भी उपस्थित होने वाला था कि इसी बीच अन्दर-ही-अन्दर जोड़-तोड़ करने वाले तत्त्वों ने दि. १५-६-६० को आचार्य श्री आत्मारामजी म. सा. से श्रमणसंघ के गत्यवरोध के निराकरण के नाम पर आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. के अधिकार लेने सम्बन्धी निम्नलिखित अवैधानिक घोषणा प्रकाशित करवाई—

'श्रमणसंघ की व्यवस्था करने हेतु सन् १९५२ में जो अधिकार मैंने श्री उपाचार्य श्रीजी म. सा. को दिये थे, वे अधिकार संघ-एकता और संघशांति की दृष्टि से संघ को अखडित रखने के लिये वापस लेता हूँ और जब तक साधुसमेलन न हो तब तक श्रमणसंघ के उपाध्याय श्री आनन्दऋषिजी म., उपाध्याय श्री हस्तीमलजी म., उपाध्याय कवि श्री अमरचन्दजी म., प्रांतमंत्री श्री पन्नालालजी म. तथा प्रान्तमत्री श्री शुकलचदजी म. इन पांच मुनिराजों की कार्यवाहक समिति को सौंपता हूँ जो प्रायश्चित्त आदि

श्रमणसंघ सम्बन्धी सभी कार्य सम्पन्न करेंगी। इस समिति का कार्य संचालन उपाध्याय श्री आनन्दऋषिजी म. करेंगे। मुझे आशा है कि श्रमणसंघ के मन्त्रीमंडल तथा समस्त मुनि महाराज एवं महासतीजी म. कार्यवाहक समिति को श्रमणसंघीय प्रत्येक कार्य में सक्रिय सहयोग देंगे।

लुधियाना रामरतनलाल
१५-९-६० प्रेसीडेन्ट एस. एस. जैन ब्रादरी लुधियाना

शिष्टमंडल के उदयपुर प्रस्थान करने तक भी उक्त अवैधानिक घोषणा की जानकारी चतुर्विध संघ को नहीं हो सकी थी। शिष्टमंडल दि. १९-९-६० को दिल्ली से प्रस्थान कर अजमेर, ब्यावर, गुलाबपुरा, विजयनगर होते हुए उदयपुर पूज्य आचार्य श्रीजी की सेवा में उपस्थित हुआ। शिष्टमंडल में सर्वश्री सेठ अचलसिंह जी आगरा, सेठ मोहनमलजी चोरडिया मद्रास, सरदारमलजी कांकरिया कलकत्ता, खीमचंदभाई वोरा बंबई, धीरजलालभाई तुरखिया, चिमनलाल चकूभाई बंबई, सेठ छगनमलजी मूथा बेंगलोर, जवाहरलालजी मुणोत अमरावती और श्री नाथूलालजी सेठिया रतलाम आदि सज्जन सम्मिलित थे। शिष्टमंडल की श्रमणसंघ के प्रश्नों के प्रत्येक पहलू पर चर्चा हुई। शिष्टमंडल के समक्ष श्रमणसंघ की समस्यायें और उनके सम्बन्ध में आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. की विचारधारा स्पष्ट थी। आपश्री शास्त्रीय मर्यादाओं और साध्वाचार के विपरीत अथवा द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की सुविधा के नाम पर ऐसा कोई भी समाधान नहीं चाहते थे, जिससे श्रमण संस्था में अनाचार, स्वैराचार को प्रश्रय मिले। उनकी एक ही भावना थी कि साधु साधु हो, साधुता के प्रति निष्ठा हो और चतुर्विध संघ में अकर्मण्यता को प्रसार का मौका न मिले।

शिष्टमंडल के समक्ष इन्हीं सब बातों को स्पष्ट कर दिया गया था। शिष्टमंडल आचार्यश्री के विचारों से सहमत था। शिष्टमंडल के सदस्यों ने आपस में भी चर्चा-वार्ता की और निश्चय किया गया कि

आगामी दि. २४, २५ सितम्बर ६० को बंबई में होने वाली कान्फरन्स की जनरल कमेटी की बैठक में पूज्यश्री गणेशलालजी म. सा. के विचारों के अनुकूल कार्रवाई करने का निर्णय किया जाये।

श्रमणसघीय गत्यवरोध के निराकरण के लिये आचार्यश्री आत्मारामजी म. द्वारा की गई अवैधानिक घोषणा के सम्बन्ध में उदयपुर श्रीसंघ के सदस्यों ने जब शिष्टमंडल के प्रमुख सदस्य श्री चिमनलाल चकूभाई शाह से जानकारी चाही तो उनकी भाव-भंगिमा से प्रतीत हुआ कि कम-से-कम घोषणा के सम्बन्ध में उनको कुछ भी जानकारी नहीं है और न ऐसा करने में हाथ है। शिष्टमंडल के रुख से ऐसा दिखा कि बंबई पहुंचते ही उक्त घोषणा को वापस लिवाने का प्रयत्न करेगा। उदयपुर से शिष्टमंडल रतलाम होते हुए बंबई रवाना हो गया।

जनरल कमेटी का अवैधानिक प्रस्ताव

दि. २४, २५ सितम्बर ६० को कान्फरन्स की जनरल कमेटी में श्रमणसघ के गत्यवरोध के बारे में चर्चा हुई। किसी ने कहा कि इसके बारे में अपने माने हुए दायरे की दृष्टि से विचार न कर समस्त समाज व श्रमणसंघ को दृष्टि में रखकर विचार करें तो किसी ने कहा कि पुराना भूल जायें और फिर नई कार्रवाई प्रारम्भ की जाये तो यह प्रश्न बड़ी सरलता से सुलझ सकता है। इन विचारों का साधारण आशय यह हुआ कि अभी तक श्रमणसघ के संगठन को निर्बल बनाने वाले प्रश्नों पर किसी प्रकार का विचार न किया जाये और सगठन की आड़ में चलने वाले पापाचार पर पर्दा डाल दिया जाये। संगठन के नाम पर हुई अवैधानिक घोषणा भी बरकरार रहे और आचार्यश्री गणेशलालजी म. सा. से प्रार्थना की जाये कि वे पूर्ववत श्रमणसंघ का संचालन करते रहें। लेकिन उक्त विचारों के सम्बन्ध में यह विचारणीय है कि क्या अवैधानिक कार्रवाई के साथ वैधानिक परम्परा का सुमेल बन सकता है ? क्या अवैधानिकता से उत्पन्न उच्छृंखल स्थिति में

वैधानिक नियमों का पालन होता रहेगा ?

इस चर्चा से एक और तथ्य सामने आया कि शिष्टमंडल का लुधियाना न जाना एक नाटक ही था तथा अवैधानिक घोषणा करवाने में कान्फरन्स के अग्रणी सज्जनों का हाथ अवश्य था। अन्यथा जो श्री चिमनलाल चकुभाई शाह उदयपुर में कह गये थे कि घोषणा को वापस लिवाने के लिये प्रयत्न करेंगे, वे ही जनरल कमेटी के समक्ष भ्रमात्मक प्रस्ताव न रखते, जिसमें अवैवानिक घोषणा के साथ संवधानिक न्यायनींति युक्त आदेशों को भी वापस लेने का उल्लेख किया गया था। तत्सम्बन्धी अंश इस प्रकार है—

'वातावरण की शुद्धि और भविष्य के कार्य की सरलता के लिये पूज्य आचार्य श्री व पूज्य उपाचार्य श्री की तरफ से 'भीनासर सम्मेलन के बाद जो परस्पर निवेदन प्रगट हुए हैं, जिनमें पूज्य आचार्य श्री की तरफ से ता. १५ सितम्बर ६० के रोज हुई घोषणा का तथा पूज्य उपाचार्य श्री की तरफ से उनका २२-६-६० को दिये गये उत्तर का समावेश होता है—वे सब तुरन्त ही वापस लेने का यह जनरल कमेटी पूज्य आचार्य श्री व पूज्य उपाचार्य श्रीजी को आग्रह पूर्वक विनती करती है।'

इस अंश से स्पष्ट हो जाता है कि जनरल कमेटी ने श्रमणसंघ के गत्यवरोध के निराकरण में वास्तविकता को छिपाकर परिस्थिति को बिगाड़ने में और अधिक योग दिया। इसी कारण सदस्यों द्वारा प्रस्ताव का विरोध हुआ और सिर्फ बहुमत के बल पर पारित कराकर श्रमणसंघ की खाई और चौड़ी कर दी।

घोषणा की अवैधानिकता के सम्बन्ध में

श्रमणसंघ के गत्यवरोध के निराकरण के नाम पर दि. १५-६-६० को आचार्य श्री आत्मारामजी म. द्वारा प्रसारित घोषणा क्या श्रमणसंघ के विधान के अनुकूल थी या नही, और क्या आचार्य श्री आत्मारामजी म. वैसी घोषणा करने के अधिकारी भी थे या नहीं ? एतद्-

विषयक कुछ तथ्यों पर प्रकाश डालते हैं।

सादड़ी में श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रमणसंघ की स्थापना विभिन्न संप्रदायों के एकीकरण, पारस्परिक प्रेम और ऐक्यवृद्धि करने एवं सयममार्ग में उत्पन्न विकृतियों को दूर करने के उद्देश्य से हुई थी। उस अवसर पर श्रमणवर्ग में वृद्ध और जैनागमों के ज्ञाता होने से पूज्य श्री आत्मारामजी म. के प्रति श्रद्धा और सम्मान प्रदर्शन हेतु श्रमणसंघ ने उनको सिर्फ सम्मान के लिये आचार्य नियुक्त किया था। साथ ही उनकी शारीरिक अक्षमता को दृष्टि में रखते हुए पूज्य श्री गणेशलालजी म. को आचार्य के समस्त अधिकारों के साथ उपाचार्य नियुक्त किया और श्रमणसघ के संचालन का उत्तरदायित्व उन्हें सौंपा था। अतः आचार्य श्री आत्मारामजी म. की उक्त घोषणा श्रमणसंघ में प्रारम्भ से विद्यमान आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. की वधानिक स्थिति को प्रभावित करने में निष्फल एवं निष्क्रिय थी।

इसी वात की पुष्टि श्रमणसंघ के विधान की धाराओं और कार्रवाई तथा उसमें भाग लेने वाले संतों के विचारों व श्रावकों की ओर से उपस्थित श्री कुन्दनमलजी फिरोदिया के मंतव्य से भी होती है।

श्रमणसंघ के विधान की धारा १, २ इस प्रकार हैं—

१—इस श्रमणसंघ के एक आचार्य रहेंगे, जिनकी नेश्राय में में संघ के सब साधु-साध्वी रहेंगे।

२—आचाय श्री अतिवृद्ध हों अथवा कार्य करने में अक्ष हों तो मंत्रीमंडल उपाचार्य नियुक्त करेंगे और उपाचार्य जी आचार्य जी के सब अधिकार सम्हालेंगे।

पूज्य आत्मारामजी म. को सम्मान की दृष्टि से आचार्य नियुक्त अवश्य किया गया था किन्तु उनके अक्षम होने से संघ-संचालन के लिये सभी अधिकारों के साथ उसी समय उपाचार्य पद (वस्तुतः जिसमें शाब्दिक भेद है किन्तु आचार्य पद के पूर्ण अधिकार थे) पर पूज्य श्री गणेशलालजी म. सा. को प्रतिष्ठित कर प्रस्ताव सं. २१ के

अनुसार आचार्य पद की चद्दर सं. २००६, बैशाख शुक्ला १३ बुधवार को दिन के ११ बजे सादड़ी में पूज्य श्री गणेशलाल जी म. सा. को ओढ़ाई गई थी तथा उपस्थित मुनियों ने आपश्री के चरणों में प्रतिज्ञापत्र भेंट किये थे। इससे सिद्ध हो जाता है कि आचार्य श्री आत्मारामजी म. को श्रमणसंघ के संचालन की व्यवस्था अथवा उसके सम्बन्ध में हस्तक्षेप करने के अधिकार नहीं थे। अतः आचार्य श्री आत्मारामजी म. की इस अवैधानिक घोषणा का न तो कोई मूल्य था और न उसके करने के वे अधिकारी ही सिद्ध होते हैं।

विधान की धाराओं और उनकी पालना के उल्लेख के पश्चात कुछ और तथ्य उपस्थित किये जा रहे हैं। जिनसे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि आचार्य श्री आत्मारामजी म. सम्मान की दृष्टि से ही आचार्य थे और संघ-संचालन की सत्ता उनमें निहित नहीं थी।

साधुसम्मेलन के पश्चात पंजाब से आचार्य, उपाचार्य के पद व अधिकारों के सम्बन्ध में कुतर्क उठाये गये तब कान्फरन्स के तत्कालीन अध्यक्ष श्री चंपालालजी बांठिया ने श्री कुन्दनमलजी फिरोदिया जो श्रावकों की ओर से साधुसम्मेलन की कार्रवाई में भाग लेते थे, को पत्र लिखकर इस सम्बन्ध में पूछा। प्रत्युत्तर में श्री फिरोदिया जी ने अहमदनगर से दि. १९-६-५२ को पत्र द्वारा स्पष्टीकरण किया। पत्र का सम्बद्ध अंश इस प्रकार है—

'मुख्य प्रश्न यह है कि जब यह सब बना तब बनाने वाले का हेतु क्या था? प्रस्ताव नं. १८ के अनुसार आचार्य और उपाचार्य इन दोनों की नियुक्ति मुनिराजों ने की है। ... ... पंजाबसंघ के मंत्री श्री कृष्णकान्तजी ने जो अर्थ निकाला है कि उपाचार्य का पद यों ही है ......इससे मैं सहमत नहीं हो सकता। आचार्य श्री आत्मारामजी महाराज अभी मौजूदा जो मुनिराज हैं उनमें वह वृद्ध, अनुभवी और ज्ञानी हैं। इसी सबब से उनको आचार्य के पद वास्ते पसदगी हुई। परन्तु यह पसन्दगी करने के वक्त पर ही सभी मुनिराजों ने यह सोचा

कि उनकी शारीरिक और मानसिक स्थिति को देखते हुए उनसे यह काम का बोझ उठाया नहीं जा सकेगा। उसके लिये साथ-साथ उपाचार्य की नियुक्ति की। यह करने का कारण ही वधारण कलम २ में दिया हुआ है। यह उनका मंतव्य न होता तो साथ-साथ ही उपाचार्य-श्री की नियुक्ति करने की जरूरत न थी। आचार्य श्री फिलहाल (वर्तमान समय) में अपना काम सम्हालने योग्य होते तो उपाचार्य की नियुक्ति तावड़तोड़ करने की जरूरत न थी।········ परन्तु यहां तो वर्तमान परिस्थिति में तावड़तोड़ ही आचार्य की नियुक्ति के साथ उपाचार्य नियुक्त हुए, इससे आचार्यश्री को सम्मान का स्थान दिया गया। परन्तु कार्य करने का सब अधिकार उपाचार्य श्री को ही है, यह बात पृष्ठ ५६, कलम २ में स्पष्ट है। पृष्ठ ६० पर जो बात लिखी गई है वह वर्तमान समय में लागू न होते हुए भविष्य में कोई आचार्य वृद्धावस्था के कारण अथवा अन्य कारणों के सबब आचार्य का पूरा काम सम्हालने में समर्थ स्वतः को न समझें तो वह उपाचार्य की नियुक्ति मन्त्रीमंडल की सलाह से कराकर कुछ अधिकार और कार्यक्षेत्र उनको दे सकते हैं।'

इस वस्तुस्थिति के स्पष्टीकरण से वर्तमान और भविष्य की दोनों दृष्टियां स्पष्ट हो जाती हैं एवं वर्तमान में आचार्यश्री द्वारा अधिकार देने-लेने का प्रश्न ही नहीं उठता। इसी सम्बन्ध में मन्त्री मुनिश्री पुष्करमुनिजी के विचार भी प्रस्तुत कर रहे हैं। जो उन्होंने कान्फरन्स को दिये गये उत्तर में व्यक्त किये थे—

'वंधारण की द्वितीय धारा से यह स्पष्ट हो जाता है कि उपाचार्य श्री की नियुक्ति आचार्य श्री को अति वृद्धावस्था व कार्य करने की अक्षमता से हुई है। यदि आचार्य श्री कार्य करने में सक्षम होते तो प्रथम धारा के अनुसार उपाचार्य श्री की नियुक्ति नहीं हो सकती थी। इस दृष्टि से कार्यवाहक तरीके उपाचार्य श्री ही माने जा सकते हैं, जैसे राजस्थान के महाराजप्रमुख व राजप्रमुख। उपाचार्य के

कर्तव्य और अधिकार की धारा साररहित है।'

इस स्पष्टीकरण से भी यही सिद्ध होता है कि आचार्य श्री का पद सम्मान की दृष्टि से है और उपाचार्यश्री ही श्रमणसंघ के संचालन के लिये अधिकार-सम्पन्न हैं। अतः आचार्यश्री की अवैधानिक घोषणा का कोई मूल्य नहीं रह जाता है और न वैसा करने का उन्हें कोई अधिकार ही था।

अब स्वयं पूज्य आचार्य श्री आत्मारामजी म. के विचार भी उपस्थित करते हैं। जिनसे स्पष्ट हो जायेगा कि वे स्वयं अपने को श्रमणसंघ के संचालन में योग देने वाला नहीं मानते थे। वे श्रमणसंघ के निर्माण हो जाने के निकटवर्ती काल में यह मानते थे कि श्रमणसंघ के संचालन के पूर्ण अधिकार विधान की दृष्टि से उपाचार्यश्री को ही हैं। एक बार कान्फरन्स का प्रतिनिधिमंडल जब लुधियाना गया था तब आचार्य श्री ने प्रतिनिधिमंडल को फरमाया था कि उपाचार्यश्री को सब अधिकार प्राप्त हैं अतः प्राप्त फरियादों पर यथार्थ प्रकार से यथाशीघ्र निर्णय करना चाहिये और करेंगे। उसी समय दूसरे प्रश्न के उत्तर में आचार्य श्री ने फरमाया था कि उपाचार्य श्री को इस पर अधिक विचारने का है, क्योंकि श्रमणसंघ का सक्रिय संचालन आप ही के ऊपर है।

उक्त उद्धरण यह स्पष्ट संकेत कर रहे हैं कि श्रावकवर्ग साधु-वृन्द और स्वयं पूज्य आत्मारामजी म. मानते हैं कि श्रमणसंघ संचालन के पूरे अधिकार विधानानुसार पूज्य आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. को प्राप्त हैं। अतः आचार्य श्री आत्मारामजी म. द्वारा अधिकार लेने-देने सम्बन्धी ता० १५-६-६० की घोषणा साररहित है, अवैधानिक है और श्रमणसंघ की व्यवस्था को खंडित करने वाली है।

अब श्रमणसंघीय विधान की सम्बन्धित धाराओं के बारे में भी चर्चा कर देना चाहते हैं। श्रमणसंघीय विधान की धारा २ में स्पष्ट उल्लेख है कि आचार्य श्री अतिवृद्ध हों अथवा कार्य करने में

अक्षम हों तो मंत्रिमंडल उपाचार्य नियुक्त करेगा और उपाचार्य श्री आचार्य श्री के सब अधिकार सम्भालेंगे।' इस धारा में तो' 'और सब' अधिकार' वाले शब्द बहुत महत्त्व के हैं। आचार्य श्री कार्य करने में अक्षम हों तो ही उपाचार्य की नियुक्ति का विधान किया गया है। सादड़ी साधुसम्मेलन ने आचार्य श्री की नियुक्ति के साथ-साथ ही उपाचार्य श्री की नियुक्ति की है। इसका स्पष्ट अर्थ ही यह है कि सम्मेलन में एकत्रित सभी प्रतिनिधि मुनिराजों ने आचार्य श्री को कार्य करने में अक्षम मान लिया था और इसीलिये सर्वानुमति से पूज्य श्री गणेशलालजी म. सा. को उपाचार्य पद पर विभूषित किया। यदि प्रतिनिधि मुनिवरों का ऐसा मंतव्य न होता तो उसी समय ही उपाचार्य श्री की नियुक्ति की जरूरत न थी। इसलिये पूज्यश्री गणेशलालजी म. सा. जब उपाचार्य पद पर विभूषित किये गये तो विधानानुसार श्रमण-संघ के संचालन के आचार्य पद के सब अधिकार उपाचार्य श्री को स्वतः ही प्राप्त हो गये। यह बात इतनी निर्विवाद है कि और स्पष्टीकरण की आवश्यकता नहीं रहती है।

एक बात का और संकेत कर देना चाहते हैं कि श्रमणसंघ के आचार्य, उपाचार्य को आजीवन के लिये साधुसम्मेलन में प्रतिष्ठित किया गया था और श्रमणसंघ के कार्यसंचालन का समस्त अधिकार पूज्यश्री गणेशलालजी म. सा. को सौंपा गया था। इसलिये आचार्य श्रीश्री म. द्वारा अधिकार देने-लेने सम्बन्धी घोषणा का कोई अर्थ नहीं रहता है। अधिकार किसको है यह पूर्व में उल्लिखित उद्धरणों से सुस्पष्ट है।

अवैधानिक घोषणा के सम्बन्ध में उदयपुर श्रीसंघ का उत्तर

जब आचार्य श्री आत्मारामजी म. का पत्र और अवैधानिक घोषणा श्री वर्धमान स्था. जैन श्रावक संघ उदयपुर को प्राप्त हुई तो उसे पूज्य आचार्य श्री गणेशलाल जी म. सा. की सेवा में उपस्थित कर अपने भाव फरमाने की प्रार्थना की। इस पर आचार्य श्रीजी म.

सा. ने जो भाव फरमाये, उनका समावेश करते हुए दि. २२-६-६० को उदयपुर सघ के मंत्री द्वारा लुधियाना संघ के मंत्री को निम्नलिखित उत्तर दिया गया—

उदयपुर

दि. २२-६-६०

सेवा में

श्रीमान् ईश्वरदास जी

मंत्री श्री स्थानकवासी श्रावक संघ

लुधियाना।

सादर जयजिनेन्द्र। आपका पत्र दि. १७ सितम्बर १९६० का रजिस्ट्री द्वारा प्राप्त हुआ। उसके साथ आचार्य श्रीजी म. सा. की घोषणा की नकल भी मिली। मैंने पत्र तथा उस घोषणा की प्रतिलिपि परम श्रद्धेय श्रमणसंघशिरोमणि पूज्य उपाचार्य श्रीजी म. सा. की सेवा में उपस्थित कर जिज्ञासा प्रकट की कि क्या आचार्य श्रीजी म. को अधिकार देने-लेने सम्बन्धी यह घोषणा सादड़ी सम्मेलन में उपस्थित प्रतिनिधि मुनिवरों द्वारा श्रमणसंघ संचालन की व्यवस्था सम्बन्धी सर्वानुमति से जो निर्णय हुआ, उसके अनुसार है या क्यों कर? तो मेरी प्रार्थना पर उत्तर में निम्न आशय के भाव फरमाये, वह आपके सूचनार्थ लिख रहा हूँ—

'सादड़ी में एकत्रित समस्त प्रतिनिधि मुनिवरों ने मिलकर श्रमणसंघ संचालन की व्यवस्था हेतु, सर्वानुमति से जो चुनाव किया, वह कार्यवाही आप देख सकते हैं। मैं अपने मुंह से कुछ कहूँ इसके मुकाबले तो प्रतिनिधि मुनिवरों ने क्या कहा है उसे ही आप देख लें। जिससे सारी स्थिति आपको स्पष्ट हो जायेगी।

'सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्र की रक्षा के साथ शासनोन्नति हो, इस दृष्टि से मैं सादड़ी-सम्मेलन में गया था। अधिकार संबंधी मेरी कोई भावना नहीं थी और न मैं इस दृष्टिकोण से ही गया था।

परन्तु सादड़ी बृहत्साधु-सम्मेलन में एकत्रित प्रतिनिधि मुनिवरों ने श्रमणसंघ संचालन के लिये मेरी सेवा लेनी चाही तो मेरी इच्छा नहीं होते हुए भी, मैं श्रमणवर्ग के आग्रह को नहीं टाल सका। जब श्रमणवर्ग ने मिलकर सर्वानुमति से श्रमणसंघ संचालन का भार मुझे सौंपा तो मेरा कर्तव्य हो गया कि मैं भगवान महावीर की पवित्र श्रमण-संस्कृति की शुद्धता को अक्षुण्ण रखने के लिये सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्र के संरक्षणार्थ आत्मसाक्षी से संघहितार्थ कार्य करूं। तदनुसार इसी शुद्धदृष्टि से व्यवस्था आदि कार्य किये है और श्रमणसंघीय व शास्त्रीय समाचारी तथा उसके संरक्षणार्थ शिथिलाचार व ध्वनियन्त्र आदि विषयक व्यवस्थायें दीं और निवेदन प्रसारित किया। उन व्यवस्थाओं और निवेदन को मेरी अन्तरात्मा आज भी संघहितार्थ उचित मानता है। मैंने निवेदन में स्पष्ट कहा है कि जो श्रमणवर्ग शास्त्रीय एवं श्रमणसंघीय समाचारी का तथा उनके संरक्षणार्थ यहां से की गई व्यवस्था का पालन करेगा उसी श्रमणवर्ग के साथ श्रमणसंघीय साम्भोगिक व्यवहार आदि रह सकेगा। मैं उस पर आज भी दृढ़ हूँ।'

उपाचार्य श्रीजी म. सा. द्वारा उपरोक्त भाव फरमाने पर मैंने उनसे पुनः प्रार्थना की कि क्या श्रमणसंघीय विधान और नियमानुसार आचार्य श्रीजी द्वारा उपाध्यायों और कुछ मन्त्री मुनिवरों को समान अधिकार के एक स्तर पर लाकर उनकी कार्यवाहक समिति बनाकर श्रमणसंघ सम्बन्धी कार्य सौंपना क्या वैधानिक है? तो उत्तर में भाव फरमाये कि 'श्रमणसंघीय नियम और विधान में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है। इसलिये ऐसे कार्य को वैधानिक नहीं ठहराया जा सकता।'

इसके बाद मैंने सादड़ी-सम्मेलन की आचार्य पद पर नियुक्ति-सम्बन्धी कार्यवाही देखी। शायद आपके ध्यान में वह कार्यवाही नहीं हो, अतः आपकी जानकारी हेतु उस कार्यवाही का

सम्बन्धित अंश यहां उद्धृत कर रहा हूँ।

सादड़ी सम्मेलन में पं. रत्न उपाध्याय कवि श्री अमरचन्दजी म. सा. ने उपस्थित सभी प्रतिनिधि मुनियों की तरफ से पूज्यश्री गणेशलालजी म. के उपाचार्य पद ग्रहण करने के समय पर निम्न वक्तव्य फरमाया—

मैं दो वर्षों से पूज्यश्री के परिचय में आया हूँ। आगरा और देहली में मुझे चरणसेवा करने का अवसर प्राप्त हुआ है। मैंने सुन रखा था कि पूज्यश्री चट्टान की तरह कठोर हैं व अनुशासन में पूरे कड़क कदम उठाते हैं। परन्तु प्रत्यक्ष दर्शन करने और सेवा में रहने का प्रसंग आने पर मुझे अनुभव हुआ कि अनुशासन के नाते जितने कठोर हैं उससे ज्यादा नर्म एवं उदार भी हैं।

हमने आचार्य पूज्यश्री आत्मारामजी म. को नियत किया है, परन्तु शारीरिक स्वास्थ्य अच्छा न होने के कारण वे एक स्थान में ही केन्द्रित हैं। उनकी साहित्यसेवा से संघ ऋणी है। इसी हेतु से उनके प्रति श्रद्धा एवं सद्भावना प्रगट की गई है, परन्तु हमारे विराट संघ को अनुशासित करने के लिये योग्य आचार्य की आवश्यकता है। जो साधु साध्वी और श्रावकसंघ में श्रद्धा और प्रेम की लहर पैदा कर सके। पूज्यश्री गणेशलालजी म. ही इस पद के योग्य हैं। हम देखते आ रहे हैं कि छोटे-मोटे साधुओं के आचार्य चुने जाते हैं, उसमें भी एकाध व्यक्ति अड़े रहते हैं। परन्तु अखिल भारतवर्ष के लिये आपको सर्वानुमति से नियुक्त कर रहे हैं। मुनिमंडल आपके शासन की आवश्यकता महसूस करता है। अतः मैं निवेदन करूंगा आप हमारी तुच्छ विनती को जरूर स्वीकार करेंगे।

आपके पीछे फौज तैयार है। आप जो भी आज्ञा प्रदान करेंगे, हम उसे मूर्त रूप देंगे। बहुत दिनों का बिछुड़ा हुआ संघ मिलता है तो कठिनाई जरूर आ सकती है। परन्तु आचार्यश्री

आप उदार एव अनुभवशील हैं। ऊंची-नीची भावनाओं को परखने वाले भी हैं और आपके नीचे आपके कार्यभार को संभालने के लिये मन्त्रीमण्डल रहेगा। वह व्यवस्थित रूप से सारा कार्य संभालेगा। अतः मैं आचार्यश्री से प्रार्थना करता हूँ कि वे उपाचार्य पद को स्वीकार कर लें।

पूज्यश्री के उपाचार्य पद ग्रहण करने के बाद सभी प्रतिनिधि मुनियों की ओर से मरुधरकेशरी मुनि मिश्रीमलजी म. ने धन्यवाद निम्न शब्दों में दिया—

अत्यन्त खुशी का समय है कि आज अखिल भारतवर्षीय स्था. जैन समाज के लिये सर्वसम्मति से आचार्य का चुनाव हो गया है। सादड़ी के लिये हम लोग रवाना हुए और यहां तक पहुंचे। तब तक लोग यही कहते थे कि महाराज दिन पूरे क्यों करते हो। और हमारे पर नई गिरह क्यों खड़ी करते हो। किन्तु शासनदेव की कृपा से कहिये या विकास और संगठन का समय पक चुका इस कारण कहिये, आज हम सर्वसम्मत होकर सहर्ष आचार्य की नियुक्ति कर सके हैं। विशेष प्रसन्नता की बात है कि जैन-जगत के चमकते सितारे पूज्यश्री गणेशलालजी म. ने इस पद को स्वीकार करके हमें कृतज्ञ किया है। एतदर्थ मुनिमण्डल की ओर से उन्हें कोटिशः धन्यवाद अर्पण करता हूँ।

यह है वह कार्यवाही। इसको पढ़ने के बाद आपको स्पष्ट हो जायेगा कि पूज्यश्री आत्मारामजी म. सा. की आचार्य-पद पर नियुक्ति उनकी साहित्यसेवा के कारण श्रद्धा एवं सद्भावना हेतु सम्मान की दृष्टि से हुई है।

श्रमणसंघ के कार्य-संचालन का समस्त अधिकार तो उपाचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. के सक्षम कंधों पर ही रखा गया। इसलिये आचार्य श्री आत्मारामजी म. सा. द्वारा अधिकार देने-लेने सम्बन्धी घोषणा का कोई अर्थ ही नहीं रहता है। क्योंकि

जब आचार्य श्रीजी म. सा. के पास श्रमणसंघ-संचालन के कोई अधिकार हैं ही नहीं तो अधिकार देने और लेने का प्रश्न ही कहां उपस्थित होता है ?

आपको विदित रहे क पूज्य उपाचार्य श्रीजी म. सा. के सन्मुख जब कभी अधिकारों सम्बन्धी कोई चर्चा वार्ता आती है तो वे इस विषय में प्रायः तटस्थ रहते हैं। क्योंकि वे तो कर्तव्य पालन की दृष्टि को मुख्यता देते हैं। मगर मुझे लगता है कि उपाचार्य श्रीजी म. सा. की तटस्थता का गलत अर्थ लगाया और संभवतः इसी का यह परिणाम है कि आचार्य श्री जैसे ज्ञानवृद्ध, वयोवृद्ध महात्मा भी अधिकार की दृष्टि से सोचने और फरमाने लगे हैं।

उपरोक्त विवरण से यह सुस्पष्ट है कि श्रमणसंघ के सचालन का कार्यभार सादड़ी-सम्मेलन ने पूज्य उपाचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. के सक्षम कन्धों पर ही रखा है।

इस विवरण द्वारा सही स्थिति जानने से उन बन्धुओं को भी सोचने विचारने का अवसर मिलेगा जो सम्भवतः अभी तक भ्रम में हों और यह नहीं जान पाये हों कि समाज की इस समय जो स्थिति बनी है और बनाई जा रही है, उसका दायित्व किस पर है ?

शेष आनन्द है।

आपका

तख्तसिंह पानगड़िया

मन्त्री श्री वर्धमान स्था. जैन श्रावकसघ, उदयपुर

उपर्युक्त उत्तर एवं पूर्व में उल्लिखित विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि श्रमणसंघ में आचार्य श्री और उपाचार्य श्री का क्या स्थान है और पाठक स्वयं निर्णय कर सकेंगे कि पूज्य आचार्यश्री गणेशलालजी म. सा. को श्रमणसंघ-संचालन के पूरे अधिकार विधान से प्राप्त थे। अतः आचार्यश्री आत्मारामजी म. द्वारा अधिकार लेने सम्बन्धी दि. १५-९-६० की घोषणा सार रहित है।

अब एक ही प्रश्न शेष रह जाता है कि जब आचार्यश्री आत्मारामजी म. को श्रमणसंघ की व्यवस्था-संचालन का कोई अधिकार नही था तो यह अवैधानिक घोषणा कैसे की ? इसका एक ही कारण हो सकता है कि विरोधीपक्ष या उसके समर्थकों की ओर से आचार्यश्री को उक्त घोषणा निकालने के लिये विवश किया गया है और शारीरिक एवं मानसिक दृष्टि से अशक्त पूज्यश्री आत्मारामजी म. ने उनके प्रभाव में आकर और विधान की जानकारी के अभाव में एवं अपने पूर्वलिखित वचनों का भी ध्यान न रखकर वैसी अवैधानिक घोषणा प्रकाशित कर दी ।

कान्फरन्स की जनरल कमेटी के प्रस्ताव पर दृष्टिपात

श्रमणसंघीय गत्यवरोध के निराकरण के नाम पर दि. १५-६-६० को पूज्यश्री आत्मारामजी म. द्वारा की गई घोषणा के अवैधानिक होने के कारणों का संकेत करने के अनन्तर श्री अ. भा. श्वे. स्थानकवासी जैन कान्फरन्स की दि. २४, २५ सितम्बर ६० को बम्बई में होने वाली जनरल कमेटी के प्रस्ताव नं० ८ पर भी दृष्टिपात कर लें ।

प्रस्ताव के मुख्य-मुख्य अंश इस प्रकार है—

१— ध्वनिवर्धक यन्त्र के उपयोग के सम्बन्ध में अपवाद, प्रायश्चित्त और स्वच्छन्दता का स्पष्टीकरण कर दिया जाये ।

२— मुनि रूपचन्दजी के बारे में दिये गये निर्णय को अमल में लाया जाये ।

३— इसका अन्तिम निर्णय उपाध्यायमंडल कान्फरन्स के अध्यक्ष से परामर्श करके दो माह के अन्दर दे देवे । उक्त निर्णय सर्वमान्य रहेगा ।

४— श्रमणसंघ के विधान में आवश्यक परिवर्तन करने एवं आचार्य, उपाचार्य के अधिकारों के स्पष्टीकरण करने एवं कितनेक दूसरे सुधार करने की आवश्यकता है । अतः इस कार्य को सम्पन्न करने के लिये पूज्य आचार्यश्री,

उपाचार्यश्री अथवा उनके प्रतिनिधि मुनियों और मंत्री-मण्डल तथा अन्य मुनिराजों के सम्मेलन का आयोजन किया जाये।

५— जब तक यह सम्मेलन न हो तब तक के लिये श्रमणसंघ की व्यवस्था उपाध्यायमण्डल द्वारा किये जाने की घोषणा पूज्य आचार्यश्री और पूज्य उपाचार्यश्री की ओर से हो जाये।

६— पूज्य आचार्यश्री की दि. १५-९-६० की घोषणा व पूज्य उपाचार्यश्री द्वारा दि. २२-९-६० को दिया गया उत्तर वापस ले लिया जाये।

प्रस्ताव की भाषा से ऐसा प्रतीत होता है कि प्रस्ताव श्रमण-संघ को सबल बनाने के प्रयत्नों और समस्याओं के समाधान में सहायक है। लेकिन गम्भीरता से विचार करें तो ज्ञात होगा कि पूज्यश्री आत्मारामजी म. द्वारा दि. १५-९-६० को की गई श्रमणसंघीय कार्यवाहक समिति के गठन की अवैधानिक घोषणा भी वैध है और तदनुकूल प्रक्रिया अपनायी जाये। यदि इस अवैधानिक घोषणा को वापस भी लेना पड़े तो आचार्यश्री गणेशलालजी म. सा. द्वारा दि. २२-९-६० को की गई घोषणा भी वापस ली जाये।

इस प्रस्ताव का परिणाम यह हुआ कि श्रमणसंघ की दिनों-दिन निर्बल होती जा रही व्यवस्था और अधिक तीव्रता से निर्बल होने लगी। संघ में अनुशासन का नाम न रहा और मुनिमंडल को अपनी सुविधानुसार कार्य करने की छूट मिल गई।

किन्हीं-किन्हीं महानुभावों ने आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. को प्रस्ताव का स्पष्टीकरण करने के नाम पर पदलोलुप आदि कहने में अपने विवेक की इतिश्री कर दी। लेकिन सादड़ी सम्मेलन से लेकर इस प्रस्ताव के पारित होने तक की कार्यप्रणाली को देखें तो ज्ञात होगा कि आचार्य श्रीजी म. सा. को न तो पद या अधिकार की पहले चाह थी और न

इस समय भी। वे तो श्रमण भगवान महावीर के मार्ग का निर्दोष पालन करने और उनके मार्ग पर चलने वाले दूसरों को भी निर्दोष पालन कराने में सहायक बनने में ही अपना अधिकार मानते थे। इसी को लक्ष्य में रखकर ही श्रमणसंघ की व्यवस्था में आगमानुमोदित व्यवस्था देने में तत्पर रहे। यदि ऐसा करना ही अधिकारलिप्सा या पदलोलुपता मानी जाये तो कहना पड़ेगा कि यह उनके अज्ञान की पराकाष्ठा है।

समाज की प्रतिक्रिया

पूज्यश्री आत्मारामजी म. की अवैधानिक घोषणा से निर्ग्रंथ-श्रमणसंस्कृति में निष्ठा रखने वाली समाज में वैसे ही क्षोभ का वातावरण व्याप्त था और कान्फरन्स की जनरल कमेटी के इस प्रस्ताव से स्पष्ट हो गया कि समाज के साथ अन्याय हुआ है। वह नहीं समझ सकी कि एक ओर तो प्रकारान्तर से पूज्यश्री आत्मारामजी म. की घोषणा को मान्यता दी जा रही है और उसके साथ ही दूसरी ओर दोनों घोषणाओं को वापस लिये जाने का अनुरोध किया जा रहा है। श्रमणसंघ से सम्बन्धित घटनाओं के लिये आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. की घोषणाओं को उचित मानते हुए भी घोषणा कर्ता को व्यवस्थानुसार कारवाई कराने से विरत किया जा रहा है और उसके पालन करवाने का भार उपाध्याय मंडल के मुनिराजों को सौंपने का संकेत किया जाता है। स्थिति की वास्तविकता को समझने वाले समाज के प्रबुद्धवर्ग को खेद ही हुआ और यह खेद प्रस्ताव पारित करते समय भी व्यक्त कर दिया गया था और बाद में तो विभिन्न श्रावक संघों द्वारा व्यक्त प्रतिक्रिया में कान्फरन्स से अपना प्रस्ता वापस लेने की मांग की गई थी। लेकिन न तो प्रस्तावकों ने और न कान्फरन्स ने विरोध को समझकर शांति के उपाय किये और न प्रस्ताव पर पुनर्विचार करना योग्य समझा।

कान्फरन्स का प्रस्ताव : आचार्य श्रीजी का अभिमत

कान्फरन्स के पूर्वोक्त प्रस्ताव से चतुर्विध संघ में रोष व्याप्त था और इस सम्बन्ध में आचार्य श्रीजी के विचारों को जानने के लिये उत्सुक था। आचार्य श्रीजी ऐसे प्रस्तावों पर मौन रहना ही उचित मानते थे। किन्तु समाज को वास्तविक स्थिति से परिचित कराने एवं प्रस्ताव के सम्बन्ध में आचार्य श्रीजी के विचारों को जानने के लिये उदयपुर श्रावकसंघ के बार-बार विनती करने पर आचार्य श्रीजी म. सा. ने जो अपने भाव फरमाये थे, उन्हें जानकारी के लिये दि. ५-११-६० के पत्र द्वारा कान्फरन्स कार्यालय को भिजवा दिया। पत्र यह है—

उदयपुर
ता. ५-११-६०

श्रीमान्मान्यवर खीमचन्दभाई वोरा
मन्त्री—श्री श्वे. स्था. जैन कान्फरन्स बम्बई

सादर जयजिनेन्द्र

अखिल भारतवर्षीय श्वे. स्था. जैन कान्फरन्स की ता. २४, २५ सितम्बर १९६० को बम्बई में हुई जनरल कमेटी ने निवेदन आदि वापिस लेने की उपाचार्य श्रीजी म. सा. से भी प्रार्थना आदि की।

इस पर उपाचार्य श्रीजी म. ने निम्न आशय के भाव व्यक्त किये हैं कि— कान्फरन्स की बम्बई जनरल कमेटी द्वारा पारित श्रमणसंघ सम्बन्धी प्रस्ताव की अनौचित्यता पर मैं अभी विशेष न कहता हुआ सिर्फ इतना ही कहना पर्याप्त समझता हूँ कि श्रमणसघ सम्बन्धी बम्बई जनरल कमेटी का यह प्रस्ताव ध्वनियन्त्र व शिथिलाचार आदि विषयक दी गई व्यवस्थाओं को भंग करने के लिये ही पास किया गया है, ऐसा आभास होता है। यदि ऐसा नही है तो मेरे निवेदन आदि को वापस लेने का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता, क्योंकि ध्वनियन्त्र व शिथिलाचार आदि विषयक जानकारी के लिये कान्फरन्स का शिष्टमण्डल कई बार मेरे पास

उपस्थित होकर सारी स्थिति को अच्छी तरह समझ चुका है और समय-समय पर संतोष व्यक्त किया है। उदाहरणार्थ—

कान्फरन्स के शिष्टमण्डल ने कपासन में ४-३-५८ को ध्वनियन्त्र विषयक सूचना-पत्र के सम्बन्ध में निम्न विचार लिखित-रूप में प्रकट किये थे—

'ध्वनियन्त्र विषयक जो सूचनापत्र ता. १६ १०-५७ को श्रमण-सम्पर्क-समिति के सदस्यों के परामर्श पूर्वक उपाचार्य श्रीजी म. की ओर से सम्बन्धित सभी अधिकारी मुनियों के पास भेजा गया, वह समय-अनुकूल है और शिष्टमण्डल यह भी अनुभव करता है कि भीनासर-सम्मेलन के बाद जिन संत-सतियों द्वारा ध्वनियन्त्र का प्रयोग हुआ हो वे अपनी स्थिति स्पष्ट लिखकर ब्यौरेवार उपाचार्य श्रीजी म. के चरणों में भेजकर आलोयणा करें ऐसी हमारी नम्र प्रार्थना है। निवेदक—अचलसिंह (अध्यक्ष), मोहनमल चोरडिया, कानमल नाहटा।'

जावरा जनरल कमेटी ने शिथिलाचार विषयक दी गई व्यवस्था को उचित ठहराते हुए सर्वानुमति से जो प्रस्ताव पास किया, वह निम्नप्रकार है—

'मन्त्री मुनिश्री मिश्रीमलजी म. के शिष्य के लिये जो फैसला उपाचार्य श्रीजी म. ने फरमाया है, उसके लिये आचार्य श्रीजी ने हर्ष प्रकट किया व मन्त्री मुनिश्री मिश्रीमलजी व श्री रूपचन्दजी ने भी सहर्ष स्वीकार किया। इसके लिये पीछे जाने का प्रश्न ही नहीं रहता है। तथापि आचार्यश्री जो कागजात देखना चाहते हैं वे कागजात कान्फरन्स की कमेटी जिसके नाम श्री कुन्दनमलजी फिरोदिया जो सूचित करेंगे. वो मान्य होगा— वो कमेटी आचार्यश्री के पास जाकर उन्हें बता दें व आचार्यश्री से विनती करें कि वे का० का योग्य मार्गदर्शन करें।

सर्वसम्मति से स्वीकृत

प्रस्तावक—जवाहरलाल मुणोत

अनुमोदक—खीमचंद बोरा

(नोट— रूपचन्दजी सम्बन्धी कागजात शिष्टमण्डल को दे दिये गये ।)

इतना हो जाने पर भी बम्बई जनरल कमेटी ने निवेदन आदि को वापस लेने का जो प्रस्ताव पास किया है, वह आश्चर्य-जनक है । कान्फरन्स का तो यह कर्तव्य था कि जहां से अव्यवस्था का सूत्रपात हुआ, उसको ठीक कराने में सहायक होती ।

मैं अपने निवेदन आदि को आज भी संघहित व सुव्य-वस्था के लिये उचित मानता हूँ । अतः उसको वापस लेने का प्रश्न उपस्थित नहीं होता है ।

रहा प्रश्न जब तक आगामी साधुसम्मेलन न हो तब तक श्रमणसंघ की सब कार्यवाही उपाध्याय मंडल करे ऐसी घोषणा करने का ! सो इस विषय में मेरा कहना है कि यह विषय श्रमणसंघ का होने से कान्फरन्स की विनती आधार रहित है ।

—लालचन्द मुणोत

ताकड़िया भवन, उदयपुर

इस पत्र से स्पष्ट है कि कान्फरन्स ने पूर्व में आचार्य श्री गणेश-लालजी म. सा. द्वारा दी गई व्यवस्थाओं को मान्य किया और उनके अनुसार ही कार्रवाई होना वैध माना था । लेकिन ऐसे प्रस्तावों द्वारा उसकी अवहेलना करके श्रमणसंघ की स्थिति को त्रिशंकु-सा बना दिया ।

श्रमणसंघ का त्याग

प्रस्ताव के पारित होने से समाज में रोष तो था ही और कान्फरन्स के अधिकारियों ने समाज की भावनाओं को न समझकर प्रस्ताव उचित है, ऐसा करने से ही श्रमणसंघ की स्थिति का समाधान हो सकता है आदि के विचार से प्रस्ताव के समर्थन हेतु पत्र-पत्रिकाओं में लेखमाला चालू करके आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. पर आक्षेप

लगाना आरम्भ कर दिया।

आचार्य श्रीजी म. सा. इस स्थिति के बारे में गम्भीरतापूर्वक सोचते रहे कि समाज-व्यवस्था के लिये अन्य अधिकारी मुनिवरों द्वारा मान्य निर्णयों को ही क्रियान्वित कराने एवं समाज के धार्मिक वातावरण को शुद्ध रखने के लिये मेरी व्यवस्थायें हैं। उन्हें प्रमाणित मानते हुए भी उनका पालन न करके लांछित करने की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाये तो उस स्थिति में मेरा श्रमणसंघ में रहना सार्थक नहीं है। इस स्थिति से दूर रहना ही श्रेयस्कर है। अत- दि. ३०-११-६० को अचानक ही व्याख्यान में श्रमणसंघ द्वारा प्रदत्त उपाचार्य पद का त्याग करके श्रमणसंघ से पृथक् होने की घोषणा कर दी। घोषणा इस प्रकार है—

'सिद्धान्त व चारित्र के संरक्षणपूर्वक साधुसमाज का सगठन सुदृढ़ होकर संघ की उन्नति हो, इस उद्देश्य को लेकर मैं सादड़ी (मारवाड़) साधुसम्मेलन में निर्मित श्री वर्धमान स्था. जैन श्रमणसघ में सम्मिलित हुआ था। जहां सब प्रतिनिधि मुनिवरों ने मिलकर मुझको आग्रह से उपाचार्य पद दिया तथा श्रमणसंघ के सचालन का कार्यभार सौंपा। मैंने अपनी आत्मसाक्षी एव निष्पक्ष रूप से अपना कर्तव्य बजाया।

'उद्देश्य के अनुसार श्रमणसंघ का सुसंगठन बना रहे, जिससे शासनोन्नति हो और जनता की श्रद्धा में वृद्धि होकर आत्मकल्याण का मार्गदर्शन मिले यह मेरी आंतरिक भावना रही और अब भी है। मगर उचित बात को भी अशांति और मताग्रह का रूप देकर भ्रम फैलाया जा रहा है और ऐसा प्रदर्शित किया जा रहा है कि मानो मैं संघ-उन्नति में गत्यवरोध का कारण हूँ। इस पर मैंने स्वय भी सोचा तो मुझे ऐसा नहीं लगता, बल्कि मुझे तो ऐसा अनुभव हो रहा है कि जिस उद्देश्य को लेकर मैं सम्मेलन में सम्मिलित हुआ था, उस उद्देश्य की पूर्ति नहीं हो रही है और प्राय: यह देखा जा रहा है कि व्यर्थ का वादविवाद का रूप दिया

जाकर अब तो जैनप्रकाश जैसे पत्र के माध्यम से भी भ्रामक प्रचार किया जाने लगा है। मैं ऐसे व्यर्थ के वादविवाद में न पड़ता हुआ वर्तमान परिस्थितियों में सादड़ी-समेलन में निर्मित श्रमणसघ द्वारा प्रदत्त उपाचार्य पद का त्याग करके अपने को श्रमणसंघ से अलग घोषित करता हूँ।

'रहा प्रश्न श्रमणवर्ग के साथ सांभोगिक सम्बन्ध आदि व्यवस्था का सो मुझे जिनके साथ जैसा योग्य जान पड़ेगा वैसा सम्बन्ध आदि रखने के भाव हैं।

'सादड़ी सम्मेलन से लेकर अब तक के कार्यकाल में कर्तव्यदृष्टि से कार्य करने से किसी को दुःख पहुंचाने की भावना न होने पर भी जिन किन्हीं सन्त-सती व श्रावक-श्राविकाओं का मन दुःख पाया हो तो उसके लिये सबको क्षमाता हूँ।'

घोषणा की प्रतिक्रिया

आचार्य श्रीजी की उपर्युक्त घोषणा से समस्त समाज को दुःखानुभव हुआ। राजनैतिक चाल चलकर आचार्य श्रीजी म. सा. को अपने अनुकूल बना लेने में विश्वास रखने वाले और अधिकार लेने का तीर फेंकने वाले भी आश्चर्यचकित रह गये। उन्हें पता नहीं था कि आचार्य श्रीजी म. सा. चारित्रसाधना के संरक्षणार्थ बड़े से बड़ा लौकिक सम्मान ठुकरा सकते हैं। संगठन बनाये रखने के लिये सिद्धान्तों पर कुठाराघात सहन नहीं किया जा सकता है।

उक्त घोषणा पर पुनः विचार करने के लिये आचार्य श्रीजी म. सा. की सेवा में श्रमणवर्ग, श्रावकवर्ग, पत्रकारों आदि ने विनतियां कीं। उनमें से कुछ एक का यहां संकेत कर रहे हैं—

प्रान्तमन्त्री श्री पन्नालालजी म. उपाध्याय श्री हस्तीमलजी म., मन्त्री श्री पुष्करमुनिजी म. ने संयुक्त रूप में आचार्य श्रीजी से अपनी घोषणा वापस लेने की प्रार्थना करते हुए कहा था कि उपाचार्य श्री ने उपाचार्य पद का त्याग करके अपने को श्रमणसंघ से अलग

घोषित किया, जिसे हम संघ-हितकर नहीं मानते हैं। हमारी यह हार्दिक भावना है कि वे पुनः संघहित व जिनशासनोन्नति को लक्ष्य में रखकर इस पर गम्भीरता से विचार करें और उलझी हुई समस्याओं को परस्पर विचार-विमर्श द्वारा या किसी माध्यम से हल करके संघ के श्रय के भागी बनें।

श्रमणसंघ के आचार्य श्री आत्मारामजी म., उपाध्याय श्री आनन्दऋषिजी म., मन्त्री मुनिश्री फूलचन्दजी म. (पुप्फभिक्खू) आदि मुनिवरों की ओर से भी इसी प्रकार के विचार व्यक्त किये गये कि पूज्यश्री श्रमणसंघ से सम्बन्ध-विच्छेद के विचारों को वापस ले लें। अनेक श्रावकों और श्रावकसंघों की ओर से भी इसी प्रकार के विचार व्यक्त किये गये कि पूज्यश्री चतुर्विध संघ को अपने वरदहस्त से वंचित न करें।

श्री अ. भा. श्वे. स्था. जैन कान्फरन्स के मुखपत्र जैन प्रकाश के सम्पादकीय स्तंभ में चतुर्विध संघ के समस्त विचारों का सामूहिक रूप से प्रकाशन करते हुए 'क्या श्रमणसंघ खंडित होगा?' शीर्षक में आचार्य श्रीजी म. सा. से निवेदन किया कि '...... उपाचार्य श्रीजी म. की घोषणा के बारे में हम विनम्र प्रार्थना कर देना चाहते हैं कि आचार्यश्री और उपाचार्यश्री समाज के सूर्य, चन्द्र के समान हैं। उनके अपने-अपने दायित्व हैं। श्रमणवर्ग और समाज ने जिस निष्ठा से उन्हें अपना सिरमौर बनाया था तो समाज अब इस मणि से वंचित हो जाये क्या? हमें स्वप्न में भी विश्वास नहीं होता कि जो उपाचार्य श्रीजी महाराज संघ के निर्माण में अगुआ थे, उससे अलग होने की भी घोषणा कर देंगे। कहीं त्रुटि हुई है अवश्य, जिससे समाज के प्रत्येक सदस्य को जिज्ञासा है, प्रश्न है कि 'क्या श्रमणसंघ खंडित होगा?'

'हम अन्त में समाज हितैषियों, कार्यकर्ताओं, श्रावकसंघों के पदाधिकारियों, पत्रकारों और श्रावक-श्राविकाओं से अपील करते हैं कि वे श्रमणसंघ और इसके गत्यवरोधों को अपने सम्मान का प्रश्न न बना

कर उसके संरक्षण, संपोषण का उत्तरदायित्व श्रमणसंघीय मुनिराजों पर ही छोड़ दें और इस प्रकार का वातावरण बनायें कि जल्दी-से-जल्दी किसी केन्द्रीय स्थान पर आगामी साधुसंमेलन होकर गत्यवरोध का निराकरण हो जाये ।'

इस प्रकार आचार्य श्रीजी म. सा. के सम्बन्ध-विच्छेद को लेकर समाज में एक ही विचारधारा बह रही थी कि वे सम्बन्ध विच्छेद न करें और शीघ्र ही किसी-न-किसी प्रकार संगठन की सुदृढ़ता के लिये प्रयत्न हों, जिससे आचार्य श्रीजी म. सा. की भावना के अनुसार संगठन की आधारशिला सुदृढ़ बने ।

समाज का बहुमत और पत्रकार तो संगठन को सुदृढ़ देखने के लिये उत्सुक थे। लेकिन कान्फरन्स के पदाधिकारी इससे विपरीत विचार रखते थे । वे कान्फरन्स की बम्बई जनरल कमेटी के प्रस्ताव नं. ८ को ही उचित मानकर कारवाई करने के लिये तत्पर थे । वे आचार्य श्रीजी म. सा. के विचारों की अवहेलना करने में श्रेय समझते थे । इस सम्बन्ध में २० नवम्बर १९६० को कान्फरन्स की कार्यकारिणी समिति ने यह प्रस्ताव पारित किया—

'उदयपुर में दि. १, २ नवम्बर ६० के रोज पंचायती नोहरे में पूज्य उपाचार्य श्रीजी के दर्शनार्थ आये हुए श्रावक-श्राविकाओं की सभा का आयोजन किया गया, उसमें पारित प्रस्ताव कान्फरन्स आफिस को भी भेजे गये हैं । इन प्रस्तावों को पढ़कर कान्फरन्स की मैनेजिंग कमेटी को खेद और आश्चर्य हुआ है । बम्बई की जनरल कमेटी में ता. २४, २५ सित. ६० के रोज प्रस्ताव नं. ८ पारित हुआ है । उसे समझने का प्रयत्न इस सभा में हुआ हो ऐसा प्रतीत नहीं होता । समस्त स्थानकवासी जैन समाज की प्रतिनिधि संस्था— कान्फरन्स की जनरल कमेटी के प्रस्ताव का इस प्रकार का विरोध हो, उसमें समाजहित की दृष्टि की अपेक्षा सांप्रदायिक-ममत्व का प्राधान्य दिखाई देता है ।

'श्रमणसंघ और स्थानकवासी समाज की एकता और संगठन

को कायम और सुदृढ़ करने के जनरल कमेटी के प्रयत्न को निष्फल बनाने के ऐसे प्रचार के प्रति कान्फरन्स की मैनेजिंग कमेटी समाज को गम्भीर चेतावनी देना अपना कर्तव्य समझती है।'

इस प्रस्ताव का आशय यह हुआ कि या तो आचार्य श्रीजी अपनी घोषणा वापस लें और कान्फरन्स की जनरल कमेटी में पारित प्रस्ताव मान्य करें या श्रमणसंघ के सम्बन्ध में आचार्य श्री आत्मारामजी म. की अवैधानिक घोपणा के अनुसार कार्रवाई करने के लिये कान्फरन्स स्वतन्त्र है तथा समाज को भी उसके विरोध में ननु नच करने का अधिकार नहीं है।

इस प्रकार के प्रस्ताव से स्पष्ट हो गया था कि कान्फरन्स ने समाज की भावनाओं की उपेक्षा कर और शुद्धि के धरातल पर श्रमण संगठन को बनाये रखने के प्रति उदासीनता दिखाकर विघटित करने का सूत्रपात कर दिया। आचार्य श्री आत्माराम जी म. की घोषणा से तो श्रमणसंघ का आधार ही कमजोर हुआ था, किन्तु कान्फ़रन्स की जनरल कमेटी के प्रस्ताव तथा कार्यकारिणी समिति के इस प्रस्ताव से तो उसका ढांचा ही नेस्तनाबूद हो गया।

आचार्य श्रीजी म. सा. की दि. ३०-११ ६० की घोषणा पर पुनर्विचारणा करने के लिये आई प्रार्थनाओं में प्रेमभाव प्रदर्शित करते हुए वापस लेने पर तो भार दिया गया था किन्तु संगठन हेतु आवश्यक संकल्पपूर्ति के बारे में एक भी संकेत नहीं था। अतः उनके सम्बन्ध में अपना स्पष्टीकरण करते हुए आचार्य श्रीजी म. सा. ने फरमाया—

'मेरी तारीख ३०-११-६० की घोषणा के पश्चात मेरे पास आचार्य श्री, उपाध्यय मंडल, मत्रीमंडल व अन्य मुनिवरों की तरफ से एवं श्रावक समाज की तरफ से पत्र आदि आये है। जिनमें से कुछ जैनप्रकाश आदि समाचार पत्रों में भी प्रकाशित हुए हैं। उन सब में यह भाव दर्शाया गया है कि मैं अपनी उक्त घोषणा पर पुनर्विचारणा करके उसको वापस लेकर अपने पद

(उपाचार्य) पर रहता हुआ संघ का पूर्ववत् संचालन करते हुए समाज को मार्गदर्शन करूं आदि । अतः इस विषय में कुछ भाव व्यक्त करना आवश्यक समझता हूँ ।

सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्र की रक्षा के साथ शासनोन्नति हो, इस दृष्टि से मैं सादड़ीसम्मेलन में गया था । हमारा श्रमणसंगठन किस ढंग का हो, इसकी मेरी अपनी कल्पनायें थीं । इस सम्बन्ध में मैं समय-समय पर प्रकट रूप से भी अपने विचार व्यक्त करता रहा हूँ । वह यह हैं कि हमारा श्रमणसंघ तब ही सुव्यवस्थित रह सकेगा जब उसका नेतृत्व एक के आधीन रहकर शिष्य-परम्परा एक की रहे, श्रद्धा, प्ररूपणा, स्पर्शना एक हो, चातुर्मास, विहार एक ही की आज्ञानुसार हो और प्रायश्चित्त–व्यवस्था भी एक के ही आधीन रहे तथा उत्पन्न विकृतियां दूर हों आदि ।

सादड़ीसम्मेलन के समय जब संघ-व्यवस्था की रूपरेखा पर विचारणा चली थी तब मैंने अपनी उक्त विचारणा संत-समुदाय के सन्मुख व्यक्त की थी । जहां तक मुझे स्मरण है मुनिवरों ने मेरे उन विचारों को पसन्द करते हुए ये भाव दर्शाये कि अभी तक हम सब बहुत दिनों से बिछुड़े हुए मिल रहे हैं, अतः यह सब धीरे-धीरे बन सकेगा ।

श्रमणसंगठन की मेरी कल्पना के पीछे स्वर्गीय परम-प्रतापी आचार्य श्री १००८ श्री जवाहरलालजी म. सा. की भावना और मेरी व्यक्तिगत विचारणा रही थी । इसलिये सादड़ी में श्रमणसंघ की जो कुछ व्यवस्था बनी उससे मुझे पूर्ण सतोष नहीं था । फिर भी उपस्थित मुनिवरों का सोत्साह आश्वासन होने से मुझे आशा थी कि शनैः शनैः हम हमारे लक्ष तक पहुंच जायेंगे । इस विचार से मैं संगठन में सम्मिलित हुआ ।

जब श्रमणसंघ के नेतृत्व का प्रश्न आया तो मैंने अपनी अनिच्छा प्रकट की, क्योंकि पद और अधिकार ग्रहण सम्बन्धी मेरी

कतई भावना न थी। मैं तो अपना शेष जीवन अधिक-से-अधिक आत्मसाधना में लगाना चाहता था, परन्तु जब प्रतिनिधि मुनिवरों ने अत्याग्रह किया और मेरी सेवा लेनी चाही तो मेरी इच्छा न होते हुए भी मैं उनके आग्रह को टाल न सका और श्रमणसंघ-संचालन की सेवा स्वीकार की।

इसके बाद मेरा कर्तव्य हो गया कि मैं भगवान महावीर की पवित्र श्रमणसंस्कृति की शुद्धता को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये आत्मसाक्षीपूर्वक संघहितार्थ कार्य करूं। तदनुसार मैंने संघ-संचालन का कार्य किया और आवश्यकतानुसार अधिकारी मुनियों से परामर्श लेकर शिथिलाचार व ध्वनियन्त्र आदि विषयक व्यवस्थायें दीं एवं दृढ़ाचार विषयक सूचना भी की।

परन्तु भवितव्यता कहें या और कुछ? सद्भावना पूर्वक किये गये कार्यों को अशान्ति आदि का कारण बताकर उन व्यवस्थाओं के विपरीत आदेश आदि निकाले गये, फलतः उन व्यवस्थाओं का परिपालन नहीं हुआ और संघ में अव्यवस्था का सूत्रपात हुआ।

इन व्यवस्थाओं के विपरीत आदेश आदि निकालने पर मैंने सोचा था कि अधिकारी मुनिवर, जिन्होंने इन व्यवस्थाओं में अपना अनुकूल मत दिया था, अवश्य अपने मत का प्रतिपादन करेंगे, परन्तु मुझे इस बात का आश्चर्य ही रहा है कि प्रायः वे मौन रहकर दर्शक बने रहे।

कान्फ्रेंस के कतिपय प्रमुख व्यक्तियों ने भी श्रमणसंघीय व्यवस्थाओं को हाथ में लिया, परन्तु अव्यवस्था का सूत्रपात जहां से हुआ, वहां से समस्या को नहीं उठाकर ऐसा कदम उठाया कि जिससे समस्यायें सुलझने के बजाय उलझ गईं।

बाद में तो जैनप्रकाश आदि समाचारपत्रों में खुल्लम-खुल्ला टिप्पणी होने लगीं और मेरे प्रति मताग्रही आदि कई विशेषणों से समाज में भ्रामक प्रचार किया गया।

जब इस प्रकार का वातावरण बनाया गया तो स्वच्छन्दाचार एवं शिथिलाचार को प्रोत्साहन मिलना स्वाभाविक ही था। फलस्वरूप साधुमर्यादाओं के प्रतिकूल कई अन्य प्रवृत्तियां भी विश्वस्त सूत्रों से सुनने को मिलीं और तो क्या चौथे व्रत के सम्बन्ध में साधुवेश को कलंकित करने वाली भी कुछ घटनायें घटित हुईं, जो श्रमणसंस्कृति की पवित्रता के लिये घातक हैं।

अपने शिष्यों की छोटी गलती पर भी अनुशासन की कार्यवाही की गई तो बड़ी गलतियें कैसे बरदास्त की जा सकती हैं ?

जिन-जिन अनुचित प्रवृत्तियों के वृतान्त मेरे सामने आये, उनका मैंने यथोपयोग निराकरण करने का प्रयत्न किया और अन्त तक यही भावना रही कि किसी भी प्रकार सिद्धान्त और चारित्र सुरक्षित रहते हुए अनुशासन का समुचित ढ़ग से पालन हो ताकि संगठन सुदृढ़ बन सके। परन्तु अपेक्षित सहयोग के अभाव में मेरी आशायें धूमिल ही रहीं, अतः अन्य भी जो व्यवस्थायें देनी आवश्यक थीं, वे नहीं दी जा सकीं।

अनुभव तो ऐसा भी हुआ कि राजनैतिक ढग के दावपेंच जैसी बातें भी होने लगीं जो धार्मिक मामलों में कदापि वांछनीय नहीं हैं।

जिन कल्पनाओं को लेकर मैं सादड़ी गया, किस उज्ज्वल आशा से संघ में प्रवेश किया तथा उसको सुदृढ़ एवं स्थायी बनाने के लिये क्या क्या प्रयत्न किये, फिर भी उसकी क्या दशा रही ? इसका अनुभव सुसंगठन का हिमायती सहृदय व्यक्ति ही कर सकता है।

मैं अब दृढ़ मत का बन गया हूँ कि जिन कल्पनाओं को लक्ष में रखकर मैं श्रमणसंघ में सम्मिलित हुआ था उनको साकार रूप दिये बिना श्रमण-संगठन सुचारुरूप से व्यवस्थित रहना संभव नहीं।

मैं सुसंगठन का किसी से भी कम हिमायती नहीं हूँ।

मैं हृदय से चाहता हूँ कि मुझे मेरे जीवन में ऐसा शुभ दिन देखने को मिले कि साधु समाज का जो कि स्थानकवासी समाज की आधार शिला है, सुसगठन द्वारा चारित्र उज्ज्वल-से-उज्ज्वलतर बने और सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्र की वृद्धि होकर समाज का कल्याण हो। न कि संगठन के सहारे साधु-सस्था नीचे गिरे।

जिन श्रमण एवं श्रावकों ने पुनर्विचारणा हेतु मेरे प्रति जो-जो भाव व्यक्त किये, वह उनका मेरे प्रति प्रेमभाव है।

परन्तु जिन परिस्थितियों को मद्दे‌नजर रखकर मुझे तारीख ३०-११-१९६० की घोषणा करनी पड़ी, उनका एवं अन्य उत्पन्न अनुचित प्रवृत्तियों का तथा भविष्य के सुधार का संतोष-जनक समाधान मुझे न हो जाये तब तक पुनर्विचारणा के विषय में श्रमणवर्ग एवं श्रावकवर्ग को विशेष क्या उत्तर दूं ?

आचार्य श्रीजी म. सा. ने अपने विचारों में उदात्तभावों को व्यक्त करते हुए स्पष्ट कर दिया था कि श्रमण सगठन के मूलाधार को सुदृढ़ बनाने के लिये सामूहिक प्रयत्न करके निर्धारित लक्ष्य को प्राप्त किया जाये और स्खलन की प्रवृत्तियों का निराकरण होकर भविष्य में वैसी प्रवृत्तियों की पुनरावृत्ति न होने देने के लिये श्रमणवर्ग एवं श्रावक-वर्ग को सचेत रहना जरूरी है। व्यवस्थाओं का उपयोग व्यवस्था के लिये हो और उनमें राजनैतिक दाव-पेचों का उपयोग न किया जाकर शुद्धि की भावना से शुद्धि के मार्ग पर बढ़। मेरा विरोध संगठन की ओट में स्वच्छन्दाचार से है, न कि संगठन से। इसीलिये उद्देश्य में सफ-लता के लिये संगठन को सबल देखना अपने जीवन की महान आकांक्षा मानता हूँ।

लेकिन आचार्य श्रीजी की भावना को सदाशयता से न समझकर और उसके अन्तर् में छिपे हुए रहस्य की अवहेलना कर श्रमणसंघ तोड़ने के आरोपों की बौछारों के साथ-साथ सत्य तथ्यों पर आवरण डालने के प्रयत्न चलने लगे। जबकि स्पष्ट यह था कि आरोप

लगाने वाले स्वयं श्रमण-संगठन को छिन्न-भिन्न करने के लिये उसके निर्माण के साथ ही प्रयत्नशील हो गये थे। उदाहरण के रूप में जैसे श्रमणवर्ग के प्रतिनिधियों द्वारा निर्मित विधान में मनचाहे विचारों को संयुक्त किया। विधान की मूल धाराओं में परिवर्तन किया। प्रधान-मन्त्री के त्यागपत्र के कारणों की खोजबीन में उदासीनता दिखाई। प्रतिनिधि मंडल यथास्थान न भेजने की प्रवृत्ति दिखाई और सदैव सत्य तथ्यों से चतुर्विध संघ को अपरिचित रखा। लेकिन आचार्य श्रीजी ने श्रमणसंघ को छोड़ने के बाद भी यही भावना प्रदर्शित की थी कि हमारा श्रमणसघ तभी सुव्यवस्थित रह सकता है जबकि उसका नेतृत्व एक के आधीन रहे, श्रद्धा, प्ररूपणा, स्पर्शना, विहार आदि एक ही की आज्ञानुसार हो। लेकिन ऐसी स्थिति के निर्माण का साहस किसी ने नहीं दिखाया, सो नहीं दिखाया। यही विडंबना समाज के साथ आज भी चल रही है।

चतुर्विध संघ की विनती

यद्यपि शल्यचिकित्सा से ऐसा प्रतीत होने लगा था कि आचार्य श्रीजी के स्वास्थ्य में सुधार होगा। लेकिन सुधार सतोषजनक नहीं हुआ। हां इतना अवश्य माना जा सकता है कि कुछ दिनों के लिये रोग की भीषणता में कमी आ गई, किन्तु निर्मूल नहीं हो सका। स्वास्थ्य पहले से ही कमजोर था और शल्यचिकित्सा के बाद भी शारीरिकबल में कोई परिवर्तन नहीं आया। दिनोंदिन स्वास्थ्य में निर्बलता आती जा रही थी।

आचार्य श्रीजी म. सा. श्रमणसंस्कृति की सुरक्षा को अपनी साधना का ध्येय मानते थे। लेकिन इसकी उपेक्षा करके सगठन को मुख्यता दिये जाने के प्रयत्न होने लगे तो इससे चारित्रप्रेमी चतुर्विध संघ में एक प्रकार की चिन्ता व्याप्त हो गई थी। उसको आध्यात्मिक धरातल का भविष्य अन्धकारमय दिखने लगा था।

इन्हीं दिनों आचार्य श्रीजी के स्वास्थ्य में अकस्मात काफी

निर्बलता बढ़ने लगी। समाचारों के मिलते ही हजारों की संख्या में श्रावक-श्राविकायें अपने आराध्य के दर्शनार्थ उदयपुर में एकत्रित हो गये।

शरीर नाशवान है। इसका क्या भरोसा कि कब नष्ट हो जाये। आचार्य श्रीजी के स्वास्थ्य की गम्भीरता से उनके मन में अनेक प्रकार के संकल्प-विकल्प उठने लगे। समाज के अग्रणी विचारवान उपस्थित सज्जनों ने विचार किया कि वर्तमान स्थिति में अपने भावी आधार के बारे में सोच लेना बुद्धिमानी होगा। समस्या गंभीर थी और इस पर चर्चावार्ता होती रही। अन्त में निर्णय किया गया कि हम सब मिलकर आचार्य श्रीजी के चरणों में विनती करें कि आपश्री की कल्पना के अनुसार जब तक सुसंगठन होकर सर्वाधिकार पूर्ण उत्तरदायित्व एक आचार्य के आधीन न हो जाये, तब तक हम अपना भावी आधार किसको मानें ?

अनन्तर आचार्य श्रीजी म. सा. के आज्ञानुवर्ती निर्ग्रन्थ श्रमणवर्ग ने आपश्री के चरणों में अपना यह प्रतिज्ञापत्र प्रस्तुत किया—

'निर्ग्रन्थ श्रमणसंस्कृति आत्मकल्याण व आत्मशान्ति का एक मात्र अमोघ उपाय है अतः इसकी शुद्धता बनी रहना नितान्त आवश्यक है। वर्तमान में कुछ श्रमणवर्ग में विकृतियां प्रवेश कर गई हैं, उनको दूर करने के लिए पूज्यश्री १००८ श्री गणेशलालजी म. सा. ने जो शान्त क्रान्ति का कदम उठाया, वह उचित एव आदर्श है।

सिद्धान्त व चारित्र की सुरक्षापूर्वक संगठन को सुदृढ़ एवं चिरस्थायी बनाने की प्रबल इच्छा रखने वाला श्रमणवर्ग यह निर्णय करता है कि संयमी जीवन में प्रवेश पाई हुई विकृतियों को दूर करने के लिए एवं सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्र की अभिवृद्धि के हेतु हम शांत क्रान्ति के जन्मदाता पूज्यश्री १००८ श्री गणेशलालजी म. के नेश्राय में तथा नेतृत्व में आपश्री की निम्न बातें जीवन में उतारने की प्रतिज्ञा करते हैं—

(१) चातुर्मास, प्रायश्चित्त, विहार व सेवा आदि व्यवस्था की सर्व-

सत्ता आपश्री के चरणों में रहेगी ।

(२) शिष्य व शिष्यायें आपश्री के नेश्राय में होंगे ।

(३) चातुर्मास के लिए व शेषकाल के लिए साधु-साध्वी ने जहां विहार किया या जहां विराजे वहां से वस्त्र-पात्रादि जो भी वस्तु साल भर में लेंगे उसकी नौंध रखेंगे । साथ ही संघ-व्यवस्था कैसी है, विशेष उपकार व उपसर्ग कहां कहां पर हुए उसकी भी नौंध रखेंगे और वह सब आलोचना की नौंध डायरी आपश्री की सेवा में अर्पण कर देंगे ।

(४) चातुर्मास पूर्ण होने के बाद आपश्री (आचार्यश्री) जिस समय जहां जिन साधु-साध्वियों को याद फरमावेंगे, वहां वे साधु, साध्वी उपस्थित होंगे ।

(५) साधु-साध्वी के कल्पानुसार समान समाचारी जो आपश्री ने तय की है और करेंगे वह सब साधु-साध्वी को सहर्ष मान्य होगी । तथा सकारण व मूल से जो भी त्रुटि हो जाय उसका आपश्री जो भी उपालम्भ व प्रायश्चित्त देंगे, उसको सहर्ष स्वीकार करेंगे ।

(६) श्रमणवर्ग की धारणा, विचारणा में फर्क हो सकता है, लेकिन गच्छाधिपति आचार्यश्री अर्थात् आपश्री की धारणा, विचारणा विरूद्ध कोई साधु-साध्वी साधुसंघ में या श्रावकसंघ में स्थापना नहीं करेंगे ।

(७) जो भी वैरागी या वैरागिन हो उसको तैयार करके स्नेह, श्रद्धा के केन्द्र आचार्यश्री के पास परीक्षा होकर जब तक आपश्री द्वारा आज्ञा प्राप्त न हो जाय, तब तक कोई साधु, साध्वी उनको दीक्षा न देंगे और सादड़ी आदि में तथा बाद में भी जो जो सिद्धान्त, चारित्र और सुसंगठन विषयक आदेश आदि दिये हैं और देंगे, उसे हम सन्त सती वर्ग साकार रूप देने को हर समय तैयार हैं

और रहेंगे। इति शुभम्।

उदयपुर आज्ञानुवर्ती

सं. २०१८, वैशाख शुक्ला ३ हम हैं आपके चरण-चंचरीक

साधु-साध्वीवृन्द

प्रार्थना उचित और सामयिक थी। आचार्य श्रीजी भी विचारमग्न हो गये। आपश्री संगठन को शुद्ध, सबल और अनुशासन-बद्ध देखना चाहते थे तथा श्रावकसंघ की आकांक्षा थी कि भविष्य की व्यवस्था के लिये रूपरेखा अभी से निर्धारित नहीं की गई तो अव्यवस्था फैल सकती है। अतः किसी-न-किसी प्रकार की निर्णयात्मक स्थिति का निश्चय हो जाना जरूरी था।

आचार्य श्रीजी म. सा. ने उपाचार्य पद का त्याग-पत्र देने के पश्चात् चतुर्विध संघ की ओर से त्याग-पत्र वापस लेने की प्रार्थनाओं के उत्तर में यह अपेक्षा व्यक्त की थी कि जिन कारणों को लेकर त्याग-पत्र दिया गया है, यदि उनका समाधान हो जाता है तो आगे के उत्तरदायित्व का भार हल्का बन जायेगा और सुसंगठन प्रेमी चतुर्विध संघ की होने वाली भावी व्यवस्था की प्रार्थना का भी समाधान हो सकेगा। लेकिन त्यागपत्र को वापस लेने की प्रार्थना करने वाले महानुभावों ने प्रार्थना के अनुरूप कार्य करने की एवं आचार्य श्रीजी म. सा. के संतोषजनक समाधान की स्थिति का निर्माण काफी समय बाद भी नहीं किया और दिनोंदिन उससे भी अधिक निर्ग्रन्थ श्रमणसंस्कृति का ह्रास अनुभव होने लगा, तब मुख्य चारित्रवान् श्रमणों से परामर्श करना प्रारम्भ किया और उनको इस बात की भलीभांति जानकारी करवाई कि भगवान महावीर द्वारा निर्दिष्ट श्रमण संस्कृति का अमुक-अमुक तरीके से ह्रास हो रहा है। अतः इस समय श्रद्धालु श्रमणवर्ग को कटिबद्ध होकर निर्ग्रन्थ श्रमणसंस्कृति के रक्षार्थ एक श्रद्धा, एक प्ररूपणा, एक समाचारी बनाकर सादड़ी सम्मेलन में स्वीकृत मूल उद्देश्य को साकार रूप देते हुए सुसंगठन का आदर्श उपस्थित करने की आवश्यकता है।

अतः इस विषय में चारित्रवान सभी प्रमुख सन्तों को एकत्रित होकर भावी शासन की रूपरेखा स्पष्ट कर किसी भी चारित्रनिष्ठ श्रद्धालु प्रभावशाली संत को उत्तरदायित्व सौंपकर समाज के भविष्य को उज्ज्वल बनाना चाहिए ।

परामर्श स्पष्टवक्ता व्याख्यानवाचस्पति पं. रत्न श्री मदन-लालजी म. सा., उपाध्याय श्री आनन्दऋषिजी म. सा. व उपाध्याय श्री हस्तीमलजी म. सा. आदि से किया गया लेकिन इन मुनिवरों की तरफ से सोत्साह संतोषजनक भावी संगठन की रूपरेखा का उत्तर न मिला तथा बहुश्रुत पं. रत्न श्री समर्थमलजी म. सा. से भी परामर्श किया गया । उसमें दोनों तरफ की समाचारियों का मिलान कर श्रद्धा, प्ररूपणा, स्पर्शना की एकरूपता बनाने के लिए प्रत्यक्ष के परामर्श की भी आवश्यकता थी ।

इन्हीं दिनों बहुश्रुत पं. रत्न श्री समर्थमलजी म. खींचन से विहार करते हुए भोपालपुरा (उदयपुर) में आचार्य श्रीजी म. सा. की सेवा में पधार गये । तब सभी बातों के विषय में खुलकर विचार-विमर्श हुआ और मौलिक रूप से एक श्रद्धा, प्ररूपणा, स्पर्शना की प्रायः समाचारी बन गई और आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. के नेतृत्व में चलने के स्वीकृतपत्र पर बहुश्रुत पं. रत्न श्री समर्थमलजी म. ने अपने हस्ताक्षर कर दिये । स्वीकृति पत्र इस प्रकार है —

वन्दे वीरम्-णमोणाणस्य

ता. ७-१-१९६१

आत्मकल्याण व आत्मशान्ति का एकमात्र अमोघ उपाय निर्ग्रन्थ श्रमणसंस्कृति है । अतः इसकी शुद्धता बनी रहना नितान्त आवश्यक है । वर्तमान में कुछ श्रमणवर्ग में विकृतियां प्रवेश कर गई हैं । उनको दूर करने के लिए पूज्यश्री गणेशलालजी म. सा. ने शान्त क्रान्ति का कदम उठाया, वह उचित एव आदर्श है ।

सिद्धान्त व चारित्र की सुरक्षा पूर्वक संगठन को सुदृढ़ एवं चिरस्थायी बनाने की प्रबल इच्छा रखने वाला श्रमणवर्ग यह निर्णय करता है कि संयमी जीवन में प्रवेश पाई हुई विकृतियों को दूर करने के लिए एवं सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्र की अभिवृद्धि के हेतु हम शान्त क्रान्ति के जन्मदाता पूज्यश्री १००८ श्री गणेशलालजी म. का नेतृत्व स्वीकार करते हैं।

ऊपर मुजब काम का हम हृदय से निश्चय करते हैं।

द० मुनि समर्थमल। सं. २०१७ माघ कृ० ५।

अब रहा प्रश्न इसको अमली रूप देने का। बहुश्रुत पं. रत्न श्री समर्थमलजी म. ने इसके लिए मैं पहले सतियों को भी पूछ लेता हूँ, आदि आशय के भाव फरमाकर वहां से विहार कर दिया और यह प्रतीक्षा की जा रही थी कि समाचार मिलने पर आगे का कार्यक्रम सोचा जा सकेगा। लेकिन काफी समय के बीत जाने पर भी जब समाचार नहीं मिले तो श्री कानमलजी नाहटा आदि कुछ प्रमुख श्रावकों ने जानकारी की तो बहुश्रुत पं. रत्न श्री समर्थमलजी म. से उनको विदित हुआ कि सतियां नहीं मान रही हैं। इस पर श्री कानमलजी नाहटा ने अर्ज की कि आप सन्त और जितनी सतियां इसमें सहयोग दें उतना कार्य तो कर लीजिये। लेकिन इतनी साहस की स्थिति नहीं मालूम हुई और यह समाचार जब आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. के पास पहुंचे तो आचार्यश्रीजी म. ने सोचा कि इतना प्रयत्न करने पर भी संत निर्ग्रन्थ संस्कृति की रक्षा के लिए साहस नहीं कर पा रहे हैं, यह कैसी स्थिति है? कोई साहस करे या न करे, मुझे अपने इस जीवन के अन्दर शुद्ध भावना के साथ निर्ग्रन्थ-संस्कृति की रक्षा का प्रयत्न करते रहना चाहिए। क्योंकि इस पंचमकाल में जो सर्वस्व के त्यागी कहलाते हैं, वे भी इस स्थिति से पीछे हट रहे हैं और अपने सामने ही निर्ग्रन्थ श्रमणसंस्कृति को ऊपर उठाने का साहस नहीं कर पा रहे हैं तो वीतराग शासन की उज्ज्वलता रह सकेगी? यह एक

विचारणीय विषय है।

साधु जीवन के अन्दर मान, अपमान, सत्कार, सन्मान आदि भावना को गौण करके शासनसेवा में जुट जाना शासनहितैषी प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है। इस कर्तव्य पद पर जितने भी आरूढ़ हो सकें, वे ही इस कार्य को आगे बढ़ायें। मैंने जिन महानुभावों की आशा रखी, उन महानुभावों को अच्छी तरह से अवगत करा दिया गया, अतः मैं अपने प्रयत्नों की दृष्टि से स्पष्ट हूँ। अब मुझे सुसगठन प्रेमी चतुर्विध संघ की प्रार्थना पर भी ध्यान देना आवश्यक हो गया है। इस प्रकार काफी विचार-मनन के पश्चात चतुर्विध संघ की व्यवस्था का सर्वाधिकार एवं पूर्ण उत्तरदायित्व पं. र. मुनिश्री नानालालजी म. सा. को सौंपने के लिये दि. १८-४-६१ को घोषणा कर निम्नलिखित आदेश फरमाया—

'चतुर्विध संघ की भावभीनी भक्ति को देखकर मेरे मन में भी अनेक कल्पनायें उठ रही हैं। उन सभी कल्पनाओं को इस समय सविस्तार व्यक्त करूं, इतना अभी समय नहीं है और मेरा स्वास्थ्य भी उसके अनुकूल नहीं है।

'मेरे प्रति जो श्रद्धा प्रकट की जा रही है, उसको मैं वीर प्रभु के शासनस्थ शुद्ध चारित्र व सिद्धान्त को समझकर वीतरागभाव को अर्पण करता हूँ।

'मैं एक निश्चित उद्देश्य व कल्पना को लेकर सादड़ी साधु-सम्मेलन में सम्मिलित हुआ और उसकी पूर्ति के लिये सतत प्रयत्नशील रहा, किन्तु मेरी आशा पूरी नहीं हुई। साथ ही ऐसी कई परिस्थितियों का निर्माण भी हुआ कि जिसके कारण ता. ३०-११-६० को मुझे नवनिर्मित श्रमणसंघ से पृथक् होने की घोषणा करनी पड़ी। उस घोषणा पर पुनः विचारणा करने के लिये श्रमणवर्ग व श्रावकवर्ग की तरफ से मेरे पास निवेदन आदि आये। मगर उनमें सुसंगठन सम्बन्धी मेरी कल्पनाओं एवं उत्पन्न कारणों के निराकरण की पूर्ति होती दिखाई नहीं दीं, अतः आये

हुए निवेदनों आदि का सामूहिक रूप से ता. १४-२-६१ को एक उत्तर दिया । उसको भी पर्याप्त समय हो गया, किन्तु कोई संतोष-जनक समाधान मेरे सामने नहीं आया ।

'मैं सुसगठन का किसी से कम हिमायती नहीं हूँ । मैं अब भी यह चाहता हूँ कि मेरा संतोषजनक समाधान होकर मेरी कल्पना और उद्देश्य के अनुसार जैसा कि मैं पूर्व में व्यक्त कर चुका हूँ, एक के नेतृत्व में श्रमणसंगठन साकाररूप होकर सुदृढ़ बने अथवा मेरा संतोषजनक समाधान पूर्वक समस्त मुनिमंडल या यथासम्भव जितने भी मुनिवृन्द शास्त्रसम्मत एक समाचारी में आबद्ध होकर अपने में से किसी एक शास्त्रज्ञ, श्रद्धावान एव चारित्र-निष्ठ मुनिवर को आचार्य मानें और शिक्षा, दीक्षा, चातुर्मास, विहार व शिष्य परम्परा आदि सब उसी आचार्य के आधीन रहें ।

'ऐसी स्थिति बनती हो तो मैं सदैव तैयार हूँ और अन्य सन्त-सतियों से भी मैं यही अपेक्षा करता हूँ कि जब भी ऐसी स्थिति का निर्माण हो उसमें अपना विलीनीकरण करने को तैयार रहें । मुझे ऐसा विश्वास है कि जब ऐसी परिस्थिति पैदा होगी तब सुसंगठन प्रेमी सन्त-सतीवर्ग उसमें मिलने को तत्पर रहेंगे और श्रावक समुदाय भी उसमें अपना पूर्ण समर्थन देगा ।

'मेरा स्वास्थ्य कुछ काल से जितना चाहिये उतना अनु-कूल नहीं चल रहा है और सुसंगठन प्रेमी चतुर्विध संघ मेरे से भावी व्यवस्था के लिये प्रार्थना कर रहा है कि आपश्री की कल्पना आदि के अनुसार जब तक सुसंगठन होकर सर्वाधिकार पूर्ण उत्तर-दायित्व एक आचार्य के आधीन नहीं हो जाये तब तक हमारा भावी आधार क्या हो आदि ? इस तरफ भी ध्यान देकर व्यवस्था करना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ ।

'यदि मेरी कल्पना व भावना आदि के अनुसार सुसंगठन की सुव्यवस्था मेरे जीवन में न बन सके तो मेरे पश्चात चतुर्विध

संघ की व्यवस्था का सर्वाधिकार तथा पूर्ण उत्तरदायित्व भविष्य के लिये पं. मुनि श्री नानालालजी को सौंपता हूँ। उनको यह भी निर्देशन करता हूँ कि वे यथासंभव मेरी कल्पना आदि के अनुसार सुसंगठन बनाने में सदैव प्रयत्नशील रहें और चतुर्विध संघ उनकी आज्ञाओं को शिरोधार्य करता हुआ ज्ञान, दर्शन, चारित्र की अभिवृद्धि करता रहे।'

आचार्य श्रीजी म. सा. के उत्तराधिकारी के रूप में पं. रत्न मुनिश्री नानालालजी म. सा. का चयन इतना उपयुक्त था कि घोषणा से सर्वत्र आनन्द छा गया। घोषणा में जहां उत्तराधिकारी का नामांकन किया था वहीं श्रमणसंघ के सुसंगठन की शुभ भावना और स्पष्ट मार्गदर्शन देकर समाज का आह्वान भी था। उक्त घोषणा में अस्त-व्यस्त श्रमणसंघ को संभालने का काफी अवकाश था। लेकिन खेद है कि संगठन को सबल बनाने और समाजोत्थान के इस कार्य में अधिकारों की चकाचौंध में किसी ने लक्ष्य नहीं दिया और न आह्वान को सफल बनाने की ओर कोई प्रयास किया गया।

इन्हीं दिनों उपाध्याय मुनिश्री हस्तीमलजी म. सा. आचार्य श्रीजी के दर्शन करने और सुखसाता पूछने उदयपुर पधारे। इसी प्रसग में श्रमणसंघ की स्थिति पर विचार हुआ और उपाध्यायश्री ने आचार्य श्रीजी से निवेदन किया कि वर्तमान सामाजिक वातावरण कैसे शुद्ध हो सकता है? इस पर आचार्य श्रीजी ने निम्नलिखित भाव फरमाये थे—

आपश्री (उपाध्याय श्रीजी) ने सांभोगिक, विसांभोगिक विषय को लेकर शिथिलाचार और स्वनियन्त्र आदि के विषय में जो बातें लिखित रूप में भिजवाई थीं और आपश्री के परामर्श से भी जो हुआ उन पर आपश्री दृढ़ता के साथ कायम रहने की कृपा करें।

'अभी मरुधरकेशरी, रूपचन्दजी, सागरजी, मथुराजी एवं लछमाजी आदि के विषय को न छुआ जाये अर्थात् इनके साथ कोई सम्बन्ध न रखा जाये। इनके साथ साक्षात व परम्परा से जिन्होंने

सम्बन्ध रखा, उनका शुद्धिकरण हो और आपश्री जी की लिखित बातों और परामर्श के प्रतिकूल जितनी श्रमणवर्ग की प्रवृत्तियां हुई हैं, उनको भी व्यवस्थानुसार प्रायश्चित्त दिया जाये। यदि वे प्रायश्चित्त न लें तो उनके साथ आपश्री का सांभोगिक सम्बन्ध नहीं रहना चाहिये।

'संगठन को सुदृढ़, मजबूत एवं स्थायी रखने के लिये श्रमणसंघ ने जो उद्देश्य स्वीकार कर रखा है, जैसा कि श्रमणवर्ग के प्रमुख मुनिवरों ने अपने निवेदन में प्रकट किया है— पूज्य उपाचार्य श्रीजी जिस प्रकार के संगठन की अपेक्षा रखते हैं, वैसा संगठन बनाने का श्रमणसंघ का अन्तिम लक्ष्य निश्चित हुआ ही है—इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये आपश्री दृढ़ संकल्प के साथ प्रयत्नशील हों।

'यदि उपर्युक्त तीनों बातों का अमलीरूप देने में आप श्रीजी भी तैयार हैं, ऐसा मालूम हो जाये तो आप श्रीजी के बीच के सम्बन्ध में कोई रुकावट नहीं रह जाती है।

'इसी प्रकार अन्य भी जो श्रमणवर्ग उपर्युक्त तीनों बातों में आबद्ध हो जाते हैं तो उनके साथ भी अपनी संभोग की स्थिति स्पष्ट हो जाती है।

'इसके बाद जिन-जिन का संभोग परस्पर खुला हो जाता है— उन सांभोगिक स्थिति में रहने वाले मुख्य-मुख्य मुनिवरों के परामर्श पूर्वक श्रमण जीवन के लक्ष्य के अनुरूप सिद्धान्त एवं शुद्ध चारित्र की रक्षा के लिये शास्त्रसम्मत एक समाचारी बनाई जाये।

'निश्चित की गई उस समाचारी के अनुकूल चलने वाले महानुभावों का समान उद्देश्य हो, श्रद्धा, प्ररूपणा, स्पर्शना एक हो एवं शास्त्रीय पद्धति को सामने रखते हुए सुव्यवस्था की दृष्टि से दृढ़ अनुशासन की स्थिति का निर्माण हो एवं श्रमणवर्ग के उद्देश्य की पूर्णरूपेण पूर्ति हो यानि इन सब बातों का अमली रूप हो जाये तो संगठन का मार्ग सुलभ होकर श्रमणसंस्कृति की रक्षा हो सकती है और फिर ऐसे श्रमणसंघ में सिद्धान्त और चारित्र प्रेमी श्रमणों का रहना भी सुलभ हो सकता है।'

आचार्य श्रीजी ने उक्त विचारों में श्रमणसंघ की व्यवस्था, स्थायित्व के प्रश्न और संगठन के लक्ष्य का स्पष्ट चित्रण कर दिया था और इसी के लिये आपश्री ने प्रयत्न किये थे और भविष्य में भी इसी भावना को साकाररूप में देखना चाहते थे।

लेकिन यह पारस्परिक वार्तालाप था और उपाध्याय श्री हस्तीमलजी म. किसी का प्रतिनिधित्व लेकर नहीं पधारे थे। अतः आचार्य श्रीजी से श्रमणसंघ में वापस पधारने की बारम्बार प्रार्थना दुहराने के अतिरिक्त आचार्य श्रीजी के श्रमणसंघ से पृथक् होने के कारणों के समाधान का कोई समुचित मार्ग नहीं बता सके थे। अतः कोई निश्चित परिणाम नहीं निकल सका। सिर्फ पारस्परिक विचार-विनिमय के अतिरिक्त आगे कार्रवाई होने की आशा नहीं की जा सकी।

कान्फरन्स के शिष्टमंडल का आगमन

उपाध्याय श्री हस्तीमलजी म. ने पारस्परिक विचार-विनिमय कर और सुखसाता पूछकर चातुर्मास हेतु सैलाना की ओर विहार कर दिया। श्रमणसंघ की स्थिति में सुधार के कोई चिह्न नहीं दिख रहे थे और न पूर्ण मनोयोग से कोई इस ओर प्रयत्न कर रहा था। सामयिक पत्रों और मौखिक रूप से होने वाले प्रचार की अपेक्षा उसका शतांश भी विध्यात्मक रूप में नहीं हो रहा था। इससे समाज में आशंका व्याप्त थी कि क्या श्रमणसंघ खंडित होगा ?

कान्फरन्स भी मूकदर्शक की तरह यह सब देख रही थी। अपने प्रति बढ़ते हुए समाज के रोष की शांति या रोष को दूसरी दिशा में मोड़ने के लिये दि. २३-८-६२ को कान्फरन्स की ओर से सेठ श्री अचलसिंहजी की अध्यक्षता में एक शिष्टमंडल आचार्य श्रीजी म. सा. की सेवा में उपस्थित हुआ।

शिष्टमंडल ने आचार्य श्रीजी म. सा. की सेवा में अर्ज की कि आपश्री अपना त्यागपत्र वापस लेकर श्रमणसंघ का संचालन करें। हम जहां भी गये, सबने यही इच्छा प्रगट की है। इस समय आप

के अनुशासन की समाज को आवश्यकता है। अतः आपश्री हमारी प्रार्थना की स्वीकृति फरमायें ताकि संगठन मजबूत हो। अब रूपचन्दजी का विषय तो समाप्त हो चुका है। अन्य प्रश्नों का समाधान शेष है।

इस पर आचार्य श्रीजी ने अपने भाव फरमाये कि रूपचन्दजी के लिये जैनप्रकाश में तो क्या प्रकट हुआ और प्रवृत्ति कुछ और ही हुई। यह जो कुछ भी हुआ है, वह न तो विधिपूर्वक है और न संतोष-जनक ही। किन्तु एक प्रकार से उपहास का विषय बनता जा रहा है।

श्रमणसंघ का संगठन कैसा होना चाहिये, आदि के बारे में मैंने अपनी योजना समाज के सामने पहले ही रख दी है। फिर भी आप मेरे दो शब्द और लेना चाहते हैं तो सारांश यह है कि श्रमणसंघ में रहते हुए मार्गदर्शन के रूप में दी गई व्यवस्थाओं आदि के अनुसार श्रमणवर्ग पालन करे और प्रतिकूल प्रवृत्तियां करने वालों का शुद्धिकरण होकर अन्य उत्पन्न अनुचित प्रवृत्तियों का सुधार हो तथा श्रमणसंघ ने निर्धारित लक्ष्य के अनुसार एक आचार्य की आज्ञा में शिक्षा-दीक्षा, प्रायश्चित्त, चातुर्मास, विहार आदि होने को जिसकी मुख्य-मुख्य मुनियों ने पुनः पुष्टि की है, अमली रूप देने के लिये श्रमणवर्ग दृढ़ संकल्पी हो। ऐसी संतोषजनक स्थिति स्पष्ट रूप से मेरे सामने आये तो उस पर सोचने के लिये मैं सदैव तैयार हूँ। मैं सुसंगठन को हृदय से चाहता हूँ।

आचार्य श्रीजी के भाव स्पष्ट थे। लेकिन उपर्युक्त बातों का शिष्टमंडल के पास कोई समाधान नहीं था और इतना साहस भी नहीं था जो योग्य कार्य के लिये कुछ कार्रवाई कर सके। अतः किसी प्रकार का निश्चय किये बिना शिष्टमंडल दि. २४-८-६२ को वापस लौट गया।

युवाचार्य पद की घोषणा

कान्फरन्स का शिष्टमंडल आया-गया हो गया था। लेकिन इसके बाद भी आचार्य श्रीजी प्रतीक्षा करते रहे कि श्रमणसंघीय स्थिति के सुधार के लिये प्रयत्न हों। लेकिन ऐसा कुछ भी प्रतीत नहीं हुआ।

श्रमणसंघ की अव्यवस्था के कारण स्पष्ट थे और चतुर्विध संघ का प्रत्येक सदस्य उनके समाधान की अपेक्षा रखता था। लेकिन समस्याओं के समाधान का जो रूप सामने आया और रूपचन्दजी की नई दीक्षा का निर्णय जैनप्रकाश में प्रकाशित करा के भी उसका जिस रीति से पालन किया या कराया और नई दीक्षा न देकर केवल ४ वर्ष १० माह के दीक्षाछेद का जो प्रायश्चित दिया गया, वह भी शास्त्र-संमत आधार पर नहीं था। समाज ने यह सब स्थिति देखी तो सुसंगठन प्रेमी चतुर्विध संघ निराश हो गया और आचार्य श्रीजी के चरणों में समाज-संगठन को दृढ़ बनाने हेतु एक निश्चित व्यवस्था देने के लिये पुनः आग्रह भरी विनती करने लगा।

आचार्य श्रीजी म. सा. ने बार-बार होने वाली इन विनतियों पर विचार किया कि निर्णय तो ऐसा हो जिससे किसी प्रकार की उलझन पैदा न हो और चतुर्विध संघ को भी संतोष हो जाये। इसलिये वीर-शासनप्रेमी चतुर्विध संघ को इस समय उस परम्परा में स्थान देना उपयुक्त होगा जिससे कि परंपरागत महापुरुषों के नाम से त्याग वैराग्य की भावना जागृत रहे। यही सोचकर आचार्य श्रीजी म. सा. ने महातपोधनी, त्यागी महापुरुष पूज्यश्री हुक्मीचंदजी म. सा. की परम्परा रखना हितकर समझा।

परम्परा में रखना हितकर समझते हुए भी बार-बार यह भलामण दी कि मेरी कल्पना के अनुसार श्रमणसंघीय व्यवस्था होती हो तो उसमें शामिल होने के लिये सदा तत्पर रहना तथा वैसी स्थिति का निर्माण करने के लिये सचेष्ट रहना।

इस भलामण और त्याग-वैराग्य की परम्परा पुनर्जीवित रखने व उसकी व्यवस्था हेतु पं. मुनिश्री नानालालजी म. सा. को युवाचार्य घोषित किया।

इस सम्बन्ध में चतुर्विध संघ की विनती और आचार्य श्रीजी म. सा. की घोषणा इस प्रकार है—

पूज्य आचार्य प्रवर,

पुनीत चरणों में हमारा शत-शत वंदन !

संवत् २०१८ के ग्रीष्मकाल में आपश्री के शरीर में असातावेदनीय कर्मोदय हुआ था, तब सारा समाज एकदम चिन्ता-ग्रस्त हो गया था। उस स्थिति से हमारे मन में नाना प्रकार के संकल्प-विकल्प उत्पन्न हुए थे। तब हमने अनुभव किया था कि हमारी समाज रूपी नौका डोलायमान हो रही है। उस समय जब एक ओर अन्तर् में आपके स्वास्थ्यलाभ की शुभ कामनायें कार्य-रत थीं तो दूसरी ओर हमें समाज के भविष्य की भी चिन्ता हो रही थी। हम जीवों को आत्मकल्याण के लिये आपका मार्गदर्शन सुलभ था, इसलिये हमारे हृदय में भावनायें उठ रही थीं कि उसी प्रकार मार्गदर्शन हमको आगे भी मिलता रहे तो कितना अच्छा हो। उन्हीं अन्तर् भावनाओं से प्रेरित होकर उस समय आपकी पवित्र सेवा में प्रार्थना की थी कि भगवन् ! आपके पश्चात् भी हमको वैसा ही मार्गदर्शन मिलता रहे। इसलिये चतुर्विध संघ किसका आज्ञानुवर्ती रहे ? इसकी घोषणा करने की महती कृपा करें।

'आपने हमारी उस प्रार्थना पर विचार कर पं. मुनिश्री नानालालजी म. सा. को आपके पश्चात् चतुर्विध संघ की व्यवस्था का सर्वाधिकार तथा पूर्ण उत्तरदायित्व भविष्य के लिये सौंपा था। उस घोषणा से हमारी चिन्तायें बहुत दूर हो गई थीं। इधर आपका स्वास्थ्य भी सुधरने लगा तो हमारे आनन्द का ठिकाना नहीं रहा।

आपकी उक्त घोषणा से भविष्य के लिये जहां हम आश्वस्त हुए, वहां हमारा ध्यान पं मुनिश्री नानालालजी में और अधिक केन्द्रित होता गया और हमारी भावनायें उनकी गतिविधि की परख में भी चलने लगीं।

'महामने, इस गतिविधि से हमने अनुभव किया कि आप न केवल शुद्ध संयमाराधक, उच्च निष्ठावान, ज्ञानगंभीर

महापुरुष हैं बल्कि आप में परखने की भी एक अद्भुत क्षमता है। आप द्वारा आपके उत्तराधिकारी के रूप में पं. मुनिश्री नानालालजी म. सा. का योग्य चयन आपकी परख का स्पष्ट उदाहरण है।

'पं. मुनिश्री नानालालजी म. सा. की संयमाराधना के प्रति उत्कट अभिरुचि और बड़ों के प्रति आदरभाव के विनीत गुण एवं शास्त्रीय ज्ञानगुण से हमको संतोष है। हम उनके प्रति भी अपनी भक्तिपूर्वक श्रद्धा व्यक्त करते हैं।

'अभी असाता वेदनीय कर्मोदय ने आपके स्वास्थ्य को पुनः झकझोर दिया है। इससे हमारे मन पर पुनः भार है। यद्यपि पं. मुनिश्री नानालालजी म. को आपके योग्य उत्तराधिकारी के रूप में पाकर हम गर्व अनुभव करते हैं, तथापि समाज की दिन-प्रतिदिन बिगड़ती हुई स्थिति एवं संयममार्ग में आई हुई विकृतियों को देखकर हमारी आपश्री से आंतरिक प्रार्थना है कि समाज संगठन को सुदृढ़ बनाने के लिये प. मुनिश्री नानालालजी म. को युवाचार्य घोषित कर आपके वरदहस्त द्वारा ही चादर प्रदान की जाये। आपश्री के लक्ष्यानुरूप संगठन का यह बीज आपश्री के आशीर्वाद से पुष्पित, पल्लवित होकर समाज में आत्म-साधना की अभिरुचि को और बढ़ाता हुआ कल्याणदायक सिद्ध होगा।

'हमें विश्वास है कि आपश्री हमारी इस प्रार्थना पर अवश्य ध्यान देने की कृपा करेंगे।

'अन्त में हम आपश्री के अनुयायी श्रावक-श्राविका आपको विश्वास दिलाते हैं कि हम पं. मुनिश्री नानालालजी म. की प्रत्येक आज्ञा को शिरोधार्य कर अपना कर्तव्य पालन करेंगे।

हम है आपके श्रावक वृन्द

(उदयपुर राजस्थान)

मिती आश्विन कृष्णा ९ सं. २०१९ दि. २२-९-६२

विनती के प्रत्युत्तर में आचार्य श्रीजी ने यह भाव फरमाये—

'लगभग डेढ़ वर्ष पूर्व जब अचानक मेरे शरीर पर रोग ने आक्रमण किया और मेरा स्वास्थ्य निर्बल होता जा रहा था तब शासन-हितैषी, सुसंगठनप्रेमी चतुर्विध संघ में चिन्ता व्याप्त हो गई थी । उस समय मुझसे प्रार्थना की गई थी कि--

'आपश्री की कल्पना आदि के अनुसार जब तक सुसंगठन होकर सर्वाधिकारपूर्ण उत्तरदायित्व एक आचार्य के आधीन नहीं हो जाये, तब तक हमारा भावी आधार क्या हो ?

'समाज की स्थिति को देखते हुए चतुर्विध संघ के मन में ऐसे विचार आना स्वाभाविक ही था । उनकी उपर्युक्त भावना की प्रार्थना आने पर समाज की स्थिति और अन्यान्य बातों पर गम्भीरता से मनन करके कुछ व्यवस्था करना मैंने अपना कर्तव्य समझा । उस समय मैंने यही सोचा कि चतुर्विध संघ की चिन्ता निर्मूल नहीं है । अतः मैंने दि. १८ अप्रैल १९६१ को सुसंगठन सम्बन्धी अपनी निम्न भावना व्यक्त करते हुए कहा था कि--

'मैं सुसंगठन का किसी से कम हिमायती नहीं हूँ । मैं अब भी यही चाहता हूँ कि मेरा संतोषजनक समाधान होकर मेरी कल्पना और उद्देश्य के अनुसार जैसा कि मैं पूर्व में व्यक्त कर चुका हूँ एक के नेतृत्व में श्रमण संगठन साकार रूप होकर सुदृढ़ बने अथवा मेरा संतोषजनक समाधान पूर्वक समस्त मुनिमंडल या यथासंभव जितने भी मुनिवृन्द शास्त्रसम्मत एक समाचारी में आबद्ध होकर अपने में से किसी एक शास्त्रज्ञ श्रद्धावान एवं चारित्र-निष्ठ मुनिवर को आचार्य मानें और शिक्षा, दीक्षा, चातुर्मास, विहार व शिष्य-परंपरा आदि सब उन्हीं आचार्य के आधीन रहे । ऐसी स्थिति बनती हो तो मैं सदैव तैयार हूँ और अन्य सन्त-सतियों से भी यही अपेक्षा करता हूँ कि जब भी ऐसी स्थिति का निर्माण हो, उसमें अपना विलीनीकरण करने को तैयार रहें .... । इन भावों को व्यक्त करते हुए चतुर्विध संघ की प्रार्थना को लक्ष्य करके

आदेश दिया था कि—

'यदि मेरी कल्पना व भावना आदि के अनुसार सुसंगठन की सुव्यवस्था मेरे जीवन में न बन सके तो मेरे पश्चात चतुर्विध संघ की व्यवस्था का सर्वाधिकार तथा पूर्ण उत्तरदायित्व भविष्य के लिये पंडित मुनिश्री नानालालजी को सौंपता हूँ कि वे यथासंभव मेरी कल्पना आदि के अनुसार सुसंगठन बनाने में प्रयत्नशील रहें और चतुर्विध संघ उनकी आज्ञाओं को शिरोधार्य करता हुआ ज्ञान-दर्शन-चारित्र की अभिवृद्धि करता रहे।

'उक्त भावना एवं निर्देशन में सन्निहित भावों से सुज्ञ वर्ग को ज्ञात होना चाहिये कि चतुर्विध संघ की प्रार्थना पर ध्यान देकर जहां मैंने एक व्यवस्था दी, वहां शास्त्र-सम्मत एक समाचारी में आबद्ध होकर सर्वाधिकार सम्पन्न एक के नेतृत्व में श्रमणसंगठन बनता हो तो उसमें विलीन होने के लिये भी मार्ग खुला रखा है। आज भी मेरे वही विचार हैं।

'अभी गत ज्येष्ठ मास में उपाध्याय पं. रत्न श्री हस्तीमलजी म. उदयपुर पधारे तब श्रमणसंघ सम्बन्धी उनसे वार्तालाप हुआ था। बाद में पर्युषण पर्व से पूर्व अ. भा. श्वे. जैन कान्फ़रन्स का एक शिष्टमंडल भी आया था। उससे भी श्रमणसंघ सम्बन्धी चर्चावार्ता हुई थी। सभी ने सुसंगठन की मेरी उक्त भावना एवं विचारों को भगवान महावीर की निर्ग्रन्थ श्रमणसंस्कृति के रक्षार्थ सहायक माना। परन्तु इतना समय व्यतीत हो जाने के बाद और चर्चा-विचारणा के उपरान्त भी तदनुसार पालन करने-कराने का कहीं से कोई चिह्न दृष्टिगोचर नहीं हो रहा है।

'सं० २००९ में सादड़ी सम्मेलन में स्थानकवासी जैन धर्मानुयायी विभिन्न संप्रदायों के मुनिवरों ने मिलकर भिन्न-भिन्न परम्परा और समाचारी में एकता लाकर एकीकरण, पारस्परिक प्रेममय ऐक्यवृद्धि एवं संयममार्ग में उत्पन्न विकृतियों को निर्मूल

करने की दृष्टि से एक आचार्य के नेतृत्व में एक और अविभाज्य श्रमणसंघ की स्थापना की थी। वहां एकत्रित सब प्रतिनिधि मुनिवरों ने मिलकर सर्वसम्मति से उपाचार्य पद पर मुझे आसीन कर श्रमणसंघ-संचालन का पूर्ण उत्तरदायित्व मुझे सौंपा। तब मेरी इच्छा नहीं होते हुए भी मैंने प्रतिनिधि मुनिवरों को मान देकर श्रमणसंस्कृति की पवित्रता को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये उस गुरुतर उत्तरदायित्व को संघसेवार्थ स्वीकार किया और जो भी समस्या मेरे सामने आई अथवा मुझे सौंपी गई, उन पर न्याय-नीति पूर्वक विचार करके आत्मसाक्षी से निर्णय दिये। यद्यपि विधि-विधान के अनुसार ऐसी समस्याओं का निर्णय लेने का मुझे पूर्ण अधिकार था परन्तु मेरी दृष्टि में संघसेवा की मुख्य रही अतः जहां भी मुझे आवश्यकता अनुभव हुई, मैंने अधिकारी मुनिवरों आदि से परामर्श लेकर निर्णय दिये। इतना सब होते हुए भी ऐसे निर्णयों की न केवल मौन अवज्ञा ही की गई बल्कि विपरीत अध्यादेशों आदि द्वारा उनकी स्पष्ट अवहेलना भी की गई और कराई गई। आश्चर्य तो इस बात का रहा कि मेरे द्वारा किये गये श्रमणसंघीय ऐसे निर्णयों पर जब भी किसी ने मुझसे चर्चा की तो जहां तक मुझे स्मरण है किसी ने भी उन निर्णयों में मुख्य-रूप से अमुक त्रुटियां या कमी रहीं ऐसा नहीं कहा। फिर भी उनकी पालना नहीं हुई। इस प्रकार न्याय-नीति और अनुशासन की अवहेलना होते हुए भी मैंने धैर्यपूर्वक और प्रतीक्षा की, परन्तु जब मुझे लगा कि अब मेरे जैसे व्यक्ति का श्रमणसंघ में रहना व्यर्थ है तब मुझे विवश होकर उस नवनिर्मित श्रमणसंघ से सकारण पृथक् होना पड़ा, परन्तु मार्ग खुला रखा।

'बाद में श्रमणसंघीय अधिकारी मुनिवरों एवं श्रावकसंघों द्वारा मेरे त्यागपत्र सम्बन्धी विचार पर पुनर्विचार के पत्र, प्रार्थना आदि आये। उनमें मैंने मेरे प्रति उनके प्रेम की झलक तो देखी

मगर जिन कारणों को लेकर मैं श्रमणसंघ से पृथक् हुआ, उनके निराकरण का कोई संतोषजनक समाधान, आश्वासन नहीं दिखा। इसलिये मैंने सधन्यवाद उनकी प्रेमभावना की सराहना करते हुए जब तक मेरा संतोषजनक समाधान नहीं हो जाये, तब तक क्या कहूँ ऐसा उत्तर दिला दिया।

'यद्यपि इन सब बातों को काफी समय हो गया तथापि मुझे आशा थी कि सादड़ीसम्मेलन में स्वीकार किये हुए उद्देश्य की पूर्ति हेतु मेरी योजना को कार्यान्वित करने का कहीं से सक्रिय कदम उठेगा, परन्तु अभी पिछले दिनों जब विकेन्द्रीकरण की योजना मेरे सामने आई और रूपचन्दजी के विषय को शास्त्रीय मर्यादाओं को भी अलग रखकर जिस ढंग से निपटा हुआ मान लिया गया तो अब मुझे ऐसा लग रहा है कि मेरी भावनानुकूल एक आचार्य के नेतृत्व में पूर्व स्वीकृत उद्देश्य की पूर्ति की सब मुनिवरों द्वारा मिलकर कम-से-कम निकट भविष्य में सम्भावना नहीं है।

'इन दिनों मेरा स्वास्थ्य पुनः गड़बड़ा गया है और शरीर में अधिक निर्बलता अनुभव हो रही है। इधर समाज की अस्थिर स्थिति और नैराश्य से सुसंगठन प्रेमी महानुभाव भी विचलित हैं और चाहते हैं कि संघ-संचालन का कुछ ठोस निर्णय ले लिया जाये। मैं भी अब इसकी आवश्यकता अनुभव कर रहा हूँ। इसलिये पं. मुनिश्री नानालालजी को शुभेच्छु श्री संघ की सम्मति से परमप्रतापी, तपोधन, यशस्वी, महान संत पूज्यश्री १००८ श्री हुक्मीचन्दजी म. सा. की पाट-परम्परा पर युवाचार्य घोषित करता हूँ। मेरे जीवनकाल में ये इस पद से विभूषित रहेंगे और मेरे बाद में आचार्यपद के अष्टम पाट की शोभा बढ़ायेंगे। यही मेरी भावना है।

'यदाकदा मेरे कान पर एक बात आती रहती है कि उपाचार्य पद से त्यागपत्र देकर श्रमणसंघ से पृथक् हो जाने के

बाद मेरे अंगरूप श्रमणवर्ग सहित मेरी स्थिति क्या रहती है ? अब अवसर आ गया है कि इस बिन्दु पर भी प्रकाश डाल दूं, जिससे स्थिति स्पष्ट हो जाये ।

'सादड़ी में निर्मित श्रमणसंघ में प्रवेश इस शर्त के साथ था कि यह संघ-ऐक्य योजना अखंड रहे तब तक के लिये मैं बाध्य हूँ ।

'श्रमणसंघ संचालन की अवधि में शिथिलाचार उन्मूलन की दिशा में तथा ध्वनिवर्धक यंत्र के उपयोग नहीं करने के सम्बन्ध में मैंने विधिवत व्यवस्थायें दी थीं । परन्तु उन व्यवस्थाओं के विपरीत आचार्य श्री द्वारा अध्यादेश आदि निकाले गये, जिससे तत्काल तो दिल्ली में विराजित पंजाबी मुनिवरों में और बाद में अन्यत्र भी सांभोगिक-सम्बन्ध-विच्छेद हो गये । इस प्रकार विभेद पड़कर संघ-ऐक्य-योजना अखंडित नहीं रही । मेरी उपर्युक्त शर्त अनुसार मैं उस नवनिर्मित श्रमणसंघ से पृथक होने में उसी समय से स्वतन्त्र था, परन्तु इधर समाज में मेरी उक्त व्यवस्थाओं को पालन कराने के प्रयत्न चल रहे थे, इसलिये जावरा से निवेदन देकर मेरी सांभोगिक स्थिति को मर्यादित करते हुए मैंने सावधानी दिला दी थी और त्यागपत्र नहीं देकर प्रतीक्षा करता रहा । इसके बाद लम्बे काल तक प्रतीक्षा करने के उपरान्त भी जब टूटे हुए सांभोगिक सम्बन्ध में सुधार नहीं हुआ और दूसरी-दूसरी बातों द्वारा व्यवस्था और बिगड़ने लगी तो मुझे विवश होकर उपाचार्य पद से त्यागपत्र देकर श्रमणसंघ से पृथक होना पड़ा ।

'इस प्रकार श्रमणसंघ से पृथक् हो जाने के बाद मैं मेरे अंग रूप श्रमणवर्ग सहित अपने आप ही यथापूर्व स्थिति में आ गया । इसमें और विशेष कुछ कहने का नहीं रहता ।

'प. मुनिश्री नानालालजी को युवाचार्य पदवी प्रदान के बाद भी जहां तक श्रमणवर्ग के साथ सांभोगिक सम्बन्ध आदि व्यवस्था का प्रश्न है उसके लिये मैं पूर्व में व्यक्त कर चुका हूँ,

तदनुसार जिनके साथ जैसा योग्य जान पड़ेगा वैसा सम्बन्ध आदि रखा जा सकेगा ।

'मेरे में श्रद्धा रखने वाले संत-सतीवर्ग एवं श्रावक-श्राविकायें पं. मुनिश्री नानालालजी की आज्ञाओं को शिरोधार्य करता हुआ इनको पूर्णरूपेण सहयोग देवें और ज्ञान-दर्शन-चारित्र की उत्तरोत्तर अभिवृद्धि करता रहे ।

'मैं यहां पुनः निर्देश करता हूँ कि मेरी भावना और कल्पना आदि के अनुसार जब भी ऐसी (सुसंगठन की) स्थिति का निर्माण हो उसमें अपना विलीनीकरण करने को तैयार रहें और सुसंगठन बनाने में सदा प्रयत्नशील रहें ।

संघ-संचालन के वृहत् कार्य में संत-सतियां एवं श्रावक-श्राविकाओं ने मुझे सहयोग दिया उसके लिये मैं उनका पूर्ण आभार मानता हूँ ।

'श्रमणसंघ के कार्यकाल में तथा बाद में मेरे द्वारा किसी का दिल दुखा हो तो मैं एक बार पुनः अन्तःकरण से क्षमा- याचना करता हूँ । इति शुभम् ।'

उदयपुर, आसोज कृष्णा ६, सं. २०१६, दि. २२ सितम्बर १६६२

चतुर्विध संघ में हर्ष

आचार्य श्रीजी की घोषणा से चतुर्विध संघ में हर्ष व्याप्त हो गया । हर्ष होना स्वाभाविक ही था कि आचार्य श्रीजी ने अपना उत्तरदायित्व एक ऐसे प्रतिभासम्पन्न चारित्रशील मुनिराजश्री को सौंपा था जो उनकी भावनाओं को मूर्तरूप देने में प्राणपण से चेष्टा करने की भावना रखते हैं तथा विवेकशील, विनयी, संयमप्रेमी, विद्वान विचारक हैं ।

दूसरा कारण यह था कि सन्त-परम्परा को अक्षुण्ण रखने के लिये आचार्य श्रीजी ने इस अस्वस्थ अवस्था में भी एक व्यवस्था देकर भविष्य के लिये स्पष्ट आदेश दे दिया था । संत-जन सैद्धान्तिक सुसंग-

ठन के लिये सदैव तत्पर रहे हैं और इसके लिये मान-सम्मान की अपेक्षा साधना को सर्वोपरि माना है।

आचार्य श्रीजी के हार्दिक उद्गार

आचार्य श्रीजी का स्वास्थ्य कमजोर होता जा रहा था। इन दिनों में तो विशेषरूप से स्वास्थ्य में उतार-चढ़ाव आ रहे थे और ऐसा कुछ नहीं कह सकते थे कि शरीर की भविष्य में क्या स्थिति बने।

चतुर्विध संघ के व्यवस्था-सम्बन्धी विचार व्यक्त कर देने के पश्चात् आचार्य श्रीजी म. सा. ने इसी समय आत्मनिवेदन सम्बन्धी विचारों को भी व्यक्त कर देने का उचित अवसर मानकर यह हार्दिक उद्गार व्यक्त किये—

मेरा शरीर इन वर्षों में कुछ कमजोर-सा चल रहा है और इन दिनों में तो कमजोरी अधिक अनुभव हो रही है। यह शरीर भौतिकपिंड है। इसको एक रोज छोड़ना ही है। सम्भव है कभी यह अचानक अपनी प्रक्रिया को बदल दे तो ऐसी दशा में जब तक मेरी ज्ञान-शक्ति अच्छी तरह काम कर रही है, हिताहित को पहिचानने का प्रज्ञा-प्रकाश भलीभांति विद्यमान है, तब तक सभी से क्षमायाचना कर लेना हितकर है। यह सोच मैं अपनी आलोचना करके सभी प्राणियों से और खासकर चतुर्विध संघ से शुद्ध हृदयपूर्वक क्षमायाचना करता हूँ।

इस समय मेरा ७३वां वर्ष चल रहा है। दीक्षा लिये भी ५६ वर्ष होने जा रहे हैं। इस कार्यकाल में मैंने यथास्थान रहते हुए जिसको हृदय से सत्य मानता रहा हूँ, उसका आदेश उपदेश के रूप में व्यवहार करता रहा हूँ। कई व्यक्तियों से मेरा सैद्धान्तिक मतभेद भी रहा है। सत्य और न्याय का अन्वेषण करने आदि की दृष्टि से उनके साथ विचार-विमर्श व चर्चा आदि का प्रसंग भी आया है। उस समय भी जहां तक उपयोग रहा है, वहां तक मेरा उन व्यक्तियों के साथ केवल आचार-विचार सम्बन्धी

भेद रहा है, पर आत्मिक दृष्टि से मैंने उनको अपने मित्र ही समझे हैं और अब भी समझता हूँ। फिर भी आत्मा की विशेष शुद्धि के लिये उन सभी व्यक्तियों से क्षमा मांगता हूँ।

मेरा साधुवर्ग के साथ गुरु और शिष्य के रूप में, शासक और शास्य के रूप में, सेव्य और सेवक के रूप में तथा दूसरे कई प्रकार से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है और इसी तरह सादड़ी में निर्मित श्रमणसंघ के साथ भी सम्बन्ध रहा है। मैंने शासनोन्नति एवं निर्ग्रन्थ श्रमणसंस्कृति की रक्षा के लिये, उत्पन्न विकृतियों को दूर करने के लिये एवं सुसंगठन के लिये व्यवस्थायें आदि दीं। दी गई व्यवस्थाओं आदि का जिन्होंने पालन नहीं किया, उनके साथ अनुशासनात्मक कार्यवाही भी करनी पड़ी और अपने विचार संघ के सामने रखे। उनसे किसी के चित्त को किसी प्रकार का कष्ट पहुंचा हो तो—

खामेमि सव्वे जीवा सव्वे जीवा खमन्तु मे।
मित्ती मे सव्व भूएसु वैरं मज्झं न केणई॥

इस शास्त्रीय पाठ से क्षमत-क्षमापना करता हुआ—

सत्वेषु मैत्री गुणिषु प्रमोदम्,
क्लिष्टेषु जीवेषु कृपा परत्वम्।
माध्यस्थभावं विपरीतवृत्तौ,
सदा ममात्मा विदधातु देव॥

इसके साथ मेरी आत्मा को जोड़ता हूँ।

युवाचार्यश्री के हृदयोद्गार

पं. र. मुनिश्री नानालालजी म. सा. को चतुर्विध संघ की व्यवस्था का उत्तरदायित्व सौंपने से चतुर्विध संघ की प्रसन्नता का पारावार नहीं था किन्तु युवाचार्यश्री के लिये यह आत्मनिरीक्षण का अवसर था। अतः आपश्री ने निम्नलिखित आशय के भाव व्यक्त किये—

आज जो कुछ हुआ, उससे मेरा चित्त प्रसन्न नहीं है,

अपितु कुण्ठित ही है। मुझे इस समय कुछ बोलने का भी उत्साह नहीं है। अभी जो कुछ हुआ उसकी मैं तो आवश्यकता अनुभव नहीं करता। फिर भी महापुरुषों के हृदय में महान आशय रहा हुआ होता है। उस आशय को हम समझने का प्रयत्न करें। यह हमारे लिये वरदान स्वरूप हो सकता है। इस भावना से दो शब्द बोल रहा हूँ।

गत वर्ष अक्षय तृतीया के दिन मेरा नाम निर्देश किया गया। उस समय मैंने चतुर्विध संघ के समक्ष प्राथना की थी कि मेरा नाम इस चित्र से हटा लिया जाकर किसी महामुनि को इस गुरुत्तर उत्तरदायित्व को दिया जाये। चतुर्विध संघ मेरी ओर से पूज्यश्री के चरणों में भी प्रार्थना कर मुझे मुक्त करावे। परन्तु उस समय मुझे प्रभाव डालकर मौन किया गया। गुरुदेव के सन्मुख विनय युक्त प्रार्थना ही तो कर सकता था। उसे स्वीकार करना, नहीं करना उनके हाथ था।

अभी पूज्य आचार्यश्री का स्वास्थ्य जब पुनः निर्बल बना तो लोगों में हलचल मच गई। लोग नाना प्रकार की बातें करने लगे। मेरे कान पर भी शब्द आये तो विनयपूर्वक मैंने आचार्यश्री के चरणों में प्रार्थना की कि आपश्री जो कुछ भी सोचें, किसी अन्य योग्य मुनिवर के लिये सोचें। परन्तु आचार्यश्री ने फरमाया कि बिना पूछे तुम्हारे बोलने की आवश्यकता नहीं। जब तुमसे पूछा जाय तब उत्तर देना आदि। इतना फरमाते समय जब मैंने अनुभव किया कि आचार्यश्री को इससे कुछ कष्ट हो रहा है तो मैं मौन हो गया। परन्तु प्रमुख श्रावकों से कहा कि आप लोग ही विनम्रपूर्वक आचार्यश्री के चरणों में प्रार्थना कर इससे मेरे नाम को हटवा दें। लेकिन समय की बात कहूँ या अन्य कुछ, ये महानुभाव भी मेरे सहायक नही बने, बल्कि जो कुछ अभी हुआ, इसी के लिये मुझे कहते रहे। अधिकांश प्रमुख श्रावक तो एक कदम

और आगे बढ़कर किसी-न-किसी रूप में मुझको भी कहते रहे कि आचार्यश्री की आज्ञा का आपको पालन करना होगा। आप मनाई कैसे कर रहे हैं। श्री जुगराजजी सेठिया, श्री सुन्दरलालजी तातेड़, श्री हीरालालजी नांदेचा आदि ने अपने-अपने ढग से एकान्त में बहुत कुछ कहा। वे तो यहां तक कह बैठे कि क्या आचार्यश्री के चित्त को शांति देना नहीं चाहते आदि। इस प्रकार मुझे चुप कर दिया। अन्य भी कई सज्जनों ने इसी प्रकार कुछ-न-कुछ कहा। मगर मेरे विचारों के समर्थन में कोई नहीं बोला। अब मैं इस प्रसंग के उपस्थित होने पर नतमस्तक हो सुन रहा हूँ। मेरी अन्तरात्मा का मुख्य लक्ष्य और ही है। मैं तो विद्यार्थी जीवन में रहते हुए अपने ज्ञान-दर्शन-चारित्र की आराधना के साथ जिस उद्देश्य से निकला हूँ, उस उद्देश्य की पूर्ति करना चाहता हूँ। इसलिये मुझे उसी तरह की स्थिति में रखा जाये तो बहुत आनंदित हूँ। एक बात और, चतुर्विध संघ ने आचार्यश्री के चरणों में पहले भी प्रार्थना की थी और आज उन्हीं श्रीचरणों में पुनः प्रार्थना कर रहा है। लेकिन चतुर्विध संघ को यह तो विदित ही होगा कि ऐसा करके उसने अपने ऊपर एक महान उत्तरदायित्व ले लिया है। इसलिये इस गुरुतर उत्तरदायित्व का परिवहन चतुर्विध संघ के प्रत्येक सदस्य को करना ही होगा। मुझे जो भार सौंपा जा रहा है, उसमें चतुर्विध संघ की भी जवाबदारी है। इसलिये एक दृष्टि से मैं चिन्ता जैसी बात अनुभव नहीं करता हूँ, क्योंकि मैं तो बालक विद्यार्थी हूँ। माता की गोद में बालक जैसे सभी चिन्ताओं से मुक्त रहता है, उसी प्रकार मैं माता की गोद के समान चतुर्विध संघ और आचार्यश्री के बीच बैठा हूँ। चतुर्विध सघ मुझे ज्ञान-दर्शन-चारित्र की उन्नति के लिये सहायक हो और आचार्यश्री का वरदहस्त मेरे सिर पर हमेशा बना रहे, जिससे मेरा व चतुर्विध संघ का जीवन मंगलमय प्रसंग में बीते। यही शुभकामना है।

समय अधिक हो गया है और आचार्यश्री को अस्वस्थता के कारण कष्ट हो रहा है, अतः अब अधिक बोलना नहीं चाहता ।

युवाचार्यश्री के उपर्युक्त प्रवचन के उपरान्त सभा विसर्जित हुई।

चादर-प्रदान-समारोह का निश्चय

पूज्य आचार्य श्रीजी म. सा. की संघ-व्यवस्था विषयक घोषणा से चतुर्विध संघ को संतोष हुआ । अब उसकी आकांक्षा थी कि युवाचार्य-चादर-प्रदान की तिथि निश्चित करके चादर-प्रदान समारोह मनाया जाये । संघ ने विचार-विमर्श करके सं. २०१९, मिती आसोज शुक्ला २, रविवार दि. ३० सितम्बर १९६२ का दिवस समारोह के लिये निर्धारित किया ।

समारोह आठ दिन बाद था और इतने अल्प समय में विभिन्न श्रीसंघों को सूचना देने एवं समारोह में आने वाले श्रावक-श्राविकाओं के आवास आदि की व्यवस्था करने का महत्त्वपूर्ण कार्य था । लेकिन उदयपुर श्रीसंघ समारोह को सफल बनाने के लिये सोत्साह संलग्न हो गया । तार, टेलीफोन, पत्र आदि के माध्यम से देश के समस्त श्रीसंघों को समारोह में उपस्थित होने के आमंत्रणपत्र भेज दिये तथा अनेक स्थानों पर अपने प्रतिनिधियों को भी भेजकर आमंत्रण दिया तथा आवास आदि की व्यवस्था भी बहुत ही सुव्यवस्थित कर ली ।

समय थोड़ा था किन्तु सूचना मिलते ही बाहर से हजारों भाई-बहिन समारोह में सम्मिलित होने के लिये उदयपुर में एकत्रित होने लगे । मार्गों, चौराहों, गली, गलियारों में जहां भी देखो वहीं विभिन्न नगरवासियों के समूह दिखलाई देते थे ।

समारोह दिवस का दृश्य

आसोज शुक्ला २ के प्रातः भुवनभास्कर अंशुमाली की स्वर्णिम किरणों के झांकने के साथ ही आबालवृद्ध नर-नारी टोलियों में पूज्य आचार्य श्रीजी के वासस्थान—पंचायती नोहरे की ओर बढ़ चले । प्रातःकालीन मंगल गीतों से दिशायें मुखरित हो रही थीं ।

प्राकृतिक सुषमा में एक नवोन्मेष दृष्टिगोचर हो रहा था। शीतल, मंद पवन के झोंके शरदकालीन सुखद वातावरण की अनुभूति कर रहे थे। हरे-भरे खेतों से सुसज्जित प्रकृति नटी इस समारोह के स्वागत में नव धान्यों की अंजलि अर्पित कर रही थी। बड़े-बड़े सरोवर अपने सरोरुहों के विकास से समारोह के स्वागत और अभिनन्दन में संलग्न थे। विहगवृंद दूर गगन में कलरव करते हुए समारोह की शोभा-प्रसार में प्रयत्नशील थे। मानो प्रकृति का कण-कण समारोह के समर्थन में अपना सहयोग अर्पित कर रहा हो।

सूरजपोल के विस्तृत प्रांगण में समारोह के आयोजन का प्रबन्ध किया गया था। राजभवन की विशाल सीढ़ियां मंच थीं। समारोह होने में समय था किन्तु उसके पूर्व ही हजारों व्यक्ति वहां एकत्रित हो चुके थे। प्रबन्ध-व्यवस्था इतनी चतुराई से की गई थी कि दूर बैठा प्रत्येक दर्शक मंच पर होने वाली विधि को देख सकता था। आमने-सामने की राजमहल की अट्टालिकायें महिलाओं और बच्चों से खचाखच भरी हुई थीं।

आचार्य श्रीजी म. सा. का स्वास्थ्य ऐसा नहीं था जो पैदल विहार कर समारोहस्थल पर पधार सकें। अतः पचायती नोहरे से संतमंडली एवं अन्य श्रावक-श्राविकाओं के समूह से परिवेष्ठित डोली में विराजकर सन्तों के ही सहारे करीब आठ बजे समारोह स्थान पर पधारे। उपस्थित जनसमूह ने श्रद्धावनत हो स्वागत किया। इस समय उपस्थिति करीब २५-३० हजार मानवमेदनी की होगी। ऐसा प्रतीत होता था मानो समस्त उदयपुर नगर आज इसी एक ही स्थान पर आकर केन्द्रित हो गया है।

सीढ़ियों पर स्थित पाटों पर एक ओर सन्त समुदाय और सीढ़ियों पर दूसरी ओर साध्वीवृन्द विराजमान था। मध्य में पूज्य आचार्य श्रीजी म. सा. एक ऊंचे पाटे पर विराज रहे थे। पाटे के सामने ही मेवाड़ाधिपति महाराणा श्री भगवतसिंहजी बहादुर अपनी

राजकीय पोशाक में आसीन थे। कुछ पास ही राजकीय अधिकारी, नगर के संभ्रांत प्रतिष्ठित नागरिक बैठे थे और उनके पीछे जनसाधारण का अपार समूह उपस्थित था। यह दृश्य ऐसा प्रतीत होता था कि तीर्थंकर भगवान की धर्मदेशना का लाभ प्राप्त करने के लिये समवशरण का ही रूपक हो।

स्वति वचन और नन्दीसूत्र के स्वाध्याय के उपरान्त तपस्वी मुनिश्री केशूलालजी म. सा. आदि सभी सन्तों ने कुंकुम केशर चिह्नित चादर पूज्य आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. को ओढ़ाई और आपश्री ने वही चादर युवाचार्य श्री पं. र. मुनिश्री नानालालजी म. सा. को ओढ़ाकर चतुर्विध संघ की व्यवस्था का दायित्व सौंप दिया। अन्य मुनिराजों ने चादर ओढ़ाने में हाथ लगाकर अपना सहयोग दिया एवं उपस्थित जनसमुदाय ने जयघोष के साथ इसका अनुमोदन किया।

चादर प्रदान करने के उपरांत पूज्य आचार्य श्रीजी म. सा. ने प्रवचन फरमाया। जिसका सारांश इस प्रकार है—

'श्रमण जीवन के लिये जिन-आज्ञा ही मुख्यतः विधि-विधान है। उसकी सुरक्षा के लिये जो भी प्रवृत्ति की जाये वह सब वैधानिक है। इसी लक्ष्य को ध्यान में रखकर मैंने समाज के अन्दर कार्य किया है और कर रहा हूँ। आज युवाचार्य चादर प्रदान का प्रसंग है।

'यह शुभ्रवरण सफेद चादर जो मैंने युवाचार्य श्री नानालालजी को ओढ़ाई है, वह सुधर्मास्वामी, जम्बूस्वामी जैसे महापुरुषों की परम्परा के अनुसार है।

'श्वेतवर्ण पवित्रता का द्योतक है। शुक्लध्यान की याद दिलाता है। जीवन में निष्कलंक रहने की सूचना करता है। यह चादर अनेक तारों से बनी हुई है। एक तार में अनेक स्थूल तंतु हैं। एक-एक तंतु में असंख्य स्कन्ध हैं और एक-एक स्कन्ध में अनन्त अनन्त परमाणु भरे हैं। जिस प्रकार ये सारे अनन्त परमाणु

एक चादर के रूप में गठित हुए हैं। इसी प्रकार संसार में व्याप्त सूक्ष्म और वादर सभी जीव आत्मायें आत्मत्व की दृष्टि से एक हैं, लेकिन विकास की विभिन्नता एवं तत्त्व की दृष्टि से पूर्ण स्वतंत्र पृथक् अस्तित्व रखती हैं। इतना होने पर भी एक दूसरे का परस्पर अनेक तरह का सम्बन्ध है। उस सम्बन्ध को ठीक तरह से समझ कर यथायोग्य सम्बन्ध का परस्पर पालन करना आवश्यक है। उसमें से मुख्यतया विश्वमैत्री की एवं विश्व-कल्याण की भावना प्रत्येक मानव के दिल में होनी ही चाहिये। यह भावना स्वार्थ आदि विकारों से रहित निर्मल, स्वच्छ चादर के समान पवित्र हो। ऐसी पवित्र भावना में आबद्ध होने वाले प्राणी को अपना चरमोत्कर्ष साधने में समाज का एक रूपक बनाना भी आवश्यक होता है। धार्मिक दृष्टि से उसका रूपक चतुर्विध संघ है। संघ है तो उसका संचालन भी होना आवश्यक है। अतः उसके अनुरूप संचालन के लिये आचार्य का पद बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है एवं उसका उत्तर-दायित्व भी बड़ा गुरुतर है। यह जिसके कंधों पर रहा होता है, उसका कर्तव्य हो जाता है कि चतुर्विध संघ की प्रार्थना को ध्यान में रखकर उस उत्तरदायित्व को किसी योग्य साधक पर रखे। तदनुसार मैं अपना सर्वाधिकार पूर्ण उत्तरदायित्व प. मुनिश्री नाना-लालजी को सौंपता हूँ। ये मेरे युवाचार्य हैं। चतुर्विध श्रीसंघ का कर्तव्य है कि वह इनके वचनों को 'सद्दयामि, पत्तयामि, रोययामि' के रूप में स्वीकार करे। युवाचार्यजी का भी कर्तव्य है कि वे धर्ममार्ग में सदा जागृत रहते हुए आस्था और विवेकपूर्वक चतु-र्विध संघ को धर्ममार्ग में प्रवृत्त करते रहें।'

इसके अनन्तर पूज्य आचार्य श्रीजी के भावों की विशद् व्याख्या करते हुए पं. र. मुनिश्री सत्येन्द्रमुनिजी म. सा. ने अपने समर्थनात्मक प्रवचन में फरमाया—

'आज इस विशाल चतुर्विध संघ के सामने पूज्य आचार्य-

देव ने अपनी चादर याती अपना उत्तराधिकार और इस संघ का भार जो अपने कंधों पर था, वह अपने से उतारकर पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी म. के आठवें पाट पर युवाचार्य श्री नानालालजी म. के कंधों पर रखा है। मुझे आशा है कि जिस योग्यता से प्रेरित होकर आचार्यश्री ने इनको अपना उत्तराधिकारी घोषित किया है, उसी योग्यता से युवाचार्य श्री नानालालजी म. यह भार वहन कर यह पद ग्रहण करेंगे।

'आचार्य का जो पद है वह बड़ा बोझल है। चतुर्विध संघ का भार आज से पं. मुनिश्री नानालालजी पर आ रहा है। प. मुनिश्री नानालालजी म. बहुत होशियार एवं ज्ञान-दर्शन-चारित्र-संपन्न व साहसी हैं और कुशलतापूर्वक चारित्र-तप से ठोस रूप में चल रहे हैं। आप इस भार को ग्रहण करेंगे। साथ-ही-साथ यह बात कह देना चाहता हूँ कि यह अकेले का नहीं है। सबके सहयोग की आवश्यकता है। अतः चतुर्विध संघ युवाचार्य पं. मुनिश्री नानालालजी म. को सहयोग देने को तैयार रहे और इनका सहयोग भी लेने को तत्पर रहे। यद्यपि आप साहसी हैं फिर भी बिना सहयोग के काम नहीं चल सकता। हमारा आपके साथ सदा सहयोग रहेगा।

'शास्त्र में जम्बूवृक्ष का नाम आता है। पर वह जम्बूवृक्ष अन्य वृक्षों के साथ विशेष शोभायमान होता है। वैसे ही युवाचार्य श्री संत-सतियों एव श्रावक-श्राविकावर्ग से शोभायमान हों। यह मेरी हार्दिक इच्छा और कामना है कि इनके द्वारा सदैव शासन की उन्नति हो।

'विशेष प्रसन्नता की यह बात है कि आचार्यश्री ने अस्वस्थ होते हुए भी आज अपने बीच विराजकर युवाचार्य पद की चादर प्रदान की है। उदयपुर महाराणा सा. भी इस समारोह में उपस्थित हैं, इससे आज के इस समारोह में चार चांद लग गये हैं।

'अन्त में मेरा यही कहना है कि युवाचार्य श्रीजी परस्पर सहयोग से चतुर्विध संघ के भार को अच्छी तरह से वहन करते हुए शासन की शोभा बढ़ायेंगे ऐसी आशा है।'

युवाचार्य श्रीजी का प्रवचन

पूज्य आचार्य श्रीजी म. सा. ने चादर प्रदान कर अपना उत्तरदायित्व युवाचार्य श्री पं. र. मुनिश्री नानालालजी म. सा. को सौंप दिया था। उपस्थित श्रमणवर्ग ने हाथ लगाकर अपना समर्थन व्यक्त किया था एवं पं. र. मुनिश्री सत्येन्द्रमुनिजी म. सा. ने साधु-साध्वी-वृन्द के प्रतिनिधि के रूप में प्रवचन फरमाकर अनुमोदन भी चतुर्विध संघ के समक्ष प्रस्तुत कर दिया था।

इस समर्पण, समर्थन एवं अनुमोदन के प्रति अपने भावों को व्यक्त करते हुए युवाचार्य श्रीजी ने अपने जो विचार व्यक्त किये, इस प्रकार हैं—

मैं इस महती सभा में अपने विचार रखने के लिये खड़ा हुआ हूँ। मेरी इच्छा इस भार को ग्रहण करने की नहीं थी, क्योंकि यह पद बहुत महत्त्वपूर्ण एवं जिम्मेदारी का है। मेरे विचार में इस पद पर किसी योग्य महामुनि को नियुक्त करने की आवश्यकता थी, पर स्थिति की गंभीरता ने इस प्रश्न को भी गंभीर बना दिया और मुझको ही इसके लिये चुना गया।

सादड़ी में निर्मित श्रमणसंघ ने एक आचार्य की अधीनता में ही शिक्षा, दीक्षा, प्रायश्चित्त, चातुर्मास आदि होने का तथा साधु-संस्था में उत्पन्न विकृतियों को दूर करने का जो लक्ष्य स्थापित किया था, उसकी प्रमुख मुनिवरों द्वारा बाद में पुष्टि तो हुई किन्तु तदनुसार वह अमल में नहीं आया और अनुभव हुआ कि उस लक्ष्य की प्रतिकूल दिशा में ही प्रवृत्ति होने लगी। पूज्य श्रीजी ने समय-समय पर समाज को एतद्विषयक सावधानी दिलाई पर उस पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। जिसके परिणामस्वरूप

निर्ग्रन्थ श्रमणसंस्कृति के उपर भी एक बहुत बड़ा खतरा उपस्थित हो गया। पूज्य आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. इसको सहन नहीं कर सके और निर्ग्रन्थ श्रमणसंस्कृति की रक्षा के लिये पूज्य आचार्य श्री के ये प्रयत्न समाज के सामने आ रहे हैं, अन्य भावना से नहीं।

पूज्य आचार्यश्री ने अब भी उपर्युक्त लक्ष्य (उद्देश्य) की पूर्ति के लिये सब द्वार खुले रखे हैं। अतः निर्ग्रन्थ श्रमण-संस्कृति की रक्षार्थ पूज्य आचार्यश्री का संतोषजनक समाधान होकर सादड़ी सम्मेलन में निश्चित किये गये उद्देश्य की पूर्ति सही माने में जिस समय भी होगी, उसी समय यह सुसगठन प्रेमी चतुर्विध सघ पीछे रहने वाला नहीं है, ऐसा मेरा विश्वास है।

मैं अपने आपको विद्यार्थी के रूप में समझता हूँ और अपने अन्दर इस पद की योग्यता अनुभव नहीं कर रहा हूँ। मैंने तो विद्यार्थी जीवन के अन्दर रहते हुए श्रावकपद से ऊपर उठकर गुरुदेव के चरणों में मुनिपद ग्रहण किया। यह मुनिपद भी अपने आप में एक महत्त्वपूर्ण चीज है। यह भार भी कोई कम नहीं है। यदि यह भी ठीक ढग से वहन हो जाये तो मैं समझूं कि मेरा जीवन ठीक ढंग से आगे बढ़ रहा है। मैं तो इसी भावना को लेकर चल रहा था, लेकिन आचार्यश्री की भावना और चतुर्विध संघ की यह इच्छा हुई कि इस महान उत्तरदायित्व का यह भार इस बिद्यार्थी पर डाला जाये। इसमें आचार्यश्री जैसे महापुरुष का क्या आशय रहा है इसको हमें समझना है। मैं इसमें हस्तक्षेप तो नहीं करता क्योंकि यह चादर जो मुझे प्रदान की गई है, वह भारतीय संस्कृति में अपूर्व द्योतक मानी गई है। जहां ससार में अन्य पदवियां दी जाकर उनका पदक आदि द्वारा महत्त्व आंका जाता है, वहां यह चादर एक निराला ही महत्त्व रखती है।

चादर की परम्परा निर्ग्रन्थ श्रमणसंस्कृति को द्योतक

करने के लिये नवीन नहीं हैं, बल्कि यह तो विशिष्ट ज्ञानियों व पूर्वाचार्यों द्वारा चतुर्विध संघ के सामने चिरकाल से चली आ रही है। यद्यपि व्यक्ति अलग-अलग रूप में रहकर विकास कर सकता है, लेकिन जहां सामूहिक रूप बनकर समाज बनता है वहां व्यक्ति अलग न रहकर सामाजिक रूप में प्रवेश करता है तब उसका प्रतीक कोई-न-कोई चिह्न अवश्य होता है। यह जो चादर दी गई है, यह धार्मिक दृष्टि का ही एक चिह्न है।

चादर के विषय में पूज्य आचार्य श्रीजी ने मुझे फरमाया कि यह चादर सुधर्मास्वामी आदि आचार्यों से चली आ रही है। जितने भी आचार्य तथा महापुरुष हुए हैं उन्होंने पाट-परम्परा पर चादर धारण की है। यह चादर श्वेत एवं उज्ज्वल है। निष्कलंक, पवित्र तथा धब्बों से रहित है। इसके समान अपने जीवन में स्वच्छता, निर्मलता, पवित्रता एवं उज्ज्वलता आदि रखने का जो संदेश चादर के रूप में पूज्य आचार्यश्री द्वारा मुझे प्राप्त हुआ है, उसको मैं आप तक पहुंचा रहा हूँ।

आज का यह चतुर्विध संघ जिस रूप में यहां एकत्रित हुआ है उससे मुझे बड़ी प्रसन्नता है। इस प्रकार की जो भी घटनायें घटित होती हैं और उनमें जो धार्मिक-संस्कार गतिमान हैं उन संस्कारों को जीवन में उतारकर उन्नत बनाने की दृष्टि से हम सबको प्रत्येक भारतीय के प्रति आत्मीय सम्बन्ध कायम करता है।

संसार में जितने भी प्राणी हैं, सब एक हैं। आत्मीय दृष्टि से हममें कोई भेद नहीं है। हम सब विश्वकल्याण की कामना लेकर चलें। इसका प्रतीक कोई-न-कोई चाहिए ही। संसार में अनेक तरह के रंग हैं जो अलग-अलग रूप में आते है। राष्ट्रीय झंडे में तीन रंग हैं। ये तीनों रंग तीन भावनाओं को व्यक्त करने वाले है। लेकिन इस चादर का रंग केवल सफेद है जो सात्विक गुण और शांति का प्रतीक है। यह बताता है कि इस भारत के

अन्दर रहने वाले प्रत्येक भाई-भाई में शान्ति, प्रेम एवं सात्विक गुणों का संचार हो, हमारा जीवन ठीक ढंग से चले और चतुर्विध सघ अपना कर्तव्य लेकर निरतर आगे बढ़े।

पूज्य आचार्यश्री के साथ-साथ मुनिवृन्द भी इस चादर को हाथ लगाकर मुझको देने की प्रक्रिया में सम्मिलित हुए हैं। दूसरे मुनियों व साध्वियों की शुभकामनायें प्राप्त हुई हैं। पंजाबी मुनिवर पं. र. श्री सत्येन्द्रमुनिजी, पं. श्री लखपतरायजी व प. मुनिश्री पद्मशयनजी म. सुदूर पंजाबभूमि से यहां पधारे। तपस्वी केशूलालजी म. जो बेले-बेले की तपस्या करते हैं, मुनिश्री सुन्दरलालजी म., तपस्वी श्री ईश्वरचन्दजी म., मुनिश्री इन्द्रचन्दजी म. व लघु मुनिश्री बाबूलालजी म. आदि एव साध्वीवृन्द आदि सब इस भावना को व्यक्त कर रहे हैं कि वे मुझे सहयोग देते हुए निर्ग्रन्थ श्रमण-संस्कृति को आगे बढ़ायेंगे।

आज हम सब पूज्य आचार्यश्री के चरणों में बैठे हैं। पूज्य आचार्य श्रीजी की सेवा का लाभ कई भाइयों ने लिया है और ले रहे हैं। यहां उपस्थित डा. शूरवीरसिंहजी, डा. न्यातीजी, एवं प्राकृतिक चिकित्सक डा. हिम्मतसिंहजी और अनुपस्थित डा. शर्मा सा, डा. माथुर सा., डा. पी. एम. ओ., डा., ऋषि एवं डा. गुप्ता सा. आदि महानुभाव तथा वैद्य बाबूभाई ने अनन्य भाव से आचार्यश्री की सेवा की है। उनकी यह हितैषी भावना कभी भुलाई नहीं जा सकती।

महाराणा सा. भी आज यहां उपस्थित हुए हैं। आपको देखकर मुझे आपके पूर्वज महाराणा प्रताप की स्मृति हो आई है, जिन्होंने धर्म के खातिर अनेक दुखों को सहते हुए अकेले रहना मंजूर किया, घास की रोटियां खाईं परन्तु धर्म से विमुख नहीं हुए। इसी महाराणा प्रताप की पुण्यभूमि उदयपुर में पूज्य आचार्य श्री गणेशलालजी म. जैसे महापुरुष का जन्म हुआ है। यह महा-

पुरुष शारीरिक दृष्टि से यद्यपि कमजोर हैं परन्तु आध्यात्मिक दृष्टि से इनमें इतनी शक्ति है कि वह तरुणों में भी नहीं है।

निष्पक्ष भावना से जो यह चादर ओढ़ाई गई है, इसमें ऊंचा-नीचा धागा नहीं है। सब धागे संगठित हैं, समान हैं, पतले अथवा मोटे नहीं हैं। ठीक इसी तरह इस चादर को ओढ़ाने में सम्मिलित होने वाले चतुर्विध संघ को भी मन, वचन, काया से एकरूपता लाना है। श्रद्धा, प्ररूपणा, स्पर्शना का भी एकरूप होना नितांत आवश्यक है। मैं कहता हूँ कि प्रत्येक भाई चाहे वह जैनी हो या अन्य धर्मावलम्बी हो, किसी भी संप्रदाय का नाम धराता हो, प्रत्येक की आत्मा ईश्वर के रूप में समान है। मैं तो संप्रदाय को ऊपर का कलेवर मात्र ही समझता हूँ।

आज हम पर बड़ा भारी उत्तरदायित्व आया है। मैं चाहता हूँ कि आप और हम सब विद्यार्थी के रूप में होकर मानव-जीवन को उन्नत बनाकर इसी गुरुतर उत्तरदायित्व को निभायें। बीच में जो भी बाधायें आयें उनको सम्यक् रीति से पाटने का एवं विश्व में अशांति के बादल मंडरा रहे हैं उनको अपने-अपने स्थान पर रहकर दूर करने का प्रयत्न करें।

मैं आपसे कहूँगा कि इस चादर का उत्तरदायित्व चतुर्विध संघ पर पूर्णरूपेण आ गया है। चतुर्विध संघ ने अपने ऊपर बड़ी भारी जिम्मेदारी ली है। मैं एक विद्यार्थी हूँ। आपका कर्तव्य है कि आप मेरे सहयोगी बनें। मेरे में कोई त्रुटि दिखाई दे तो आप लोगों का कर्तव्य है कि आप मेरे सहायक बनकर त्रुटि को निकालकर मेरे जीवन को उन्नत बनावें। मैं एक साधारण-सा व्यक्ति हूँ। आचार्यदेव के चरणों में आने से पूर्व मेरा जीवन लक्ष्यविहीन था। इन महापुरुष ने मुझ ग्रामीण छोटे से व्यक्ति को अपने चरणों में स्थान देकर मेरे पर जो उपकार किया है उससे मैं जन्म-जन्मान्तर में भी उऋण नहीं हो सकूंगा। आज ये

महापुरुष शरीर से अस्वस्थ हैं, आप सब यही चाहते हैं कि आचार्य-श्री स्वास्थ्य लाभ कर दीर्घायु बनें।

मेरे अन्तर् में क्या-क्या भावनायें काम कर रही हैं, उनको शब्दों द्वारा व्यक्त करना मेरे लिये कठिन हो रहा है। इनके श्रीचरणों में रहते हुए आज जो मैं संयम पालने में अपने आपको थोड़ा तैयार कर पाया हूँ, यह सब इन्हीं के आशीर्वाद एवं कृपादृष्टि का प्रताप है। परन्तु अभी मुझे आचार्यश्री से बहुत कुछ और प्राप्त करना है। इसलिये मेरे अन्तर्मन में रह-रहकर यही भावना उठती है कि प्रभो! पूज्यश्री का वरदहस्त मेरे मस्तक पर दीर्घकाल तक बना रहे, ताकि इनकी साधना के अनुभव द्वारा मैं अपनी साधना में यत्किंचित कुछ बढोतरी करके अपने आपको धन्य मान सकूं। आप लोगों की भावना का समूह विराट एवं महान् है। यह भावना मुझे भी उन्नत बनाने में सहायक होगी ऐसा मेरा विश्वास है।

आचार्यश्री ने जो भार मुझ पर डाला है वह चतुर्विध संघ के सहयोग से ही प्रगतिशील हो सकता है। मानवजीवन की उच्चता प्राप्त करने में और इस पद के भार को वहन करने में शक्ति प्राप्त हो तथा शान्तिपूर्वक निर्बाधगति से प्रगति होती रहे यही आचार्यश्री से शुभाशीर्वाद चाहता हूँ।

मैं इस पद को अपने आपके लिये महत्त्व नहीं दे रहा हूँ। मैं तो यह समझता हूँ कि पूज्य आचार्यश्री ने इस प्रकार चतुर्विध संघ की सेवा में मुझे रखा है। अतः मैं चतुर्विध संघ का छोटा-सा सेवक हूँ। चतुर्विध संघ मेरे लिये माता-पिता के तुल्य है। चतुर्विध संघ के बीच मुझे रखा है तो बीच में रहने वाले की सुरक्षा की जिम्मेदारी चतुर्विध संघ पर आ जाती है। यहां पर उपस्थित साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका तथा अन्य महानुभावों से भी मैं शुभकामना चाहूँगा कि मेरे से इस विश्व के अन्दर जनकल्याण,

विश्वमैत्री एवं विश्वशांति तथा निर्ग्रन्थ श्रमणसंस्कृति का संरक्षण हो सके, ऐसा शुभ संकल्प आप लोगों का हो।

उदयपुर संघ ने पूज्य आचार्यश्री की सेवा आदि करने का जो अपूर्व कार्य कर दिखाया है, उस कार्य को सारा चतुर्विध संघ कभी भूल नहीं सकता, यह सदा के लिये चिरस्मरणीय रहेगा। उदयपुर संघ का आभार इस रूप में साधुमार्गी समाज पर रहेगा।

भगवान महावीर क्षत्रिय थे। वे राजसिंहासन का परित्याग करके जनपद के बीच आये। जनता के दुःखों की अनुभूति की। दुःखनिवारण के उपायों को उन्होंने घोर साधना करके ढूंढ निकाला। कष्ट और बाधाओं को सहन कर निर्मल ज्योति जगाई। उसी भगवान महावीर की यह शासन-परम्परा चल रही है। इसमें क्षत्रिय वीरों को विशेष भाग लेने की महती आवश्यकता है।

यहां उपस्थित महाराणा साहब भी क्षत्रिय हैं। अतः आपके ऊपर भी उत्तरदायित्व है। महाराणा सा. को भी मैं तो कहूँगा कि आप वास्तविक क्षत्रियधर्म को अपनाकर भगवान महावीर की तरह राज छोड़कर धर्म का उपदेश दें तो जनकल्याण की भावना के साथ साथ भगवान महावीर के शासन की अच्छी सेवा हो सकती है।

आप सेठिया लोग एवं अन्य साधारण प्रजाजन यहां एकत्रित हुए हैं, वे अपनी संपत्ति से चिपककर न रहें। अपनी सेठाई की बात को अलग रखकर संपत्ति पर से मोह दूर करके शासन की सेवा करें अथवा त्याग की भावना से कुछ उदारता करके जनशान्ति के लिये कुछ करके दिखावें। आप भी क्षत्रिय हैं। वीर हैं। आज बनिये हो गये तो क्या हुआ? आप में भी वह क्षत्रिय तेज है। आप अपने निज रूप को पहचानें और जनमानस की भावनाओं को लक्ष्य में रखकर अपने कर्तव्य पर विशेष ध्यान देवें।

इस चादर का अभिप्राय शुभ भावना का प्रतीक भी है।

शुभ भावनायें उज्ज्वल होती हैं और यह चादर भी उज्ज्वल एवं खादी की होकर सादी है। सादगी ही आजादगी का प्रतीक है। पूज्य गुरुदेव फरमाया करते हैं कि— 'सादगी ही आजादगी है और फैशन ही फांसी है।' अतः भारत के अन्दर इस सादगी की तरफ भी विशिष्ट ध्यान देने की आवश्यकता है।

मैं इस चादर पर पूरे विचार नहीं रख पाया हूँ। फिर कभी प्रसंगोपात्त समय मिलने पर इस पर कुछ विशेष प्रकाश डालने का भाव रखता हूँ। इस चादर की तरह जीवन को उज्ज्वल, सादा, पवित्र, निर्मल एवं मनसा, वाचा, कर्मणा एकरूपता में रखकर सहयोगी बनेंगे तो यह संघ चिरकाल तक उन्नत दशा पर पहुंचेगा। इसी भावना को रखते हुए मैं अपना वक्तव्य पूरा करता हूँ।

समारोह में पूज्य आचार्यश्री, समस्त उपस्थित साधु-साध्वी-वृन्द की ओर से पं. र. मुनिश्री सत्येन्द्रमुनिजी म. सा. एवं युवाचार्य श्री नानालालजी म. सा. के प्रवचनों के पश्चात् बीकानेर श्रीसंघ की ओर से श्री जेठमलजी सेठिया तथा अन्य समस्त श्रीसंघों की ओर से श्री कानमलजी नाहटा ने युवाचार्य-चादर-प्रदान का समर्थन किया।

उपस्थित चतुर्विध संघ की ओर से समर्थन हो जाने के अनंतर चादर प्रदान के लिये अपना समर्थन देने एवं समारोह की सफलता के लिये अनेक संत मुनिराजों एवं श्रावकसंघों के प्राप्त संदेशों को उदयपुर श्रीसंघ के मन्त्री श्री तख्तसिंहजी पानगड़िया ने पढ़कर सुनाये।

समारोह करीब १। घंटे में सम्पन्न हुआ। उक्त अवसर पर करीब नौ बजे तक मेघमंडल में सूर्य भी छिपा रहा। सिर्फ उस समय एक क्षण के लिये पूर्ण प्रभामंडल के साथ प्रगट हुआ जब पूज्य आचार्य श्रीजी ने युवाचार्य श्रीजी को चादर ओढ़ाई। इस प्रकार इस चादर प्रदान का समर्थन जनमेदनी द्वारा तो किया ही गया था किन्तु चादर ओढ़ाते समय प्रगट सूर्य-प्रकाश से प्रकृति का भी पूर्ण समर्थन प्राप्त हुआ कि ये संत मुनिराज अपने ज्ञान सूर्य के प्रकाश से समस्त विश्व को प्रकाशित करेंगे।

अन्तिम चरण

जो लेखनी महापुरुष पूज्य आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. के उदय, विकास का धित्रण करने में जितनी उत्साही थी, उतनी ही उनके जीवन का अन्तिम चरण चित्रित करने में अनेक भावनाओं से ग्रस्त होकर कुण्ठित हो गई है और घनीभूत वेदना से इस अवसर की संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत कर विश्राम के लिये आतुर है।

इस संक्षिप्त रूपरेखा को प्रस्तुत करने के अवसर पर भी उनकी महानता के आदर्शों का चित्रण करेगी। क्योंकि—छूकर जिनके चरण अमर हो गया मरण है। वे जन-जन की श्रद्धा के आस्पद हैं। आज भी उनकी साधना सर्वभूतहितेरतः की कामना वाले प्रत्येक विवेकशील को श्रद्धावनत कर देती है। उनका जाज्वल्यमान जीवन आकाशदीप की तरह सद्विवेक की प्रेरणा देकर सदैव जीवन के उच्चादर्शों को प्राप्त करने के लिये प्रेरित कर रहा है।

वे श्रमण थे। उनका श्रम, शम, सम आध्यात्मिक शक्ति के विकास के लिये था। उनका श्रामण्य जीवनशुद्धि के लिये, आत्म-साधना के लिये सर्वोच्च पुरुषार्थ था और 'गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत्' की उक्ति को सामने रखते हुए अपने पौरुष को व्यक्त करने का संकेत करता था।

अतः ऐसे महापुरुष के अन्तिमचरण को चित्रित करने के लिये किंचित प्रयास कर रही है।

निर्भयता का अन्तिम डग

पूज्य आचार्य श्रीजी म. सा. संघ-व्यवस्था के दायित्व से उप-रत हो चुके थे। अब गुरु शिष्य, शास्य-शासक सेव्य-सेवक, पूज्य-पूजक आदि उपाधियों से परे होकर स्वयं में ही केन्द्रित हो चुके थे। अब आत्मा ही ध्याता, ध्येय, ध्यान बन चुकी थी।

शरीर की उपाधि अवश्य साथ थी किन्तु अब उससे इतना ही सम्बन्ध रह गया था कि आध्यात्मिक चिन्तन-मनन में जितनी दूर तक यह सहयोगी बना रहे तो ठीक, अन्यथा यह भी साथ छोड़ना चाहे तो छोड़ सकता है। यह केंचुली आज नहीं तो कल अपने आप ही विलग हो जायेगी, अतः इससे भी प्रीति कहां तक निभ सकेगी।

ऐसे ही विचारों में रमण करते हुए पूज्य आचार्य श्रीजी म. सा. कैंसर जैसी महाव्याधिग्रस्त जर्जरित शरीर की उपेक्षा कर आत्म-चिन्तन में लीन रहने लगे।

आचार्य श्रीजी का शारीरिक स्वास्थ्य दिनोंदिन गंभीर रूप धारण कर रहा था। डाक्टर शूरवीरसिंहजी एवं उनके सहयोगी अन्य डाक्टर श्री न्याति, श्री माथुर बड़ी ही लगन एवं भावना से उपचार करते आ रहे थे। सबकी एक ही भावना थी इन महान् आत्मार्थी संत को सेवा परिचर्या कर स्वस्थ बनायें। जिस तरह से चतुर्विध संघ आचार्य श्रीजी के दीर्घायु होने की कामना करता था, उसी प्रकार चिकित्सकगण भी उनके उपचार में लीन हो स्वास्थ्य के लिये प्रयत्न-शील थे। उनकी बुद्धि, विवेक, कौशल इसी एक प्रयत्न के लिये केन्द्रित थे। लेकिन मानवीय प्रयत्नों की भी एक सीमा होती है। वे क्रम-क्रम से असफल होने लगे और आचार्य श्रीजी की शारीरिक स्थिति दिनों-दिन निर्बल होने लगी।

दीपशिखा की लौ की तरह यह जीवन-ज्योति कब विलीन हो जाये, इसके बारे में कोई सोच भी नहीं सकता था। आशंकाओं के बीच मनों में शंका बनी रहती थी। लेकिन आचार्य श्रीजी म. सा. इस गिरती हुई शारीरिक स्थिति में सचेत थे। वे आत्मजयी इस स्थिति में भी प्रफुल्ल थे। उन्होंने अनेक बार युवाचार्यश्री, समीपस्थ संतमंडल एवं अनेक श्रावकों के समक्ष संथारा ग्रहण करने की इच्छा प्रगट की। चिकित्सकों का अभिमत था कि आचार्य श्रीजी के स्वास्थ्य के बारे में कुछ भी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है। अतः

चतुर्विध संघ आचार्य श्रीजी से बराबर निवेदन करता रहा कि गुरुदेव आप संथारे के लिये शीघ्रता न करें, अवसर आने पर आपकी सेवा में स्वयं अर्ज कर देंगे। लेकिन वह दिन भी आया जब आचार्य श्रीजी म. सा. ने मृत्यु-महोत्सव मनाने की घोषणा कर दी।

संथारा की संक्षिप्त झांकी

पूज्य आचार्य श्रीजी के रोगाक्रान्त शरीर के विलय होने की संभावना-सी चल रही थी। संथारा अंगीकार करने के छह सात दिन पूर्व अन्नाहार का त्याग कर ही दिया था, सिर्फ प्रवाही पदार्थ लेते थे। लेकिन उन पदार्थों के प्रति भी विरक्ति-सी थी।

अपनी शारीरिक स्थिति के बारे में आचार्य श्रीजी डाक्टर शूरवीरसिंहजी से पूछते रहते थे कि डाक्टर सा. मुझे स्थिति से परिचित रखना, स्थिति बतलाने में संकोच मत करना। डा सा. प्रत्युत्तर में निवेदन करते थे कि जो भी स्थिति होगी, बिना हिचक के बतला दूंगा। इसमें मोह को आड़े नहीं आने दूंगा। आचार्य श्रीजी म. सा. सदैव आत्मध्यान में लीन रहते थे। औषधि आदि से भी विरक्ति हो चुकी थी किन्तु चतुर्विध संघ के संतोष के लिये कभी-कभी थोड़ी बहुत औषधि ले लेते थे।

संथारा सीजने के तीन दिन पहले की बात है। डा. रामावतारजी ने आचार्य श्रीजी की सेवा में उपस्थित होकर औषधि लेने की अर्ज की। आचार्य श्रीजी म. ने फरमाया— अब मुझे परमात्मनाम स्मरण की दवा लेनी है। वही मेरे इस संसार-रोग के उन्मूलन की कारगर औषधि है। तब डा. रामवतारजी ने युवाचार्य श्रीजी को एकांत में ले जाकर कहा कि इन महापुरुष के बारे में अपन सोचने की सीमा समाप्त है। इनका ध्यान प्रभु में लग चुका है। शरीर की तरफ तो इनका लक्ष्य रहा ही नहीं है। डा. शूरवीरसिंहजी आदि अन्य चिकित्सकों की भी यही धारणा बन चुकी थी।

इन्हीं दिनों की बात है। एक दिन युवाचार्य श्रीजी 'अपूर्व

अवसर क्यारे आवशे' आदि सुना रहे थे। आचार्य श्रीजी ध्यानमग्न हो यह सब सुन रहे थे कि सुनाते-सुनाते एक कड़ी दुबारा बोल गये। तत्काल इस भूल को सुधारते हुए फरमाया कि यह कड़ी तो बोल चुके हो, आगे सुनाओ। इस ध्यानमग्न मुद्रा में जब भी कोई दर्शनार्थी आपश्री के मुखमण्डल को निहारता तो मुख के चारों ओर एक अलौकिक प्रभा-मंडल के दर्शन होते थे। उस समय किसी को यह कहने का साहस नहीं होता था कि यह रोगाक्रान्त शरीर है। सभी ओज, तेज और सौम्य के दर्शन कर अपूर्व संतोष का अनुभव करते थे।

दि. ६-१-६३ के सायंकाल का समय था। सायंकालीन प्रतिक्रमण आदि करके आचार्य श्रीजी म. दूसरे दिन के प्रातःकाल तक का सागारी संथारा करके पौढ़ गये। रात्रि में युवाचार्य श्रीजी एवं अन्य सन्त आपके निकट ही थे और जब भी उन्होंने आपको देखा तो सतत आत्मध्यान में लवलीन पाया। रोगजन्य वेदना की अंश मात्र भी अनुभूति लक्षित नहीं हुई।

दि. ९-१-६३ को पौष शुक्ला पूर्णिमा का दिन था। ऊपर नील गगन में चन्द्र अपनी अमीवर्षा से अमृत उड़ेलते हुए प्रकृति के कण-कण को प्रकाशित कर रहा था और इधर आचार्यदेव ज्ञानामृत से आत्मा को आप्लावित कर उसके अनन्त गुणों को विकसित कर रहे थे। दोनों अपने-अपने ढग से कल्याण के कार्य में क्रियाशील थे।

दि. १०-१-६३ माघ कृष्णा १ का सूर्य उदित हुआ। सूर्य की स्वर्ण किरणें प्रकृति में नया उल्लास भरते हुए आगे बढ़ रही थीं। आचार्यदेव भी प्रातःकालीन प्रतिक्रमण आदि करने के उपरान्त पद्मासन से विराज गये। दर्शनार्थियों का आवागमन समाप्त होने के उपरान्त दैनंदिनी कार्यक्रम से निवृत्त हुए। अनन्तर थोड़ा-सा जल पीकर पुनः आत्मध्यान में ध्यानस्थ हो गये।

ध्यान-समाप्ति के उपरान्त योगिराज ने आंखें खोलीं। उनमें एक अलौकिक तेज झलक रहा था। युवाचार्य श्रीजी को निकट बुला-

कर फरमाया कि अब मुझे अपना कार्य करना उपयुक्त जान पड़ता है। अतः इस विषय में मैं तो सावधान हूँ ही, स्वयं भी सावधानी रखना। डाक्टर सा. आ जायें तो उनसे भी कुछ बात करनी है।

इतने में डाक्टर शूरवीरसिंहजी भी आ गये। पहले की तरह उन्होंने शारीरिक परीक्षा की और कमरे से बाहर चले आये। अतः पुनः संकेत कर डा. सा. को बुलाया और उनसे पूछा कि अब मैं सथारा लेना चाहता हूँ, इसमें आप क्या कहते हैं ? आप अपनी भौतिक दृष्टि से जो जानते हों, कहिये।

शारीरिक स्थिति बहुत ही चिन्तनीय हो चुकी थी। रोग अपनी सीमा को पार कर चुका था। रक्तचाप और नाड़ी की गति में काफी अन्तर आ गया था। अतः उन्होंने प्रत्युत्तर में निवेदन किया कि हमारे उपचार का सिद्धान्त और विज्ञान आप जैसे महापुरुषों के लिये नहीं है। फिर भी सावधान रहने की आवश्यकता है।

आचार्य श्रीजी ने डाक्टर सा. के संकेत को समझ लिया और युवाचार्य श्रीजी की ओर संकेत करते हुए फरमाया कि मैं तो अपने में सावधान हूँ ही और तुम भी ध्यान रखना। अनन्तर संथारा अंगीकार करने के लिये 'इच्छाकारेणं आदि की पाटियां, छह जीवनी, दशवैकालिक सूत्र का चतुर्थ अध्ययन आदि सुनाने और सुनाते समय किसी दूसरी ओर ध्यान न जाने देने का सकेत किया।

इच्छाकारेणं आदि की पाटी सुनने के बाद आचार्य श्रीजी म. ने पुनः फरमाया कि तीन दिन पूर्व मैंने स्थविर पं. मुनिश्री सूरजमलजी म. सा. के पास सब आलोचना कर ली है और अभी पुनः आलोचना कर छह जीवनी सुन ली है। अब मुझे डाक्टर, वैद्य या अन्य कोई गृहस्थ स्पर्श न करे। मैं अपने जीवन को आगे बढ़ाना चाहता हूँ और प्रातः १-२० बजे तिविहार संथारा ग्रहण कर ध्यानस्थ हो गये। एकान्त स्थान था। सिर्फ युवाचार्यश्री व स्थविरपदविभूषित तपस्वी पं. मुनिश्री सूरजमलजी म. सा. देख-रेख के लिये वहां उपस्थित

थे। कुछ समय बाद नेत्र खोले तो उनमें अलौकिक तेज चमक रहा था, मुखमंडल पर शांति का साम्राज्य अठखेलियां कर रहा था। श्वासोच्छ्वास गति कुछ तीव्र अवश्य हो गई थी, लेकिन चेतना में किसी प्रकार का व्यवधान नहीं था।

माघ कृष्णा १, दि. १०-१-६३ का दिन इसी प्रकार आत्म-रमण करते हुए आगम पाठों को सुनते हुए पूर्ण शांति से व्यतीत हुआ। दर्शनार्थियों का आवागमन भी सीमित कर दिया गया था और ऐसी व्यवस्था कर दी गई कि दर्शन करने वालों के द्वारा किसी प्रकार की आवाज आदि न हो।

माघ कृष्णा २, दि. ११-१-६३ ज्योतिपुंज के विलय का दिन था। दि. १०-१-६३ को सागारी संथारा लेते समय आचार्य श्रीजी जिस आसन से विराजे थे, उसी प्रकार से ध्यानस्थ होकर युवाचार्य श्रीजी से प्रातः कुछ नित्यनियम के पाठ सुन रहे थे कि उस समय वे एक कड़ी कहना चूक गये तो उसको पुनः सुधारने का संकेत किया तथा प्रतिक्रमण के समय स्थविर पं. र. मुनिश्री सूरजमलजी म. सा. ने मांगलिक कुछ धीरे सुनाई। लेकिन आचार्य श्रीजी को सुनाई न पड़ने पर फरमाया कि कुछ उच्चस्वर से मांगलिक सुनाओ। अतः युवाचार्य श्रीजी ने पुनः मांगलिक सुनाई।

समय के साथ शारीरिक परमाणुओं में निर्बलता आती जा रही थी। स्थिति को समझकर आचार्य श्रीजी म. सा. ने दोपहर को दो बजे चौविहार संथारा का प्रत्याख्यान कर लिया। करीब २ बजे महासती श्री सोहनकंवरजी म. आचार्य श्रीजी से खमत-खामणा करने पधारे। श्री कानमुनिजी ने कहा कि महासती श्री आपसे खमत-खामणा करते हैं तो आचार्य श्रीजी ने आंख खोलीं और गरदन हिलाकर खमत-खामणा का जवाब दिया।

करीब ३ बजे का समय था। शरीर में और भी निर्बलता के लक्षण दिखने लगे। शारीरिक स्थिति देखने के लिए युवाचार्य श्रीजी

ने नाड़ी देखना चाही तो आपने मना कर दिया और ३-२० होते-होते तो पूर्ण चेतनावस्था में मस्तिष्क और नेत्र आदि की तरफ से निराकार आत्मा ने भौतिक देह का परित्याग कर दिया। इस समय मुखमंडल पर एक दैवी ओज झलक रहा था और स्मित हास्य से परिपूर्ण था।

उस समय निकटस्थ युवाचार्य श्रीजी आदि अन्य सन्तों ने जो अद्भुत दृश्य देखा, वह अनुभूतिगम्य है। उसका शाब्दिक वर्णन करने की सामर्थ्य किसी में भी नहीं है।

साधना की सफलता के साथ पूज्य आचार्य श्रीजी की जागरुक आत्मा ने ३-२० बजे इस भौतिक देह का त्याग कर दिया। हाँ रोगाक्रान्त देह यथावत् पद्मासन अवस्था में ध्यानस्थ इन चक्षुओं के दृष्टिगत हो रही थी।

अंतिम यात्रा

पूज्य आचार्य श्रीजी के संथारा अंगीकार करने की सूचना यथासंभव सभी श्रीसंघों को मिल चुकी थी। अतः विभिन्न श्रीसंघ के सदस्यों, गणमान्य सज्जनों आदि का उदयपुर आने का तांता लग गया। सभी में एक ही उत्सुकता थी कि अपने आराध्य के चरणों में नतमस्तक हो दर्शन कर लें। दि. १० के सायंकाल और दि. ११ के प्रातःकाल होते-होते तो हजारों भाई बहिन उदयपुर में आ चुके थे।

आचार्य श्रीजी की शारीरिक स्थिति को देखते हुए कब क्या हो जाये, निश्चयात्मक रूप से कहना शक्य नहीं था। अतः पंचायती नोहरे के प्रांगण में हजारों नर नारी शांति से खड़े हुए थे। इतने में आचार्य श्रीजी के विराजने के कमरे में हलचल नजर आई। साधु मुनिराजों का कमरे में पहुंचना और नव प्रतिष्ठित आचार्यश्री को चादर ओढ़ाना, वंदना करना देखा और दूसरे ही क्षण हजारों नेत्रों ने मूक श्रद्धांजलि के रूप में अश्रुबर्षा प्रारम्भ कर दी। मन का भार आंखों की धार बह निकला। आंखों की बरसा ने वातावरण में विषाद बिखेर दिया था।

पूज्य आचार्य श्रीजी के संथारा सीझने का समाचार उदयपुर

नगर के इस छोर से उस छोर तक प्रसरित हो गया। जनता जनार्दन ने अपने ही क्षेत्र में उभरे, यहां ही विकसित हुए और यहां ही विलय को प्राप्त हुए मानव से महामानव बनने वाले आचार्य श्रीजी के प्रति संमान व्यक्त करने के लिये अपना कारोबार बद कर दिया। विभिन्न गली-कूचों और चौराहों से आबालवृद्ध जन यथाशीघ्र पंचायती नोहरे पहुंचने के लिये निकल पड़े। मुरझाये मुख और श्लथ-गति से बढ़ता हुआ जनसमूह अपना संमान व्यक्त करने के लिये उत्सुक था। संध्याकाल होते-होते तो सहस्रों का जमघट श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिये एकत्रित हो चुका था।

चतुर्विध सघ के गगनांगण में संयम, तप, त्याग की किरणों से प्रकाशमान पूज्य आचार्यदेव के अवसान से सहस्ररश्मि सूर्य भी अपनी किरणें समेटते हुए अस्ताचल की ओर बढ़ चला। इस विषादवेला में अपनी भावना को व्यक्त करने के लिये यथाशीघ्र अपने आपको समेट लेना ही उसे उचित प्रतीत हुआ। उधर दिवाकर ने भी अपनी लघु रेखा के द्वारा श्रद्धेय के प्रति अपना श्रद्धापात्र प्रस्तुत कर दिया।

उदयपुर श्रीसघ के तारों तथा आकाशवाणी के प्रसारण से आचार्य श्रीजी के देहविलय का समाचार समस्त देश में फैल गया। देश के विभिन्न स्थानों के श्रीसंघों ने सामूहिक रूप में एकत्रित होकर श्रद्धांजलि अर्पित कीं और अनेक व्यक्ति समाचार सुनते ही अन्तिम यात्रा में सम्मिलित होने के लिये उदयपुर की ओर चल पड़े।

अन्तिम यात्रा दि. १२-१-६३ को प्रातः ११ बजे प्रारम्भ होने वाली थी और प्रातः होते-होते तो हजारों जन उदयपुर में आ चुके थे। उदयपुर नगर के व्यापार व्यवसाय केन्द्र तो कल दोपहर से ही बंद थे और भौतिकदेह विसर्जन के अनन्तर श्रद्धांजलि अर्पित हो जाने तक बद रखने का निश्चय हो चुका था।

दि. १२-१-६३ माघ कृष्णा ३ के प्रातः ११ बजे पवित्र अग्नि में देहविसर्जन के लिये यात्रा जुलूस पंचायती नोहरे से प्रारम्भ हुआ।

नगर के राजमार्गों के दोनों ओर पंक्तिबद्ध जनसमूह खड़ा था। मकानों की छतें और खिड़कियां बच्चों और महिलाओं से अटी पड़ी थीं और करीब ५० हजार का जनसमूह आचार्यश्री के पार्थिव देह को चांदी के विमान रखे हुए जुलूस के रूप में, आचार्यश्री के जयघोष, गुणगान करते हुए मंथरगति से साथ-साथ चल रहा था। करीब २॥ मील लम्बा यह जुलूस नगर के विभिन्न राजमार्गों से होता हुआ अग्नि-सस्कार के लिये निश्चित स्थान गंगोद्भव में २ बजे के करीब पहुंचा। राज्याधिकारियों की व्यवस्था और अनुशासित जनसमूह के फलस्वरूप किसी प्रकार की अव्यवस्था नहीं हो सकी थी।

चंदन, काष्ठ, नरियल तथा अन्य सुगन्धित द्रव्यों से निर्मित रथी पर आचार्य श्रीजी के पार्थिव शरीर को अधिष्ठित कर ठीक ३ बजे अग्नि प्रज्ज्वलित की गई और देखते-देखते पार्थिव शरीर अपने मूल तत्त्वों में समाहित हो गया और अन्तिम श्रद्धांजलि के रूप में नतमस्तक हो जनता उदास मुख लिये हुए अपने-अपने स्थान पर आने के लिये लौट पड़ी।

श्रद्धांजलि समर्पण

पूज्य आचार्य श्रीजी म. सा. का पार्थिव देह भी आंखों से ओझल हो गया था। जिस उद्देश्य के लिये जीवन का श्रीगणेश किया, उसमें सफलता प्राप्त कर महाप्रयाण की ओर चल पड़े थे। अब तो उनके गुणों की सौरभ व्याप्त थी। उनकी अनुभूति पूर्ववत विद्यमान थी। उन गुणों का गान करने, पुनरावृत्ति करने के लिये दि. १३-१-६३ को प्रातः देश के कोने-कोने से आगत श्रावक-श्राविका समुदाय ने नव प्रतिष्ठित आचार्य श्री नानालालजी म. सा. की सेवा में प्रार्थना की कि आपश्री संतमंडल सहित पंचायती नोहरे में पधार कर स्व. आचार्य श्रीजी के बारे में अपने हार्दिक उद्गार प्रगट करने की कृपा करें।

सामूहिक प्रार्थना पर लक्ष्य देकर नवप्रतिष्ठित आचार्यश्री संत सतीवर्ग सहित पधारे और अपनी-अपनी श्रद्धांजलि समर्पित करते हुए क्रमशः मुनिश्री सत्येन्द्रमुनिजी म. सा. आदि संतों एवं सतियांजी

म. सा. तथा नव-आचार्य श्रीजी म. सा. ने जो भाव व्यक्त किये, वे इस प्रकार हैं—

पं. र. मुनिश्री सत्येन्द्र मुनिजी म.

आज मैं आप लोगों के सामने क्या कहूँ ? करीब ८-६ माह पूर्व जिस समय हम उदयपुर आये उस समय कुछ और ही भावना लेकर आये थे, पर इस समय कुछ और ही भावना चल रही है। हमें भरोसा था कि सब शुभजनक ही होगा, लेकिन आज हम जो कुछ बोल रहे हैं, एक दुःखपूर्ण स्थिति में बोल रहे हैं।

हमारे ऊपर आचार्य श्रीजी का हाथ था, वह उठ गया है। इससे चिन्ता होना स्वाभाविक है। लेकिन चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि आचार्य श्रीजी म. ने भावी शासन व्यवस्था के लिये सुन्दर व्यवस्था कर दी है। जिस समय आचार्य श्रीजी म. सा. ने भावी शासन-व्यवस्था की थी, मैं श्रीजी के चरणों में उपस्थित था। मैंने उस समय कहा था कि शासन का भार बोझल होता है। उसको वहन करने की हम किसी में क्षमता नहीं होती। आचार्य श्री नानालालजी म. जिन पर शासन का भार रखा है, वे सक्षम हैं तथा चारित्र-सम्पन्न, शांत, दान्त, गंभीर हैं। उनको सभी संत-सतियों एवं श्रावक-श्राविकाओं की तरफ से पूरा सहयोग मिलता रहे, ताकि वे शासन को अधिक-से-अधिक दिपा सकें।

भगवान महावीर की श्रमणसंस्कृति सदियों से चली आ रही है। उसे अक्षुण्ण एवं पवित्र बनाये रखने के लिये आचार्यश्री साधना-पूर्वक सचाई पर चलते रहे हैं। उनके मार्ग में अनेक बाधायें आईं पर वे शांति से सहन करते हुए मानापमान की परवाह न कर उत्तरोत्तर आगे बढ़ते रहे। उसी पथ पर हमें भी आगे बढ़ना है। हमारे सामने कितनी भी चट्टानें व पहाड़ आवें, उनका डटकर सामना करना है। हमें विरोधियों से नहीं घबराना है। आचार्य श्रीजी ने इसके लिये जो मार्ग रखा है, उस पर दृढ़ता के साथ आगे बढ़ते हुए रास्ता तय करना है।

मैं पंजाब सम्प्रदाय का था, परन्तु मुझे स्वर्गीय आचार्य श्री गणेशलालजी म. की गुणगरिमा ने आकर्षित कर लिया। मैं, मेरा व मेरे साथियों का सौभाग्य समझता हूँ कि हमें छह महिने तक आचार्य श्रीजी का पूर्ण सहयोग मिला, पर दुर्भाग्य है कि इन आखिरी कुछ दिनों में हम अलग रह गये।

आचार्य श्रीजी ने शांत क्रान्तिकारी कदम उठाकर भगवान महावीर की श्रमणसंस्कृति को आगे बढ़ाने के लिये जो आदेश, उपदेश आदि दिये हैं, उन पर हमें चलना है। संकटों एवं बाधाओं का सामना करना है। कोई प्रचार करे, भले बुरे शब्द कहे तो हमें उसके उत्तर-प्रत्युत्तर में नहीं पड़ना है। अगर हम उत्तर प्रत्युत्तर के झगड़े में पड़ गये तो हमारा मार्ग रुक जायेगा। हां, असलियत को तो समाज के सामने रखना ही होगा।

मैं सन्त-सतियों को भी कहूँगा कि स्वर्गीय आचार्य श्रीजी म. के आदेशों का पालन करने में वर्तमान आचार्य श्री नानालालजी को पूर्ण सहयोग देवें और उनके हाथों को मजबूत बनावें। स्वर्गीय आचार्य श्री के गुणों का वर्णन करना मेरी शक्ति के बाहर है। जो शास्त्र मैंने नहीं पढ़ा, जिसकी मेरे में कमी थी, उसको आचार्यश्री ने रुग्णावस्था में भी मुझको पढ़ाया। मेरे पर आचार्य श्रीजी का यह महान उपकार है, इसे मैं भूल नहीं सकता। उन महान आत्मा के प्रति मस्तक श्रद्धा से सदा नत रहा है और है। उनकी मधुर स्मृति आज भी ताजा है। उनके प्रति श्रद्धा के यही पुष्प मैं चढ़ाता हूँ। हम गुडली में थे। हमको खबर मिली कि आचार्य श्रीजी की तबियत बहुत अस्वस्थ है। खबर मिलते ही हमने उदयपुर की तरफ विहार कर दिया पर दुर्भाग्य कि हम आचार्यश्री के स्वर्गवास होने के बाद पहुंचे।

हम वर्तमान आचार्य श्री नानालालजी म. को पूर्ण विश्वास दिलाते हैं कि हमारे से जैसा भी सहयोग लेना चाहें, हम देने के लिये तैयार हैं।

भगवान महावीर से हम प्रार्थना करते हैं कि इन वर्तमान

आचार्यश्री को इतनी शक्ति प्राप्त हो कि ये उत्तरोत्तर शासनोन्नति में आगे बढ़ते ही चले जायें।

पं. र. मुनिश्री जनकमुनिजी म. (गोंडल संप्रदाय)

निर्मल, निर्ग्रन्थ श्रमणसंस्कृति के सुरक्षक आचार्य श्रीजी की निर्मल सुयशधारा दिग्दिगन्त तक फैली हुई है। हमें अनेक वार गुण-गाथाओं के श्रवण का सौभाग्य प्राप्त हुआ। फलस्वरूप दर्शन की आकांक्षा ने हमें यहां तक आने की प्रेरणा दी। अमलनेर से ४२५ मील भूमि कुल ३८ दिनों में काटकर श्रीचरणों में उपस्थित हुए। थककर चूर-चूर हो चुके थे, पैर उठाना भी भारी हो रहा था। किन्तु आचार्य श्रीजी के अनुग्रह ने हमारी थकान को मुस्कान बना दिया। हमने सुनी बातों का साक्षात अनुभव किया।

अहा ! क्या प्रेमपूर्ण वात्सल्य भाव एव कड़क आचार-निष्ठा, सहनशीलता की तो भव्य मूर्ति ही जान पड़े। २००० बिच्छू डंक मारे, जैसी घोर वेदना में उफ तक का शब्द नहीं। तेजोमय मूर्ति के दर्शन कर हम धन्य हुए।

आज उनका पार्थिव शरीर हमारे बीच नहीं, किन्तु ज्ञानमय शरीर, चर्यामय भाव, निर्ग्रन्थ संस्कृति का भव्य आदर्श हमारे सन्मुख है। हमें इस निर्ग्रन्थ श्रमणसंस्कृति से पूर्ण प्रेम है। जब तक यह चोला है, मैं हृदय से इसे जीवन में उतारता हुआ प्रसार करना चाहता हूँ एव मैं यहां आये हुए प्रत्येक वधु यानि चतुर्विध संघ से निवेदन करूंगा कि वे सच्चे हृदय से पालन करें। कोई भी व्यक्ति बिना निर्णय किये उठे नहीं।

नियमों के पालने का सुन्दरतम तरीका यह है कि आचार्य श्री की प्रत्येक आज्ञाओं को शिरोधार्य करें। निर्ग्रन्थ संस्कृति तभी सुरक्षित रह सकती है। स्वर्गीय आचार्य श्रीजी ने तो विरोधों की परवाह न कर निर्ग्रन्थ संस्कृति को कायम रखने में बहुत बड़ा योग दिया है। आज उसी का उत्तरदायित्व इन नव्य भव्य आचार्यश्री नानालालजी म.

पर है। उनको पूर्ण प्रेमपूर्वक सहयोग देना प्रत्येक का कर्तव्य है। हम भी आपकी प्रत्येक आज्ञाओं को शिरोधार्य करते हुए अपने जीवन में यथार्थ रूप से उतारेंगे और आपके बताये हुए मार्ग का प्रचार-प्रसार करेंगे, यही हमारी आचार्यश्री के प्रति श्रद्धा की पुष्पांजलि है।

स्थविरपदविभूषित पं. मुनिश्री सूरजमलजी म. सा.

आप लोग बाहर से, बहुत दूर दूर से यहां एकत्रित हुए हैं। इसलिये नहीं कि यहां कोई नाटक, सिनेमा है। किन्तु इसलिये कि यहां पर जीवन है। अतः जीवन का उत्कर्ष करने के लिये ही आप यहां पर आये हैं। आचार्य श्रीजी की साधना के प्रति आपकी श्रद्धा-भक्ति है।

आचार्य श्री गणेशलाल जी म. सा. ने उदयपुर नगर में जन्म लेकर मेवाड़ भूमि के शिखर को ऊंचा उठाया है। जैसे संसारपक्ष में राणा प्रताप ने मेवाड़ का गौरव बढ़ाया, वैसे ही आचार्यश्री ने आध्यात्मिक क्षेत्र में मेवाड़ का ही नहीं बल्कि सारे देश का गौरव बढ़ाया है। आचार्यश्री ने अपने जीवनकाल में भगवान महावीर के शासन में रह-कर शासन को और चमकाया और पूर्ण आत्मदशा में रहकर अपना कल्याण किया है। आज वे आचार्यश्री हमारे सामने नहीं हैं। हमारे से उनका भौतिक शरीर ओझल हो गया है। ससार का यह नियम है कि जिन्होंने संसार में जन्म लिया है, वे कोई आज, कोई कल, कोई घड़ी पलक में तो कोई कभी इस भौतिक शरीर को छोड़ेंगे। काल सबके सिर पर घूम रहा है।

अतः मनुष्य को धर्म मिला है तो खा-पीकर धींगामस्ती में गंवाने के लिये नहीं, बल्कि धर्म कमाने के लिये मिला है। अतः आचार्यश्री ने धर्ममय जीवन बिताने के लिये जो आदेश आदि दिये हैं, उनको सच्चे हृदय से अमल में लायें। आचार्यश्री ने असह्य घोर वेदना के समय जिस प्रकार अपने जीवन को ऊपर उठाया, उस आदर्श को सामने रखकर हम भी अपने जीवन को साधनामय बनायें, ताकि हमारा जीवन भी एक दिन सफल हो।

आचार्य श्रीजी के तप-तेज से आकर्षित होकर गोंडल संप्रदाय के जनकमुनिजी और जगदीशमुनिजी ७०० मील का लम्बा विहार कर आचार्यश्री के चरणों में पधारे हैं। आचार्य श्रीजी का मैं क्या गुण-गान करूं। हमारे जैनाचार्य ने भगवान महावीर के शासन को दिपाया है। मेवाड़भूमि में जन्म लिया है, वीर चारित्रचूड़ामणि हैं।

इन्द्र मुकुट समान दर्शन से चित्त रहे प्रसन्न वर्ते मंगलाचार।

आचार्य श्रीजी का जितना भी कीर्तन किया जाये पूरा नहीं होता।

वर्तमान आचार्य श्री नानालालजी म. भी पूर्ण गुणों के भंडार हैं। स्वर्गीय आचार्यश्री ने अपना वरदहस्त इन पर रखा है। अतः चतुर्विध संघ इनकी आज्ञा का बराबर पालन करे। धर्म क्या है, बड़ों की आज्ञा पालन करना ही धर्म है। अतः वर्तमान आचार्यश्री की आज्ञा का पालन करें, इसी में हमारा कल्याण है।

इसी प्रकार विदुषी महासती श्री नानूकंवरजी म., विदुषी महासती श्री मनोहरकंवरजी म., विदुषी महासती श्री कौशल्याजी म. ने भी सतीवृन्द की ओर से स्वर्गीय आचार्य श्रीजी के गुणगान करते हुए फरमाया कि स्वर्गस्थ आचार्य श्रीजी म. ने श्रमणसंस्कृति की रक्षा के लिये जो आदेश आदि दिये, उनका हम पूर्णरूपेण पालन करेंगी और वर्तमान आचार्य श्रीजी म. हमें श्रमणसंस्कृति के उत्थान हेतु जो भी आज्ञा प्रदान करेंगे, उसको सहर्ष शिरोधार्य करती हुई पालन करने कराने में तत्पर हैं और रहेंगी।

अनन्तर आचार्य श्री नानालालजी म. सा. ने स्वर्गीय आचार्य श्रीजी को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए अपने उद्‌गार व्यक्त किये कि—

बधुओ! मैं आज विशेष रूप से कुछ कहूँ, ऐसी मेरी स्थिति नहीं है। महामुनिश्री सत्येन्द्रजी म. श्री जनकमुनिजी म. व स्थविर-पदविभूषित पं. श्री सूरजमलजी म. ने तथा तीन महासतियों ने और बीच-बीच में श्री कानमुनिजी ने स्वर्गीय आचार्यश्री के सम्बन्ध में अपने हृदय के उद्‌गार सबके सामने रखे हैं।

मेरे सामने स्वर्गीय आचार्यश्री का जीवन-चरित्र है। वह मैंने देखा व अनुभव किया है, परन्तु उसको मैं आप लोगों के सामने हूबहू रखूं, यह मेरी क्षमता नहीं है।

आचार्य श्रीजी म. जैसी दिव्य विभूति ने शांत क्रांति को जन्म देकर जो आदर्श समाज के सामने रखा, अनेक संकटों व बाधाओं का सामना कर सत्यमार्ग पर अटल रहे, उसका वर्णन करना मेरे जैसे के लिये बहुत ही कठिन है। मेरी जिह्वा में इतनी क्षमता नहीं है कि मैं उसका सांगोपांग वर्णन कर सकूं।

आचार्य श्रीजी म. को एक ओर तो सारे स्थानकवासी समाज से मान-सम्मान मिलने का अवसर था और दूसरी ओर अनन्त तीर्थंकरों से आई हुई श्रमणसंस्कृति की पवित्रता को अक्षुण्ण रखने का प्रश्न था। श्रमणवर्ग में प्रवेश पाई हुई शिथिलता को देखकर स्वर्गीय आचार्यश्री ने अनुपव किया, यदि प्रभाव में आकर और प्रवाह में बह कर जो ठीक नहीं है, उसमें हां में हां मिला दी गई तो इस शासन को ही नहीं अनन्त तीर्थंकरों की आशातना का भागीदार हो जाऊंगा। यह सोचकर आचार्यश्री ने वही मार्ग अपनाया जो उनके जैसे युगद्रष्टा महापुरुष के लिये श्रेय था। मान-संमान उनको अपने श्रेयमार्ग से विचलित नहीं कर सके। भगवान की आज्ञा और उनका बताया हुआ मार्ग ही उनके लिये श्रेय था। इसीलिये अनेक विघ्न-बाधाओं के होते हुए भी आचार्यश्री श्रमणसंस्कृति की पवित्रता हेतु आचार-विचार में दृढ़ता लाने के लिये अन्त समय तक सतत प्रयत्नशील रहे।

श्रमणसघ का जो रूपक बना, उसके लिये आचार्य श्रीजी की यह भावना थी कि श्रमण-संस्कृति की पवित्रता के लिये एवं उसके संरक्षण के लिये सभी साथियों को साथ लेकर चलूं। तदनुसार आचार्य श्रीजी ने लगभग ८-६ वर्ष तक अनेक प्रयत्न किये। परन्तु आचार्य श्रीजी के सतत प्रयत्न के उपरान्त भी उनको ऐसा अनुभव हुआ कि अनुशासन में रहकर उचित सलाह में सबके चलने की तैयारी कम है,

कुछ श्रमणों की तो बिल्कुल ही नही। इससे उनके विश्वास को धक्का लगा। फिर भी प्रयत्नशील रहे और जो समस्यायें सामने आई, उन पर आचार्य श्रीजी ने श्रमणसंस्कृति के सरक्षणार्थ जो व्यवस्थायें आदि दीं, वे आज भी समाज के सामने खुले रूप में मौजूद हैं। ऐसा करते समय आचार्य श्रीजी ने सहयोग की अपेक्षा रखी, परन्तु रुके नहीं। उन्होंने कभी यह नहीं सोचा कि मेरे पीछे कौन आता है और कौन नहीं। उन्होंने सिर्फ यही देखा कि श्रमणसंस्कृति मेरे सामने है और चल पड़े उसकी रक्षा के लिये। आचार्य श्रीजी के मार्ग का विरोध हुआ, कइयों ने भले-बुरे शब्द कहे पर आचार्य श्रीजी अपने सत्पथ से विचलित न हुए। धैर्य के साथ सब कुछ सहन करते रहे।

विरोधियों के विरोध को एवं सत्य को ठुकराया हुआ देखकर हमारे मन में तो कभी-कभी उत्तेजना आ जाती थी कि क्यों न संयम-विपरीत दूषित प्रवृत्तियों को प्रगट कर दिया जाये? पर आचार्यदेव फरमाया करते कि कोई कितना ही तिरस्कार करे, अनुचित शब्द कहे, उनका स्वागत करो और जिस प्रकार मैं सहन करता हूँ तुम भी सहन करना सीखो। अश्लीलतायुक्त सामग्री को प्रगट करने से विशेष कोई लाभ नहीं। इसलिये शांत रहकर संयम मार्ग पर दृढ़ता से चलो और शिथिलाचार को किसी भी प्रकार से प्रश्रय मत दो। इसके लिये आचार्य श्रीजी ने अपने आदेश आदि द्वारा जो कुछ फरमाया, वह मौजूद है। उन आदेशों को आचार्य श्रीजी म. मेरे तुच्छ जीवन के साथ सम्बन्धित कर चुके हैं। मैं उनकी आज्ञाओं एवं धारणाओं के अनुसार चलने को दृढ़प्रतिज्ञ हूँ तथा इसके लिये कितने भी संकट उपस्थित हों, उनको झेलने के लिये कटिबद्ध हूँ, सब कुछ न्योछावर करने को तत्पर हूँ। मैं पहले कह चुका हूँ कि आचार्य श्रीजी ने सहयोग की अपेक्षा अवश्य रखी, मगर सहयोग की स्थिति सामने नहीं आई तो वे लक्ष्य की ओर आगे बढ़ते गये। उस समय किसी को स्वप्न में भी ख्याल नहीं था कि दूर देशान्तर से भी कोई अन्य मुनि प्रहरी बनकर श्रमणसंस्कृति

की रक्षा के लिये आयेंगे। परन्तु महापुरुषों की शक्ति अदृश्य भी होती है। उनका प्रभाव कहां और किस ढंग से काम करता है, इसका सहज ही अनुमान नहीं लग पाता है। ठीक यही बात आचार्य श्रीजी म. सा. के श्रमणसंस्कृति रक्षा के कार्यों की हुई। उनके कार्यों की सुगंध दूर-दूर तक फैली और ज्यों सुगंध से आकर्षित होकर भ्रमर बिना आमंत्रण-निमंत्रण स्वयं खिचा हुआ चला आता है, उसी प्रकार मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि गुजरात, सौराष्ट्र जैसे दूरवर्ती देश से करीब ७०० मील का लम्बा विहार कर गोंडल संप्रदाय के श्री जनकमुनिजी तथा श्री जगदीशमुनिजी आचार्य श्रीजी के चरणों में आये हैं। न, ये मुनिवर श्रमणसंघ के है और न इस संप्रदाय के, मगर गुणों के कारण ये उग्र विहार करके भी यहां आये हैं। श्री जनकमुनिजी ने कहा कि हम यह विश्वास दिलाते हैं कि हम आचार्य श्रीजी के आदेशों का पालन करेंगे और जहां भी जायेंगे प्रचार करते हुए चलेंगे।

संयमप्रेमी पं. श्री सत्येन्द्रमुनिजी म. ने भी फरमाया कि सत्पथ पर कितना भी विरोध हो, हमें उसका डटकर मुकाबला करना है और आचार्य श्रीजी ने हमारे लिये जो मार्ग रखा है, उस पर दृढ़ता के साथ चलते हुए रास्ता तय करना है।

तपस्वी पं. मुनिश्री सूरजमलजी म. वृद्ध दिखते हैं और हैं। पर इनमें इतनी स्फुरणा है कि हर काम को करने के लिये तैयार रहते हैं। इस अवस्था में भी आदर्श सेवाभावी हैं। यह सब प्रेरणा-दायक है। उनके उद्‌गार भी आप सुन ही चुके हैं।

हमारे लिये अत्यन्त दुःख का विषय यह है कि हमारे आचार्य श्रीजी का भौतिक शरीर आज हमारे सामने नहीं है, वह हमारे से ओझल हो गया है लेकिन उनका उपदेश, आदेश हमारे सामने है। आचार्य श्रीजी म. ने प्रेरणा दी है कि श्रमणसंस्कृति की रक्षा का ठीक रूप से ध्यान रखना। किसी बात के मोह में आकर सत्य पथ से विचलित न हो जाना। मैंने जो निर्ग्रन्थ श्रमण-समाचारी बनाई है,

उसके अनुसार चलने वाला कहीं भी, किसी भी देश में विचरने वाला मुनि हो, उसके साथ आत्मीय सम्बन्ध जोड़कर चलना और यदि पास में रहने वाला श्रमणवर्ग भी विपरीत प्रवृत्ति करे, अनुशासन में न रहे, श्रमणसस्कृति के रक्षार्थ जो आदेश आदि दिये गये हैं, उनका पालन न करे तो उसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं रखना आदि। आचार्य श्रीजी ने अपने जीवन की साधना करते हुए जो समाचारी एवं आदेश दिये हैं, उनका हमें अन्तर्हृदय से पालन करना है।

मनुष्य जीवन की साधना का निष्कर्ष अन्तसमय में उपस्थित होता है। जिसकी साधना जीवन भर अच्छी चलती है, उसका अन्तिम समय में पण्डितमरण होकर जीवन सुधर जाता है।

आचार्य श्रीजी म. की जीवनसाधना कठोर थी, अद्भुत थी। यही कारण है कि उसका भव्य पडितमरण हुआ। मैं उनके अन्तिम समय का क्या वर्णन करूं।

यह बात आप सब जानते हैं कि एक तरफ तो विरोध चल रहा था और इधर कैंसर के कारण शारीरिक संघर्ष चल रहा था, जिसकी अत्यन्त वेदना थी। लेकिन आचार्य श्रीजी ने कभी उफ तक नहीं की। डाक्टर लोग यह देखकर चकित थे कि इस महापुरुष में ऐसी कौनसी शक्ति है कि जिससे इतनी दारुण वेदना होने पर भी चूं तक नहीं। डाक्टर सा. कहते थे कि रोग की ऐसी भीषण स्थिति में साधारण मनुष्य तो डाक्टरों से मृत्यु की मांग करने लगता है। विष लेकर मर जाना चाहता है परन्तु धन्य है इन महात्मा को कि जिन्होंने देह पर एक प्रकार से विजय पा ली है।

तपस्वी श्री लालचन्दजी म. ने तो यहां तक कहा कि मुझे कभी-कभी ऐसा ख्याल होता है कि आचार्य श्रीजी की वेदना गजसुकमाल की वेदना का-सा दृश्य उपस्थित कर रही है। फिर भी जिस शान्ति और धैर्य के साथ बर्दाश्त कर रहे हैं, यह हमारे लिये एक अपूर्व आदर्श है।

जब अत्यन्त वेदना होती तब मनुष्य अपना भान भूल जाता है। फलतः अन्तसमय को बिगाड़ भी देता है, लेकिन आचार्य श्रीजी शान्तचित्त से वेदना को सहते रहे। आत्मा और शरीर के भेद को भली प्रकार समझकर चलते रहे।

आचार्य श्रीजी म. का संथारा सीझने के तीन दिन पूर्व डाक्टर रामावतारजी आचार्य श्रीजी म. की सेवा में उपस्थित हुए और औषधि के लिये अर्ज की। आचार्य श्रीजी म. ने फरमाया—मुझे अब परमात्मा की दवा लेनी है, अन्य कोई दवाई नहीं। इसी तरह डाक्टर शूरवीर-सिंहजी आदि को भी ऐसा ही जवाब दिया।

उसी समय डाक्टर रामावतारजी ने मुझे एकान्त में लेकर यह कहा कि इस महापुरुष के लिये अपन क्या सोचें। अपना सोचना सब व्यर्थ है। इस महापुरुष का ध्यान प्रभु में लग चुका है। शरीर की तरफ इनका ध्यान कतई नहीं है। यह एक महान दिव्य अलौकिक मूर्ति है।

उन्ही दिनों की बात है कि एक दिन मैं आचार्य श्रीजी म. को 'अपूर्व अवसर एवो क्यारे आवशे' आदि सुना रहा था। सुनाते-सुनाते दर्शनार्थियों की तरफ मेरा ध्यान चला जाने से भूल से मैं एक कड़ी का दुबारा उच्चारण कर गया। परन्तु आचार्यश्री तो आत्मरमण में लीन एकचित्त से सुन रहे थे। उनको मेरी भूल मालूम हुई और उसी समय चट से आचार्य श्रीजी म. ने फरमाया, यह कड़ी तो बोल गये हो, आगे चलो। यह सुनकर मैं सोचता हूँ कि आचार्य श्रीजी को इस अत्यन्त वेदना में भी कितना ध्यान है। जब मैं चेहरे की तरफ देखता हूँ तो मुझे अपूर्व तेज नजर आता है, मानो आध्यात्मिक ज्योतिपुंज जल रहा है। उस समय मैंने सोचा, यह क्या ही अलौकिक विभूति है। मालूम होता है, आचार्यश्री ने अपने शरीर का ध्यान छोड़ दिया है और एकान्त समभाव में लीन होकर आत्मचिन्तन में चल रहे हैं। आचार्य श्रीजी ने उसी दिन यानि ता. ९ के शाम को करीब ५-२० बजे से दूसरे दिन सुबह तक सागारी संथारा ग्रहण कर लिया और

लेट गये। ता. १० को प्रातःकाल आगन्तुक दर्शनार्थियों को दर्शन देने के बाद शारीरिक चिन्ता से निवृत्त हुए। बाद में मैंने थोड़ा पानी पिलाया और उन्होंने कुछ विश्रांति ली। इसके बाद दूध के लिये पूछा, क्योंकि अन्न तो ७-८ दिन से बंद था। आचार्य श्रीजी म. ने दूध के लिये मना कर दी कि रुचि नहीं है। आचार्य श्रीजी आत्मध्यान में लीन थे। कुछ ही समय पश्चात फरमाया कि अब मुझे अपना कार्य करना उपयुक्त जान पड़ता है। अतः इस विषय में मैं अपने आप तो सावधान हूँ ही, तुम भी पूरी सावधानी रखना। डाक्टर सा. आ जायें तो उनसे भी कुछ बात करनी है। इतने में डाक्टर शूरवीरसिंहजी आ गये। डाक्टर सा. ने पास खड़े होकर तबियत देखी और हमेशा की भांति चले गये। आचार्य श्रीजी ने डाक्टर सा. को वापस इशारा कराया। डाक्टर सा. वापस आये। आचार्य श्रीजी ने डाक्टर सा. को पूछा कि मैं अब संथारा लेना चाहता हूँ। इसमें आप क्या कहते हैं ? आप अपनी भौतिक दृष्टि भी कुछ कहिये। डाक्टर सा. ने कहा कि हमारा सिद्धान्त तथा विज्ञान आप जैसे महापुरुषों के लिये फेल-सा हो चुका है, फिर भी सावधान रहने की आवश्यकता है। डाक्टर सा. ने मुझे कहा कि कॅसर का बीमार जिसके सेकेन्ड्रीज फार्म हो जाती है, वह डेढ़ साल से अधिक जीवित नहीं रह सकता। परन्तु मैं तीन साल से महाराजश्री के शरीर की शक्ति देख रहा हूँ, पर अब ब्लडप्रेसर व नाड़ी की गति में काफी अन्तर आ गया है। अतः सावधान तो रहना ही चाहिये।

इसके बाद आचार्य श्रीजी ने मुझे फिर फरमाया कि निगरानी रखना। मैं तो सावधान हूँ ही। मैंने कहा, गुरुदेव क्या आज्ञा है ? गुरुदेव ने फरमाया कि संथारा करने के लिये इच्छाकारेणि आदि की पाटियें सुनाओ, फिर छह जीवनी, दशवैकालिक का चौथा अध्याय सुनाओ। तब मैंने क्रम से सबका उच्चारण किया। पाठ उच्चारण में आचार्य श्रीजी ने यह भी फरमाया कि अब बीच में किसी से बोलना

मत, फिर कहा ख्याल रखो। मैंने तीन दिन पूर्व स्थविर पं. मुनिश्री सूरजमलजी म. सा. के पास सब आलोचना कर ली है। अब फिर मैंने मेरी आलोचना करके छहजीवनी सुन ली है। अब मुझे कोई डाक्टर, वैद्य आदि गृहस्थ छुये नही। मैं अपने जीवन को आगे बढ़ाना चाहता हूँ।

उसी दिन प्रातः १०-२० बजे तिविहार संथारा ग्रहण किया और फरमाया कि अब यह कमरा खाली कर दो। मुझे एकान्त चाहिये। सब अलग हो जाओ। ऐसा कहकर आंखें बंद कर लीं। थोड़ी देर बाद जब आंख खोलीं तो मैं देखता हूँ कि आंखों में अपूर्व प्रेम एवं विश्ववात्सल्य की भावना टपक रही थी। उस वक्त श्वस की गति थोड़ी जोर से चल रही थी, मगर चेतना पूरी थी। ता. ११ को प्रातः जब मैं कुछ नित्य-नियम सुना रहा था, उस वक्त भी मैं एक कड़ी चूक गया तो गुरुदेव ने फरमाया कि यह क्या करते हो। कहने का तात्पर्य यह है कि संथारा सीझने के दिन प्रातःकाल तक भी इतनी ताजा स्मृति एवं जागरूकता थी। प्रतिक्रमण के वक्त स्थविर पं. मुनिश्री सूरजमलजी म. ने मांगलिक कुछ धीरे सुनाई, जिससे आचार्य श्रीजी म. के कान में न पड़ी तो फरमाया कि मांगलिक क्यों नहीं सुनाते हो ? फिर मैंने जोर से सुनाई। इतना ही नहीं, संथारा सीझने के अन्तिम समय तक दोपहर को करीब २ बजे महासतीजी श्री सोहन-कंवरजी पधारे तब श्री कानमुनिजी ने कहा कि महासतीजी खमत-खामणा करते हैं, तो आचार्य श्रीजी ने आंख खोलीं और उनके सामने देखकर गर्दन हिलाई। तब भी आचार्य श्रीजी म. जागरूक थे। इसके पूर्व करीब १२ बजे आचार्य श्रीजी म. चौविहार संथारा पचख चुके थे। इस तरह २९ घण्टा संथाराकाल व्यतीत होने के बाद ता. ११ को ३-२० बजे अन्त तक जागरूक अवस्था में संथारा सीझा। संथारा सीझने के पूर्व दर्शनार्थियों की भीड़ काफी संख्या में जमा थी। दर्शन के लिये सब आतुर थे। पर मैं सोचता था कि अन्तिम समय में समाधि के अन्दर किसी प्रकार व्यवधान न पहुंचे। बिल्कुल शांत वाता-

वरण रहे तो अच्छा है । इसलिये दर्शनार्थियों को कुछ रुकना भी पड़ा । चौविहार संथारे के दरम्यान आचार्य श्रीजी म. के शरीर में जब खुजाल हुई तो स्वयं खुजाल करने लगे । मुझे इन्कार कर दिया । शरीर के हाथ नहीं लगाने दिया । इसी जागरूक और पूर्ण चेतनावस्था में ही मस्तिष्क और नेत्र आदि की तरफ से आखिर इस भौतिक शरीर को छोड़ स्वर्ग सिधार गये । आचार्य श्रीजी म. सा. का अन्तिम दृश्य अलौकिक था, अपूर्व था । मैंने ऐसा दृश्य न कभी सुना और न देखा । आचार्य श्रीजी म. ने जिस जागरूकता के साथ अपने जीवन का उत्कर्ष किया, वह उनकी साधना का प्रतीक है । आचार्य श्रीजी म. के जीवन में साधना का जो स्थान रहा, उसका वर्णन शब्दों द्वारा व्यक्त करना मेरे लिये बहुत ही कठिन है । इतना अवश्य कहता हूँ कि निर्ग्रन्थ श्रमणसंस्कृति के सरक्षणार्थ आचार्य श्रीजी ने आचार-विचार और उच्चार को दृढ़ता के साथ समाज के सामने रखकर आदर्श उपस्थित किया । हमारा कर्तव्य है कि उसको हम श्रमणवर्ग आगे बढ़ाते हुए चलें । श्रावक-श्राविकाओं का भी अपने आप में एक महत्वपूर्ण स्थान है । अतः आप लोग भी कटिबद्ध होकर चलने की प्रतिज्ञा लेकर उठेंगे तो शिथिलाचार एवं स्वेच्छाचार को दूर होने में देर न लगेगी । आचार्य श्रीजी का भौतिक शरीर हमारे सामने नहीं है, लेकिन आध्यात्मिक शरीर हमारे सामने मौजूद है । उसको जीवन में लाना है और जिस प्रकार संथारा-सलेखनापूर्वक पंडितमरण से अपने को सफल बनाया, उसी प्रकार प्रतिदिन अभ्यास द्वारा हम भी अपने जीवन को आगे बढ़ाते हुए अन्तिम समय में उत्तम भावना द्वारा पांडित्यमरणपूर्वक जीवन को सफल बनायेंगे । यही इनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि है । मैं आचार्य श्रीजी की आज्ञा आणा, धारणा के अनुसार चलने को कटिबद्ध हूँ, इन महात्माओं ने मेरे प्रति जिन शब्दों का प्रयोग किया है, उसकी रक्षा आपके हाथ में है । मैं बच्चा हूँ, चतुर्विध संघ की गोद में बैठा हूँ, मेरे ज्ञान-दर्शन-चारित्र की रक्षा का ध्यान रखना आपका कर्तव्य है ।

आचार्य श्रीजी के शुभाशीर्वाद से हम ज्ञान-दर्शन-चारित्र में उत्तरोत्तर वृद्धि करते रहें और आचार्य श्रीजी म. की दिव्य आत्मा स्थायी एवं अखड पूर्णशांति के साथ शीघ्रातिशीघ्र मोक्ष में पधारें, इस भावना के साथ मैं अपनी अटूट श्रद्धा व्यक्त करता हूँ।

श्रद्धेय के प्रति जन-जन की श्रद्धांजलि

उदयपुर में उपस्थित जनसमूह ने तो अपने श्रद्धेय के प्रति श्रद्धांजलि समर्पित की ही थी, किन्तु जो अवसर पर उपस्थित नहीं हो सके, उन्होंने अपने-अपने स्थानों पर सभाओं का आयोजन कर सामूहिक रूप में श्रद्धांजलि समर्पित की थीं।

श्रद्धांजलि समर्पण करने वालों में साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविकाओं ने व्यक्तिशः तथा श्रीसंघों ने सामूहिक रूप में जो श्रद्धांजलि समर्पित की थीं, श्रमणोपासक के 'आचार्यश्री श्रद्धांजलि अंक' के रूप में प्रकाशित हैं। जिनके पढ़ने से स्पष्ट हो जाता है कि पूज्य आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. ने जीवन की महानता प्राप्ति के लिये प्रयत्नों का श्रीगणेश किया था और प्राप्ति के लिये प्रयत्नशील रहते हुए महान-से-महान होते गये।

उनकी महानता उनके जीवन के आदर्शों में गर्भित है और वे सदैव महान रहे। आज उनकी महानता हमारे समक्ष है और उसका प्रकाश हम सबको भी महान बनाने के लिये प्रेरित करता रहेगा।

पूज्य आचार्यश्री महान थे, हैं और रहेंगे एवं हम उनके आदर्शों से शिक्षित, अनुशासित हों, महान बनें, यही हमारा लक्ष्य हो।

लो महान अन्तिम प्रणाम

इन पृष्ठों में पूज्य आचार्य श्रीजी की जीवनी और संयम-तप-त्याग-साधना से पूत पवित्रता का सक्षिप्त दिग्दर्शन कराया है। किन्तु यह सिन्धु में बिन्दु के तुल्य है और एक महान व्यक्तित्व, ज्योतिपुंज महामना का सर्वांगीण जीवन चित्रण इन थोड़े से पृष्ठों में करना अथवा कुछ एक घटनाओं का सकेत कर देना असीम को ससीम में बांधना है।

इन पृष्ठों में वही लिखा गया, जिसे दृष्टि देख सकी है। लेकिन जो देखा है, उसे व्यक्त करने में अपने श्रम का गोपन नहीं किया है। इस विश्वास के साथ कि महापुरुषों का नामस्मरण ही विवेकोपलब्धि में सहायक है। उनकी गंभीरता, विराटता, उदारता के प्रति शत-शत वंदन और अभिनन्दन करते हुए श्रद्धावनत हूँ। उनके वरद उपदेश प्रबुद्ध और प्रगतिशील बनायेगे, इस विश्वास के साथ पुनः पुनः श्रद्धांजलि समर्पित है।

स्मरणीय श्रीसंघ की सेवायें

कथावस्तु के नायक का जीवन-मंच उदयपुर है। अतः उसकी महत्ता का संक्षिप्त परिचय करा देना आवश्यक है।

पूज्य आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. ने उदयपुर में जन्म लिया, विकसित हुए और अन्त में इसी भूमि में अपने भौतिक देह का परित्याग कर दिया। अर्थात् गंगा का जल गंगा को ही समर्पित कर दिया, किन्तु आध्यात्मिक दृष्टि से दुनिया को बहुत कुछ दिया।

लेकिन इस लेने और देने के समय के अन्तराल में उदयपुर श्रीसंघ ने मान-अभिमान से परे रहकर सदैव अपने त्याग का परिचय दिया, वात्सल्य का दान दिया।

आज भी वह समय प्रत्यक्ष है जब अपने ही हाथों युवा गणेशलालजी को महानता के मार्ग का पथिक बनाकर 'शिवास्ते पंथा सन्तु' की भावना का पाथेय अर्पित किया था एवं अपने स्वत्व को त्याग कर निधि के निधान को सौंप दिया था जनता को। सौंपा भी इस भावना के साथ था कि जन-जन के बीच शांति, समता और साधना का प्रसार प्रबल बने।

भावना सफल हुई। अपने आपको गौरवान्वित माना। भावना के साकार होने से हर्ष सीमा लांघ गया कि अकस्मात संजोये स्वप्नों को आघात लगा। सुना कि जन-जन के श्रद्धेय मेवाड़ी सपूत चतुर्दिक् संयम की सुवास फैलाते हुए भी शारीरिक अस्वस्थता से आक्रांत हैं। सेवा में उपस्थित हो गया अपने आंगन में आगमन की भावना और मनुहार भरी विनती को साथ लेकर। उसके विचारों में एक ही बात रम रही थी कि जन-जन को स्वस्थ सौंपा था और पुनः स्वस्थ, हृष्ट-पुष्ट एवं बलिष्ठ कर सौंप देंगे।

लेकिन दुर्भाग्य ! भावना की सफलता के आसार दिनोंदिन क्रमशः क्षीण होने लगे। असातावेदनीय-कर्मोदय से श्रद्धेय का शरीर प्राणलेवा—कैंसर—रोग से आक्रांत था।

सन् १६५६ में श्रद्धेय का पदार्पण हुआ और ११ जनवरी १६६३ तक विराजमान रहे। इस समयावधि में श्रद्धेय की शारीरिक स्थिति में अनेक अवसर आये जो चिन्ताजनक थे। आशंकाओं से घिरे मनों में नई-नई शंकायें पैदा हो जाती थीं। लेकिन धन्य है उदयपुर श्रीसंघ। अपने श्रद्धेय के शारीरिक रोग की विमुक्ति के लिये अच्छे-से-अच्छे साधन समुपलब्ध करने के लिये सचेष्ट रहा और प्राप्त साधनों का सदुपयोग किया।

श्रद्धेय के दर्शनार्थ आगत स्वधर्मी बंधु-बांधवों की सुविधा के लिये सतत प्रयत्नशील रहा। महलों में रहने वालों ने आगतों की सुविधा के लिये महल छोड़ दिये, अट्टालिकायें छोड़ दीं, घर के द्वार खोल स्वयं ने कुटियाओं में बसेरा कर लिया लेकिन आगतों को असुविधा नहीं होने दी। यह क्रम एक दो दिन नहीं, ३६५ दिन रहा। यह ३६५ दिन एक बार के ही नहीं, ऐसे-ऐसे चार वर्ष के हैं।

उदयपुर श्रीसंघ की प्रशंसा शाब्दिक परिधि में प्रतिबंधित न कर संक्षेप में कहेंगे कि उसका-सा सौभाग्य सभी को प्राप्त हो, उससे स्पर्धा करने का अवसर अन्यान्य संघों को मिले। स्वर्णाक्षरों में अंकित उसका विरुद विशेष श्लाघनीय है।

जब तक श्रद्धेय गणेशाचार्य स्मरणीय रहेंगे तब तक उदयपुर संघ के कार्यकर्ता और कार्य स्मरणीय हैं। वर्तमान पीढ़ी ही नहीं, वरन भावी पीढ़ी भी अपनी कृतज्ञता व्यक्त कर उऋण नहीं हो सकेगी।